ओ३म्

जनवरी से दिसम्बर १९२६

११ अंक

र
।
ार
मुक
उसी
ा है।
हता है
' वैद्य '
ाई होगी
ता होनेसे
के द्वारा
थन है कि
रिचय कर लें
! यह बात
इतनाही कहना
अपेक्षा अधिक
है। इससे जो
उनको इस शास्त्र
ावश्यक है।

वर्ष ८, अंक १ क्रमांक ८५

पौष
संवत् १९८३
जनवरी
सन १९२७

वैदिक धर्म

वैदिक-तत्त्व... क मासिक पत्र।

...मोदर सातवळेकर
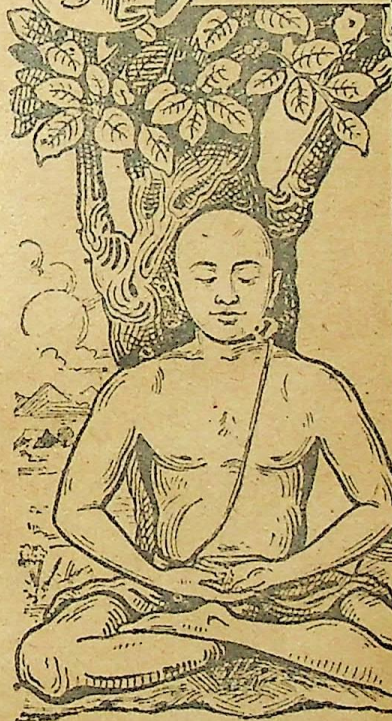
...(जि. सातारा)

...सुखप्राप्ति।

...स्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
...तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ ६२॥

अथर्व. १२। १

...अर्थात् तेरे पुत्र हैं अत एव (उप-स्थाः)
...(अस्मभ्यं) हम सब के लिये (अनमीवाः)
...होवें। हमारी (आयुः दीर्घ) आयु दीर्घ
...उत्तम ज्ञानी बनकर (तुभ्यं) तेरे लिये
...) होवें।

...र्थ वहां के रहनेवालों को ही मिलें, तथा
...ा करनेवाले और पुष्टि करनेवाले हों।
...ग बलवान और दीर्घायु होकर अपने
...ने के लिये उद्यत हों। (४) इस प्रकार की
...क्त होगा।

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा

वार्षिक मूल्य — म० आ० से ४)

वर्ष ८ पौष
अंक १ संवत् १९८३
क्रमांक ८५ जनवरी
सन १९२७

वैदिकधर्म

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिसे सुखप्राप्ति।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ ६२॥

अथर्व. १२। १

हे मातृभूमि! हम (ते प्रसूताः) तेरेसे उत्पन्न अर्थात् तेरे पुत्र हैं अत एव (उप-स्थाः) तेरी गोद अर्थात् आश्रय स्थान के सब पदार्थ (अस्मभ्यं) हम सब के लिये (अनमीवाः) आरोग्यकारक और (अयक्ष्माः) रोगरहित होवें। हमारी (आयुः दीर्घं) आयु दीर्घ होवे। और हम सब (प्रतिबुध्यमानाः) उत्तम ज्ञानी बनकर (तुभ्यं) तेरे लिये (बलि-हृतः) अपनी बलि देनेवाले (स्याम) होवें।

(१) मातृभूमिसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थ वहां के रहनेवालों को ही मिलें, तथा (२) वे पदार्थ आरोग्य बढाने वाले, नीरोगता करनेवाले और पुष्टि करनेवाले हों। (३) इस प्रकार वहां के सब लोग पुष्ट नीरोग बलवान और दीर्घायु होकर अपने सर्वस्वका बलि मातृभूमिके सन्मुख अर्पण करने के लिये उद्यत हों। (४) इस प्रकार की अवस्था जिस देशमें होगी वही देश सुखसे युक्त होगा।

संसार-व्यापी योग ।

(१) योग का भय।

'योग' शब्द का उच्चार करते ही मनुष्य के मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न होता है। इस का कारण यह है कि लोग योग के सम्बन्धकी सच-सच बातें नहीं जानते। इसी लिए इस लेख में बतलाना है कि योग सम्पूर्ण संसार में किस प्रकार समाया है।

(२) योग शब्द का अर्थ।

'युज' धातु का अर्थ है 'जोडना'। इसी धातु से 'योग' शब्द बना है। इसी से 'योग' शब्द का धात्वर्थ है 'जोडना, दो पदार्थों को मिलाना, दोनों में दृढ सम्बन्ध कराना'। यही अर्थ योगसाधन में है और उसका भाव है 'जीवात्मा तथा परमात्मा का मीलन'।

(३) वैद्य तथा योगी।

योगशास्त्र में जैसा योग शब्द है वैसा ही वह वैद्यशास्त्र में भी हैं। वैद्यशास्त्र में योग शब्द का अर्थ है (१) औषधि, (२) औषधिद्रव्य, (३) उपाययोजना, (४) शरीर की स्थिरता का उपाय, शरीर का बल बढाना, दीर्घ आयु प्राप्त करना तथा बुद्धिका विकास होकर आरोग्य प्राप्त होना इत्यादि सिद्धियों के उपाय'। वैद्यशास्त्र के ज्ञाता औषधियोजना कर जैसे शरीर-स्वास्थ्यका साधन करते हैं उसी तरह योगी आसन, प्राणायाम, ध्यान, भावनास्थिरीकरण वा जप आदिसे वही कार्य साधते हैं। वैद्यराज बाहर की औषधि से शरीर में समता उत्पन्न करते हैं। और योगी लोग, यह जानकर कि शरीर में होने वाले हेर फेर मनकी भावना से ही होते हैं, मनकी नियमित भावनाओं से शरीर में समत्व रखते हैं। दोनों का उद्देश एकही है; एक बाह्य साधनों की सहायता लेता है, दूसरा अन्तः शक्ति की जागृति करता है।

यदि यह बात पाठकों की समझमें आ जाय तो वे जान सकते हैं कि बाह्य साधनों से 'काया सिद्धि' या 'वज्रकाया, करने की अपेक्षा अन्तः साधनों से वह कार्य सिद्ध करना अधिक श्रेष्ठ है। इस का उत्तम उदाहरण यह कि अपने देश के शत्रु को भगाने के लिए अन्य देशोंकी सेना को बुलाने की अपेक्षा स्वतः की शक्ति बढाकर शत्रु को भगाना सदैव अधिक हितकारी है। क्यों कि शत्रु को भगाने के लिए जो बाहरी सेनाएँ आवेंगीं वे ही यदि स्वदेशमें जम गईं तो उन्हे किस प्रकार निकालेंगे ? राजनैतिक दृष्टिसे यह बडा भारी संकट है। इसीसे देशके नेता अन्तःशक्ति बढाने पर जोर देते हैं और उसी को बढाने की चेष्टा करते हैं।

यही भेद औषधि के उपयोग से आरोग्य प्राप्त करने में और योगसाधन से स्वास्थ्य बढाने में है। वैद्य प्रक्रिया में जो औषधिसेवन करना आवश्यक होता है वे औषधियाँ शरीर में विघातक कार्य भी करती हैं। इस विघातक कार्य का प्रतिकार करने के लिए दूसरे उपाय करने पडते हैं। इस प्रकार का कष्ट योगसाधन की अन्तःशक्ति की वृद्धि करने में नहीं रहता। जितनी अपनी शक्ति बढेगी उतना लाभ बेखटके मिलेगा।

वैद्य की औषधियोजना में बाह्य औषधि को तथा योगी के अन्तःशक्ति की वृद्धि के साधनों में मानसिक भावना की साधना को प्रधानता है।

यह निःसंदेह है कि स्वास्थ्यके लिए इन दोनों साधनों का उपयोग कर सकें, तो उनके यथोचित प्रमाण में काममें लानेपर अनेक लाभ होंगे। यह सिद्ध होने के लिए वैद्यराज को योगशास्त्र का ज्ञान चाहिए और योगी को वैद्यशास्त्र सीखना चाहिए।

(४) 'वैद्य' योगी और योगी 'वैद्य'।

हमारा मत है कि वैद्यशास्त्र तथा योगशास्त्र की शिक्षा साथही दी जावे तो जनता की अधिक भलाई होगी। वैद्यक पाठशालाओं में, आर्यांग्ल वैद्यकशालाओं में वा मेडिकल कालेजों में योगशास्त्र आवश्यक विषय होना चाहिए। इस बात को हम ही पहली बार नहीं कहते। योगशास्त्रकार पातञ्जली मुनि स्वयं अच्छे योगी और अच्छे धन्वन्तरी वैद्य थे। अश्विनीकुमार स्वतः प्रसिद्ध प्राणायामका अभ्यास करने वाले योगी और औषधि चिकित्सक तथा शस्त्र-वैद्य थे।

वैद्यको सम्पूर्ण शरीर के स्नायु, धमनी, मज्जाकेंद्र तथा अस्थि आदिका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसी तरह योगी को भी इन बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। इतनाही नहीं, योगीको सूक्ष्म मज्जाकेंद्र (नर्व्हस सेन्टर्स) का ज्ञान और उनके द्वारा शरीर को मन किस प्रकार वश में रखता है इसका ज्ञान अधिक होना जरूर है। इससे स्पष्ट होगा कि शिक्षाके समय योगी और वैद्य मिल जाँय तो जनता का भारी हित होगा।

(५) तुलना।

योग मार्ग में सब जोर स्वावलम्बन पर है। तब यदि यह कहें कि परावलम्बन के कष्ट इसमें नहीं हैं, तो अत्युक्ति न होगी। इसके समझाने के लिए कुछ उदाहरण लेवेंगे। (१) योगसाधन का 'बस्ति' अंतडियों का बल बढाता है और नुकसान कुछ भी नहीं करता; यह हाल डाक्टरों के बस्ति(एनिमा) का नहीं है। डाक्टरी बस्ति (एनिमा) से अंतडियों की शक्ति क्षीण होती है। इसी से कई बार इस बस्तिसे (एनिमासे) हानि होती है। वैद्यों का बस्ति विधि डाक्टरोंके बस्ति से अच्छा है किन्तु उससे भी अधिक अच्छा है योगसाधन का बस्ति।

युरोपीयन तथा अमेरिकन डाक्टरोंने जिसका प्रचार किया है वह रबर का बस्ति (एनिमा), हातसे दबाने का बस्ति, वा अंतःस्नान का बस्ति आदि सब कनिष्ठ हैं। वैद्यों के बस्ति का तत्त्व ही भिन्न है इससे हम उसकी गणना मध्यम वर्ग में करते हैं, किन्तु योग का बस्ति इन दोनों में श्रेष्ठ है इससे वह सर्वश्रेष्ठ है। आजकल कोई कोई समझते हैं कि डाक्टरी बस्ति वैद्यकी बस्ति तथा योगिक बस्ति एक ही है किन्तु यह उनकी भारी भूल है।

यदि लोग समझ सकें कि जो हाल बस्तिका है वही अन्य उपायों का भी, तो वे जान लेंगे कि मनुष्यका आरोग्य बढाने के लिए योगसाधन कैसा लाभदायक है। 'योगचिकित्सा' नामक योग का अत्यन्त महत्व का भाग है। वह वैद्यक की औषधी-चिकित्सासे अधिक लोगोपयोगी है। इसका विचार स्वतन्त्र रीतिसे आगे किसी लेख में करेंगे। औषधि देकर रोग मिटाने के लिये जिस प्रकार वैद्य को यह जानना आवश्यक है कि अमुक रोग शरीर के अमुक भाग में अमुक रूप में है; उसी तरह योगी को भी जानने की आवश्यकता है। दोनों रोग के रूप का ज्ञान समान ही रहता है किन्तु उपाय योजना भिन्न है। यदि योगी 'वैद्य' वा वैद्य 'योगी' होने से जैसे लोगों की भलाई होगी वैसे उन दोनों में बिगाड वा भिन्नता होनेसे नहीं हो सकती। इसी लिए इस लेख के द्वारा हमारा डाक्टर, सर्जन तथा वैद्यसे कथन है कि वे परस्पर एक दूसरे के शास्त्र का परिचय कर लें और उपाय योजना मिलकर करें! यह बात सिद्ध हो चाहे न हो, हमें यहाँ केवल इतनाही कहना है कि योगशास्त्र वैद्यशास्त्र की अपेक्षा अधिक निरुपद्रवी तथा अधिक उपयोगी है। इससे जो लोग आरोग्य की इच्छा करते हैं उनको इस शास्त्र की ओर ध्यान देना परम आवश्यक है।

(६) सार्वत्रिक योगशिक्षा।

एक समय ऐसा था कि जब आर्यों के शिक्षा-क्रम में योगशास्त्र को आवश्यक विषय के नाते स्थान था और वह विद्यार्थीयोंको सिखाया भी जाता था। कोई भी कार्य का आरम्भ, ' आसन और प्राणायाम' करने के पश्चात् ही, करने की प्रथा ऋषि-काल से आज दिन तक बेखटके चली आई है। यदि लोगों को अनुभव न होता कि योगसाधन से सबको लाभ है, तो सब धार्मिक कार्यों में आसन और प्राणायाम को न रखा होता। जो बात उपयोगी होती है वही सर्व साधारण में फैल जाती है। इससे रूढ प्रथा से एक ही बात का अनुमान कर सकते हैं कि आसन प्राणायाम आदि योग-साधनों से सब को लाभ हो सकता है।

(७)योगका व्यापक प्रयोग।

इसका दूसरा सबूत यह है कि ' योग ' शब्दका 'प्रयोग, हर जगह है। जिसका लोगों को अधिकउपयोग होता है उसीका शब्द अधिक चल पडता है। भाषामें शब्द प्रयोग का यही नियम है। ''प्रयोग'' शब्द का ''उपयोग'' बहुत ही अधिक है। जैसे, रासायनिक-प्रयोग, यान्त्रिक प्रयोग, औषधि का प्रयोग आदि। इन शब्दों में उन बातों का ' प्रकर्षयुक्त योग ' ही है। कोई भी ' प्रयोग ' करने के लिए विविधवस्तुओं का 'संयोग' करना पडता है। कुछ प्रयोगों में विविध पदार्थोंका ' वियोग ' करना आवश्यक होगा। किन्तु इन सब में ' योग ' सामान्य ही है।

पुरुषार्थी लोग उद्योग ' उत्--योग ' अर्थात् उत्कृष्ट दशा को पहुंचने का ' योग ' ही करते हैं । और पुरुषार्थ की पराकाष्ठा कर उद्योग से अपने भाग्य का 'सु योग' करते हैं। इसी पुरुषार्थ के मार्ग से सब का ' योग--क्षेम ' होता है।

प्रश्न पूछना, चिकित्साबुद्धि से नवीन युक्ति खोज-कर निकालना, मार्मिक टीका टिप्पणि करना, मन को एकाग्र करना आदिको संस्कृत में ' अनुयोग ' नाम है। सब लगों को यह अनुकूल योग' है इसी लिए ' अनुयोग ' कहते हैं।

शत्रुपर हम्ला करने को ' अभियोग ' कहते हैं। अदालत में वकील द्वारा मुकदमा चलाने को भी ' अभियोग ' कहते हैं। वकीलके ' अनुयोग ' में प्रवीण होने ही से वह गवाहों की जिरह अच्छी तरह करा अपने पक्षकार को बचा सकता है।

राजनैतिक कार्यक्षेत्र में भी कभी कभी 'सहयोग' के साथ ' प्रतियोग' रह सकता है। इसे राजनैतिक भाषामें ' प्रतियोगी सहकारिता ' कहते हैं। वास्तव में यह ' असहयोग ' ही है पर वह कुछ शर्तों पर किया जाता है इससे उसे प्रतियोगी सहकार कहते हैं।

विपक्षी जब अर्थहीन तथा अयुक्त बातें कहने लगता है तब उसकी बकबक को ' निर्योग ' कहते हैं। जिस में कुछ योजना ही नहीं होती उसे ' निर्योग ' कहते हैं।

जब कहीं जाना होता है तब शुभ मुहूर्तपर गमन किया जाता है। इस मुहूर्त को 'अधि – योग' कहते हैं। निश्चित समय पर निश्चित काम करने को ' आ – योग ' कहते हैं।

स्व – पति से जो संतति होती है उसे ' स्व-योग संतति' कहते हैं। नियोग विधि में स्वकीयों की आज्ञासे अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन होती है उसे ' नि – योग संतति ' कहते हैं। पाण्डवों के समय यह प्रथा थी, वर्तमान समय में नहीं है।

कोई भी बात की सीमा हो जानेपर उसे ' अति-योग ' कहते हैं। इससे उत्तम ' योग' का भी 'अति-योग ' न होना चाहिए। यह सिद्ध करने के लिए कि ' योग ' सर्वव्यापी है उपरोक्त शब्दों का मनन काफी है। पाठकों को स्पष्टतया विदित हुआ होगा कि भाषामें सब स्थानों में तथा सब व्यवहारों में अनेक रूपों से ' योग ' शब्द आता है, वह सर्वत्र ' योग ' की उपयोगिता ही बतलाता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीभगवद्गीता में कहते हैं—

(८) समता तथा कुशलता।

समत्वं योग उच्यते ॥ भ. गी. २। ४८

योगः कर्मसु कौशलम् ॥ भ. गी. २। ५०

' समता ही योग है तथा कर्म करने की चतुराई को ही योग कहते हैं। '

'समता और कौशल्य योग ही हैं। किस स्थान में इन दो गुणों की आवश्यकता नहीं होती ? मनुष्य मात्र के लिए जितने पुरुषार्थ के काम करने की आवश्यकता है उन सब में समता और कौशल्य दोनों की आवश्यकता है।' इस बात के समझते आपको तुरन्त ज्ञात होगा कि योग संम्पूर्ण संसार में किस प्रकार समाया है।

(९) सर्वांगीण उन्नति।

योग यद्यपि सर्वव्यापी है तब भी इस सूक्ष्म तथा व्यापक योग की अपेक्षा योग शास्त्र का योग विशेष महत्वका है। इस अष्टांग योग से तेजस्वी बना हुआ शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा आत्मा की गति चाहे जिस शास्त्रमें सहजही में हो सकती है। इसके लिए उदाहरण भगवान् श्रीकृष्णजी का ही है। श्रीकृष्णजी 'योगेश्वर' वा योगीराज थे। वे तत्वज्ञानियों में तत्वज्ञानी थे, वीरों में वीर थे, मल्लों में मल्ल, राजनीतिज्ञों में राजनीतिज्ञ, वक्ताओं में वक्ता, गृहस्थों मे गृहस्थ, ब्रह्मचारियों में कडे ब्रह्मचारी और धर्मशास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ धर्मशास्त्रज्ञ थे। इससे पता चलता है कि योग के कारण बुद्धि किस प्रकार सर्वव्यापी होती है तथा मानवी शक्ति का विकास होकर वह दैवी शक्ति किस प्रकार बनती है।

इस प्रकार योग साधन अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। इसीसे सब लोगों को आवश्यक है कि इस ओर पूर्ण ध्यान दें जिस से उन्हीका भला होगा। यह निस्संदेह है कि इससे किसी भी प्रकार की हानि तो होती ही नहीं; कुछ न कुछ लाभ अवश्यही होता है।

छूत और अछूत।

२ बौद्ध धर्म।

करीब सवा दो हजार वर्ष पहले हिन्दुस्थान में जातिभेद तथा हिंसा सीमा को पहुंची। इन दोनों दोषों को निकालकर उनके स्थान में समता तथा अहिंसा के धार्मिक गुणोंकी स्थापना करने के उद्देश्य से भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म चलाया। इससे इस धर्म में सब प्रकार के नीतिबंधनों में इन्ही दो गुणों को अग्रस्थान मिला। सब जीवोंपर आत्मवत् दृष्टि रखना उन्हे किसी भी प्रकार से दुःख न देना और सारी मनुष्य जाति में जो निसर्गतः बन्धुभाव है उसे अपने आचरण में लाना आदि सदगुणों को ही इस धर्म में प्रधानता दी गई है। इसी लिए अल्पकालमें इस धर्म का प्रसार अधिक हुआ। और जहां जहां यह धर्म पहुंचा वहां के मूल धर्म का इसने उच्छेद किया। इस धर्म में ऐसी समता है, इसी लिए उसमें छूत अछूत जैसे संकुचित भाव नजर नहीं आते। इसी लिए बुद्धजी के कुछ उपदेशों का विचार करें।

एक समय बुद्धजी को मारका दर्शन हुआ। उन्हों ने बुद्धजी से कहा कि 'आजसे सात दिन बाद तुम्हे सारे संसार का राज्य मिलेगा।' यह सुन बुद्धजी बोलेः-"But it is not now sovereignty that I desire. I will become a Budha and make all the world shout for joy."

(अब मुझे राज्यपद की इच्छा नहीं है, मैं बुद्ध होऊंगा और ऐसा कार्य करूंगा जिससे सारा संसार आनंद के लिए तत्पर होगा।)

कल्याणो धम्मो, अ० ९४। ३

इस वाक्य से विदित होता है कि गौतम बुद्धजी की इच्छा यही थी कि 'मेरा धर्म सारे संसार के लिए है।' इस इच्छा से मालूम होता है कि किसी भी जाति के, किसी भी देश के वा किसी भी रंग के लोग क्यों न हों; वे इस धर्म में आवें, और उन्हे निर्वाण पद प्राप्त हो।

सब मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही तत्त्व से है, इससे वे सब एकसे हैं। बौद्ध धर्म उन सबको समान ही मानता है। जिस प्रकार वर्षा सब पर एकसी बरसती है, उसी प्रकार बुद्धजी सब पर एकसा प्रेमभाव रखते हैं। क्याही बडी बुद्धजी की समता है! उस महात्मा के उदार हृदय में यह भाव ही न था कि अमुक जातिके लोग उच्च और अमुक के नीच हैं। इसी प्रकार: —

" Well then, we agree that the flame of to day is in a certain sense the same as the flame of yesterday; and in another sense it is different at every moment. Moreover, the flames of the same kind, illuminating with eqval power the same kind of rooms, are in a certain sense the same." (41)

" Yes, Sir," replied Kutadanta. (42)

The blessed one continued; " Now, supp- Pose, ther is a man, who feels like you, t hinks like you, and acts like you, is he not the same man as you ?" (43)

" Dost thou deny that the same logic holds good for thyself that holds good for the thing of the world! " (45)

(अच्छा, तो अब यह निश्चय हुआ कि कलकी दीपज्योति और आजकी दीपज्योति कुछ बातों में एक ही है, तथा दूसरी रीति से देखें तो प्रत्येक क्षण में वे भिन्न हैं। एक ही प्रकार की दीपज्योतियां, एक प्रकारसे एक ही कमरे को प्रकाशित करती हों, तो वे सब एक हैं।

" जी हां महाराज " कूटदंतने कहा।

तदनन्तर बुद्धदेव बोले " अब ऐसी कल्पना करो कि एक मनुष्य है, जिसकी भावना, विचार तथा काम भी तुह्मारे समान हैं तो क्या वह मनुष्य तुह्मारे समान नहीं है ?"

'तर्क का जो प्रमाण संसार की दूसरी वस्तुओं के लिए कामयाब होता है वही तुम्हारे लिए भी कामयाब है। क्या तिसपर भी तुम कबूल नहीं करते?''

कल्याणी धम्मो अ. ५३

दीप में तेल, बत्ती, बर्तन तथा अग्नि, इतनी वस्तुएं रहतीं हैं। सब दीपों में इतने ही पदार्थ रहते हैं, इसी लिए सब दीप समान हैं। उसी प्रकार मनुष्य में शरीर, मन, बुद्धि आदि रहते हैं; वे सब मनुष्यों के लिए समान ही रहते हैं, इसी लिए सब मनुष्य समान हैं। एक ही कमरेमें दस दीप हों तो उन में से हर एक की जाति जिस प्रकार भिन्न नहीं होती उसी प्रकार जगत् रूप कमरेमें सब मनुष्य दीप हैं। शरीर रूप वर्तन में मन रूप तेल छोडकर उसमें बुद्धिरूप ज्योति सिलगाई है। इस लिए सब मनुष्यों को समान समझो।

"Now, suppose," added the Blessed One, " that a man should come hither to the bank of the river, and, having some business on the other side, should want to cross, do you suppose that if he were to invoke the other bank of the river to come over to him on his side, the bank would come on account of his praying? (18)

Yet this is the way of the Brahmanas. They omit the practice of these qualities which really make a man a Brahman, and say, 'Indra, we call upon you, Soma, we call upon you; Varuna, we call upon you; Brahma, we call upon you." Verily, it is not possible that these Brahmans, on account of their invocations prayers and praises, should, after death, be united with Brahma"

(अब कल्पना करो कि एक मनुष्य नदी के किनारे गया। उसे किसी काम के लिए उस पार जाना है। तब वह यदि प्रार्थना करे कि, हे किनारा, तू मेरी ओर आ, तो क्या वह उस पार का किनारा उसकी प्रार्थना के कारण उसके पास आ जावेगा ? बस, इसी प्रकार के ब्राह्मणों के मार्ग हैं। वे उन गुणों को नहीं अपनाते जिनके कारण मनुष्य ब्राह्मण बनता है। किन्तु वे कहते हैं, हे इन्द्र? मैं तेरी प्रार्थना करता हूं; हे सोम ? मैं तेरी प्रार्थना स्तुति करता हूं; हे वरुण ! मैं तुम्हे बुलाता हूं; हे ब्रह्म। मैं तुम्हारे गुण गाता हूं।' परन्तु यह कहना व्यर्थ है कि ऐसा करने से मरने के पश्चात् उन्हे ब्रह्म की प्राप्ति होगी, या वे ब्रह्म में लीन हो जावेंगे।)

कल्याणो धम्मो अ. ४९

उपर्युक्त वचन में कहा है कि वही मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है जिसमें कोई खास गुण हों। इससे स्पष्ट विदित होगा कि भगवान् बुद्ध जन्मपर से ब्राह्मणत्व मानने के पक्षपाती नहीं थे। बरन् वे गुणतः ब्राह्मणत्व को मानते थे। पहले महाभारतका एक वचन आ गया है जिस में कहा है कि किसी भी जाति का मनुष्य क्यों न हो उसमें यदि वे विशेष गुण विद्यमान हैं तो उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। बराबर इसी अर्थ का यह भगवान् बुद्ध का वचन है। यह स्पष्ट है कि जो लोग गुण कर्मों से ऊंच नीच पहिचानते हैं वे किसी भी व्यक्ति को उसकी जाति के कारण अछूत न समझेंगे। और भी देखिए:—

आगे लिखे लेखांश से ज्ञात होगा कि भगवान् बुद्ध की अन्त्यज—बहिष्कृत जाति या बहिर्जाति (Out-cast)के विषय में क्या धारणा थी-

"When Bhagawant dwelt at Shrawasti in the jetavana, he went out with his alms-bowl to beg for food and approached the house of a Brahman priest while the fire of an offering was blazing upon an altar. And the priest said- Stay there, O Shoveling, stay there, O Wretched Shramana, thou art an outcast.'

The Blessed one replied: "Who is an out-cast. ? " (2)

"An out-cast is the man who is angry and bears hatred; the man who is wicked and hypocritical, he who embraces error and is full of deceit. (3)

Whosoever is a provoker and is avaricious, has sinful desires, is envious, wicked, shameless, and without fear to commit sins, let him be known, as an outcast. " Not by birth does one become an out-cast, not by birth does one become a Brahman; by deeds one becomes an out-cast.

(एक समय भगवान् बुद्धदेव जब कि वे श्राव-, स्ती में रहते थे, हाथ में भिक्षा-पात्र ले एक ब्राह्मण के घर भीख मांगने गए। उस समय ब्राह्मणकी घर की वेदीपर हाल ही में हवन हुआ था, इससे अग्नि जलती थी। भगवान् बुद्ध को देखकर ब्राह्मण बोला — 'ऐ मुंड? ठहरो। ऐ भिखारी श्रमण? दूर खडे रहो। तुम बहिष्कृत हो। "यह सुनकर बुद्धदेव बोले; -- बहिष्कृत कौन है ? जो क्रोधी, द्वेष करने वाला, दुराचारी, ढोंग करनेवाला, प्रमादी, ठगनेवाला, दुःख देनेवाला, स्वार्थी, पातकी. निर्लज्ज, हो वही बहिष्कृत है। जन्मसे कोई भी बहिष्कृत नहीं रहता और जन्मसे कोई भी ब्राह्मण नहीं है। मनुष्य अपने आचरणहीसे बहिष्कृत होता है तथा अपने कामों से ब्राह्मण होता है।)

— कल्याणो धम्मो. अ० ७५

इसमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि जन्मतः कोई भी अछूत नहीं है। बहिष्कृत या अछूत जाति कोई है ही नहीं। प्रत्येक मनुष्य सदाचार ही से ऊच्च और दुराचार ही से नीच बनता है। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव को जाति भेद, अंत्यजों का बहिष्कार आदि धार्मिक अत्याचार पसंद न थे। इसी कारण

बुद्धजीने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा की। ब्राह्मण के धर्म में जातिभेद और छूत अछूत है इस लिए उन्होंने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा नहीं की, और जब तक यह दोष इस धर्म में रहेगा तब तक हिन्दू धर्म के लोग दूसरों को अपने में शामिल नहीं कर सकते। अस्तु। बुद्धदेव सदाचार को कैसा महत्व देते थे निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होता हैः—

" If any man, whether he be learned or not, considers himself so great, as to despise other men, he is like a blind man holding a candle, blind himself, he illumines others. " (धम्मपद अ० ३)

" To repeat a thousand words without understanding, what profit is there in this? But to undrestand one truth and hearing it to aet accordingly, this is to find deliverance. " (धम्मपद अ०१६)

" But the disease of all diseases, than which none is worse, is ignorance ."

(धम्मपद अ० २६)

(खुद अज्ञानी रहते हुए जो दूसरों को तुच्छ समझता है और आप अपने को उच्च समझता है वह दिया लेकर चलनेवाले अंधे के समान है। अर्थात् खुद अंधा होते हुए भी दूसरों को रास्ता बतलाने की घमंड रखता है। सैकडों ग्रंथ मुखाग्र हों तब भी उससे लाभ कुछ नहीं है। जितना सत्यज्ञान समझमें आवेगा उसके समान यदि आचरण हो तभी मुक्ति प्राप्त होगी। अज्ञान सब रोगोंमें बडा रोग है)

उपर्युक्त उद्गार उस समय के रटंत विद्या के पक्षपाती ब्राह्मणों के संबंध में कहे गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव के विचार से उन नीच जाति के लोगों की योग्यता अधिक थी, जिनका ज्ञान ग्रन्थ रटनेवाले ब्राह्मणों से कम होने पर भी उसी ज्ञान के अनुसार उनका आचरण था। निम्न लिखित लेखांश से विदित होगा कि उनके श्रमण तथा भिक्षुओंके चुनाव का तत्त्व जाति नहीं था किन्तु गुण - कर्म था। देखिए-

" Who is Shramana? Not he who is Shaven per force, who speaks untruth, and covets possession, or who is slave of desire like the rest of men;but he who is able to put an end to every wicked desire, to silence every personal preference, to quiet his mind and to put an end to thought. This man is called a Shvamana. And who is called a Bhikshu?Not he who at stated times begs his food; not he who walks unrightously (heretically), but hopes to be considered a disciple, desiring to establish a character(as a religious person), and that is all; but he who gives up every cause (karma) of guilt and lives contently and purely, who by wisdom is able to crush every evil, this man is a trve Bhikshu. "

" जो सिर मुडाता है और दुराचार से रहता है, वह श्रमण नहीं, किन्तु श्रमण उनको समझना चाहिए जो मन की दुष्ट भावनाओं को तथा स्वार्थ की इच्छा को त्याग देता है और शुद्ध आचरण से रहता है। इसी प्रकार भिक्षू वह नहीं जो नियमित समय पर भीख मांगता है और सब प्रकार के दुष्ट कर्म करता है, किन्तु वह जो किसी भी प्रकार का बुरा कर्म नहीं करता।)

इससे साफ रीतिसे मालूम हो जाता है कि भगवान् गौतम बुद्ध को जाति के कारण मनुष्यों को अपनाना पसंद न था बल्कि गुणों के कारण अपनानाहि पसंद था। जिसके धर्म में जातिभेद ही नहीं है उसके धर्म में छूत अछूत हो ही नहीं सकती।

वर्तमान समय के बौद्ध धर्मावलम्बी लोग हिन्दुओं के सहवास के कारण जाति भेद के बंधनों को मानते हैं और किसी किसी को अछूत समझ. कर दूर भी कर देते हैं परन्तु इस प्रकार का उपदेश भगवान् बुद्धने किसी भी स्थान में नहीं किया। भगवान् बुद्ध ने अपनी शुद्ध वाणी से समता का

ही उपदेश किया, और वह लोगोंने कुछ शताब्दियों तक माना भी। परन्तु आगे चलकर समयने पलटा खाया और पहले की प्रथाने अधिक जोर पकडा। इससे अंत्यज हमेशाके लिए अछूत समझे गए और आज कई शताब्दियों से उन्हे अछूत ही रहना आवश्यक हुआ है। भगवान् बुद्धने एक स्थान में कहा है " where there is much suffering there is also great bliss. "

(जहां कहीं दुःख अधिक हो जाता है वहां सुख भी अधिक होता है।) उनकी इस दैवी वाणीके अनुसार अन्त्यज आदि अछूत तथा बहिष्कृत जातियों ने जो हजारों सालों से दुःख भोगा है उसके बदले में उन्हे मिलनेवाला सुख जल्द मिले और उनके द्वारा सामाजिक उच्च कर्तव्य होवें। यह हमारी इच्छा है। यहां हम बौद्ध धर्म का विचार खतम करते हैं।

—o—

भारतीय समाज शास्त्र की आधार शिला।

वर्ण व्यवस्था के शास्त्रीय आदर्श।

२

(लेखक—प्र० स्ना. धर्मदेव सिद्धांतालंकार विद्यावाचस्पति, आचार्य गुरुकुल मुलतान.)

ब्राह्मणों के गुण कर्तव्य और अधिकार–

समाज की अधिक से अधिक बुराइयां स्वयं दूर हो जांय यदि लोग अधिकारों के पीछे न मरकर कर्तव्य पर विशेष दृष्टि रक्खें। जब से लोगों ने कर्तव्य की उपेक्षा करते हुए स्वार्थ बुद्धिसे प्रेरित होकर अधिकारों पर विशेष दृष्टि रखनी शुरू की तभी से जन्मसिद्ध जातिभेद की हानिकारक पद्धति की उत्पत्ति हुई और तभी से हमारे देश का अधःपात वेगसे प्रारंभ हुआ। इससे इन्कार नहीं हो सकता कि हमारे सभी धर्मग्रन्थों में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊंचा माना गया है और यहां तक कह दिया गया है कि—

" सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किन्चिद् जगती गतम्। "

संसार में जो कुछ भी है उसका मालिक ब्राह्मण ही है दूसरे सब लोग बाह्मण की दया से ही भोग करते हैं, इत्यादि किन्तु उस ब्राह्मण का जो कठिन आदर्श बताया गया है उसको दृष्टि में न रखते हुए लोग कह देते हैं। कि धर्म शास्त्रकारों ने ब्राह्मणोंका अनुचित पक्षपात किया है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मनु० १।९८, ९९ में लिखा है कि ब्राह्मण क्या है मानो धर्म की शाश्वती मूर्ति है। वह धर्म के लिये उत्पन्न हुआ है इस लिये धर्म का पालन करते हुए ही वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है ब्राह्मण मानो पैदा ही धर्मकोशकी रक्षा के लिये होता है इसी लिये वह सारे भूतोंका ईश्वर माना जाता है। इस प्रकार के श्लोकों से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि मनु महाराज ऐसे धर्म मूर्ति, धर्मकोश के रक्षक पुण्यात्मा ब्राह्मणों की ही पूजा करने का आदेश करते हैं। जात्यभिमानी भोजनभट्टों की नहीं। मनु० १०। ३ में ब्राह्मण सब वर्णोंमें श्रेष्ठ क्यों माना गया है इस बात की व्याख्या करते हुए कहा है कि,

" वैशेष्यात्प्रकृतिज्यैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्।
संस्कारस्य विशेषाच्च, वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः॥"

तात्पर्य यह कि ब्राह्मण के अन्दर अन्य वर्णोंको अपेक्षा ज्ञानतप इत्यादि विशेष होते हैं उसकी प्रकृति वा स्वभाव के अन्दर अधिक सात्विकता रहती है,

यह वेदाध्ययन इत्यादि नियमों का तथा अग्निहोत्रादि का विशेष रूपसे धारण करता और अन्यों से करवाता है । इसी लिये ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। जहां इन विशेषताओंका अभाव है वहां ब्राह्मणत्व भी नहीं रह सकता । इसलिये मनु ने कहा है । जो ब्राह्मण कुलके अन्दर उत्पन्न हो कर भी वेदमें विशेष परिश्रम नहीं करता और सन्ध्यादि नित्य नियमों का नियमपूर्वक अनुष्ठान नहीं करता वह शूद्र ही है (देखो मनु० २ । १६८ और २ । १०३)। अब मनुस्मृति के ही आधार पर हम ब्राह्मणों के कठिन आदर्श का थोडा सा उल्लेख करेंगे । मनु० २ । ६२ में ब्राह्मण के विषय में लिखा है—

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा ॥

अर्थात् सच्चे ब्राह्मणको चाहिये कि अपनी प्रतिष्ठा से विषकी तरह डरे और अप्रतिष्ठा वा तिरस्कार का अमृत की तरह स्वागत करे । सच्चे ब्राह्मणों की पूजा करना सारे समाज का मुख्य कर्तव्य है। किन्तु जिसको स्वयं इस बात की चिन्ता रहती है । कि लोग मेरा सन्मान करें वह ब्राह्मण के सच्चे आदर्श से अभी कोसों दूर हैं। ऐसा समझना चाहिये । आज कौन ब्राह्मणत्वाभिमानी इस आदर्श तक पहुंचने की चेष्टा तक करता है। ब्राह्मण के लिये सादगी का आदर्श रखते हुए मनुमहाराज ने ४।७में यहां तक कह डाला है कि—

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा।
ऽयहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥

अर्थात् ब्राह्मण अपने पास ३ वर्ष के लिये पर्याप्त सामग्री रक्खे वा १२दिन की वा ३ दिन की अथवा सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण तो वह है जो कलका भी भोजन का सामान अपने पास नहीं रखता। ४। ८में स्पष्ट ही इन चारों प्रकारों में से एकसे दूसरा उच्च कोटिका है यह बतलाया है । तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणको धन धान्य से ज्यादा सरोकार नहीं रखना । अपने जीवन निर्वाह के लिये जितना अत्यन्त आवश्यक हो उतना ही अपने पास रखना उससे अधिक नहीं। वेद भगवान्ने तो "ब्राह्मणोऽस्य मुखम्" कह कर ही सारा आदर्श सामने रख दिया है । शेष केवल व्याख्यान है। मनु २ । १६१ में ब्राह्मण के कर्तव्य बताते हुए कहा है कि वह कितनी भी आपत्तिमें क्यों न हो उसे दूसरों के दिल के चुमने वाले अप्रिय वचनों का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये और दूसरों का द्रोह मन वा क्रिया द्वारा कभी न करना चाहिए ।

ब्राह्मणों की जिम्मेवारी पर भी इस प्रसङ्ग में विचार कर लेना चाहिए। मनुष्य समाजमें सच्चे ज्ञान का प्रसार करके शान्ति स्थापन करना यह ब्राह्मणोंका ही कर्तव्य है। न केवल आध्यात्मिक बल्कि व्यावहारिक ज्ञान के भंडार का अध्यक्ष भी ब्राह्मण कोही होना चाहिए इसी लिए मनु ने अ० ।१०।२ में कहा है कि—

"सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद् वृत्युपायान् यथा विधि।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

अर्थात् ब्राह्मण को चाहिए कि वह सब वर्णों के आजीविका के उपायों को जान कर उन्हें बतावें और आप अपने कर्तव्य में तत्पर रहें । मनु० १ । ८८ में ब्राह्मण के अपने कर्तव्य—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

इस श्लोक द्वारा बताये गये है जिन में पढना, पढाना, सुनना सुनाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और आवश्यकता के अनुसार थोडा ग्रहण करना इन छः का उल्लेख है । यदि समाज में ज्ञान का क्षय और अज्ञान की वृद्धि हो धर्म का नाश और अधर्म का विस्तार हो तो इस सारे की उत्तरदायिता अधिकतर ब्राह्मणों के ही सिर पर पडती है । ब्राह्मणों की इस जिम्मेवारी को ही ध्यान में रखते हुए मनु महाराजने अ. ८ । श्लो. ३३७, ३३८ में कहा है कि शूद्र को चोरी करने पर जहाँ ८ रु. दण्ड हो वहाँ वैश्य को १६ रु. क्षत्रिय को ३२ रु. ब्राह्मण को ६४, १०० वा १२८ रु. दण्ड देना चाहिए क्यों कि वह ज्ञानसम्पन्न होते हुए फिर इस पापकर्म में प्रवृत होता है ।

इस तरह के श्लोकों से यह बात साफ जाहिर होती है कि ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा सब से अधिक होनी चाहिए ऐसा जहाँ धर्मशास्त्रकारों ने कहा है वहाँ उनका जीवन अत्यन्त सादा और कठिन तपोमय बताया है और साथ ही सबसे अधिक उत्तरदायिता उन की मानी गई है जिस को न समझने पर से न केवल वे अपनी उच्च पदवी से गिर जाते हैं बल्कि सब से अधिक पाप और दण्ड के भागी होते हैं जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है।

अब ब्राह्मणोचित गुणों पर शास्त्रीय दृष्टिसे यहां थोडासा विचार करेंगे। शुक्रनीतिसार अ. १. श्लोक ४० में—

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः ॥
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥

ऐसा कहा है जिस का तात्पर्य यह है कि जो पुरुष ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा परमेश्वर और दूसरे ज्ञानियोंकी पूजा में तत्पर है जो शान्त संयमी और दयालु है वही शम दम इत्यादि गुणसम्पन्न पुरुष ही ब्राह्मण है। महाभारत शान्तिपर्व अ. १८९ में भारद्वाज के प्रश्नका उत्तर देते हुए भृगुने बताया है-

" सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं तथा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

अर्थात् सत्य, दान, अद्रोह, अक्रूरता, उचित लज्जा, करुणा और तप ये गुण जहां दिखाई देवें वही ब्राह्मण है। आगे जाकर यह भी स्पष्ट कह दिया है कि यदि शूद्र कुलोत्पन्न किसी पुरुषके अन्दर ये गुण पाये जाएं तो वह शूद्र नहीं बल्कि ब्राह्मण है। और जिस ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुरुषके अन्दर इन गुणों का अभाव हो वह ब्राह्मण नहीं शूद्र ही है ।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ७९ में पुरोहित का जो लक्षण किया है वह भी इस विषय में खूब मनन करने योग्य है—

'आनृशंस्यं' सत्यवाक्यमहिंसा तप आर्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः ॥
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते, स पुरोहित उच्यते ॥४॥

जिसका अर्थ यह है कि जिस के अन्दर अक्रूरता, सत्यवादिता, अहिंसा, तप, सरलता, ईर्ष्या द्वेष का अभाव, निरभिमानता, उचित लज्जा, सहनशीलता, मनःसंयम और शान्ति, ये गुण पाये जाएं उसी को पुरोहित कहते हैं अन्य किसी को नहीं। अब जिन्हें पुरोहित के नामसे कहा जाता है उनमें से क्या एक प्रतिशतक में भी यह लक्षण घट सकता है? नहीं तो फिर उनकी पूजा करना शास्त्रानुकूल कैसे है स्वयं बुद्धिमान् विचार करें।

शुक्रनीतिका पुरोहित के विषयमें लेख इससे भी अधिक स्पष्ट और शिक्षाप्रद है, उस का उल्लेख करना अत्यावश्यक जान पडता है—

मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः त्रैविधः कर्मतत्परः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ।७८
षडंगवित्साङ्गधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित्
यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत्। ७९
नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः ।
सैवाचार्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः ॥८०॥

इन श्लोकोंमें पुरोहित के पूर्ण ज्ञानी अर्थात् वेद वेदाङ्ग, धनुर्वेद, नीतिशास्त्र, अर्थ, धर्म, शास्त्र इत्यादि के पूर्ण पण्डित होने का जहां विधान है वहां साथही जितेन्द्रियत्व और लोभ, मोह, क्रोध इत्यादि से रहितत्व को भी आवश्यक माना गया है और उसके अन्दर इतनी आत्मिक शक्ति होनी चाहिये कि उस के नाराज होने के डरसे राजा सदा धर्म और नीतिके मार्गपर चलता रहे। ऐसा शुक्राचार्य ने वर्णन किया है। क्या समाज का यही आदर्श नही कि ऐसे महानुभावोंको सबसे ऊंचा स्थान दिया जाए, ऊंचा पद देनेसे तात्पर्य ५,१० हजार मासिकको नौकरियोंसे नहीं क्योंकि द्रव्य आवश्यकतासे अधिक अपने पास रखना तक वे सच्चे ब्राह्मण पाप समझते हैं, बल्कि मतलब यह है, कि ऐसे स्वार्थरहित ब्राह्मणों के न्यायविभाग के अधिकारी होने से कभी अन्याय न होगा, कभी प्रजा की उचित स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने वाले नियम न बन सकेंगे। बल्कि धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले राजा को भी गद्दी पर से उतार कर फैंक देनेकी ताकत इन लोगोंके हाथ में रहेगी. ॥

वेदमें औषधि प्रकरण ।

१ बला (खरहटी)

अथर्व वेदके प्रथम काण्ड के प्रथम सूक्त का प्रथम ही मन्त्र है कि—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे। अथ० १।१।१॥

जिसका अर्थ है कि—

" वाणी की रक्षक बला उन २१ के विस्तारों को मुझमें आज ही धारण करावे जो २१ सब रूपों को भरण करते हुए सर्वतः व्याप रहे हैं। अर्थात् उन २१ का विस्तृत ज्ञान हमें करवा देवे अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति हम में उत्पन्न कर देवे।"

इस अथर्व वेद के प्रथम ही मन्त्र में " बला " का वर्णन है। भाष्यकारोंने इसे "बलाः" मानकर इसका अर्थ " बल " दिया है यह उन की भारी भूल है क्यूं कि यदि उन का अर्थ ग्राह्य होता तो बला के स्थान में " बलाः " पाठ होता जो न तो संहिता में है और नहीं पद पाठमें । इस कारण " बला " औषधि के स्थान में " बल " अर्थ करना उन की प्रथम भूल है। उन की द्वितीय भूल " तन्वः " का अर्थ शरीर का शरीरों का करने में हुई है क्यों कि यदि " शरीर का वा शरीरों का " अर्थ वेद को अभिमत होता तो तन्वः के स्थान में तनोः वा तन्वाः पाठ होता जो भी पाठ न तो संहिता में ही है और नहीं पद पाठ में। उन के दोनों स्थान पर भूल करनेका कारण यह है कि वह नहीं जानते कि बला औषधि ही वाचस्पति देवता है कारण कि यह स्वर को ठीक करके स्वरभेद, वैस्वर्य्य को हटाती तथा स्मृति और मेधाको बढाती है जैसे कि सुश्रुतसंहिता उत्तर तंत्र त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः में आया है कि-

" अथातः स्वरभेदप्रतिषेदमध्यायं व्याख्यास्यामः। हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥ पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रा ब्रूयाद्गलेन च विदाहसमन्वितेन ॥ २ ॥ ... क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत् ... ॥ ११ ॥ लिह्यान्मधुर ... बला चूर्णमथापि वा ॥ १२ ॥

सुश्रुत० ७७६-७७८

जिसका अर्थ है कि—

" इस के अनन्तर स्वरभेद प्रतिषेधनामक अध्याय का व्याख्यान करेंगे ... स्वर को नष्ट करते हैं वह स्वरभेद छः प्रकार का है ॥१॥ ... पित्त से मुख, नेत्र, विष्ठा, मूत्र ये सब पुरुषके पीले हो जाते हैं और जलन गले से वह फूटे हुए स्वरसे बोलता है ॥ २ ॥ ...

और पित्त में (पित्तज स्वरभेद में) दूध का अनुपान करें - - ॥ ११ ॥ .... मधुर (औषधों के चूर्णों को) चाटे अथवा बला के चूर्ण को भी (चाटे) ॥ १२ ॥

इसी प्रकार चरक संहिता में भी बलावाले कई योग लिखे हैं जैसे कि—

"प्रपुण्डरीकं मधुकं पिप्पल्यो बृहती बला। क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ॥"

अर्थात् पुंडरिया काठ, मुलहटी, पीपल (मघ), बडी कटेरी, खिरेटी और दूध के साथ सिद्ध किये घृत को नस्य रूपेण प्रयोग करने से उत्कट स्वरक्षय भी नाश होता है ॥ ९० ॥

" बला विदारिगन्धाद्यैर्विदार्या मधुकेन वा ॥
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम् ॥

अर्थात् खिरेटी, शालपर्ण्यादि गण, विदारीकंद और मुलहटी के साथ सिद्ध घृत लवणयुक्त कर के नस्यप्रयोग करने से स्वर भंगका नाश करे है यह उत्तम स्वर्य है ॥ ८९ ॥

" जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकम्बलाम् ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
पिप्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ।
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।
रूपमेकादशविधं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति ॥
११० – ११२ ॥

अर्थात् जीवंती (डीडी),मुलहटी, दाख, इन्द्र-जौ, कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खिरैटी नीला कमल, भूय आमला, त्रायमासा, धमासा, पीपल (मघ) ए सब समान भाग लेवे, कल्क करके इसके साथ घृतका पाक करे यह घृत सेवन करनेसे व्याधि समूह का समष्टिस्वरूप राजयक्ष्मा रोग के ग्याहर उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ११०-११२ ॥

यहां कहे रूपमेकादशविधं का अर्थ श्लोक २१तथा २२ में पहिले चरकाचार्य्य जी कर चुके हैं यथा-

प्रतिश्यायञ्च कासञ्च स्वरभेदमरोचकम् ।
पार्श्वशूलं शिरःशूलं ज्वरमंसावमर्दनम् ॥
अंगमर्दं मुहुश्छर्दिर्वर्चोभेदं त्रिलक्षणम् ।
रूपाण्यैकादशैतानि यक्ष्मा यैरुच्यते महान् ॥

अर्थात् प्रतिश्याय (सरेकमां जुकाम,), खांसी, स्वरभंग अरुचि, पसली का दर्द, मस्तक शूल,ज्वर, कंधोंमें पीडा अंगों का टूटना, बारबार, बमन और मलभेद ए ग्यारह त्रिदोष लक्षण उपद्रव महायक्ष्मा के लक्षण हैं ॥ २१ । २२ ॥

[इन ग्यारहरूपों में तीसरा ही रूप स्वरभंग है अतः उपरोक्त बला अंगवाला जीवन्त्यादिघृत जो राजयक्ष्मा के ११ ही रूपों का नाश करता वह स्वरभंग का नाश अवश्यसिद्ध है। इसी प्रकार आगामी बलाद्यघृत भी स्वर्य है यथा --]

"बलां स्थिरां पृश्निपर्णीं बृहतीं सनिदिग्धिकाम्।
साधयित्वा रसे तस्मिन्पयो गव्यं सनागरम्॥११३॥
द्राक्षाखर्ज्जुरसर्पिः पिप्पल्या च शृतं सह ।
सक्षौद्रं ज्वरकासघ्नं स्वर्यं चैतत्प्रयोजयेत् ॥११४॥

अर्थात् खिरैटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, भटकटैया और कटेरी का क्वाथ, सोंठ, दाख, खजूर और पीपल (मघ) का कल्क, दूध और घी सबको एकत्र पाक करे। यह बलाद्यघृत सहत के साथ सेवन करने से ज्वर, खांसी और स्वरभंग नष्ट होते हैं ॥ ११३ -- ११४ ॥

चरक संहिता चिकित्सास्थान अध्याय ८
राजयक्ष्माचिकित्सितम् श्लोक २१, २२,
८९, ९०, ११०, ११२, ११३, ११४ ॥

इस प्रकार सुश्रुत संहिता और चरक संहिता दोनों से स्फुटतया सिद्ध है कि बला स्वरभेद नाशक, स्वर्य है अतः वाणी की रक्षक वाचस्पति है जो ही वेद ने ऊपर कहा है ॥ इसी प्रकार वाचस्पतिः का अर्थ अन्य की वाणी वचन जो हमने सुने हैं उन वचनों उस वाणी को हमारे अंदर सुरक्षित रखनेवाला उसे भूलने न देने वाला भी है अतः वाचस्पति का अर्थ स्मृतिवर्धक भी है। जब सुने वचन नहीं भूलते तो श्रोता का ज्ञान बढता है मेधा बढती है अतः वाचस्पति का अर्थ ज्ञान तथा मेधा बढाने वाला भी है इस प्रकार वाचस्पतिः स्वर्य और स्मृति तथा मेधावर्धक है अब जब वेद बला का ही विशेषण वाचस्पति लिखता है तो बला अवश्य स्वर्यही नहीं

वरञ्च स्मृति तथा मेधावर्द्धक भी अवश्य होगी। इसबात को वेद स्वयं वाचस्पति बलासे ज्ञान तथा विस्मृति नाश की प्रार्थना करके दरशाता है। ज्ञान की प्रार्थना तो ऊपर प्रथम मन्त्र में भी आ चुकी है परन्तु ज्ञान तथा स्मृति दोनों की प्रार्थना उसी प्रथम सूक्त के शेष तीनों मन्त्रों में की गई है यथा—

"पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते निरमयमय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २॥
इहैवाभि वितनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ ३ ॥
उपहतो वाचस्पतिरूपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि ॥ ४ ॥"
अथर्व. का. १ सू १ मं. २-४ ॥

अर्थात् हे वाचस्पति बला औषधि ! हमें बारबार प्राप्त हो। हमें दिव्यमन से युक्त करा कर, हे निवास-योग्य उत्तम स्मृति मेधा सौस्वर्य्य गुणोंके रक्षक वसुपति बला ! तू हमें सदैव विद्यानंद में रमण करा जिस से कि वाचस्पति आचार्य्य आदि से सुना हुआ मेरा ज्ञान मुझमें ही स्थिर रहे मुझे कभी भी विस्मरण न हो जावे ॥ २॥

धनुष की डोर से जैसे धनुष के दोनों सिरे एक दूसरे के सम्मुख परस्पर विरुद्ध दिशा में भागने को कटिबद्ध हुए सर्वथा तने रहते हैं इसी प्रकार हे बला ! यहीं पर तू मेरे शरीर के अंदर ही रह कर विशेष प्रकारसे मेरे अंगों में फैल कर व्यापकर मेरे मन तथा इंद्रियों को दिव्य विद्युत्संपन्न (Electrifeid) करके तन दे और जैसे धनुषकी डोर धनुष के सिरे को तनी हुई (Eleitrified) अवस्था में ही रोक रखती है वैसे ही तू हे वाचस्पति बला औषधि ! मेरे मन तथा इंद्रियों को तनी हुई अवस्था (Electrified condition) में ही रोक रख जिस से कि मेरा सुना हुआ ज्ञान तथा गुरूपदेश मुझमें ही स्थिर रहे और मैं उसे भूल न जाऊं। अर्थात् बलासे मन तथा इन्द्रियां विद्युत्सम्पन्न पुरुषार्थतत्पर तथा स्मृतिसम्पन्न होकर असीम ज्ञान तथा कर्म का साधन बन जाती हैं ॥३॥ सामीप्ये गृहिता, अर्थात् समीप ग्रहण की हुई वाचस्पति बला हमें भी समीप ही ग्रहण करे ता कि हम श्रुत से संयोग करें और श्रुत से वियोग को न प्राप्त हों अर्थात् जब बला को मनुष्य अपने समीप करता है अर्थात् चूर्ण घृत आदि के रूप में खाता, तेलके रूप में शरीर पर मलता, अथवा नसवार के रूप में सूंघता है तो बला भी उस मनुष्य के समीप हो कर उसे ग्रहण करती है अर्थात् उस के अङ्ग प्रत्यङ्ग में रोम रोम में नाडीनस में सर्वथा पूर्णतया व्याप जाती है फैल जाति है तब उसकी इन्द्रियों तथा मन में दिव्य शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं तब वह श्रुत से संगत होता है अर्थात् बहुत गुरुओं के उपदेश वेदादि सुनता है और उनको ग्रहण करता है, धारण करता है और उससे वियुक्त नहीं होता अतः उसका ज्ञान बढता है और वह अपना पढा हुआ भूल नहीं जाता अर्थात् सेवन की हुई बला पुरुष के शरीर इन्द्रियों तथा मन में सर्वथा व्याप कर उन्हे दिव्य शक्ति सम्पन्न (Electrified) कर देती है जिससे उसे दिव्य वागादीन्द्रियशक्तियां तथा दिव्य मन प्राप्त हो कर उसे मेधास्मृति प्राप्त हो वेद ज्ञान श्रुति प्राप्त हो जाते हैं और सर्वथा उस के स्वाधीन हो रहते हैं उस से वियुक्त नहीं होते ॥ ४ ॥ इस प्रकार वेदने वाचस्पति बला औषधिके विषय में बतलाया कि इस से मन दिव्य (Electrified) हो जाता है और इन्द्रियां भी ज्यायुक्त तनी हुई धनुषके तने हुए (Electrified) विद्युत् से भरपूर हुए सिरों की न्यायीं दिव्य (Electrified) हो जाती हैं तो उस पुरुष को दिव्य चक्षु श्रोत्र घ्राण त्वचा जिह्वा आदि के द्वारा वेदज्ञान प्राप्त हो उस के दिव्य मन द्वारा उस श्रुत का ग्रहण तथा धारण हो जाता है, मेधा प्राप्त हो जाती है और स्मृति बलवती हो गई होने के कारण उसे वह ज्ञान भूल नहीं जाता उसके पास ही रहता है उस से वियुक्त नहीं होता तो उस ज्ञान के बल से उस की दिव्य वाक् ओजस्विनी तथा सुस्वरा हो कर बार बार उसी श्रुत का उपदेश अन्यों को कर के उसे अपने तथा अपने शिष्यों में सुरक्षित रख कर उस से वियुक्त नहीं होती।

बलाका यह वेदोक्त प्रभाव चरकाचार्य्य ने भी अपनी संहिता में वर्णन किया है जैसे कि—

१ आंवले के घृत के वर्णन में लिखा है कि-

"आमलकानां अतःपरं चतुर्गुणेन पयसा वा बलातिबलाकषायेण ॥ अस्य त्रिवर्ष प्रयोगाद् ...श्रुतमवतिष्ठते ॥४॥ ... प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक् च ...॥५॥ ...स्वरोघनोघस्तनितानुकारी... ॥ ६ ॥

अर्थात् आमले... (लेकर) तदनन्तर चौगुणे दूध वा बला अतिबला के कषाय के साथ सितावर का कल्क मिला कर सिद्ध करे इस तरह एक एक क्रम ... करके इस का सौ वा सहस्र वार पाक करके ... पात्र में भर कर रख दे। ... इस औषध के तीन वर्ष तक सेवन करने से .... सुनी हुई बातका विस्मरण नहीं होता ॥४॥...वह मनुष्य प्रशंसा, स्वस्थचित्त और सुख का भाजन होता है ॥ ५ ॥ इनके सेवन करनेसे......गम्भीर स्वर होता है॥६॥'

चरक० चिकित्सित स्थान अध्या० १ पा० २ खं० ४-६ ॥

२ नागबला रसायन प्रकरण में लिखा है कि -

" धन्वनिकुशास्तीर्णे स्निग्धकृष्णमधुर मृत्तिके सुवर्णवर्णमृत्तिके वा व्यपगतविषश्वापद-पवनसलिलाग्निदोषे कर्षणवल्मीकश्मशान-चैत्योषररसवर्जिते देशे यथर्तुसुखपवनसाल-लादित्यसेविते जातामनिम्नेऽनुपहतामनध्यूढा-मबालामजीर्णां अधिगतवीर्यामशीर्णपुराण-पर्णामसञ्जातफलानि तपसि तपस्ये वा मासे शुचिः प्रयतः कृतदेवार्चनः स्वस्ति वाचयित्वा द्विजातीन् सुमुहूर्ते नागबलां मूलत उद्धरेत्। तेषां सुप्रक्षालितानान्त्वक्पिण्डमाम्रमात्रंअक्ष-मात्रं वा श्लक्ष्णापिष्टमालोह्य पयसा प्रातः प्रयोजयेत् चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा मधुसर्पिर्भ्यां वा संयोज्य भक्षयेत् । जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वेणेति नागबलारसायनम्॥ ११ ॥ [समानं पूर्वेणेति पूर्वयोगफलश्रुत्यैतदपियुक्त-मित्यर्थः ॥ (सप्तमखण्डस्य चक्रपाणीदत्त-कृतटीकायामेतद्वर्त्तते) ॥]

अर्थात् माघ वा फाल्गुन के महिने में स्नानादिसे पवित्र होकर देवताओं का पूजन कर के ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराय के शुभ मुहूर्त में ऐसी नाग बला को जडसे उखाड लावै जो धन्वन् (जांगल) देश के ऐसे स्थान में उत्पन्न हुई हो जहां वहुतसी कुशा उत्पन्न हो जहां की मिट्टी चिकनी काली मधुर वा पीली हो जहां सेह जानवर न रहता हो जहां विषदोष, वातदोष, जलदोष वा अग्नि का उपद्रव न हो जहां खेती सांप की बांबी श्मशान चैत्य (बलिभूमि) और ऊपर भूमि न हो जहां प्रत्येक ऋतुमें सुखदायक हवा जल और धूप आती जाती हो जो निम्नस्थान में उत्पन्न हुई हो जो अनुपहुत हो अर्थात् किसी कीडे ने न खाई हो, जो अनध्यूढा हो अर्थात् जिसपर और कोई पौदा आदि न उगा हो जो न नवीन और न पुरानी ही हो, जो पूर्ण वीर्य हो, जिसके पत्ते पुराने वा गले हुए न हों, जिस में फल न आया हो ऐसी नागबला की जडको खूब धोकर पीस डाले इसमें दो या चार तोले दूध मिला कर प्रातःकाल पान करे अथवा फंकी लेकर ऊपर से घी और शहत मिला हुआ दूध पान करे इस औषध के पचने पर दूध और घी के साथ शाली चांवल वा साठी चांवल का भात खाय एक बरस तक इस का सेवन करने से सौ वर्षकी आयु हो जाती है इसके शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं यह नागबला रसायन है॥ ११ ॥

चरक० चिकित्सितस्थान अध्या० १पा० २ खं ११॥

[पूर्वोक्त रसायनके गुण ऊपर लिखे जा चुके उसके सेवन से मनुष्यप्रशंसा, स्वस्थचित्त और सुखका भाजन होता है उसे सुनी हुई बात का विस्मरण नहीं होता और उसका स्वर गम्भीर होता है अतः नाग बला रसायन के सेवन से भी स्वस्थ-चित्त, स्मृति गम्भीर स्वर प्राप्त होते हैं ॥]

" बलातिबला ...... पुनर्नवान्ताश्चौ-षधयो दश... तेषां स्वरसा नागबलावत्...॥१२॥

अर्थात् बला, अतिबला आदि पुनर्नवान्त दश औषधों का स्वरस नाग बला के सदृश पान करने

से नागबलाके समान गुणकारक होता है [अर्थात् स्वस्थचित्त, स्मृति, गम्भीरस्वरकारक होता है] ॥ १२ ॥"

" चरक० चिकित्सितस्थान अध्या. १पा.२खं०१२॥

४ ब्राह्मरसायन में पांचों प्रकार के जो पंचमूल डाले जाते हैं उन में से पुनर्नवादि पञ्चमूल में खरैटी (बला) की जड भी आ जाती है नाग-बला का चूर्ण भी इस रसायन में डाला जाता है पश्चात् सिद्ध हुए इस योग को एक हजार नाग-बलों के रस की भावना देकर छाया में सुखाया जाता है। इस प्रकार इस ब्राह्म रसायन में भी बला, नागबला का बडा भाग है और इसके सेवनसे महात्मा मेधावी स्मृतिमान, श्रुतिधर ऋषियों के बलसे युक्त हो गये थे। '

यह चरक० चिकित्सित अध्या. १ पा० १ के. ४०, ४२, ५७, तथा ५८ श्लोकों वा खंडों में लिखा है ॥

५ च्यवन प्राश में भी खरैटी (बला) डाली जाती है इस के सेवन से स्वरभंग बिलकुल जाता रहता है मेधा और स्मृति प्राप्त होती है यह उपरोक्त पाद१ के ६१ , ७० तथा ७२ श्लोकोंमें लिखा है।

६ हरीतकी रसायन में भी पांचों पंचमूलों का क्वाथ पडता है अतः ऊपर लिखे अनुसार इस में भी खरैटी (बला) पडती है और इससे इन्द्रियबल प्राप्त होता है यह खंड ७५ में लिखा है ॥

७ आमलकायस रसायण में जो बृंहणीय गणोक्त औषधियां पडती हैं उन में बला भी है इस से रोग नष्ट होते हैं और बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढता है ॥ यह उपरोक्त अध्या० १ के तृतीय पाद के खंड २ तथा श्लोक ४ और ७ में लिखा है।

८ इन्द्रोक्त रसायन में इन्द्रायण आदि अनेक औषधों का ६ मास तक दूध के साथ सेवन किया जाता है उन्हीं में नागबला भी गिनी गई है इसके सेवन से स्वर सम्पद मेधा तथा स्मृति प्राप्त होते हैं यह अध्या० १ पाद ४ खंड ४ में लिखा है॥

९ इन्द्रोक्त ब्राह्मरसायन में जो बल्य गणोक्त दश औषधें पडती हैं उनमें बला अतिबला दोनों आजाती हैं और उसमें जो बृंहणीय गणोक्त दश औषधें पडतीं हैं उनमें भी बला आ जाती है। इन बला अतिबला के अतिरिक्त इस रसायन में नाग-बला भी डाली जाती है यह रसायन सम्पूर्ण रोगों का नाश करती है, सत्व, स्मृति, तथा बुद्धिवर्द्धक है स्वरवर्द्धक और वचन को सिद्ध करने वाला है यह उपरोक्त १ अध्याय के पाद ४के १२, १४, २३, तथा २४ श्लोकोंमें लिखा है ॥

इस प्रकार चरकाचार्यने ९ प्रयोग बला अति-बला नागबला के ऐसे दिये हैं जिनसे सिद्ध है कि जहां इनमें से कोई बला प्रयुक्त होती है वहींपर उत्तमस्वर, मेधा, स्मृति, बुद्धि की प्राप्ति होती है ॥

इसी प्रकार सुश्रुतने भी इसे स्वरभेद की औषध लिखा था ॥

अतः सिद्ध हुआ कि हमारा वाचस्पति को बला का विशेषण बनाकर उस वाचस्पति बला द्वारा ज्ञान-स्मृति वाक् सिद्धि आदि की प्राप्ति लिखना सर्वथा ऋषि संमत है अर्थात् हमारा अथर्व वेद १ सूक्त को बला औषधि परक लगाना सर्वथा ऋषि संमत है ॥

हमारे इस भाष्य से एक और लाभ स्वतः ही हो गया है वह यह कि इससे अथर्व वेद का आरम्भ ही आयुर्वेद परक सिद्ध हो गया है और जो यह संशय हो सकता था कि जब दूसरा तीसरा सूक्त आयुर्वेद परक हैं और पहिला केवल विद्या-प्राप्ति निमित्त वाचस्पति से प्रार्थना है तो दोनों की संगति कैसी लग सकती है उस संशय का भी यहां निवारण स्वतः हो गया क्यों कि हमारे भाष्यसे तो पहिला सूक्त भी आयुर्वेद परक ही हो गया अतः वह संशय समूल नष्ट हो गया ॥

वाचस्पतिका अर्थ हम परमात्मा तथा वेदाचार्य भी लेते हैं क्योंकि बला औषधी का सेवन करने वाला ब्रह्मचारी शिष्य वाचस्पति परमात्मासे जब ज्ञान स्मृति वाक् सिद्धि आदिके लिये प्रार्थना करेगा और श्रद्धा भक्ति पूर्वक वेदपारग आचार्य के समीप पहुंच उसके चरण पकड उससे भी गृहीत होगा अर्थात् गुरु भी जब उस शिष्य को अपने समीप ग्रहण करेगा तभी उस शिष्यका बला सेवन

सफल होगा।

यह सम्पूर्ण शिक्षा, कि बला औषधिके सेवन से, परमात्मा की उपासना से, तथा वेदपारग गुरु की श्रद्धापूर्वक सेवाकर उस का प्रेमपात्र बननेसे विद्यार्थि का ज्ञान बुद्धि मेधा स्मृति आदि बढकर उसकी वाणी ओजस्विनी तथा सिद्ध होती है अन्य प्रकार से नहीं, अथर्व वेदके इस प्रथम वाचस्पति सूक्त से मिलती है जो प्रत्येक विद्यार्थि को ग्रहण करनी चाहिये॥

यह अथर्व वेदके पहिले सूक्त की व्याख्या पूर्ण हुई॥

यह बला प्रकरण समाप्त हुआ॥ १॥

२ वच।

अष्टम अध्याय में कृमि वर्णन सविस्तर किया गया है उनकी एक ही औषधि वच वहां पूर्णतया वर्णन की जा चुकी है अतः यह वच प्रकरण भी समाप्त हुआ॥ २॥

३. ४. शर (भद्रमुञ्ज), मुञ्ज।

अगले दो सूक्तों में मूत्रदोष निराकरण के लिये शर और मुञ्ज औषधों का कथन किया गया है बार बार यही बात दर्शायी गई है कि शरका अमुक पिता बहुत जल बरसानेवाला है इसी कारण इस शरसे मूत्रस्थ जलवृद्धि पाकर वेग से शब्द करता हुआ मूत्र साराही एक बारगी बाहर आजाता है और मूत्रबन्ध अर्थात् मूत्राघात, मूत्रकृच्छ आदि सब दूर हो जाते हैं वह अथर्व वेद काण्ड १ सूक्त २, ३, निम्न लिखित हैं यथा-

"विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मोष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्॥ १॥
ज्याके परिणो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरपद्वेषांस्या कृधि॥ २॥
वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्च न्त्यृभुम्। शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र॥ ३॥
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्॥४॥
[सूक्त २] विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति॥ १॥ विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति॥ २॥ विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्। तेनाते०॥ ३॥ विद्मा शरस्य पितरं चंद्रं शतवृष्ण्यम्०॥ ४॥ विद्मा शतस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्०॥ ५॥ यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥ ६॥
प्र ते भिनद्मि मेहनम् वर्त्रं वेशन्त्या इव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥७॥
विषितं ते बस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥८॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥९॥ सूक्त ३॥"

इन मन्त्रों में से सूक्त २ के पहिले मंत्र और सूक्त ३ के पहिले पांच मन्त्रों के पूर्वार्धों का अर्थ है कि हम सुनहरी रंग वाली पीली रेतीली जमीन को तो शर (भद्रमुञ्ज) की जन्म दात्री उत्पादक माता समझते हैं क्योंकि उसी पीली रेतीली जमीन (भूमि) में ही यह भद्रमुञ्ज शर उगता है परन्तु इस के पिता हम पांच मानते हैं जिनमेंसे मुख्य पिता तो बहुत वनस्पति आदिकों का धारक पालक पोषक बहुत पानी को सैंकडों धाराओं में बरसाने वाला बादल है और गौण पिता सैंकडों जल धाराओं के वर्षाने वाले मित्र उदान (Hydrogen) और वरुण प्राण (oxygen), सैंकडों पदार्थों पर शीतलता बरसाने वाला चंद्रमा और सैंकडों पदार्थों पर उष्णता, ज्योति आदि बरसाने वाला सूर्य्य हैं॥ २। १॥ ३। १-५॥

इस प्रकार वेद ने शर की उत्पत्ति के ६ दैवी कारण वर्णन किये अर्थात् पीली रेतीली जमीन, बहुत पानी वाला बादल उदान(Hydrogen), प्राण (oxygeu) चन्द्रमा और सूर्य्य। इन छः के विना शर उत्पन्न नहीं हो सकता जहां यह कारण मिल जांय वहीं शर

उगता है। प्रश्न हो सकता है की शर की उत्पत्ति कथन में शर पुष्पके नर भाग को पिता और नारी भाग को माता क्यों नहीं कहा? उत्तर है कि यह स्वतः सिद्ध है इस के कथन की कोई आवश्यकताही नहीं क्यों कि यह सब जानते हैं कि गेहूं से गेहूं, पुरुषसे पुरुष, आमसे आम ही पैदा होता है अतः यह कहने की आवश्यकता ही नहीं थी कि शर की बीज से वा पूर्व-भूत शरमूल से ही शर उगता है हां विज्ञान पुस्तक के आरम्भ में यह बतलाना अवश्य आवश्यक था कि देवी कौन कौन पदार्थ शरादिकी उत्पत्ति में भाग लेते हैं अतः वेदने यही बात इन सूक्तों में खोली है कि वनस्पति मात्र की उत्पत्ति पृथिवी बादल उदान प्राण चंद्र तथा सूर्य के अंश मिलने से होती है हां उस में शर की उत्पत्ति में विशेष यह है कि उसके लिये सुनहरी पीली रेतीली जमीन की आवश्यकता है अन्य अंश अन्य पतियोंकी न्यायीं इसे भी आवश्यक हैं इन्हीं अंशों में से किसी की न्यूनता तथा किसी के आधिक्य से विविध वनस्पतियां बनती हैं ॥

सूक्त३ के उन्हीं५ मन्त्रों के उत्तरार्ध सबके समान हैं और उनका अर्थ है कि उस शर के द्वारा तेरे शरीर के लिये नीरोगता करता हूं शान्ति ठण्ड पहुंचाता हूं ताकि निषेचन निःशेष मूत्र शब्द करता हुआ बडे वेगपूर्वक तेरे शरीर से बाहर पृथिवी पर निकल पडे ॥ ३।१-५ ॥

इसका तात्पर्य है कि शरमूल चूर्ण ठण्डे जलके साथ लेने से वा शरमूल को ठण्डे जलमें घोट कर सरदाई बनाकर पीने से शरीर के अंदर इतनी ठण्ड पहुंचती है कि गरमी आदि के कारण रुका हुआ मूत्र सारेका सारा ही शरीर से एकबारगी बाहर निकल आता है और बडे जोर से जमीन पर पडता है ॥

यदि कोई प्रश्न करे कि यही बात बार बार पांचमन्त्रों में क्यों दोहराई गई ? तो उत्तर है कि मूत्र-रोग लोगोंको बहुत अधिक होते हैं बहुत दुःख दायी होते हैं इस शरमूल की सरदाईसे हट जाते हैं और यह शर साधारणतया बहुत आसानी से मिल जाता है और बहुत सस्ता होता है इस कारण लोगों को इन भयङ्कर रोगों की अत्यन्त सुप्राप्य औषधिका निश्चय करवाने के लिये ही वेदने इसी बात को पांच बार दोहराया कि लोगो सुनो शरमूलसे रुका हुआ मूत्र सब बाहर निकल आता है मुझमें निश्चय करो और मारे मारे न फिरो बल्कि अपने रोग को इस से दूर कर लो। इस प्रकार वेद ने शर की उत्पत्ति तथा इस का बद्ध-मूत्र को बहिर्निषेचन कार्य्य भी बडे बलपूर्वक इन २।१ ॥ तथा ३।१-५॥ मंत्रों में दरशाया जिससे मूत्र रोगी सुख पावें ॥

सूक्त ३ के बाकी चार मन्त्रों ६-९ में वेद कोई दृष्टान्त देता है और बतलाता है कि मूत्र कहां कैसे रुक जाता है और वहां से केसै उसे निकाला जाता है इन मन्त्रोंका अर्थ है कि--

जैसे आन्तों में मल रुक जाता है उसी प्रकार दोनों मूत्रशिराओं (uretors) में तथा वस्ति (Urinary Bladder)में मूत्र झरझरकर एकत्र हो जाता है और जब बाहर नहीं निकलता तो उन्हीं मूत्र शिराओं तथा बस्ति में रुका रहता है वहीं से रोगीका सारा ही मूत्र (शरमूलद्वारा) बाहर छुडवाना निकल-वाना चाहिये ॥ ६ ॥ जैसे झील वा नहर के बन्ध को खोल कर उस में से पानी निकाल लिया जाता है उसी प्रकार बद्धमूत्र के रुके हुए बस्तिसम्बद्ध लिङ्गमूल अथवा लिंग नलिका वा छेद को वैद्य खोल देवे जिससे कि उसका साराही मूत्र वेग-पूर्वक बाहर निकल आवे ॥ ७ ॥ जलधारक समुद्र के किनारे पर बन्ध च्छेद करने की न्यायीं लिङ्ग का बस्तिगत छिद्र खोल दिया जाता है जिससे कि सारा ही मूत्र बाहर निकल जाता है ॥ ८ ॥ धनुषसे छूटा तीर जैसे दूर जा पडता है वैसेही बद्धमूत्र रोगी का साराही मूत्र बडे वेगसे बंधी धाराके रूप में छूटकर पृथिवी पर पडते समय शब्द करे ॥ ९ ॥
३ । ६ - ९ ॥

इन मन्त्रों में दरशाया गया है कि जैसे आन्तों में विष्ठा रुक जाती है वैसे ही मूत्रशिराओं तथा बस्ति में मूत्र रुक जाता है कोमल शरको लिङ्ग में प्रवेश कराकर तथा शरमूल सरदाई पीनेसे लिङ्ग का बस्तिगतद्वार खुल जाता है जैसे समुद्र का बन्ध-वा नदी नहर झील का बन्ध तोड डाला जाता है तब जैसे कमान से छूटा तीर बडी शीघ्रतासे सीधा दूर

तक जाकर फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार (बस्तिद्वार खुल जानेपर) सारे का सारा मूत्र बडी शीघ्रता से दूर तक सीधी लंबी धार के रूपमें जाकर पृथिवी पर बडे शब्द के साथ गिरता है।

यह भी चारों मंत्र शरकी बद्धमूत्र रोगीका मूत्र निकाल ने की शक्ति का वर्णन करते हैं जिससे मूत्ररोगी व्याकुल न होकर शरप्रयोग कर रोगमुक्त हो सुखी होवे॥

अब सूक्त २ के २-४ मन्त्र शेष रहे जिन में से मन्त्र ४ कहता है कि जैसे तेजन, शर, भद्रमुञ्ज पृथिवी पर उगकर ऊपर द्यौः की ओर बढता है और वहीं उनके बीच में स्थिरमूल होकर ठहरता है इसी प्रकार रोग और प्रास्राव अर्थात् अन्दर किसी अंग का टूट वा फट जाना और उसमें से रुधिर, पीप (राद Pus) आदिका निकल बहना इन दोनों के मध्यमें मुञ्ज अथवा शर जा ठहरें॥

इसका यह तात्पर्य है कि जैसे द्यौः के उपरोक्त छः पदार्थों से पिता के समान अंश ग्रहण करके और पृथिवी में जैसे माता में उस प्रकार, दोनों द्यौ पृथिवी को जोडता हुआ शर उनके अन्दर स्थित है उसी प्रकार लिङ्गनालिका आदि में कहीं जखम होने और उस से रुधिर (pus) पीप आदि का स्राव होने को उस स्थान पर पहुंच वहां अन्दर ही ठहर वहांसे मूत्रद्वारा ही बाहर न निकल कर मुञ्ज तथा भद्रमुञ्ज ठीक कर देवे॥ अर्थात् जैसे भद्रमुञ्ज बन्द मूत्रको बाहर निकाल देता है उसी प्रकार मुञ्ज भी और भद्रमुञ्ज भी लिङ्गगत जखम तथा रुधिर पीक (pus) का बहना बन्द करके लिंगको बस्तिको तथा मूत्रशिराओं को नीरोग कर देती हैं॥

सूक्त २ के शिष्ट शिष्ट मंत्र धनुर्वेद संबंधि २।४॥ हैं वह यहां पर शर शब्द के द्वितीय अर्थ को दिखलाने के लिये इस शर सूक्त में रक्खें गये हैं और साथ ही एक ही सूक्त में आयुर्वेद तथा धनुर्वेदपरक मंत्रों को रख कर वेदने दरशाया है कि धनुर्वेद भी मनुष्य को आयुर्वेद के साथ ही अवश्य सीखना चाहिये दोनों में से प्रत्येक दूसरे से अधिक उपयोगी है अतः प्रत्येक व्यक्ति को यह दोनों उपवेद सीखने चाहियें अथर्ववेद में आगे भी यह दोनों उपवेद साथ साथ ही चलते हैं और प्रायः इन दोनोंमें सारा अथर्व समाप्त हो जाता है कारण कि यह सर्वतोऽधिकोपयोगी हैं इसी कारण अपने आरम्भ में ही अथर्ववेद इन की ज्ञानप्राप्ति निमित्त स्मृति तथा मेधावर्द्धक उपाय प्रथम सूक्त में लिख झट पट अगले सूक्त अर्थात् सूक्त २ से ही इन का मिला जुला वर्णन करने लग गया। इसी प्रकार दर्भसूक्त, खदिरारूढाश्वत्थ सूक्त में आयुर्वेद तथा धनुर्वेद दोनों को मिलाकर वर्णन किया गया है। धनुर्वेद हमारा विषय नहीं है इस कारण इन दोनों मन्त्रों का अर्थ हम यहां नहीं करते ताकि हम अनधिकार चेष्टादोष से दूषित न हों परन्तु हम आशा करते हैं कि परमात्मदेव किसी धनुर्वेदज्ञ को हमारे मध्यमें उत्पन्न करेंगे जो हमारे इस आथर्वण आयुर्वेद की न्यायीं आथर्वण धनुर्वेद भी लिख कर हमें अथर्व० सूक्त २ मं० २ वा. ३ सदृश अथर्व० के सभी धनुर्वेद शिक्षक मन्त्रों का वास्तविक अर्थ दरशायगा। परमात्मा हमारी यह आशा शीघ्र पूरी करें॥

यह मुञ्ज तथा शरप्रकरण समाप्त हुआ॥

धन्य आत्मा ।

श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज धर्मवेदी-

पर बलिदान हुए !
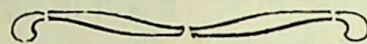
श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज देहली में कई दिनोंसे रोग शय्यापर पडे थे। सब भारतवासी उनके आरोग्य के लिये ईशचिंतन कर रहे थे और भारतवासियोंकी हार्दिक इच्छानुसार स्वामिजीको बहुत कुछ आरोग्य भी प्राप्त हुआ था, परंतु वे पूर्ववत् पूर्ण रोगमुक्त नहीं हुए थे। इस प्रकार करीब रोगशय्यापर पडे हुए श्री० स्वामि श्रद्धानंदजी को अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान ने गोली मार कर २३ दिसंबर १९२६ के दिन कतल कर दिया !

यह समाचार भारत में तथा विदेश में जब फैल गया तब सुनने वालों के हृदय दुःख तथा उद्वेग से फट गये। यह घटना इतनी हृदयविदारक है कि इसे सुन कर हरएक धर्मप्रेमी मनुष्य का हृदय विदीर्ण होने विना रह नहीं सकता।

जो वीर होते हैं उनको स्त्री बालक रोगी और वृद्ध ये पूज्य ही होते हैं। वीरपुरुष इनपर कभी शस्त्र नहीं चलाते। श्री० स्वामिजी ७१ वर्ष की आयुपर होनेके कारण वृद्ध थे और रोगी भी थे। इस लिये जिस क्रूर मुसलमानने ऐसी अवस्था में उनपर गोली चलाई उसमें शौर्य की तो क्या, परंतु मनुष्यत्व की भी कल्पना करना अशक्य बात है। हिंदुधर्मका यह सौभाग्य है कि ऐसे भीरु पापी अत्याचारी इस वैदिक धर्ममें कभी उत्पन्न नहीं हुए इस समयतकके हिंदुजातीके इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि जिसकी तुलना अब्दुल रशीद के इस अमानुष अत्याचार के साथ की जाय। यह इस्लाम धर्मका ही दुर्भाग्य है कि उसमें इस प्रकारके अत्याचारी वारंवार उत्पन्न होते रहे हैं। मुसलमानों को उचित है कि वे अपने धर्म का इस समय परीक्षण करें और देखें कि इस प्रकारके सब सभ्य संसार की दृष्टिसे अत्यंत घृणित कार्य करनेवाले अमानुष गुंड उनमें ही क्यों उत्पन्न होते हैं।

यदि मुसलमानोंका यह ख्याल है कि इस प्रकार के अत्याचार करनेसे उनके धर्मका अधिक प्रचार होगा तो वह गलत ख्याल है। इस प्रकारके अत्याचारोंके कारणही इस्लामधर्मका गौरव मिटता जाता है और ये लोग जितने अधिक अत्याचार करेंगे, उतना ही उनके धर्मका गौरव कम होगा।

श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज भारत वर्षमें प्रतिष्ठित थे और धर्मकार्य के लिये ही उन्होंने अपने आपको समर्पण किया था। उनकी मृत्युसे जो चारों और खिलबिली मची है उससे सिद्ध है कि उनके विषयमें जनतामें कितना बडा आदर है। ऐसे महान पुरुष की हत्या इस प्रकार अमानुष रीतिसे करना नीच से नीच अवस्थाका ही द्योतक है।

बहुत लोग बिस्तरेपर सडके बीमारीसे मरते हैं और हरएक को मरना तो अवश्य ही है, परंतु धर्म वेदीपर बलिदान होकर मरना केवल स्वा० श्रद्धानंदजी जैसे पुण्यपुरुषों कोही महाभाग्य से प्राप्त हो सकता है। श्री० स्वामिजी बीमार तो थेही, यदि बीमारीसे मृत्युको प्राप्त होते, तो वह मृत्यु उनके महत्त्व के लिये योग्य न होता। उनका जीवन जैसा उच्च था वैसा उनका मृत्यु भी जनताके लिये आदर्श ही हुआ है। धार्मिक पुरुषोंकी मृत्युभी पीछे चलनेवालों के लिये आदर्शरूप होती है। धर्मका कार्य करते हुए और धर्मका कार्य करते रहनेके कारण जो मृत्यु आती है उससे अधिक उत्तम मृत्यु दुनियामें कोई नहीं है। भारतीय हिंदु और विशेष कर आर्य जनता इस मृत्युसे बहुत बोध ले सकती है। यह मृत्य भारतवासियोंको उनका आगेका मार्ग बता रही है। और यदि भारतीय आर्य हिंदु इससे योग्य बोध लेंगे, तो भविष्यमें उनका निःसंदेह विजय होगा।

इस मृत्युका संदेशा कौनसा है ? हिंदुसंगठन करो, दलितोद्धार करो, अस्पृश्यता निवारण करो, शुद्धि के कार्यको जोरसे करो, और राष्ट्रीयशिक्षाके लिये गुरुकुलशिक्षा स्थानस्थानपर शुरू करो।

यही कार्य श्री० स्वामिजी कर रहे थे, येही उनके उद्देश्य थे, इन्हीं के कारण इनकी मृत्यु हुई और मृत्यु से भी यही संदेशा प्रकट हुआ है। पाठको ! यह मृत्युका संदेश देखो और स्वामिजीके शुरू किये हुए कार्य अधिक जोर से आगे बढाओ और जगत् में सिद्ध करो कि एक सच्चे आर्य पुरुषके कतल होनेसे उसका कार्य अधूरा नहीं रह सकता, परंतु सौगुणा अधिक बढ सकता है। यदि हिंदु जाति अथवा आर्यजाति यह सिद्ध कर सकेगी तो ही उनका भविष्य में जीवित रहना संभव है।

मुसलमान लोग ईरान में गये और उन्होंने वहां के लोगोंको नामशेष किया। परंतु वेही मुसलमान हिंदुस्थान मेंआकर हिंदुओंको नामशेष कर नहीं सके। हिंदुओंको असहाय्य स्थितिमें उनसे सातसौ वर्ष लढना पडा, और इस सात सौ वर्ष के युद्धसे हिंदुओं ने अपना जीवित रहने का अधिकार सुरक्षित किया। हिंदु जाती का यह बल इस समयमें भी विद्यमान है, इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि वे इस मृत्युकी घटनासे बोध लेंगे और अपने उद्धार का मार्ग धैर्य से आक्रमण करेंगे।

आर्योंका धैर्य सदासे प्रसिद्ध है। वह धैर्य श्री० स्वामिजी के जीवन चरित्र में पूर्णतासे दिखाई देता है। उनका संपूर्ण जीवन धार्मिक धैर्यका जीवित स्रोत हो है और इस कारण वह आर्य जनताका मार्ग दर्शक निःसंदेह बना रहेगा। पं० लेखरामजी की कतल से शुद्धिका और प्रचार का कार्य रुका नहीं, परंतु बढ गया। उससे सौ गुणा अधिक वेगसे इस मृत्युके कारण धर्मप्रचार का कार्य चलेगा और यह मृत्यु स्वामिजी का यश अधिक उज्वल बनावेगा।

परंतु मुसलमानों के ऊपर यह घातक अत्याचार बडे कलंक रूपसे चिरकाल रहेगा। किसी भी प्रकार इस पापका परिमार्जन हो नहीं सकता जो समाज ऐसे अत्याचारी को उत्पन्न करता है और धारण करता है उसको अंतःशुद्धिका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना उचित है। यह अत्याचार ऐसा नीच है और इतना घोर है कि इसका समर्थन कोई भी मुसलमान किसी सभ्य लोगों के सन्मुख कर ही नहीं सकता। इस लिये इस वधने मुसलमानोंका गौरव घटा दिया है और इस्लाम के प्रचार में चिरकाल रहनेवाली बडी भारी बाधा डाल दी है। यदि इस मृत्युसे मुसलमान बोध लेंगे और अपनी अंतःशुद्धि प्रायश्चित्त द्वारा स्वयं करेंगे, तो ही उन का यह कलंक धोया जाना संभव है।

भारतवर्ष में हिंदुमुसलमानों का झगडा आज कई वर्षों से चल ही रहा है। इस में किसका अपराध कितना है इस विषय में यदि किसीको कोई शंका हो तो वह इस मृत्युको देख कर निश्चय कर सकता है कि अत्याचार का भाग किस जाती की ओर अधिक है। हमारा विश्वास है कि इस मृत्युका विचार करने के पश्चात् हिंदुओंके निर्दोष होने में किसी को भी शंका नहीं रह सकेगी।

पतितपरावर्तन, शुद्धि, संगठन, आदि करनेका हरएक जाती का अधिकार है। इस लिये यदि श्री० स्वामिजी ये कार्य कर रहे थे और इन मार्गोंसे हिंदुजातीकी वे रक्षा कर रहे थे, तो वह उनका कार्य किसी प्रकार भी दूषणीय हो ही नहीं सकता। क्या मुसलमान अपना संगठन नहीं कर रहे हैं ? क्या वे दूसरों को अपने धर्म में अपनी रीतिसे शुद्ध करके संमिलित नहीं करते ? फिर यह उनका आग्रह क्यों है कि हिंदु अपना संगठन और शुद्धि न करें ? यदि अनेक जातियोंने एक देश में रहना है, तो समान अधिकारसे और परधर्म विषयक सहिष्णुतासे ही रहना चाहिये। मुसलमान हिंदुओं को अपने में लेते रहें और हिंदु उसको न रोकें यह हो ही नहीं सकता। यह हिंदुओंका अधिकार था और वह अधिकार श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी जैसे तेजस्वी महापुरुषने अपने बलिदान से हिंदुओं को सिखा दिया है, और ऐसा सिखा दिया है कि वे इस पाठको अब कभी भूल नहीं सकेंगे।

धन्य है श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज की कि जिन्होंने अपने जीवनमें जनता को शिक्षा दी और अपने मृत्यु से भी चिरकाल शिक्षा देते रहेंगे। इस में क्या संदेह है कि इनका आत्मा उस उच्च स्थानमें सीधा पहुंच गया होगा कि जहां धर्मवीरों के लिये प्रशस्त स्थान होता है। परमेश्वर उनके आत्मा को शांति देवे।
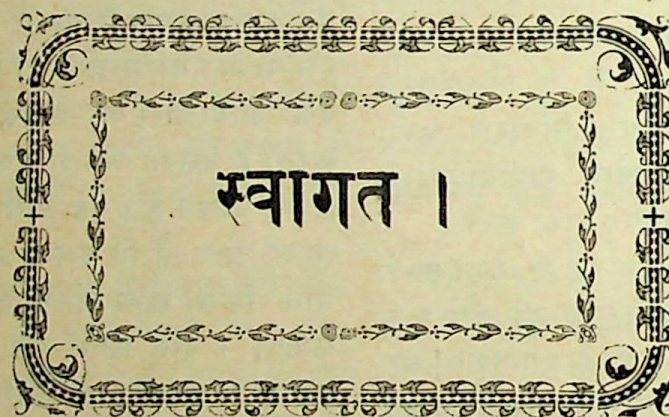
१ गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामायण ।

४० चित्रोंके सहित शुद्ध गुजराती भाषान्तर "सस्तं साहित्य वर्धक कार्यालय" भद्र अहमदाबाद तथा कालबादेवी मुंबई द्वारा प्रकाशित हुआ है। मू० केवल८) है। भाषांतर कर्ता-श्री. शास्त्री छोटालाल चंद्रशंकर मुंबई हैं। इनकी सरल तथा रसमयी गुजराती भाषासे यह ग्रंथ सुरम्य हुआ है। मूल तुलसीरामायण का यह सरल अनुवाद है और केवल भाषान्तर पढनेसे भी मूलग्रंथका रस प्राप्त होता है इतना प्रसाद इस में है। यह पुस्तक गुजराती लोगोंके लिये अत्यंत लाभकारी होगा। आशा है कि गुजराती जाननेवाले इससे लाभ उठावें।

स्वाध्याय मंडल का कार्य ।
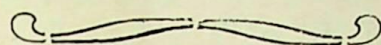
गुजराती भाषामें

१ " वैदिक धर्म " मासिक गुजरातीभाषा में प्रकाशित करनेका प्रबंध किया जा रहा है और यदि सब अनुकूलता हो गई तो थोडे ही दिनों में गुजराती भाषा में वैदिक धर्म प्रकाशित होता रहेगा।

गुजरातीभाषा में बालक धर्मशिक्षा आदि कई पुस्तक इससे पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं। "सूर्य--भेदन व्यायाम " अति शीघ्र प्रकाशित होगा और " आसन" प्रकाशित करनेका भी प्रबंध हो चुका है।

वैदिक धर्म के कई लेख वारंवार गुजराती भाषाके पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं, इसी प्रकार गतांक का " लंघन " विषयक अनुभव का लेख गुजराती में उलथा होकर शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

कनडी भाषामें

२ इसी प्रकार कनडी भाषा में सूर्य भेदन व्यायाम और आसन पुस्तकों का मुद्रण करनेका कार्य शुरू हुआ है, तथा बंगलूर (म्हैसूर) में स्वाध्याय मंडल के वैदिक ग्रंथ कनडी भाषा में प्रकाशित करनेवाली मंडली स्थापित होकर अब क्रमशः ये पुस्तक वहां प्रकाशित होते रहेंगे। और इस प्रकार उस प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचार का बडा भारी साधन निर्माण हो जायगा।

स्वाध्याय मंडल के पुस्तकोंका प्रचार इस प्रकार कई भाषा में हो रहा है यह देखकर उन दानी महाशयों को संतोष होगा कि जिन्होंने इस मंडल को इतना कार्य करके दिखाने योग्य आर्थिक सहायता दी और जो इस समय भी सहायता दे रहे हैं। क्यों कि दानी महोदयोंकी उदार सहायता के विना यह कार्य होना ही असंभव था।

यज्ञकी पुस्तक ।

" यज्ञ " की पुस्तक का द्वितीय भाग सब छप चुका है उसकी जिल्द बन रही है। दो सप्ताहके पश्चात् ग्राहकों के पास अवश्य रवाना होगा। पृष्ठ संख्या १६० से अधिक है और मूल्य केवल १) रु. रखा है।

आसनोंका चित्र पट ।

" आसनोंके चित्र पट " की बहुत ही मांग थी, क्यों कि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषय में अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोक सब आसनोंके एक ही कागजपर छपे हुए चित्र-पट बहुत दिनों से मांग रहे थे। मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्र पट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकोंके पास रवाना भी हो गये हैं। २०×३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगा कर उसके चित्रों को देखकर आसन करने की बहुत सुविधा अब होगई है।

मूल्य केवल ≡) तीन आने और डाक व्यय –) एक आना है।

पोषक वर्ग

स्वाध्याय मंडलके पोषकवर्ग का चंदा केवल १००) सौ रु. है । जिन्होंने पहिलेही पोषक वर्गका चंदा दिया उनको इस समय तक ५६) रु. के पुस्तक मिल चुके हैं और इस वर्ष से करीब १६) रु. से अधिक मूल्यके पुस्तक प्रतिवर्ष मिलते जांयगे । अर्थात् पोषक वर्गका चंदा इकठ्ठा सौ रु. एकवार देनेसे हर हालतमें पाठकों का लाभ है और दो तीन सालों में उनका रुपया पुस्तक रूपसे वसूल हो जायगा और आगे उनको पुस्तकें मिलती ही रहेगी ।

पोषक वर्गके विषय में पाठक पूछते हैं कि इस समय १००) रु. देनेसे पूर्व मुद्रित पुस्तकें मिल सकती हैं वा नहीं । इस प्रश्न के उत्तर में निवेदन है जिस दिन १००) रु. यहां जमा हो जांयगे उसके पश्चात् जो जो पुस्तक मुद्रित होंगे वे सब उनको प्राप्त हो जांयगे । जो पाठक पोषक वर्गका चंदा देकर पूर्ण ग्राहक बनेंगे, उनको पूर्व मुद्रित पुस्तकें फी सदी दस कमिशन काटकर दी जांयगी और उनके लिये डाकव्यय माफ हो जायगा । जो पाठक पोषक वर्गमें अपना नाम दाखल करना चाहते हैं वे इस सहूलियत से अवश्य लाभ उठावें ।

इस समय महाभारत छप रहा है, इस एकही का ही अग्रिम मूल्य ६५) रु. है, वेद छपना प्रारंभ हुए हैं, रामायण आदि तथा मनुस्मृत्यादि ग्रंथ छपने हैं, ये सब ग्रंथ पोषक वर्ग के सदस्योंको भेंटके रूपमें मिलेंगे । अर्थात् एकवार १००) रु. चंदा देनेसे चंदेकी अपेक्षा कई गुणा अधिक मूल्य के पुस्तक उनको मिल सकते हैं । पाठक इसका विचार अवश्य करें ।

महाभारतका चंदा ।

महाभारत के सहूलियत के ५०) रु. चंदेका समय गत दिसेंबर ३१ तारीखसे समाप्त हो चुका है । इस जनवरी मासमें यदि कोई ग्राहक पूर्ण चंदा भेजना चाहे तो वह ५२) बावन रु. भेजदें । केवल ५० ।- रु. भेजनेसे पूर्ण चंदा समझा नहीं जायगा पीछेसे इस विषयमें कोई विवाद सुना नहीं जायगा । ५२) रु, भेजनेसे भी उनका कमसे कम १३) रु. का लाभ होगा । आशा है कि पाठक इस सहूलियत से लाभ उठावेंगे । इस जनवरीके पश्चात् यह सहूलियत भी रहेगी नहीं ।

वी. पी. वापस ।

कई ग्राहक वी. पी. मंगवाते हैं और वापस कर देते हैं । इस कारण गतवर्षमें करीब तीन चार सौ रु. का डाक व्यय का नुकसान उठाना पडा है । इसलिये अगले वर्षसे वी. पी. से. पुस्तकें भेजना बंद करनेका विचार है । पाठक इसका अवश्य विचार करें ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल ।

REGISTERED NO. B. 1819

अंक ३२ [विराटपर्व]

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन,
२ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
३ उपनिषद् का अर्थ,
४ सांप्रदायिक झगडे,
५ "केन" शब्द का महत्त्व,
६ वेदान्त,
७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास,
८ अग्नि शब्दका भाव,
९ उपनिषद् के अंग,
१० शांतिमंत्रोंका विचार,
११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
१२ तीन शांतियोंका भाव,
१३ ईश और केन उपनिषद,
१४ " यक्ष " कौन है ?,
१५ हैमवती उमा,
१६ पार्वती कौन है ?
१७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती
१८ इंद्र कौन है ?
१९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
२० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
२१ व्यष्टि समष्टी और परमेष्ठी,
२२ त्रिलोकी,
२३ अथर्वाका सिर,
२४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
२५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र,
२६ आत्मवान् यक्ष,
२७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
२८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
२९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठसूक्त अथर्व सूक्त
३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता,
३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य केवल १।) रु. डाक व्यय ≈) है।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

संस्कृतपाठ माला।

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पीसे ४)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. —)एकआणा।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है-

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग।

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है।

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

५ एकादश भाग

इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासों का विचार किया है।

७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

१ आगम-निबंध माला।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है । इस वेद समुद्रका मंथन करनेसे अनेक " ज्ञान रत्न " प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है ।

१ वैदिक-राज्य पद्धति । मू.।–)

२ मानवी आयुष्य । मू. ।)

३ वैदिक सभ्यता । मू.।।।)

४ वैदिक चिकित्सा शास्त्र । मू. ।)

५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ।।)

६ वैदिक सर्पविद्या । मू. ।।)

७ मृत्युको दूर करनेका उपाय मू. ।।)

८ वेदमें चर्खा । मू. ।।)

९ शिवसंकल्पका विजय । मू. ।।।)

१० वैदिक धर्मकी विशेषता मू. ।।)

११ तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ।।)

१२ वेदमें रोग जन्तु शास्त्र । मू. =)

१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =)

१४ वेदमें लोहेके कारखाने मू.।–)

१५ वेदमें कृषिविद्या । मू.=)

१६ वैदिक जल विद्या मू.=)

१७ आत्मशक्तिका विकास मू.।–)

१८ वैदिक उपदेश माला मू.।।)

---

२ धर्म-शिक्षाके ग्रंथ

बालक और बलिकाओंकी पाठशालाओंमें " धर्म " की पढाईके लिये तथा घरोंमें बाल-बच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैयार किये हैं ।

(१) बालकोंकी धर्म-शिक्षा.

प्रथम भाग । प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू–)

(२) बालकोंकी धर्म-शिक्षा ।

द्वितीय भाग । द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू.=) दो आने।

(३) वैदिक-पाठमाला !

प्रथम पुस्तक । तृतीय श्रेणीकी धर्मशिक्षा के लिये । मू.=)

३ स्वयंशिक्षक-माला।

१ वेदका स्वयं-शिक्षक ॥

प्रथम भाग। मू. १॥) डेढ रु०।

२ वेदका स्वयं-शिक्षक

द्वितीय भाग। मू० १॥) डेढ रु०।

४ योग साधन माला।

" योग साधन " का अनुष्ठान करनेसे शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इसलिये यह " योग-साधन " हर-एक मनुष्यको करने योग्य है।

१ संध्योपासना।

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है। मू० १॥) डेढ. रु०

१ संध्याका अनुष्ठान।

(यह पुस्तक पूर्वोक्त " संध्योपासना " में संमिलित है, इस लिये " संध्योपासना " लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है।) मू॥)आठ आने।

३ वैदिक पाण विद्या ॥

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार " मनकी भावना "रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू. १) एक रु.।

४ ब्रह्मचर्य ॥

इस पुस्तकमें " अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त " का विवरण है। ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्य रक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं। यह पुस्तक " सचित्र " है। इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्यस्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है। मू०१।)सवा रु.

५योग साधन की तैयारी ॥

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये, इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं हैं। मू. १) एक रु.।

६ आसन।

इसमें उपयोगी आसनों का वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू. २) रु.

७ सूर्यभेदन व्यायाम ॥

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ।।।)

" योग साधन के अन्य पुस्तक छप रहे हैं। मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी।

५ यजुर्वेद का स्वाध्याय

१ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या।

" नर-मेध " मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन। वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है। मू०१)एक रुपया

२ यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या

" सर्व-मेध" एक ईश्वर की उपासना। य. अ. ३२ में एक ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

३ यजुर्वेद अ. ३६ की व्याख्या

"शांति-करण"। सच्ची शान्तिका सच्चा उपाय व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत्में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥)

६ उपनिषद् ग्रन्थ माला।

तत्वज्ञान के भंडारमें "उपनिषद् ग्रंथ" अमूल्य ग्रंथ हैं। तत्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं और मृत्युके समय अमृतमय शांति प्रदान करते हैं। हरएक मनुष्यके लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

१ "केन" उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें कहां है और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है।

मू. १।) रु.

७ देवता-परिचय-ग्रन्थमाला।

"वैदिक देवताओंका सूक्ष्मज्ञान" होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में "देवताओंका परिचय" करानेका यत्न किया है पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकों के विषयका बोध हो सकता है-

१ रुद्र देवताका परिचय मू. ॥)

२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता मू. ॥=)

३ ३३देवताओंका विचार मू०=)

४ देवता विचार मू०=)

५ वैदिकअग्निविद्या मू०१॥)

"अन्य देवता ओंका विचार और परिचय कराने वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

८ ब्राह्मण बोध माला।

शत- पथ- बोधामृत । मू०।)

मुद्रक तथा प्रकाशक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल भारत मुद्रणालय, औंध(जि. सातारा)

REGISTERED 1463

वर्ष ८ अंक ३ क्रमांक ८७ फाल्गुन संवत १९८३ मार्च सन १९२७

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४।।) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

श्री. म. विश्वनाथ रावजी लिमये.
सांगली.

[एक घण्टा और बीस मिनिट के समयमें बारहसौं बार सूर्यभेदन व्यायाम करनेवाले वीर]

(ब्लाक " चित्रशाला पूना " की कृपासे प्राप्त)

भा. मु. औंध

वर्ष ८

अंक ३

क्रमांक ८७

फाल्गुन

संवत् १९८३

मार्च

सन १९२७

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिसे सुखप्राप्ति।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी।

यच्छा नः शर्म सप्रथः॥

ऋ. १।२२।१५

हे (पृथिवि) मातृभूमि! हमारे लिये तू (स्योना) सुख बढानेवाली, (अन् ऋक्षरा) कंटकरहित तथा (निवेशनी) हमारा निवास कराने वाली (भव) हो। और (सप्रथः) कीर्तिके साथ (शर्म) सुख हम सबको (यच्छ) दो।

मातृभूमि अपने पुत्रोंको सुख देनेवाली, कंटकरहित स्थानसे युक्त अर्थात् उत्तम उपजाऊ भूमिसे फली और फूली, तथा हम सब पुत्रोंके निवासके लिये पर्याप्त और विस्तृत स्थान देनेवाली, तथा कीर्तिको बढाकर सुख देनेवाली होवे।

१ गुरुकुल की रजत जयन्ती ।

गुरुकुल कांगडी आर्योंका राष्ट्रीय विद्यापीठ है और यही श्री० स्वा० श्रध्दानंदजी का जीवित और जाग्रत स्मारक है । जिस परिश्रमसे और दिव्य प्रेम से श्री० स्वा० श्रध्दानंदजीने इस विद्यापीठका पालन पोषण किया है वह सब आर्य जानते ही हैं। इस विद्यापीठ की रजत जयन्ती इस मासमें गुरुकुल भूमिमें होगी। हरएक वैदिक धर्मीका आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने उत्साह से इस को सफल और सुफल बनानेका यत्न करे, क्यों कि यह उनकी ही रजत जयन्ती है ।

२ श्रद्धानंद स्मारक निधि ।

इस निधिमें हरएक आर्य भाई और आर्य बहिन को अपने धनका भाग अवश्य अर्पण करना चाहिये। इस निधिमें धनके अर्पण करने के लिये अपीलें करनेकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि श्री० स्वामिजीकी मृत्यु ही एक इतनी जोरकी चेतावनी है कि उस से अधिक प्रभावशाली अपील हो नहीं सकता । अतः वैदिक धर्म के सब प्रेमियोंसे सूचना है कि वे अपना भाग अतिशीघ्र "श्रीमती आर्य प्र० सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, लाहौर" के ना. भेज दें ।

३ वैदिक यज्ञ संस्था ।

इस पुस्तक का दूसरा भाग यज्ञ की सहायता देने वाले महाशयोंके नाम पूर्व पतेपर गत मास मेंही भेजा था । परंतु कई पुस्तक पता ठीक न होनेसे वापस आगये हैं। जिनका पहिला पता बदला है वे कृपया अपने नये पतेसे सूचित करें । (मूल्य १) डा. व्य. ≡)

४ छूत और अछूत ।

इस पुस्तक की मांग बढ रही है और द्वितीय भाग भी ग्राहक पढना चाहते हैं । सूचनार्थ निवेदन है कि द्वितीय भाग छपना प्रारंभ हुआ है, प्रायः दो मासोंमें छप जायगा । द्वितीय भाग इतना ही बडा होगा ।

५ पोषक वर्ग ।

स्वाध्याय मंडल के पोषक वर्ग का चंदा इकट्ठा १००) सौ रु. देनेसे ग्राहकों का अत्यंत लाभ है, यह बात सब लोग जानते ही हैं, इस लिये इस वर्गका चंदा आने लगा है । गत मासमें यह चंदा प्राप्त हुआ है—

१ म. प्रभुदास दलाभाई, करमसद	१००)
२ " विष्णुचंद्र सहगल, लौली	९७)
३ " प्रभुदयालजी	७५)
४ " छत्र सिंहजी, मियागांव	२५)
५ " बाबु रामजी, लाहौर	२५)
	३२२

छोटे हिस्सोंमें पोषक वर्ग का चंदा भेजनेवाले प्रतिमास २५) रु. के हिसाब से भेज रहे हैं ।

६ स्थिर सहायक वर्ग ।

स्थिर सहायक वर्ग में इस मास में निम्न लिखित चंदा प्राप्त हुआ है—

चरोतर प्रदेश आर्य समाज आनंद १३०)

इन सब दाताओंका हार्दिक धन्यवाद है । यदि पोषक वर्ग के ग्राहक सौ हो जांय तो कर्जासे स्वाध्याय मंडल की मुक्तता हो सकती है। तथा ग्राहकों को भी प्रतिवर्ष कमसे कम १६) रु. के पुस्तक मिल सकते हैं। आशा है कि पाठक इस का विचार करेंगे।

—०—

" यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते । तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु. अ. ३४ । ३

संसार में जितनी क्रान्तियाँ होती हैं, उनका मूल कारण मनोवृत्ति में दीख पडता है-

" मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । "

मन ही मनुष्यके बंधन या मुक्तिका कारण है । जिस मनुष्य की वृत्ति जितनी अधिक प्रबल होगी, उतना ही अधिक पुरुषार्थ वह करेगा । जिन मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ निर्बल हैं, वे बडे बडे पराक्रम कर ही नहीं सकते। राम, कृष्ण अर्जुन, राणाप्रताप, शिवाजी आदिकी भावनाएँ तीव्रतम न होती–उनमें प्रबलतर श्रेष्ठ आकांक्षा न होती-तो कदापि सम्भव न था। कि वे ऐसी भारी क्रान्तियाँ कर डालते । परशुरामजीने२१ बार पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया, या दुःशासन की छाती फोड-कर उसके हृदय का खून पीने की प्रतिज्ञा भीम ने की, इतना ही नहीं घोर संग्राम कर उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया । ये बातें प्रबल भावनाओंके ही परिणाम हैं। इनके स्थान में धर्मराज होते, या संसार से उदासीन रहनेवाला कोई आधुनिक उदासी होता तो ऊपर लिखी घटनाएं न होतीं ।

सीझर के विषय में एक किंवदन्ति है कि जब उसने सिकन्दर की मूर्ति देखी तब उसके मन में यह विचार आया कि इस पुरुष ने मेरे से छोटी उम्रमें ही कैसे कैसे भारी पराक्रम किये? यह सोच सीझर का गला भर आया । इस किस्सा में जो गूढ है वह भी तीव्र मनोवृत्ति को बतलाता है । इससे यह स्पष्ट है कि भीम, अर्जुन, शिवाजी आदिकों के पराक्रमों को सुनकर जिसका हृदय फूल उठेगा, उसीसे उसका का अनुकरण होगा ।

इस संसार में ऐसे कई लोग नजर आते हैं जो बुद्धि रहते भी दुर्बल मनोवृत्ति के कारण पीछे पडे हैं । ऐसे लोग वे ही हैं जिनमें महत्वाकांक्षा, स्पर्धा, आवेश आदि वृत्तियों का अभाव है । मनोवृत्ति एन्जिन की भाफ के समान है । एन्जिन कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसमें यदि भरपूर भाफ नहीं है, तो वह अधिक काम कर नहीं सकता । यही हाल दूर्बल मनोवृत्ति के मनुष्यका है । जिन जिन लोगों ने आज तक राष्ट्र को जगाकर उससे बडे बडे कार्य कराये हैं, वे कार्य जनता की मनोवृत्ति के बलपरही हुए हैं। श्री शिवाजी, राणाप्रताप, रणजीतसिंग, गुरु-गोविंदसिंग आदिके सदृश शूर वीरोंके शब्दोंमें वह अद्भुत शक्ति थी जिससे हजारों--लाखों-- मनुष्यों के मन में एक ही समय एक साथ एक ही-प्रेरणा उत्पन्न होती थी। यह क्यों? यह इसी लिये होता था कि इन विभूतियों में वह मानसिक बल था जो लोगों कि मनोवृत्तियों को क्षुब्ध कर देता था । इन पुरुष सिंहों में यदि मनोवृत्ति का जोर कम होता, तो उनकी वक्तृता का असर उनके समय के लोगों पर दसवें हिस्से में भी न हआ होता । मनोवृत्ति की महिमा ऐसी भारी है। इसलिये वेदमें कहा है--

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत ऋतुम्॥

ऋ. १० । २५ । १

" हमारा मन शुभ भावनामय होवे क्यों कि वह (दक्षं) बलवान और (क्रतुं) पुरुषार्थ करनेवाला, है । सब पुरुषार्थ इसीपर निर्भर हैं ।

धर्म का मुख्य उपयोग यही है कि उससे मनुष्य की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का पोषण हो। उसी के द्वारा लोगों की मनोवृत्तियां जागृत की जा सकती हैं। जिस धर्म से लोगों की मनोवृत्तियाँ जागृत एवं विकसित नहीं होतीं, उस धर्म से राष्ट्र का उत्कर्ष होना कठिन है। यह अनुभव की बात है कि जब धर्म के पुनर्जीवन से लोगों की मनोवृत्तियाँ जागृत होती हैं, तभी उनसे कुछ विलक्षण पराक्रम होता है वा क्रान्ति होती है।

फ्रान्स की राज्यक्रान्ति, अमेरिका का स्वातन्त्र्य, यूरप की धर्मक्रान्ति, हिन्दुस्थान में मराठों और सिक्खों का उदय आदि बातों का इतिहास यही बताता है कि कोई भी बडी क्रान्ति या कोई भी बडा कार्य तब तक नहीं होता जबतक लोगों की मनोवृत्तियाँ क्षुब्ध नहीं होतीं।

ऊपर के विवेचन से कोई भी जान सकता है कि प्रबल मनोवृत्ति ही सब प्रकारके पराक्रम का आवश्यक कारण है। मनोवृत्तियों का मूल-स्थान मस्तिष्क है। बलवान मस्तिष्क बलवान शरीर ही में साधारणतः पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रबल मनोवृत्तियाँ ऐसे ही लोगों में पाई जा सकती हैं जिनके शरीर प्रबल हैं— अर्थात् जिनका स्वास्थ्य प्रथम श्रेणी का है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

"शरीर ही मुख्य धर्म अर्थात् चतुर्विध पुरुषार्थका साधन है।" इस से स्पष्टतया यही अनुमान कर सकते हैं कि जिनकी यह इच्छा हो कि संसार में अपना अधिकार रहे तथा अपन बडे बडे पराक्रम करें, उन्हे चाहिये कि अपना स्वास्थ्य प्रथम श्रेणी का बनावें और योगादि साधन से आले दर्जे की शरीर संपति प्राप्त करें।

यदि यह देखना हो कि शरीर का उत्साह और मनोवृत्तियों के बल का क्या सम्बन्ध है तो मालूम हो सकता है, कि जिस समय उत्साह अधिक होता है, तभी (अर्थात् युवावस्था में) मनोवृत्तियां प्रबल रहती हैं। जैसे जैसे बुढापा आने लगता है वैसे हो वैसे शरीर का उत्साह कम होता जाता है और मनोवृत्तियों का बल भी घटता जाता है। इस बात का पता, व्यवहार के उदाहरणों के देखनेसे, सरलता पूर्वक चल सकता है। जब शरीर बलवान होता है, तभी मनोवृत्तियाँ भी बल पकडे रहती हैं, इतना ही नहीं उस समय वे उच्च श्रेणी की रहती हैं। उदारता, सरल मनस्कता, स्वाभिमान आदि गुण जितनी अधिक मात्रा में युवावस्थामें नजर आते हैं, उतनी अधिक मात्रा में वे आगे चलकर नजर नहीं आते। मित्र के लिये हर प्रकार के कष्ट सहने की तैयारी यहां तक की मौका पडने पर प्राण भी जोखिम में डालने की तैयारी विपत्ति में फंसे मनुष्य को अपने पास जो कुछ हो दे देने की तैयारी, अपने सम्मान के आगे सब बातें तुच्छ समझना आदि बातें २०वर्ष से ३०वर्ष की अवस्था तक नजर आती हैं। उसके आगे वे इतनी तीव्रतासे नहीं नजर आतीं।

विचार के कारण या संसार के कटु अनुभव के कारण अच्छे स्वभाव का मनुष्य उतरती उमर में अधिक अच्छा होगा, पर ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं। सामान्य नियम यही है कि जवानी की अपेक्षा बुढापे में मनुष्य अधिक अधिक स्वार्थी बनता जाता है। जवानी में मित्र, देश आदिके प्रति जो प्रेम रहता है वह बुढापे में खुद -ब- खुद स्त्री पुत्रादिकों पर स्थिर हो जाता है। जो लोग बेशरमी से रिश्वत लेते हैं, क्षुद्र लाभके लिये खूनकर डालते हैं, स्व-देश-द्रोह, स्व-धर्म-द्रोह आदि नीचातिनीच मनोवृत्ति में भँसकर पापकर्म करते हैं, उन्हे चुन कर अलग निकाला जावे तो उसमें नव- युवक बहुत कम मिलेंगे। इससे हमारा यह मतलब नहीं कि नवयुवकों के हृदयमें बुरे भाव रहते ही नहीं। वे येही नहीं इससे भी अधिक ढिठाई और साहस के काम मौके पर कर देंगें; किन्तु वे काम नीच हेतु से न किये जावेंगे. किसी उद्देश की पूर्ति के लिये या अविचार के कारण वे काम होंगे।

पातकों तथा अन्यायों में भी क्षुद्र तथा अक्षुद्र भेद हैं। मनुष्य क्षुद्र पातक जवानी की अपेक्षा बुढापे में अधिक करता है। जवान मनुष्य किसी के

घर में डाका डालेगा, दिन दहाडे भरी सडक पर किसी का खून कर डालेगा; किन्तु बालक को मिठाई के बहाने फुसलाकर ले जाना और उसके सिर में पत्थर पटककर उसे मार डालना, जूतियों की ठोकरें खाते हुए भी हँसकर अपने मालिक को खुष करना, किसी मनुष्य को भाई कहना किन्तु उसका बिलकुल चौपट कर डालना आदि काम युवक से सहसा न बनेंगे।

ऊपर लिखी बात का अनुभव तभी हो सकता है जब कि इस बातपर विचार किया जाय कि लोगोंका ध्यान स्व-देश-हित वा परमार्थ को हलचल में किस अवस्थामें अधिक लगता है और धन-दौलत, ऊपरी मान-सन्मान आदि बातों में कब लगता है। प्रसिद्ध लेखक डीकिन्सेने एक स्थान में कहा है Youth is the age of moble impulses अर्थात् जवानी ही उच्च भावनाओं की उत्पत्ति का समय है।

" संसार के वीर पुरुषों का इतिहास क्या है नव युवकों का वर्णन है। संसार की प्रायः प्रत्येक बडी बात नव युवकों द्वारा ही बनी है। आज दिन तक जो जो प्रसिद्ध एवं बडे बडे लोग इस संसार में हुए हैं उनका इतिहास पढने से यही ऊपर लिखी बात सिद्ध होगी महान् पुरुष जो परोपकार के काम कर दिखाते हैं उनकी जड तथा उनका निश्चय युवावस्था में ही हुआ करता है। यह यौवनकी महिमा है।

जिस समय स्वास्थ्य अच्छेसे अच्छा रहता है उसी समय ऊंची से ऊंची मनोवृत्तियां उत्पन्न हुआ करती हैं। इतना ही नहीं किन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य की अवस्था अधिक होती जाती है त्यों त्यों उदारता, स्वाभिमान, स्वार्थत्याग आदि श्रेष्ठ मनोवृत्तियों की मात्रा घटती जाती है। यदि यह देखना हो कि मनोवृत्ति की प्रखरता जागृत रहने के लिये हृष्ट पुष्ट देह की तथा अच्छे से अच्छे स्वास्थ्य की कैसी आवश्यकता होती है, तो किसी मस्त सांड की, भैंसे की या पुष्ट घोडे की मनोवृत्ति से अधमरे जानवर की मनोवृत्ति की तुलना की जावे। मालिकका प्यारका शब्द सुनते ही कान खडे कर देना, क्रोध का वचन सुनही बुरा लगना, लडाई के समय या दूसरे किसी घोर समय में आवेश से तथा ईर्षा से काम करना आदि कई गुण जो हृष्ट, पुष्ट तथा नीरोग घोडे में दिखाई देते हैं, वे सब दिन भरमें ढाई कोस चलने वाले आधमरे टट्टू में नहीं दिखेंगे। इसी तरह जो पेंठ, जो आवेश, जो तेजी मस्त भैंसे में या हृष्ट पुष्ट सांडमें नजर आती है, वह तेजी तथा पेंठ बूढे बैल या भैंसे में नहीं रहती। वेदादी शास्त्रोंमें पुरुषके विशेषण "वृषभ, वाजी" आते हैं इसका यही कारण है। इन बातों पर विचार करने से भी यही प्रतीत होता है कि यद्यपि मनोवृत्तियों का प्रत्यक्ष शरीर से सम्बन्ध नहीं है, तबभी उनके पूर्ण विकास के लिये तथा उन्हे पूर्णतया जागृत रखने के लिये शरीर स्वास्थ्यकी परम आवश्यकता होती है।

इंद्रिय - विज्ञान - शास्त्र के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि मनोवृत्ति तथा स्वास्थ्य का निकट सम्बन्ध है। इस शास्त्रने सिद्ध कर दिया है कि शरीर और मस्तिष्क का निकटतम सम्बन्ध है और इन में एक की वृद्धि और पोषण उचित रीति से होने ही से दूसरे की वृद्धि और पोषण हो सकता है। " तन चंगा तो मन चंगा " की प्रसिद्ध कहावत बहुतेरे लोग जानते हैं। सब लोग इस बात को मानते हैं कि स्नायु की वृद्धि होने से मन और मस्तिष्क नीरोग तथा तेज रहते हैं और मस्तिष्क मनोवृत्तियों का अधिष्ठान है। तब यह बात सिद्ध ही है कि मनोवृत्तियों के प्रबल एवं तेज रहने के लिये शरीर-स्वास्थ्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में इतने विस्तार से विवेचन करने का कारण यह कि आजतक हम लोगोंने मनोवृत्तियों की महत्ता को पहिचाना नहीं था। प्रबल मनोवृत्ति मनुष्य को आपत्ति में डाल देती है यह देख कई लोगों ने समझ लिया था कि प्रबल मनोवृत्ति घातक है। इसीसे उन्होंने इन मनोवृत्तियों को निर्बल करने के उपायों पर खूब विचार किया था। हमारे आधुनिक वेदान्त के निवृत्ति मार्ग का अन्तिम उद्देश जो कुछ हो, पर उसका प्रत्यक्ष परिणाम यही होता है कि मनोवृत्तियां निर्बल कर

जातीं हैं। संसार से भाग कर दूर चले जाना और वहां (जहां मन की परीक्षा के मौके कम होते हैं) उपवास करके तथा शरीर को कष्ट देकर मनोविकार तथा मस्तिष्क को निर्बल करके मनको अपने वश में करने का उपदेश वैसा ही कायरता का तथा नामर्दीका है, जैसे सिंह, व्याघ्र आदि को भूखों रखकर मृतप्राय करके उन्हें अपने वश में कर लेना! इसका परिणाम श्रीकृष्णचंद्रजीके शब्दोंसे सुनिये-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
गीता ३।६

" कर्मेन्द्रियोंको दबाकर विषयोंका मनसे स्मरण करता हुआ जो रहता है वह मिथ्याचार पापी है।" वह अधोगतिको जाता है-

तथा-

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दंभाहंकार संयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥५॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान्॥६॥
गीता १७

" अशास्त्रीय मार्ग से जो घोर तप करते हैं, दंभ और घमंडसे युक्त होकर कामादिसे युक्त होते हैं, जो मूर्ख शरीरके सब अवयवोंको तथा आत्माको भी कष्ट देते हैं वे असुर बुद्धिके हैं।" ये सदा अवनत ही होते रहेंगे। सच्ची उन्नतिका यह मार्ग नहीं। अशक्तता, नामर्दी, बुजदिली यह उन्नतिका रास्ता नहीं है।

यह तो हमारी निवृत्ति मार्ग के अवलम्बन की आदती ही थी जिसके कारण स्वयं श्रीकृष्ण भगवानको अवतार ले अर्जुन को गीता रूप उच्च कोटि के प्रवृत्ति- मार्ग का अर्थात् सच्चे वैदिक कर्मयोग का उपदेश करना पडा। तिसपर भी हम लोगों में से दुर्बल निवृत्तिमार्ग नष्ट न हो पाया !! अब भी हमारे परमार्थ के अधिकांश उपदेशक शरीर एवं मनोवृत्ति को निर्बल बनाने के ही प्रयत्न में हैं। ऐसी दशा में हम लोगों द्वारा शरीर की तथा मनोवृत्तियों की उपेक्षा न होगी तो और क्या होगा? यदि हम श्रीकृष्णजीका ही आदर्श अपने सन्मुख रखेंगे तोभी अच्छा होगा, परंतु कौन वैसा कर रहा है?

हमारी मनोवृत्तियाँ निर्बल रहनेका तथा जीवन-संग्राम में हम लोगों की सामर्थ्य-हीनता का एक और कारण है। यह कारण नया नहीं है, बहुत प्राचीन काल से चला आया है। यह कारण है हमारी अधूरी शिक्षा प्रणाली। यह ऐसी शिक्षा है जिस में बुद्धि का विकास अच्छी तरह होता है किन्तु दूसरी शक्तियों का विकास नहीं होने पाता। मस्तिष्क और शरीर के सम्बन्ध में यह नियम है कि एक जन्ममें दोनों के विकासकी परम सीमा निश्चित रहती है। उनमें से एक भाग की विशेष (अर्थात् योग्य प्रमाण से अधिक) वृद्धि हो तो दूसरे भाग की वृद्धि में कमी होती है। जिस प्रकार किसी मनुष्य के खर्च के भिन्न भिन्न बातों में से किसी एक में अंदाज से अधिक या कम खर्च हो जावे तो दूसरों में खर्च कम-बढ होना स्वाभाविक है।

यही हाल प्राणियों का है। जो मनुष्य केवल विद्या पढनेमें लगा रहता है उसकी बुद्धि विशाल होती है किन्तु उसका शरीर निर्बल रहता है; जो मनुष्य केवल शारीरिक व्यायाम में ही लगा रहता है उसका शरीर तैयार हो जाता है पर बुद्धि का विकास नहीं होने पाता। जिसकी स्मरणशक्ति अति उत्तम रहती है, उसमें विचारशक्ति कम रहती है। जिसकी विचार-शक्ति तेज होती है, उसकी स्मरण-शक्ति साधारणतः मद्दी रहती है। जो अंध है, उसकी स्पर्श-इन्द्रिय तीक्ष्ण होती है। जो पंगु है उसके शरीरका ऊपरी भाग साधारणतः अधिक पुष्ट रहता है। जिस वृक्षमें पत्ती अधिक आती है उसमें फल सामान्यतः कम आते हैं।

इस प्रकार के कई उदाहरणों से तथा कई प्रत्यक्ष दीखने वाले प्रमाणों से हमारा कथन सिद्ध होता है। यही सिद्धान्त शरीर तथा मस्तिष्क की वृद्धि के बारे में लागू है। जब मस्तिष्क के सब भागों की वृद्धि उचित प्रमाण में होती है तब मस्तिष्क के गुण बढते हैं; परन्तु जब मस्तिष्क के किसी एक भाग पर

ही विशेष बल पडता है तब उस भाग की अनावश्यक वृद्धि होती है तथा दूसरे भाग निर्बल होते हैं। व्यवहार का अनुभव है कि जिसकी बुद्धिपर अधिक बल पडे उसके मनो-विकार एवं उसकी मनोवृत्तियां कमजोर होंगी।

मस्तिष्क के दो भाग होते हैं एक मनोवृत्ति-मूलक और दूसरा बुद्धि-मूलक। इनमें से एक की अधिक वृद्धि होने से दूसरा निर्बल हो जाता है। अर्थात् मस्तिष्क की शक्ति का व्यय बुद्धि के विकास में जितना वा जिनसे अधिक होगा, उतना ही मनोवृत्ति और मनोविकार का जोर कम हो जावेगा।

ब्राम्हणजातीके इतिहास से विदित होता है कि वे ऐसे व्यवसाय नहीं करते थे जिनसे विशेष उग्र मनोवृत्तियां-जागृत एवं विकसित हों और शरीर सुदृढ एवं बलवान बने। वे अधिकांश समय मीमांसा, न्याय, व्याकरण आदि केवल बुद्धिकी वृद्धि करनेवाले विषयोंके अध्ययनमें बिताते थे। इससे उनमें ऐसे गुणों की वृद्धि न हुई जिनकी सहायतासे मनुष्य दूसरों को हराकर उनका स्वामी हो जाता है। इस का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि ब्राह्मण जाति बुद्धिमें और जातियों से चढी चढी है तब भी उसमें वे मनोवत्तियाँ; जिनके कारण संसार में अधिकार प्राप्त होता है, कम मात्रा में हैं।

दूसरी कई बातों से भी यही बात सिद्ध होती है। हमारे साहित्य में मनोवृत्ति के विकास की पुस्तकों की अपेक्षा बुद्धि के वृद्धि की पुस्तके अधिक हैं।

अंग्रेज गल्प लेखकों की पुस्तकों में प्रबल मनोवृत्तिका जैसा चित्र खिंचा रहता है वैसा भारतीय लेखकों की पुस्तकों में नहीं रहता। इसी प्रकार यदि अपने देश के वक्ताओं को भी देखें तो मालूम होगा कि वे मनकी भावनाओं को उत्तेजित करनेवाले नहीं प्रतीत होते ! अंग्रेज सरकार का जबसे राज हुआ है तब से जो वक्ता भारत में हुए हैं उनमें ब्राइट, ब्राडला आदि के समान सनसनी पैदा करनेवाले वक्ता भी थोडे हो हैं। तब पिट, बर्क आदिको वे कहाँ तक पा सकेंगे? ऐसे ही वक्ता अपने देश में अधिक हुए हैं जिनकी वक्तृताका प्रवाह रबर टायर वाले तांगे के सदृश विना धक्के के या विना दचके के चलता है। हम लोगों में ऐसे वक्ताओं की बडी भारी कमी है जिनकी वक्तृता से यह पता चले कि वक्ता के हृदय की खलबली तथा सनसनी भाषण के रूपमें बाहर निकल रही हो। ऊपर दी हुई बातों से तथा और भी कई बातों से यह विदित हो जाता है कि हम लोगों की मनोवृत्तियाँ उतनी तीव्र नहीं हैं जितनी विजयके लिये चाहिये।

आरंभ हीमें हम बता चुके हैं कि संसारमें राज-क्रान्ति तथा उसके समान बडे बडे परिवर्तन गदाधर शास्त्री, अरिस्टाटल या न्यूटन जैसे बुद्धि-प्रधान लोगों द्वारा नहीं होते, वे उन्ही लोगों द्वारा होते हैं जिनकी बुद्धिको बलवान मनोवृत्तियों की सहायता हो, जैसे शिवाजी, नेपोलियन आदि। आज दिन तक जो बडे बडे पुरुष हो गये हैं उनके यदि दो वर्ग करें, एक बुद्धिमान् (जैसे पाणिनी) और दूसरा कर्तृत्ववान् (जैसे शिवाजी) तो विदित होगा कि जिनकी मनोवृत्तियाँ प्रबल हैं और जिनके पास उत्तम से उत्तम शरीर सम्पत्ति रहती है वेही लोग बडे कर्तृत्वशाली पुरुष होते हैं। परंतु जिनके पास बुद्धि है किन्तु बलवान मनोवृत्ति तथा बलवान शरीर नहीं है वे कर्तृत्वशील मनुष्यों की सहायताके विना बडे बडे परिवर्तन नहीं कर सकते। रामदासस्वामी जी को छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे बडी कर्तृत्व वाले पुरुष की सहायता न होती तो देश के उद्धार में या धर्म के उद्धार में इनके उपदेशों का अधिक उपयोग न होता। बुद्धि केवल रास्ता बतलाने का काम करती है किन्तु सम्पूर्ण क्रियाओं की प्रेरणा का स्थान मन है। नाना फडनवीस के समान बुद्धिमान मनुष्य दूसरे को अपनी बुद्धि की करामात से अचम्भित भलेही कर देगा पर लोगोंको अपने वश में कर लेना, अपने शब्दमात्र से जनता को झुलाना, सब लोगों के दिल में अभिमान, ईर्ष्या आदि उत्पन्न कराकर सबको एकता से कोई काम करने में लगा देना आदि काम उनसे या उनके समान केवल बुद्धि प्रधान मनुष्यों से नहीं बन सकते। उसके लिये श्री शिवाजी, गुरुगोविंद सिंह आदिके सदृश तेजस्वी,

हिम्मतवार, तथा जोशीले लोगों की आवश्यकता होती है। "आज अमुक काम करना है, जिस किसीको आना हो मेरे साथ चले।" इतना कहते ही जिसके साथ हजारों मनुष्य ऐसे दौडते हैं, जैसे चुम्बक से लोहे के कण खिचते हों, ऐसे पुरुष सिंह शिवाजी तथा नेपोलियन ही हैं। वे दादाजी कोंड-देव (शिवाजी के शिक्षक एवं शाहजी के कारिंदाह) या नाना फडनवीस नहीं हैं। यह शक्ति प्रबल तथा जागृत मनोवत्ति और अति उत्तम शरीर के बल की अनुगामी है। जिन लोगोंने अपनी मानसिक शक्ति से जन-समूहों में खलबली मचा दी है, या उन्हे कोई विशेष मार्ग पर चलना आवश्यक कर दिया है, ऐसे पुरुषों में शायद ही कोई हो जिसने अध्ययन कर के या और दूसरे किसी कारण से अपने आप को कमजोर बना लिया है जिसकी आंखों में चश्मा लगा है जिसकी पीठ में कूबड निकला है, आंखें और गाल भीतर घुस गये हैं। आजकलभी जिन लोगोंने अपनी मानसिक शक्ति से या अपनी कर्तूत से भारत वासियों के चित्त को कोई खास मार्ग दिखला दिया है या जिनका लोगों पर बडा भारी प्रभाव है ऐसे लोगोंको देखें तो विदित होगा कि उनमें स्वाभिमान, ढाढस, कडा मनोनिग्रह, आदि गुण अधिक हैं।

इस प्रकार यदि मनुष्यों के बुद्धिमान और क्रियावान ऐसे दो भेद मान लिये जावें और इस कसौटी-पर ब्राह्मणों को तथा ऐसे लोगों को जिन्होंने अपनी शक्तियां केवल बुद्धि के विकास में फजूल खर्च नहीं कीं, तो विदित होगा कि ब्राह्मणों ने केवल उपदेश करने ही में अधिक नाम कमाया है। और ब्राह्मणों को छोडकर दूसरे लोगोंने ऐसी क्रियाओं में नाम कमाया है जिनका संसार के जीवन संग्राम में विचार की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोग होता है। मंत्री, सचिव आदि केवल बुद्धि के काम करने-वालों में ब्राह्मण ही अधिक रहे हैं। परन्तु विचार की अपेक्षा क्रिया की आवश्यकता अधिक रहने पर (जैसे राज्य कमाना, राजकाज चलाना, सेना का नेता बनना, व्यापार करना आदि) ब्राह्मणों की अपेक्षा दूसरे लोगों नेही अधिक नाम कमाया है।

यह हुआ पहले समय का हाल। वर्तमान समय को देखें तब भी यही बात नजर आती है। अब भी यही दीखता है कि ब्राह्मणों ने शरीर की ओर बिलकुल ध्यान न देकर केवल बुद्धिको ही अधिक कष्ट दिया है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि जहाँ अंकों की उलझन हो, जहाँ परीक्षा में अधिक से अधिक गुण लेकर ऊपर नंबर आना हो, वहाँ ब्राह्मणों की संख्या अंग्रेज, पारसी या मुसलमानों से अधिक होगी। इससे आगे चलकर वकालत, डाक्टरी, एंजीनीअरी, ठेकेदारी, व्यापार, या किसी संस्था का संचालन आदि कामों में जहाँ अपना काम स्थिरता से, उत्साहसे, ईर्ष्या से करने की आवश्यकता है, वहाँ ब्राह्मणों की कमी नजर आवेगी; क्योंकि इनमें जिस शक्ति की आवश्यकता है उसका ब्राह्मणों में अभाव है। ये कारण दिन प्रति दिन बढते जाते हैं इससे ऊपर दिया हुआ परिणाम पिछली पीढी की अपेक्षा आगामी पीढी में अधिक तीव्रतासे नजर आता है। पिछली पीढी के शिक्षित लोगों में जो उत्साह तथा परिश्रम दिखाई देता था वह वर्तमान् पीढीमें नहीं दीखता। किसी प्रकार को झंझट न हो, झगडा न हो शांतता से घरमें या दफ्तर में बैठ कर काम करें इसी प्रकार की इच्छा वर्तमान समय के शिक्षित समाज में— विशेषतः ब्राह्मणों में बढती जाती है। यह बात शिक्षित समाज की मानसिक एवं शारीरिक दुर्बलता का लक्षण है। शांतता से दिन बिताने की इच्छा होना बुरा नहीं है किन्तु इसकी भी कुछ सीमा है। जिस प्रकार की शांतता अब शिक्षित लोग चाहते हैं उसी प्रकार की शांतता यदि संपूर्ण जनता को प्यारी लगती तो श्री शिवाजी राणाप्रताप जैसे पुरुष उत्पन्न होना असंभव था। इससे यह मतलब नहीं कि जिस किसी के मन में आवे दूसरे की गर्दनपर छुरी चलावे। हमारे कहने का मतलब यही है कि हम में इतनी शक्ति तथा योग्यता अवश्य ही होनी चाहिये जिससे हम वर्तमान जीवन संग्राम में विजय प्राप्तकर सकें। दुःख की बात यही है कि हममें उस योग्यता का अभाव है। वर्तमान समय के शिक्षित जनों का वैराग्य तथा

उनकी कमजोरी देखकर मन को कष्ट होता है। इसका क्या कारण है? मनुष्य की बुद्धि के सिवा दूसरी शक्तियों की वृद्धि न होने देने का यह परिणाम है।

इस कलह-पूर्ण संसार में हम लोगों को जितनी बुद्धि की आवश्यकता है उससे भी अधिक आवश्यकता प्रबल मनोवृत्ति की है। बुद्धि का काम मार्ग दिखलाने या सलाह देने का है। किन्तु मनुष्य से कार्य करानेका काम उसकी मनोवृत्तियां करती हैं। जब बात ऐसी है तब यही निश्चित है कि प्रबल मनोवृत्तिवाले ही अधिक क्रियाशील होते हैं और वे ही जीवन संग्राम में दृढता से लडेंगे। हम पहले ही कह चुके हैं कि मनोवृत्ति तथा बुद्धि का स्थान मस्तिष्क है, इनमें से किसी भी एक की वृद्धि प्रमाण से अधिक होनेपर दूसरी कमजोर हो जाती है। इसी तरह मस्तिष्क के बलवान होने के लिये पुष्ट और बलवान शरीर की आवश्यकता है। तब स्पष्ट ही है कि मनोवृत्तियां जागृत तथा प्रबल रहने के लिये शरीरसंपत्ति की आवश्यकता है। अर्थात् जीवनसंग्राम में पीछे न पडे रहकर विजय प्राप्त करना ही हो तो हम अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते।

वर्तमान समय में भिन्न भिन्न राष्ट्रों में प्रबल स्पर्धा जारी है और विजय उन्हीं लोगों की होती है जो केवल बुद्धिमें ही नहीं प्रत्युत कार्य करने में भी औरों से अधिक बलवान् है। इसके विपरीत जो लोग शरीर तथा मन से दुर्बल हैं वे हार रहे हैं और पीछे पड रहे हैं। आज हमें जिनसे - यूरपवासियोंसे- संग्राम करना है वे हमारे अन्य प्रतिपक्षियों से अधिक बलवान हैं। हमारा इतिहास हमें बतलाता है कि हम लोगों में उन गुणों की कमी जो विपक्ष से श्रेष्ठ बनाते हैं। तो बतलाइये क्या अब भी हम लोग आंखें बंद कर चुपचाप बैठे रहें? हमारी वर्तमान स्थिति जिन कारणों से हुई है उनमें से अपनी शारीरिक दुर्बलता एक भारी कारण है। यदि यह बात जँचती हो तो हमारे नेताओं को चाहिये कि वे जनता का ध्यान शरीरकी उन्नति के लिये आकर्षित करें और उन्हे शरीर की उन्नति में लगा दें।

यहां हमारे प्राचीन इतिहासका यदि हम निरीक्षण करेंगे तो हमें पता लग जायगा कि वेदसे महाभारत तक जो " अमर्षण वृत्ति " अर्थात् अपमान सहन न करने की वृत्ति दिखाई देती है वह महाभारतके पश्चात् के पुस्तकों में नहीं दिखाई देती इसका परिणाम यह हुआ कि जो विजय आर्योंको महाभारत काल तक प्राप्त हुआ वह आगे नहीं हुआ। इसी लिये ऋषि दयानंदने आर्योंको महाभारतसे पूर्वकाल में जानेका उपदेश किया, यही उनका " ऋषित्व " अर्थात् द्रष्टा होनेका सबूत है। जिस समय लोग यूरपकी रोशनीसे चकित हो चुके थे उस समय इस " द्रष्टा " ने कहा कि महाभारत के पूर्वकाल में चलो! उन्होंने आर्योंकी वृत्तिमें परिवर्तन करना चाहा था। जो इस बात को जानेंगे उनको ही उनके उपदेशका महत्व समझेगा।

आशा है कि आर्योंके वंशज इस उपदेशका महत्व समझकर अपनी मनोवृत्तिमें ही परिवर्तन उत्पन्न करेंगे और विजयके भागी होंगे।

—०—

योग जिज्ञासा की कहानी ।

(लेखक— श्री० पं० अभयदेव शर्माजी विद्यालंकार)

७

जिज्ञासाका उदय ।

अब मैं महाविद्यालय का ब्रह्मचारी हो गया। गणित के बंगाली उपाध्यायजी के आग्रह होने पर भी मैं ने गणित विषय न लिया और मैं ' इतिहास अर्थ शास्त्र' का विद्यार्थी बना । यद्यपि इस वर्ष गुरुकुलीय अखबार निकालना और सभायें चलाना तो मैं ने बिलकुल नहीं किया (क्योंकि इसका शौक मैं पूरा कर चुका था और इसकी अपनेलिये कुछ आवश्यकता नहीं है यह जान चुका था) मैं किसी भी सभा का सभासद तक नहीं बना;किन्तुअन्यसब प्रकार से पिछले दो वर्षों की अपेक्षा भी इस एकादश श्रेणी में अधिक जागता रहा । गुरुकुलीय सार्वजिनक जीवन के सब कार्य जोशसे करता रहा। छोटे बडे सब से खूब परिचय प्राप्त करके रहा । गंगा में बहुत तैरा । गंगा के पार जाना तो तैरने के दिनों से नित्य कर्म था; कभी कभी ऊपर एक दो मील से भी मैं एक मंडली में आता था । आस पास के जंगलों और पहाडोंपर खूब फिरा। गुरुकुलीय जीवन जानने वालोंको यह सुनकर अश्चर्य होगा कि मैं दशम श्रेणी तक कभी चंडी पहाड पर भी नहीं गया था।पर इस साल सब कसर निकाल ली, शायद ५,६ वार चंडी पर गया। प्रति सप्ताह घूमने जाता था। डाक्टरजीके कथनसे कुस्ती लडने का व्यायाम भी करता था, दूसरी तरह अपनेको 'अपटु डेट' अखबार पढने वाला बनाया । शाम को हस्पताल के रोगियों में या घूमते हुवे बडे चावसे रोज के समाचार सुनाया करता था । लोकसेवा में आयुर्वेद काम आवेगा अतः आयुर्वेद पढना भी (डा. संगतराम जी से) शुरु किया। एवं अन्य इधर उधर की व्यावहारिक बातें जानने में भी मन लगाता रहा, परंतु अपनी महाविद्यालय की पढाई पर कुछभी ध्यान न दिया । इस वर्ष महाविद्यालय में आने का आनन्द लेता रहा । इसी लिये वार्षिक परीक्षा में मुझे अंग्रेजी में दो कृपांक दिये गये । यह सुन ने की बडी भारी लज्जा उठानी पडी (अपने लिये अनुत्तीर्ण होना इतना भी मैं असंभव समझता था ।)

इस वर्ष के दूसरे सत्र से विद्यार्थीपन की एक मैत्रीका भी अनुभव कया । विद्यालय की नवम श्रेणी के एक विद्यार्थी में मेरा इतना अनुराग होगया था कि वह छुट्टी के दिन या किसी समय मिलता था तो प्रसन्नता होती थी, नहीं मिलता था तो चिन्ता होती थी । मैं बहुत वार उसके स्मरण और प्रतीक्षा में रहता था । अगले वर्ष जब मैं छुट्टिओं में हमीरपुर गया तो उसे चिठ्ठी लिखने और उसका पत्र पाने में बडी प्रसन्नता रहती थी । इस मैत्री का प्रारंभ ऐसे हुवा था कि एक प्रतिष्ठित स्नातकजीने मुझे विद्यालय के तीन चार उन्नति शील विद्यार्थिओं के नाम बताये थे और आग्रह किया था कि इन्हें सहायता देते रहना । उन्हीं विद्यार्थिओं में यह एक था । और उन दिनों विशेष प्रिय लगा था। यह विशेष अनुराग मुझे विचार द्वारा कुछ ज्ञान देता हुआ दूसरे वर्ष (द्वादश) के अंत तक समाप्त होगया था और तब से यह विद्यार्थी मेरे लिये अन्यों की तरह अतीव सामान्य रह गया था । मैं समझता हूं कि इसीसे मैंने शायद यह अनुभव प्राप्त कर लिया है कि संसार में अनुराग या प्रेमासक्ति क्या वस्तु है और पहले अवश्य जान लिया है कि परमात्मा ने प्रत्येक प्राणी में प्रेम किस पवित्र प्रयोजन के लिये किस उच्च उद्देश्य के लिये रखा है।

द्वादश श्रेणी में पहुंच कर मेरा तैरना, घूमना,

नित्य अखबार पढना आदि बंद होगया। इनसे भी मैं एक साल में ही तृप्त होगया। नित्य अखबार पढने से कुछ लाभ न देखा; आवश्यक समाचार मुझे पता लग जाते थे फिर जो कुछ स्वयं पढने योग्य होता था ऐसा ही कोई लेख आदि मैं स्वयं पढ लेता था। अब मेरा मन गंभीर साहित्य पढने की तरफ और अपनी पढाई की तरफ फिरा। अकेले बैठ कर विचार पूर्वक खूब पढना तथा लिखना यह मेरी द्वादश श्रेणी की विशेषता रही।

आश्रम के शोर से पृथक् पढने के लिये अब जो एक एकान्त स्थानकी इच्छा हुई तो मेरी नजर प्रधान जी के बंगले के पास के एक पंचकुटी नामक स्थान की तरफ गयी (जो कि खाली था) और मैंने सोचा कि इन पांच कुटिओं में से एक कुटी में पढने के लिये रहने की आज्ञा मैं प्रधानजी से प्राप्त करूंगा। किन्तु एक विद्यार्थी से सुना था कि प्रधानजी 'एकान्त में रहनेके खिलाफ हैं। उसने सुनाया था प्रधानजी ने एक एकान्त स्थान चाहने वाले को उत्तर दिया था 'क्या तुम चाहते हो कि काम, क्रोध, लोभ आदि ही तुम्हारे साथी रह जांय?'। इस लिये प्रधानजी से एकान्त कुटी में रहनेकी आज्ञा मांगते हुवे मैं डरा। किन्तु मन न माना और मैंने प्रधान जी से जा ही पूछा। उन्होंने भी तुरंत आज्ञा बल्कि लिखित आज्ञा—प्रदान कर दी। न जाने उस विद्यार्थी का कहना कहां तक सच था, किन्तु प्रधान जी ने मुझे यह नहीं कहा कि एकान्त रहने द्वारा क्या तुम कामक्रोध आदि ओं कोही अपना साथी रहने देना चाहते हो। बल्कि कुछ समय तक मुझे 'ऐकान्तसेवी' नाम से पुकारते रहे। 'कहो एकान्त सेवी ? क्या हाल है ?' इस तरह मुझे देखकर कहा करते। उस समय मुझे सचमुच यह समझ नहीं आता था कि अकेले में कामक्रोध आदि ही कैसे साथी हो सकते हैं ('उदासी' या 'आलस्य' साथी हो सकते हैं यह तो समझता था), यद्यपि अब ३० वर्ष की आयु में मैं इसका मतलब जान सकता हूं। इसलिये प्रधानजी ने ठीक ही मुझे एकान्तसेवन का अधिकारी समझा, यदि किसी और को न भी समझा हो। अस्तु।

मैं दिनभर इस कुटी में रहता था और पढता था। जेम्स ऐलन की पुस्तकें बडी अच्छी लगीं। रवीन्द्र ठाकुर की गीताञ्जली, साधना तथा स्वदेश आदि पुस्तकें बडे ध्यान से पढता था। इसी तरह मैंने सायंकाल के (हाकी, फुटबाल आदि) खेल से भी छुट्टी प्राप्त कर ली थी; क्योंकि मैं स्वयं अपना व्यायाम सदा नियमपूर्वक शाम को भी कर लिया करता था। जाडों में सायंकाल मैं कुछ पहिले बडी गंगा पर एकान्त में जहां व्यायाम आदि करता था वहां रामतीर्थ जी की पुस्तकें तथा वर्ड्सवर्थ की कुछ कवितायें भी मननपूर्वक पढा करता था और आनन्दित होता था।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि द्वादश श्रेणी में मुझ में परिवर्त्तन आ रहा था। असल में मेरा फिर सोनेका समय आने वाला था - नवम दशम और एकादश यह तीन साल मेरे संसार के लिये जागते रहने के बाद फिर त्रयोदश श्रेणी से मुझ पर एक लंबी रात्रि आने वाली थी जिसमें कि मैं संसार के लिये सोऊंगा और यह द्वादश श्रेणी का वर्ष इस दिन और रात को मिलाने वाला संध्या-काल था। इस बार का सोना बेशक बालकपनके (अष्टम श्रेणी तक के) सोने से स्पष्टतया भिन्न प्रकार का सोना था। यह जानते हुवे सोना था। इस आंख मींचने का प्रारंभ इस प्रकार हुवा कि इस वर्ष के शायद अन्तिम दिनों में प्रतिदिन सवेरे उठने पर मन घबराता था। मन में यह प्रश्न उठते थे कि मैं क्या हूं ? संसार में क्यों आया हूं ? संसार क्या है ? मैं यह सब काम क्यों करता हूं ? इसका उद्देश्य क्या है ?। कुछ समय तक तो ऐसा रहा कि प्रतिदिन दिनमें गुरुकुल के नित्य के कर्तव्यचक्रमें (Routine में) पड कर तो ये प्रश्न मैं भूल जाता था। पर अगले दिन सोकर उठने पर फिर मेरा ऐसा ही हाल होता था और इन प्रश्नों के मारे कुछ समझ नहीं पडता था कि मैं क्या करूं। किन्तु आगे धीरे धीरे ये प्रश्न दिन में भी याद रहने लगे और मुझे दिन भर तंग करने लगे।

यह जो अब मुझ में जिज्ञासा का उदय हुवा इस के प्रारंभक कारण अब तक लिखे गये इस मन के इतिहास में विचारक पाठक ढूंढ सकते हैं । पीछे की सब बातें प्रायः इसी लिये लिखी हैं। जिज्ञासा का क्षेत्र धीरे धीरे तैय्यार हुवा था। और शायद इसका उत्तेजक कारण द्वादश श्रेणी का गंभीर अध्ययन और विचार हुवा । कई लोग जो यह समझते हैं कि ऐसे प्रश्न निर्बलता और रोगी होने के कारण उठा करते हैं (संसार में जो लोग खूब खाते पीते और आनन्द करते हैं उनके पास ये फजूल के प्रश्न फटकने तक नहीं पाते), वहां मैं इतना कह दूं कि अब मेरा मन पहिले से निःसंदेह बलवान था और कब्ज का भी अब कष्ट नहीं था । एकादश में और द्वादश में भी मैं दुनिया में बडे आनन्दसे रहा हूं । एकादशमें एक दिन कुछ ज्वर हो जाने के अतिरिक्त मैं इन दोनों वर्ष मुझे कुछ रोग तक भी नहीं हुवा।

८

लाला मुरारी लालजी .

जब इस प्रकार मेरा मन इन रहस्य विषयक प्रश्नों की उलझन में विचारग्रस्त और चिन्तामग्न रहने लगा तो स्वभावतः मैंने हरएक बातको प्रारंभ से-मूलसे - विचारना शुरू किया। इस जीवन का उद्देश्य क्या है इस प्रश्न को यह उत्तर देकर शान्त किया कि ' मनुष्य जीवन का उद्देश्य पता लगाना ' ही अभी मेरा उद्देश्य है । हरएक बातको प्रारंभ से विचारना शुरू करने पर अपने और जगत् के संबन्ध में सोचते हुवे संस्कारवश ' परमात्मा ' का ध्यान बार बार आता था, अतः मैंने परमात्मा के विचारको भी एक वार दिलसे निकाल दिया-एकदिन शाम को पंचकुटी के उसी कमरे में खडे होकर कहा ' जब परमात्मा अनुभव नहीं होता तो उसे मैं क्यों योंही माने हुवे हूं '। एवं उस सायंकाल से लेकर लगभग१,२दिन तक मैं नास्तिक भी रहा। पर इससे अधिक देर तक मैं ' परमात्मा ' को नहीं निकाले रख सका। न जाने क्या हुवा कि एक प्रबल आवेश की तरह कुछ ऐसा विचार जोर से आया ' और सब कुछ चाहें न हो पर परमात्मा तो सब के जड में है, सब का प्राण है उसे ' नहीं ' नहीं किया जा सकता ' । इस प्रकार मेरे मन में बडी बडी उलट पलट होने लगी । मैं कई श्रद्धेय उपाध्यों की शरण भी पहुंचा। एकादश द्वादश श्रेणी में वेद पढ कर वेदों के ईश्वरीय होने में बिलकुल श्रद्धा नहीं रही थी और मैं वेद के घंटे को बिलकुल व्यर्थ समझने लगा था। इस वेद विषय में तथा सत्यज्ञान कैसे प्राप्त होवे इत्यादि विषयों पर मैंने दो मान्य उपाध्यायों से भी गहराई में बात चीत की उन्होंने भी गंभीरता से कई बातें समझाई किन्तु मुझे कुछ विशेष संतोष नहीं हुवा । अन्त में कई महीने की हार्दिक उथल पुथल और अशान्ति के बाद जिस व्यक्ति द्वारा मुझे शान्ति मिली और मेरी व्याकुलता हटी वह थे गुरुकुल के कार्यालय (दफ्तर) के अध्यक्ष लाला मुरारी लालजी ।

यह एक विचित्र पुरुष थे। साधारणतया ये लोगों में बदनाम थे । इन से आम लोग डरते थे। परन्तु इनका यह रौद्र रूप ही (जो कि दफ्तर में तथा प्रबन्ध संबन्धी अन्य कार्यों में प्रकट होता था) प्रायः लोगों को दीखता था। इन का सौम्य रूप बहुत कम लोगों को विदित था। इनका जीवन बडा ही नियमित था । वैसे तो गुरुकुल के कार्यालयाध्यक्ष का कार्य ही बडे झंझट और झमेले का है चित्त को २४ घंटे विक्षिप्त रखने को पर्याप्त हैं । किन्तु लाला जी एक दो वर्ष तक तो क्रियात्मक, तौर पर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का भी सब कार्य 'क्लर्क की कुरसी ' पर बैठकर ही करते रहे थे। पर उत्तरदातृत्व के, व्यग्रता और चिन्ता के इस सब कार्य को ठीक निबाहते हुवे भी उनकी प्रातःकाल की स्थिर आसन से बैठकर एक घंटा संध्या तथा इसके उपरान्त एक दो घंटा स्वाध्याय, एवं सायंकाल भी पढना पढाना, घूमना और नौ बजे तक सोजाना किसी ने टलते नहीं देखा। केवल इतना ही नहीं था । जहां वे गुरुकुल के बाह्य संचालन के स्तंभ थे, वैसे ही वे गुरुकुल की आन्तरिक उन्नति के भी स्तंभ थे; क्यों कि चुपके चुपके ब्रह्मचर्य और सदाचार का जितना दृढ प्रचार ये विद्यार्थि

ओं में करते थे उतना गुरुकुल में किसी और ने नहीं किया है। इनका विद्यार्थिओं से मिलने का समय चार बजे दफ्तर की समाप्ति के बाद से आठ बजे तक के बीचमें प्रायः होता था। उनसे मिलने वाले लोग ही उनके उस बडे सौम्य रूप को जानते थे। जो कोई उनसे समीपतासे मिलता था वह विना प्रभावित हुवे नहीं रहता था। मि. पीयर्सन और मि०फेप्स ये दो योरोपियन उनके बडे भक्त हो गये थे। इनका अध्ययन बहुत था। पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रंथ इन्होंने बहुत पढे थे ही किन्तु संस्कृत न जानते हुवे भी उन्होंने अपने सब शास्त्रादिक भी (बहुत कुछ अंग्रेजी द्वारा) खूब मनन किये थे। यह सब कुछ पढकर उन्होंने एक सत्य ज्ञान वास्तव में उपलब्ध किया था। इस 'ज्ञान' का मैं उन्हें ऋषि कह सकता हूं। उन्हें सर्वत्र यही दिखलायी देता था। आशा है उनके जीवन का यह संक्षिप्त वर्णन पाठकों को लाभदायक हो सकेगा। इसी २४ घंटेके परिमित समयमें इतना अधिक कार्य करनेका उनका सामर्थ्य जिसका कि मूलमंत्र उनकी जीवन की नियमितता थी हमारे लिये ग्रहण करने को यही वस्तु बहुत है। कम से कम मेरे लिये बहुत है। मैं इसे अभी तक नहीं प्राप्त कर सका हूं। अस्तु।

मेरी उनके पास पहुंच कैसे हुई इसकी, कथा इस प्रकार है। लखनऊ की प्रसिद्ध कांग्रेस के आशाजनक समाचार सुनने के बाद मेरी इसी कुटी में बैठे हुवे कई साथिओं में से एक ने यह प्रस्ताव किया कि हमें मिलकर देशसेवा के लिये तैय्यारी करनी चाहिये। बात चलते चलते यह विचार पक्का होगया और हमने एक समिति बनायी जिसमें कि हम ६, ७ विद्यार्थी थे। हम में से तीन लाला मुरारी लालजी के शिष्य थे (जैसा कि मुझे पीछे पता लगा)। इस समिति में हमने एक तरफतो १०, १२ तपस्या के नियम बनाये जिनका उलंघन होने पर एक निश्चित प्रायश्चित्त करना होता था जो कि छुट्टी के दिन शामको (उस समय हम भोजन नहीं करते थे) समिति की बैठक में बतलाना होता था और दूसरी तरफ एक विचार समितियें हम देश-सेवा की विधि के विषय में विचार विनिमय किया करते थे। इन तपस्या के नियमों से यद्यपि मुझे कोई विशेष लाभ नहीं हुवा (क्योंकि मैं इन्हें पहिले से पालता था और जैसा आगे लिखूंगा दिनचर्या भी लिखा करता था), तो भी अन्य साथिओं को बडा लाभ हुवा बल्कि सब महाविद्यालय को लाभ हुवा और यह समिति देर तक चलती रही। किन्तु जो यह विचारविनिमय की समिति थी इसमें हम प्रायः किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते थे, इसका कारण यह था कि ये जो तीन लालाजी के शिष्य थे इनके विचार अन्यों से मौलिक रूपमें भिन्न होते थे। अतः यह समिति शीघ्र बन्द हो गयी। पर मेरा यह एक लाभ कर गयो। मेरी प्रवृत्ति देख कर इन लालाजीके शिष्यों को इच्छा हुई कि मुझे लालाजी से परिचित करना चाहिये। ये लोग (विशेषतया एक मेरे पास की कुटी में रहने वाला विद्यार्थी) मुझसे लाला जी के विषय में बातें भी करने लगे। इधर मुझमें तो यह संसार रहस्य जानने की जिज्ञासा प्रबल हो चुकी थी जो मुझे चिन्तित रखती थी। अतः मेरी भी इच्छा हुई कि किसी तरह उनसे मिलूं और उनके विचारों से लाभ उठाऊं। इतने में जब मैं द्वादश से त्रयोदश में हुवा उसवर्ष जो नयी श्रेणी विद्यालय से आयी उसमें के एक विद्यार्थी को लाला जी ने महाविद्यालय में जाने से पूर्व कुछ व्याख्यान देकर भेजा है यह मुझे कहीं से पता चला। मैं उस छोटे विद्यार्थी से ही उन व्याख्यानों को सुनने को उद्यत होगया। यह पता लगने पर लालाजी ने स्वयं कहला भेजा कि मैं ही देव-शर्मा को वह बातें बतला दूंगा वह आज ४ बजे मेरे पास आवे। मैं उस दीन बडे आनन्द से चार बजे उपस्थित हुवा। पहिले दिन उन्होंने उपयोगिता वाद (Utility) पर व्याख्यान दिया। ऐसे दस दिन तक दस व्याख्यान दिये। मैं प्रतिदिन के व्याख्यान आ-कर लिख लेता था। वे वहां नोट नहीं करने देते थे केवल स्वयं कोई कोई शब्द पैंसिल से लिखकर समझाते जाते थे। मैं इन शब्दों से ही सोच कर पूरा व्याख्यान लिख लेता था। मेरी इस दत्तचित्तत

और लगन को देखकर भी लालाजी प्रसन्न हुवे। इन सब व्याख्यानों से अन्त में परिणाम यह निकला कि एक विद्या (Science) है-अध्यात्मविद्या या योगविद्या, या यह Spiritualism जिसको कि जानना चाहिये, जिसके विना जाने (हम चाहे कितने यत्न कर लें) शान्ति, निश्चिन्तता और सफलता नहीं मिल सकती। वह विद्या कहां से मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक दो दिन बाद जो कुछ प्राणविद्या का एक रहस्य वे जानते थे वह मुझे बतलाने की कृपा की और कहा कि अभी इसे करो इस प्रकार योग की दिशा में वे मेरे पहिले गुरु हुवे उनके व्याख्यानों से मेरे बहुत से विचारों में परिवर्त्तन हुवा। सब से बडा परिवर्त्तन यह हुवा कि मुझे अपने प्राचीन शास्त्रों में श्रद्धा होगयी। वेद में भी श्रद्धा हुई। यह मैंने समझ लिया कि इस समयजो हमने वेद के अर्थ पढे हैं इनसे अतिरिक्त इनके असली अर्थ कुछ और हैं और यह भी संकल्प हुवा कि आगे बडा होकर जब मैं इस अध्यात्म विद्या को जान लूंगा तो कभी मैं स्वयं वेद पढूंगा और ठीक अर्थ जानूंगा। लाला जी के सत्संग से ब्रह्मचर्य के विषयमें भी बडे पक्के विचार हो गये। लालाजी से मिलने वाले प्रत्येक विद्यार्थी में प्रायः संपूर्ण आयु ब्रह्मचारी रहने का संकल्प अवश्य हुवा करता था।

९

योगकी जिज्ञासा और गुरुकुल छोडने की इच्छा।

इस प्रकार मेरी यह जिज्ञासा लालाजी की कृपा से योगजिज्ञासा के रूप में परिणत हो गयी। मेरे ये सब संशय योगद्वारा मिटेंगे और योग द्वारा मुझमें सत्य-ज्ञान का उदय होगा इसलिये योग ही सीखना चाहिये यह निश्चय किया और इसतरह इस संसार में और बातों से पहिले सब यत्नों और सब साधनों से अपने को योगी बनाने में लगने का निश्चय करके मेरा मन शान्त और स्वस्थ हुवा। देशोद्धारऔर देशसेवाका विचार अब दूर चला गया। जब तक मैं स्वयं न सुधर जाऊं,अपना उद्धार न कर लूं तबतक देशका उद्धार करनेमें मैं कैसे साधन हो सकता हूं इस प्रकार मैं विचारने लगा और जब तक मैं स्वयं अपनी सेवा करके समर्थ नहीं हो जाता, योग्य नहीं हो जाता तब तक के लिये (अर्थात् न जाने कितने समय तक के लिये) वह मेरा देशसेवा या समाजसेवा का विचार स्थगित होगया।

लाला जी ने जो मुझे एक प्राण का अभ्यास बतलाया था वह मैं ने तभी प्रारंभ कर दिया था। किन्तु इसके करने से दो चार दिन में ही मुझे पता लगा कि मेरे शरीर में वामप्राण की तरफ बडी त्रुटि है। इसलिये अब मैं दिनरात इसे सुधारने में ही लग गया। त्रयोदश श्रेणी का पहिला सत्र इसी यत्न में शीघ्रता से गुजर गया और दो महीने की छुट्टियां आगयी। हमीरपुर में रहता हुवा इन दो महीने भी मैं इसी प्राण सुधारने में बडे यत्न से लगा रहा। किन्तु कुछ सफलता नहीं हुई इसलिये गुरुकुल आकर के भी सात दिन के लिये पढाईसे छुट्टी ली पर जब देखा कि किसी तरह मेरा प्राण ही ठीक नहीं होता है तो मैं ने सोचा कि अब पढाई छोडकर किसी योगी के पास चले जाना चाहिये इसीमें कल्याण है। मैं योग की विद्या के सामने अब इस किताबी पढाई को सचमुच कुछ नहीं समझता था। अतः गुरुकुल की व्यर्थ पढाई छोड कर सर्वथा योग साधन में लग जाने को मैं सोचने लगा। गुरुकुल के अधिकारिओं से तो कहा ही, किन्तु पिताजी की आज्ञा लेनी आवश्यक है यह सोच कर पिता जी को भी लिख दिया " आप 'डिग्री'का मोह न करें। यदि स्नातक की डिग्री से मैं वंचित रहूंगा तो इसमें कुछ भी हर्जा नहीं है। वास्तविक चीज तो योग्यता है और असली योग्यता पाने के लिये ही मैं गुरुकुल छोडता हूं। यहां व्यर्थ दो साल और क्यों खोऊं"। परंन्तु पिताजीने आज्ञा नहीं दी। उन्हों ने लिखा कि'जो कार्य शुरु किया है उसे पूरा कर लेना चाहिये। डेढ साल बाद स्नातक होकर फिर यह कार्य भी करना।' उस समय तो मुझे यह पिताजी का उत्तर ठीक नहीं लगा था

और मैं दुःखी हुवा था। किन्तु अब सोचता हूं कि अच्छा ही हुवा कि मैंने गुरुकुल नहीं छोडा। छोडने से कुछ भी अधिक लाभ नहीं होना था। जो कुछ हो सकता था वह प्रायः गुरुकुल में भी मुझे मिल सकता था और वह मिला। औरों और लालाजी ने भी मुझे यही समझाया था कि गुरुकुल छोडने की आवश्यकता नहीं है। लालाजी ने तो पिताजी का पत्र आनेपर मुझे कहा कि ' पिताजी ने तुम्हें बहुत ठीक उत्तर दिया है ' और डेढ साल बाद जिस दिन कि हम स्नातक परीक्षा का अन्तिम पर्चा देकर आये उसीसमय सायंकाल पंचकुटी में मेरे स्थानपर आकर कहा " आज मेरे लिये बडे आनन्द का दिन है। मुझे आजतक डर लगा रहता था कि कहीं देवशर्मा भाग न जाय। आज निश्चित हुआ हूं। और भागजाने पर मेरा नाम तो लगना ही था कि मैंने इसे भगा दिया है "। वास्तव में सब पूज्यपुरुषों के मना करने से ही मैं ने समझा था कि शायद जाने से मेरा भला नहीं होगा, नहीं तो बहुत संभव था कि मैं गुरुकुल से भाग ही जाता। अस्तु।

इसके बाद मेरी इच्छा यह हुई कि मेरा ऐच्छिक विषय ' इतिहास अर्थ शास्त्र ' ऐसा है कि इसमें पढना बहुत पडता है अतः यदि अब भी इसे बदलने की आज्ञा मिल सके तो मैं कम से कम इसके स्थान पर कोई बहुत आसान विषय ले लूं जिससे कि कम पढना पडे और मुझे अभ्यास के लिये बहुत समय मिल सके। कहां तो अभी एकादश द्वादश श्रेणी में मुझे वेद ब्राह्मण आदि ही व्यर्थ से लगते थे और इस अपने ' इतिहास अर्थ शास्त्र' विषय को तो मैं बडा आवश्यक समझता था, पर अब सभी विषय मेरे लिये एक जैसे निरर्थक होगये थे (बल्कि वेद पढने की तो बडे होकर कभी इच्छा भी थी।) सभी पढने को मैं एक सिरे से अपना समय खोना समझता था। अतः जिस विषय को मैंने इतने शौक से (कइओं की विमति होनेपर भी) लिया था उसे भी बदलने का मैंने प्रार्थना पत्र लिखा। यह स्वीकृत तो क्या होना था। प्रो० बालकृष्ण-जीने (जो उन दिनों कुछ समय के लिये आचार्य भी थे) समझा बुझा दिया और कहा कि तुम बेशक इसमें बहुत कम समय दो और आश्रम में पढने लिखने का जो वे कभी कभी कार्य दिया करते थे उसे भी मुझे न करने की अनुमति दे दी। मैंने भी देख लिया कि अब डेढ साल शेष रह जाने पर एक नया विषय लेने से वास्तव में कुछ भी लाभ नहीं है।

इस प्रकार मैं गुरुकुल में ही रहा और ' इतिहास राजनीतिका ही विद्यार्थी रहा किन्तु क्रियात्मक तौर पर मेरा पढना लिखना सब बन्द होगया। मुझे जब देखो मैं कोठरी बन्द किये पडा होता था। एकादश में तो मैंने महाविद्यालय का आनन्द लेने के लिये कम पढा था, पर द्वादश में खूब पढने के बाद अब फिर मेरा पढना छूट गया। अब मेरा अभ्यास के लिये पढना छूटा। इन अन्तिम दो साल मैंने पढाई के घंटों के अतिरिक्त तो पढाई संबन्धी कुछ पढाही नहीं, किन्तु घंटा भी जब कभी कोई खाली होता था तो बडा आनन्द होता था और मैं उठकर चुप-चाप अपनी कोठरी ही में बन्द हो जाता था। पीछे से मैंने सुना था कि कईओंने मेरी इस कोठरी का नाम 'गुफा' रखा हुवा था। परीक्षा में जब लगभग एक महीना रह जाता था तब मैं पढाई की पुस्तकें खोलता था और थोडा थोडा अपने अभ्यास में विघ्न न करते हुवे पढता था। रात्रि को तो मैं अपनी आखों की स्वस्थता के लिये पहिले ही यथा शक्त कम पढता था अर्थात् परीक्षा प्रारंभ होनेसे एक ही या दो दिन पहिले रात्रि को भी पढना शुरू करता था। त्रयोदश श्रेणी में तो मैंने सोचा था कि सब विषयों की इकट्ठी तैयारी के बोझ के कारण मेरे अभ्यास में विघ्न कुछ भी न पडे इस लिये दो बडे बडे विषयों की परीक्षा सत्रपरीक्षा में न दूंगा और इनमें अनुत्तीर्ण समझा जाकर धीरे धीरे बहुत थोडा समय देते हुवे इन्हे तैय्यार करके इनकी परीक्षा उपसत्र परीक्षा में दूंगा ऐसा करने से मुझे उन दो विषयों में केवल ३३ ०/० अंक ही मिलेंगे इसकी मुझे जरा भी परवाह न थी। परन्तु इन दो विषयों के उपध्यायों के समझाने पर मुझे अपना यह विचार छोडना पडा। इसी तरह परीक्षा परिणाम सुनने की इच्छा मुझे बिलकुल नहीं होती थी, द्वादश का

तथा त्रयोदश चतुर्दश का परिणाम मैं सुनने नहीं गया, न कभी पता लगाया। पढाई के घंटों में पढना और भोजनादि आवश्यक कार्य करने के अतिरिक्त मैं सदा कोठरी में ही रहता था। आवश्यक बात चीत करने या अन्य आवश्यक आपडे कार्य करनेके लिये मेरे पास भोजन के पश्चात् का एक आध घंटा होता था, क्यों कि इस समय मैं अभ्यास नहीं कर सकता था। नहीं तो अन्य समय पर मुझे बात चीत के लिये भी फुरसत नहीं थी। अन्य समय में यदि मुझे कभी कोई ऐसा बाह्य काम करना पडता था तो मैं अन्दर अन्दर बडा दुःखी होता रहता कि मेरा समय नष्ट होरहा है। यदि कभी था सभा आदि में बैठना पडता था तो मैं अन्दर अन्दर दुःखी होता हुवा यत्न यह करता था कि मन को सभा की कार्यवाही से हटाकर उस समय को उस स्थान पर किये जाने योग्य किसी अपने अन्तरीय कार्य में लगा रखूं। यहां तक कि स्नान दांतन आदि में भी मुझे समय व्यर्थ जाता प्रतीत होता था। पीछले वर्षों में खूब तैरने वाला मैं अब गर्मियों में भी एक बार (वह भी कम से कम समय लगाकर) से अधिक तो कभी भी स्नान नहीं करता था। कभी कभी एकबार भी नहीं करता था। क्योंकि मैं अपने लिये इसकी आवश्यकता नहीं अनुभव करता था। स्नान के लिये बिलकुल मन ही नहीं होता था। योग की पुस्तकों में भी ऐसा ही पढा था। दांतन करना तो प्रायः छोड ही दिया था। (दाँत ठीक रखना कितना आवश्यक है यह अब पता लगा है)। यद्यपि हठयोग में दांतधावन का विधान है, पर उस समय उस पर ध्यान नहीं गया। इस प्रकार कुटियां में बंद हो अपनी संध्या आदि करने के अतिरिक्त यदि मैं कुछ स्वेच्छासे करता था तो वह शौच जाना, व्यायाम करना, भोजन खाना और नींद लेना केवल इन चार कार्यों को ही आवश्यक समझ कर करता था। नहीं तो मैं अन्दर अपने अभ्यास, संध्या आदि अन्तरीय कार्य ही दिनभर लगा रहता था। आजकल यह 'शंनो देवी' वाली संध्या ही मैं चार चार घंटे तक करता रहता था। रात्रिको स्वप्न भी ऐसे ही आते थे। या तो अपनी कोठरी में वही प्राण का अभ्यास करने का सुपना आता था या आज इतनी संध्या रह गयी है यह सुपना आता था और मैं संध्या करने लगता था। ऐसा बहुत बार हुवा है कि मैंने स्वप्न में पूरी पूरी संध्या की है। इस प्रकार गुरुकुल के अन्तिम दो वर्ष का जीवन मेरा उस कोठरी में ही बीता।

सुस्वागतम् ।

१ संध्याप्रदीप ।

(ले०-म. नत्थनलाल, गवर्नमेंट है, स्कूल शिमला। मू. १) पुस्तक में वैदिक संध्याके मंत्रोंकी उत्तम व्याख्या है। पुस्तक अतिबोधप्रद है।

२ पितकर्म मीमांसा ।

(ले० श्री० पं० हरिशंकर दीक्षित, नगीना, बिजनौर यू. पी. मू. ।=) पितृकर्म विषयक संपूर्ण शास्त्र प्रमाणों से मंडित होनेके कारण यह पुस्तक विशेष मनन करने योग्य है।

3 A COMMENTARY ON THE ISHOPANISHAT.

(श्री० नारायण स्वामीजी महाराज के हिंदी ईशोपनिषद भाष्यका आंग्रेजी अनुवाद। मू. ।) मल पुस्तकमें श्री० स्वामिजी महाराजने अपना अद्वितीय आध्यात्मिक रसास्वाद ओतप्रोत भरा था, वही रस इससे अंग्रेजी पाठकों को मिल सकता है।

४ श्रीमद्विरजानंददर्शन ।

(ले० -- श्री. सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज। प्र. सरस्वती सदन, लुधियाना और नारनौल.) श्री. विरजानंद के विचारोंका दर्शन इसमें पाठक ले सकते हैं। मू. ॥=)

५ कलीयुगी महन्त। प्र. दुर्गा साहित्यमंदिर, कनखल. मू.-)

६ Arya Samaj बनारस हिंदु युनिवर्सिटी पुस्तक अंग्रेजी में है और आर्य समाज के विषयमें पढने-योग्य बातें इसमें हैं।

छूत और अछूत।

[प्रथम भाग]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी ?

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल१ रु. डाकव्यय।

अतिशीघ्र मंगवाईये।

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक--- श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल औंध जि. सातारा

वर्ष ८

अंक ४

क्रमांक ८८

चैत्र

संवत् १९८३

एप्रिल

सन १९२७

वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

छूत और अछूत।

[प्रथम भाग]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था

"आसनोंके चित्र पट" की बहुत ही मांग थी, क्यों कि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकोंके पास रवाना भी हो गये हैं। २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ≡) तीन आणे और डाक व्यय -) एक आना है।

स्वाध्याय मंडल
औंध (जि. सातारा)

वर्ष ८

अंक ४

क्रमांक ८८

चैत्र

संवत् १९८३

एप्रिल

सन १९२७

वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

उत्तम वीर ।

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः ।
नृभिः सुवीर उच्यसे ॥

ऋ० ६ । ४५ । ६

" तू (द्विषः) द्वेष करने वालोंको (इत् उ) निश्चयसे (अतिनयसि) दूर करता है और सब को (उकथ-शंसिनः) प्रशंसा करनेवाले (कृणोषि) बनाता है, इस लिये (नृभिः) सब मनुष्य तुझे (सुवीरः) उत्तम वीर (उच्यसे) कहते हैं । "

उत्तम वीर वह है कि जो शत्रुओंको दूर भगाता है । अपनी जाती में शांति स्थिर रखता है, अपने देशको निर्भय करता है और सब जनताको उत्तम भावोंसे युक्त करता है । सब लोगोंको उचित है कि वे उत्तम वीरोंकी ही प्रशंसा करें, उनका सत्कार करें और उनके अनुगामी बनें ।

योग जिज्ञासाकी कहानी।

(ले० -श्री. पं० अभय देवशर्माजी विद्यालंकार)

१० मनन।

पाठक यह जानना चाहेंगे कि इतने समय तक कोठरी के अन्दर पडा पडा मैं क्या किया करता था और संध्या में ४, ४ घंटे कैसे लग जाते थे। मैं जो कुछ यह अन्तरीय कार्य करता था उसे मैं एक शब्द में 'मनन' या 'एकान्त विचार' या 'आत्मविचार' कहा करता हूं। समझाने के लिये मैं इस मनन व विचार को दो भागों में वांट सकता हूं। एक तो मैं अपनी त्रुटियों को दूर करने (अथवा गुण धारण करने) के विषय में मनन व विचार करता था और दूसरा ज्ञानप्राप्ति के लिये मनन व विचार करता था। मैं क्रमशः इन्हें स्पष्ट करता हूं।

(१) अपनी त्रुटियां दूर करने विषयक मननों में से (क) सब से अधिक समय तो मैं उसी अपने प्राण की खराबी के निवारणार्थ प्राण की गति पर ध्यान लगाने में व्यय करता था। इतनी देर तक प्राण पर मन को एकाग्र तो नहीं कर सकता था किन्तु मैंने विचारते विचारते कुछ भावनायें बना लीं थी उन्हीं भावनाओं में रहते हुवे प्राण पर ध्यान रखता था; (ख) कुछ समय ब्रह्मचर्य पर तथा अपने शरीर की स्वस्थता पर भी (भावना द्वारा ही) ध्यान किया करता था; (ग) एवं अपने अन्दर की (स्वभावकी) जो त्रुटियां (दोष) जान लेता था उन्हें भी दूर करने के लिये अपनी दिनचर्या पुस्तक (दिनचर्या लिखने के विषय में मैं आगे इसी प्रकरण में कुछ विस्तार से लिखूंगा) में लिख लेता था और इनकी जांच पडताल संध्या में ही करता था कि ये त्रुटियां कहां तक हट रही हैं। जिस दिन इन त्रुटियों के कारण कुछ (दोष) घटित हो जाता था उसदिन की संध्या में तो यह विचार (मनन) बहुत समय ले लेता था; (घ) एक अपना यह नियम कर रखा था कि दिन भर में मैं यदि किसी को भी पीडित या दुःखग्रस्त देखता था या किसी के बडे रोगादि कष्ट में होने की बात सुनता था तो संध्यामें एक स्थान था जब कि मैं इनके लिये दोनों समय प्रार्थना करता था। यह भी मैं आत्मविशुद्धि के लिये करता था और इसमें भी दोनों समय १०, १० या १५, १५ मिनट लग जाते थे।

एवं यह मनन ४ प्रकार का होगया। इस अपनी त्रुटियों के दूरीकरणार्थ (या गुण धारणार्थ) किये जाने वाले मनन के संबन्ध में मैं पाठकों का ध्यान इस बातकी तरफ खींचना चाहता हूं कि इसमें मुझे भावनात्मक मनन से बडा लाभ होता था। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य के लिये मैं दीपक की भावना करता था कि "वीर्यरूपी तैल सब ऊपर मस्तिष्क में चढ रहा है और ज्ञानरूपी प्रकाश बन रहा है," या शिवकी भावना कि "तीसरा नेत्र खोलते ही 'काम' भस्म होगया है।" ['तब शिव तीसर नयन उघारा, देखत काम भयेउ जलि छारा' या 'तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।' यह बोलते हुवे।] "मैं प्रेम का सूर्य हूं चारों तरफ सब लोगों में मेरी प्रेम की किरणें फैल रही हैं - कोई शत्रु नहीं" ऐसी भावना करना। विराट् पुरुष की भावना करना। शरीर को "सर्वथा रोगरहित, पूर्ण स्वस्थ" भावना करना। ऐसा भावित करना 'मैं आनन्दमय, आनन्द से पूर्ण भरा हुवा, इतना

परिपूर्ण कि जो मेरे समीप में आवे उसका भी दुःख ताप मिटने लगे'। मेरा अनुभव है कि ऐसी भावनायें यदि क्षणभर भी किन्तु पूरी तीव्रता से अर्थात् अपने को कल्पना में वही चित्रित करके, बिलकुल वही बनकर की जा सकें तो भी बडा लाभ होता है। एकवार भी संस्कार पड जाने पर फिर वह भावना जल्दी और आसानी से होने लगती है। अपनी प्राणगति संबन्धी तथा अपने जीवनोद्देश्य संबन्धी और भी कई बडी अच्छी भावनायें मैं करता था जिनके कि उल्लेखन की (अन्यों के लिये अनुपयोगी होने से) आवश्यकता नहीं। आशा है पाठक उपरि लिखित 'भावना' शब्द का भाव तो समझ गये होंगे। इस कथन का उद्देश्य यह है कि जिन लोगों के मनों में कल्पना शक्ति है उन्हें इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिये वे भावनाओं द्वारा अपना बडा लाभ कर सकते हैं। अस्तु।

(२) दूसरा ज्ञानप्राप्ति के लिये किया जाने वाला मेरा मनन प्रायः सब संध्या में होता था। वे जो संसार का रहस्य जानने विषयक प्रश्न मुझमें उठे थे उनका विचार स्वभावतः संध्यामें (जब कि मैं परमात्मा से अपना संबन्ध जोडने या देखने बैठता था) होने लगता था। चित्त में जो संशय आते थे उन्हें विचार द्वारा दूर करता हुवा और इस नये विचार से जो और उलझने पैदा होती थी उन्हें भी सुलझाता जाता हुवा मैं अपनी संध्या पूरी करता था। इसीलिये मुझे संध्या में कभी कभी चार घंटे तक हो जाते थे। तीन घंटे तो सामान्य बात थी। संध्या में जहां अपने, जगत् और परमात्मा के संबन्ध में जो शंका उठती थी मैं वहीं उसे विचारने लग जाता था और जब तक चित्त संतुष्ट नहीं होता था तब तक आगे नहीं चलता था। मेरा मन गडबडी में, संशय में जरा भी रहना नहीं अङ्गीकार करता था, बेचैन हो मनन करता चला जाता था। मतलब यह कि बुद्धि को – दृष्टि को – साफ निर्मल रखना, बुद्धि के सामने जो (क्लेश या अज्ञान आदि की) रुकावट या पर्दा आवे उसे विचार कर, – बार बार चिन्तन करके हटाना यही मेरा मनन था। इसीलिये संध्या के बाद मैं नित्य बडा ही आनन्दित होकर (बिलकुल निश्चिन्त निर्बाध होकर) उठता था। शंकायें रोज नये नये रूप में उठती थी और रोज उनको हल कर लेने द्वारा मुझे संध्याका अवर्णनीय आनन्द मिलता था। मुझे सचमुच भोजन की तरह नित्य नया ज्ञान व प्रकाश मिलता अनुभव होता था और (जैसा कि मैं अभी लिखूंगा) कभी कभी विशेष ज्ञान देखकर संध्या के बाद मैं इसे अपनी एक 'दिनचर्या पुस्तक' में लिखभी लिया करता था। 'मनन' इस शब्द को मुख्यतया मैं संध्या को इस मनन के लिये ही प्रयुक्त करता हूं। (ख) एक मेरा यह भी नियम था कि दिन में मुझे जो कोई कष्ट या दुःख होता था तो उसे लेकर मैं अपने इसी एकान्त विचार के समय में उसके कारण को खूब सोचा करता था। इतना सोचता था कि तत्त्व जान लेने पर यह कष्ट फिर कभी मुझे दुःखित न कर सके।

एवं यह दूसरा मनन द्विविध था। यही दोनों प्रकार का (त्रुटि दूर करने के लिये तथा ज्ञानप्राप्ति के लिये) मनन व विचारही मेरा आजकल का सब योगाभ्यास था। दोनों मिलाकर ये ही छे मनन, भावनायें व विचार मेरे 'अन्तरीय कार्य' थे जिन्हें कि मैं दिनभर उस कोठरी में करता रहता था और मग्न रहता था। इनसे मुझे बडा ही लाभ हुवा है। मैं तो चाहता कि इसी तरह प्रत्येक पाठक इस मननविधि को स्वीकार कर बडा सुख पासके। अस्तु।

प्रकरण को समाप्त करते हुवे मैं एक और बात बतलाना उपयोगी समझता हूं। दोनों प्रकार के मनन में मुझे दिनचर्या लिखने से बडा लाभ हुवा है। जब से आचार्य जी के उपदेश में दिनचर्या की बात सुनी थी तभी से मैं अपनी समझ के अनुसार दिनचर्या लिखने लगा था। इसमें धीरे धीरे विकास होता गया। विद्यालय में मैं केवल त्रुटियां सुधारने की दिनचर्या लिखता था। दशम में मैंने धारणे के लिये १० गुण दिनचर्या में लिखे हुवे थे। उनमें से (१) सीधा कमर

न झुकाकर) बैठना (२) सबको नमस्ते (अभिवादन) करने का अभ्यास करना (३) दूसरे क्या कहेंगे इस डरसे ठीक कार्य करनेसे न डरना, ये तीन स्मरण भी हैं। इनमें से तीसरी बात तो बहुत देर तक चलती रही थी। एकादश में आकर दिनचर्या में अपने विचार भी लिखने लगा था। यह वर्ष सन १९१५ के कुंभसे प्रारंभ हुवा था। इस दिनचर्या में (१) प्रारंभ में ४, ५ खाने त्रुटिओं की हाजिरी के बनाकर (आजकल की त्रुटियाँ ठीक स्मरण नहीं आती। सदा प्रसन्न रहना और संकोच न करना ये दो बातें उनमें शायद थीं) (२)इसके नीचे उस दिन की कोई घटनायें या दृश्य देखकर जो विचार मन में उठते थे उन्हें लिखता था तथा (३) कभी यदि किसी और का या किसी पुस्तक आदि का भी कोई अच्छा विचार सुना या प्राप्त किया होता था तो उसे भी वहीं लिख लेता था। द्वादश में विचार गंभीर होने लगे थे और मैं इन्हें विस्तार से लिखा करता था। किन्तु अब त्रयोदश में आकर इन तीनों कार्यों के लिये जुदा दिनचर्या पुस्तकें बना लीं थी। (१) त्रुटि सुधारने (या गुण धारण करने) की कापी में मैंने त्रयोदशके प्रारंभ में निम्न पांच बातें लिख रखीं थी (क) निर्भयता नि-धडकता (ख) सत्य और निर्मलमस्तिष्कता (ग) एकाग्रता (घ) आत्मस्वरूप और परमात्मा को यथाशक्ति दिन भर स्मरण रखना (ङ) परार्थ में अपने को मलजाना या निस्वार्थता। इनमें आगे कुछ परिवर्त्तन भी हुवे थे। चतुर्दश में आकर तो मैं यमों और नियमों को ही अपने जीवन में लाने का यत्न किया करता था। इस के लिये नित्य एक एक यम नियम पर संध्या में देर तक विचार किया करता था। यहां यह स्मरण आये विना नहीं रहता कि इन वर्षों में गुरुकुल के एक श्रद्धेय उपाध्याय श्रीमान्पं० सेवारामजी हमें गुणी और उच्च चरित्र-वान बननेके लिए सदा प्रेरणा करते थे और इसके लिये सामिग्री उपस्थित करते रहते थे। मुझे तो उनके वचनों से, उन की बतलायी बातों से बडा लाभ हुवा था। अस्तु। उधर हमारी उस समिति से निर्धारित जो तपस्या के नियम थे उनका पालन लिखने के लिये एक जुदा ही दिनचर्या थी। (२) दूसरी दिनचर्या अर्थात् अपने विचार लिखने की दिनचर्या इस समय मेरे लिये बडी मूल्यवान् वस्तु थी, क्यों कि इसमें मैं आजकल की संध्या के मनन से निकलनेवाले विचार लिखा करता था। एकादश द्वादश में तो बाह्य घटनाओं द्वारा उठे अपने विचार लिखता था किन्तु अब के ये विचार वे 'ज्ञान' विचार थे जो कि मुझे अन्दर से प्रकाश की तरह मिलते थे। मैं इन्हें इतना कीमती समझता था कि कहा करता था कि यदि कहीं मेरे स्थान पर आग लग जांय तो मैं सब से पहिले अपनी इस कापी को बचाने का यत्न करूंगा और बेशक मेरा सब कुछ जल जांय। द्वादश श्रेणी की दिनचर्या भी मैंने अन्य सब पुरानी दिनचर्याओं की तरह प्रायः थोडेसे पृष्ठ कामके समझ रख छोडे हैं, फाड डाली है, किन्तु यह अब तक संभाल कर रखी है। इसमें स्नातक होनेके दो साल बाद तक के विचार लिखे हुवे हैं। ये विचार पढकर मुझे आज भी बडा चैतन्य और जीवन मिलता है। (३) इसी तरह अच्छे अच्छे व्याख्यानों के 'नोट' करने तथा अच्छी पुस्तकों का सारांश लिखने की लेख पुस्तकें (नोट-बुकें, अब जुदा हो गयी थीं। एकवार स्फूर्तिदायक और उठानेवाले Inspiring वाक्यों के लिये तथा ऐसे ही अपने प्रिय भजनों के लिये भी एक कापी बनायी थी। इस सब लिखने का अभिप्राय यह है कि पाठक भी यदि ऐसी तीनों प्रकार को (या स्वभावतः जितने प्रकार की दिनचर्याओं की उन्हें आवश्यकता हो) दिनचर्यापुस्तकों को लिखा करेंगे तो उन्हें (१) आत्मनिरीक्षण करने में (२) अपने मनन को स्थिर तथा पुष्ट करने में और (३) बाहर से ज्ञान संग्रह करने में बडी सहायता मिलेगी।

११ इस समय के कुछ अनुभव

यहां मैं अपने इन मनन के दिनों के तीन अनुभव भी अवश्य लेखबद्ध करना चाहता हूं। ये तीनों पर-स्पर संबद्ध हैं, इन्हें एक भी कहा जा सकता है; किन्तु

मैं सुगमता के लिये इन्हें तीन करके ही लिखूंगा।

(१) ज्ञान को प्रकट करने में वाणी असमर्थ है- एक तो मैंने यह अनुभव किया कि मन के (बुद्धि के) संवेदन को, ज्ञान को (अनुभव को) वाणी (भाषा) प्रकट करने में कितनी असमर्थ है। निम्नलिखित प्रकार की बात इन मननके दिनों में मैंने कई बार देखी। मान लीजिये कि आज मुझे संध्या में कोई अनुभव हुआ और वह मैंने लिख लिया। कई अनुभव होकर हृदय से उतर भी जाया करते थे और कुछ देर बाद फिर होते थे। यह उपर्युक्त अनुभव भी ऐसे ही उतर गया और कुछ दिनों बाद फिर आया। इसे कागज पर लिख कर जब मैं यह देखने लगता था कि यह तो पहिले भी अनुभव हो चुका है देखूं इसे कहीं कापी में लिख तो नहीं चुका हूं, तो यह प्रायः उन्हीं शब्दों में मुझे लिखा मिलता था किन्तु इन पहिले लिखे शब्दों को पढ कर मैं इन बीच के दिनों में इस वास्तविक अनुभव को नहीं प्राप्त किया करता (कर सकता) था यह बात उस दुबारा अनुभव प्राप्ति के दिन मैं स्पष्ट देखता था। आशा है मैं अपना भाव स्पष्ट कर सका हूं।

(२) सब ज्ञान अपने अन्दर से मिलता है- ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, सब ज्ञान अपने अन्दर ही है, सब के हृदय में सब ज्ञान देते हुवे ज्ञानस्वरूप (परमात्मा) बस रहे हैं यह बात इन दिनों में मैंने पूरी तरह अनुभव की। 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' इस योगसूत्रके इस आशयको कि हृदयस्थ परमात्मा ही असल में प्रत्येक का गुरु है मैंने पूरी तरह प्रत्यक्ष कर लिया। मुझे जो कुछ मिला है वह सब अपने ही विचार से, मननसे अर्थात् अपने ही अन्दर से मिला है। अपनी जिज्ञासा दूसरों को बतला कर पूछने से मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुवा, उनकी बतलायी पुस्तकें पढने से भी मेरे प्रश्न हल नहीं हुवे; किन्तु अन्त में स्वयं सोचते सोचते ही कभी एकदम प्रश्न हल हो जाते गये। 'योगः स्वयमेव गुरुः' यह वाक्य मैंने सर्वथा सत्य देखा। इस वाक्य के अर्थ का उस समय मैंने जहां तक अनुभव किया था उसमें तो इस वाक्य के 'योग' शब्द का अर्थ 'मनन, विचार' इतना ही पर्य्याप्त रहा। मैंने देखा कि विचार करते चले जाओ, एक विचारही उससे अगले विचार तक हमें पहुंचाता जाता है, अगला मार्ग दिखलाता जाता है। बाहर जानेकी कहीं जरूरत नहीं।

बिना आत्मानुभव हुवे दूसरे के देने से ही ज्ञान कैसे मिल सकता है यह मैं अब समझ ही नहीं सकता। अनुभव प्राप्त होने पर मैं अपने अनुभव ज्ञान को बेशक उन्हीं शब्दों में प्रकट करूं जो कि पुस्तक में लिखे थे या कोई व्याख्याता बोलते थे किन्तु पुस्तक और व्याख्याता के उन्ही शब्दों से मुझे वह ज्ञान पहिले न होता था। यह क्यों ?। उदाहरणार्थ 'सदा सत्य बोलना चाहिये' यह बडा प्रसिद्ध वाक्य है, सैकडों पुस्तकों में लिखा है और सदा बोला जाता है, किन्तु इसी बातको इस सत्य को, इस ज्ञान को-मैंने कभी कभी ऐसा साक्षात् अनुभव किया है कि उसे मैं कुछ वर्णन नहीं कर सकता था, केवल यह देखता था और कह सकता था कि मुझे आज एक नया ज्ञान साक्षात् हुवा है कि सदा सत्य ही बोलना चाहिये। इस स्वात्मानुभव को कोई बाहर से कैसे करा सकता है, यह तो जब अन्दर से हृदय तैय्यार होगा तभी स्वयं होगा। किसीने कितना सुन्दर और सत्य वचन कहा है कि-

पानी पियावत क्या फिरे, घर घरघर सायर वारि।
तृषावंत जो होयगा पीवेगा झक मारि॥

जिसे जिज्ञासा लगी है- ज्ञानतृषा लगी है उसकी तृषाशान्ति के लिये अन्दर सब प्रबन्ध हुवा रखा है। बल्कि अन्दर ही है, बाहर उसकी प्यास कोई नहीं बुझा सकता। बाहर के लोग जो प्यास बुझाते दीखते हैं वे तो केवल ठीक समय आजाने के कारण हमारे अन्दर के ही पानी को दिखलाने के साधन हो जाते हैं। इसलिये इसका यह मतलब नहीं कि उपदेश नहीं देने चाहिये या उपदेश नहीं सुनने चाहिये। उपदेश देना इसलिये चाहिये कि किसी पात्र में (जिज्ञासु में) बीज अंकुरित हो जाय, किन्तु वह अन्दर का बीज अंकुरित होवेगा वहीं जहां कि उस बीज के लिये हृदय क्षेत्र तैय्यार किया

होगा। एवं उपदेश सुनने इसलिये चाहिये कि इन से पडने वाले संस्कारों की चोट से कभी हृदय कपाट खुल जांय, किन्तु हृदयकपाट खुलेंगे उसी क्षण जब कि कपाटों के सामने की अन्तिम बाधा वह निकाल चुका होगा। सब बात अंदर की तैय्यारी की है। तैय्यारी न होने से हमारे सैंकडा ९९उपदेश सुनने (और सुनाने) व्यर्थ जाते हैं। हृदय जब एक ज्ञान के लिये पूरा परिपक्व होजाता है तब तो किसी गंवार के एक शब्द से या पुस्तक के एक वाक्य से, जरा से इशारे से वह स्वयमेव फूट जाता है और अन्दर से ज्ञान-फल निकल आता है। यह एक बडा भारी सत्य है कि सब ज्ञान अन्दर ही है और यह हमारी अन्तःकरण की स्थिति के (जिज्ञासा के) अनुसार अन्दर से निकलता आता है। सब ज्ञान स्वात्मानुभव से मिलता है और यह स्वात्मानुभव अन्दर से ही होता है।

(३) अगला ज्ञान हृदय की अवस्थानुसार भिन्न भिन्न मिलता है- तीसरी बात यह देखी कि मेरी एक जिज्ञासा जिस ज्ञान से शान्त हुई दूसरे पुरुष की वही जिज्ञासा उस ज्ञान से (उस उत्तर से) नहीं मिटी। इस का कारण है मनुष्यों की हृदय की अवस्था का भिन्न भिन्न स्थान तक पहुंचा होना । केवल दो पुरुषों की हृदयावस्था भिन्न नहीं होती, किन्तु एक ही पुरुष की हृदयावस्था आगे आगे भिन्न होती जाती है बदलती जाती है। इसलिये मैंने यह भी खूब देखा कि आज मेरा एक प्रश्न एक उत्तर पाकर हल हो जाता है किन्तु उस उत्तर के होते हुवे भी वह प्रश्न कुछ समय बाद फिर उठता है और तब वह एक और उत्तर पाकर शान्त होता है। वास्तव में जिज्ञासा के प्रश्न तो थोडे से ही हैं, संसार क्या है, मैं क्या हूं, संसार में दुःख क्यों है इत्यादि। किन्तु येही प्रश्न जबतक कि वास्तव में पूर्णता नहीं मिलजाती तब तक नानारूपों में हमारे सामने आते जाते हैं। मनुष्य बीच बीच में बहुत वार समझता है कि मुझे कुछ संशय नहीं रहा, मेरे सब प्रश्न हल होगये; किन्तु उसे अगला और उच्च ज्ञान देनेके लिये किसी समय उस के सन्मुख इन्ही प्रश्नों में से कोई प्रश्न फिर एक भिन्नरूप में आखडा होता है। इन्हीं अनुभवों के कारण मुझ से जब कोई रहस्य का प्रश्न पूछता है तो मैं उसे यही कहता हूं कि स्वयं सोचो, खूब सोचो, घबराओ नहीं, तुम्हारे अपने सोचने से ही तुम्हें ठीक उत्तर मिलेगा '। अपने अनुभव से कुछ उत्तर देता भी हूं तो यह आशा कदापि नहीं करता कि मेरे उत्तर से अवश्य उसे शान्ति होगी। अवश्य शान्ति देने वाला पूरा ठीक उत्तर तो वही दे सकता है जो कि उसकी उस समय की हृदयावस्था को पूरी तरह जानता है और वह तो अन्त में हृदयान्तर्यामी परमात्मा ही है अर्थात् अपने सोचने से ही शान्ति मिलती है। इसी कारण से मुझे यह बतलाने से भी कुछ लाभ नहीं दीखता कि मेरी एक जिज्ञासा का मुझे क्या उत्तर मिला।

वेद में जो बहुत जगह केवल प्रश्न ही किये हैं और उनका कुछ उत्तर नहीं दिया गया है इसका कारण मुझे यही समझ में आता है कि सब की हृदयावस्था भिन्न होने से उस प्रश्न का सब के लिये एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। उसका एक उत्तर यही समझना चाहिये कि ' इस प्रश्न को हल करो,' स्वयं उत्तर जानो। वास्तव में जिज्ञासा ही मुख्य वस्तु है, जब जिज्ञासा पैदा हो गयी फिर ज्ञान तो अंदर तैय्यार ही है। इस लिये केवल प्रश्न ही करके जिज्ञासा उत्पन्न कर दी जाती है, सामने एक प्रश्न रख दिया जाता है कि इसे स्वयं हल करो इसी की आवश्यकता है।

(१२)

मनन का फल

इस मनन के अभ्यास द्वारा धीरे धीरे मेरे मन और शरीर का अब तक कितना भारी परिवर्तन-कायापलट-होगया था और होता जा रहा था तथा मेरा आत्मा कितना निर्मल निकलता आता था इसका कुछ दिग्दर्शन कराने का अब अवसर आगया है। सचमुच पहिले की अपेक्षा अब मैं बिलकुल बदल गया था, मानो मेरा काया कल्प होगया था

या मैं दूसरी योनि में पहुंच गया था। अपने परिवर्त्तित मन, शरीर और आत्मा का मैं नीचे क्रमशः कुछ वर्णन करता हूं।

(१) मेरा मन अब निराश की जगह अत्यधिक आशावादी होगया था। किसी भी घटना से अन्दर निराशा नहीं होती थी। सब काम ठीक हो जायगे ऐसी आशा बडी जल्दी हो जाती थी। इन दिनों मैं आशापूर्णता में अति करता था (यह मुझे आगे पता लगेगा)। संसार में जो कुछ होता है और होगा वह सब कल्याण के लिये ही है इस बात में मेरी दिनों दिनों श्रद्धा बढती जाती थी। संसार आनन्दमय की रचना दीखता था। सब लोगों में आत्मा दिखायी देता था अतएव सब अच्छे लगते थे। लोगों से मैं बेशक अब भी जुदा पहिले से भी अधिक जुदा— रहता था, पर यह लोगों से डर कर या घृणा करके नहीं किन्तु यह सोचता हुवा कि मैं इस तरह अपने को संसार में काम आने के योग्य बना रहा हूं, अपने आपको जुदा रखता था। सेवा का ध्यान मुझे रहता था। मन का चिडचिडापन न जाने कहां चला गया था। दूसरे से खिजना दूसरे से मन में क्रुद्ध होना स्वभाव के विपरीत हो गया था। मेरी शंकाशीलता जिज्ञासुता में बदल गयी और तीव्र अनुभव करने के स्वभावने मुझे भावुक (भावनाप्रधान प्रकृतिवाला) बना दिया। मनन करते करते मेरा मन इन दो तीन वर्षों में इतना पलट गया। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं उसे पूरी तरह तो वही समझ सकता है जिसने मेरे अंतःकरण में घुस कर इसकी ये दोनों अवस्थायें देखी हों, पर यहां तो समझाने के लिये मैं केवल लिख ही सकता हूं। अस्तु।

(२) मेरा शरीर भी परिवर्तित हुवा था। मन के परिवर्त्तन के साथ यह स्वभाविक था। कब्ज का कष्ट तो एकादश द्वादश में ही जाता रहा था, पर कब्ज जाती रही नहीं कहीं जा सकती थी। किन्तु चतुर्दश में पहुंच कर आसन और प्राणायाम से तथा अन्य प्राकृतिक साधनों से शौच का भी सवाल हल होगया था। महाविद्यालय के चारों सालों में पहिले साल एक दिन ज्वर हुवा था तथा फिर चौथे साल श्लेष्मज्वर (इन्फ्लुएन्जा) की बीमारी के दिनों में रोगिओं की सेवा करते हुवे भी (अपने शारीरिक और मानसिक नियमों के छूट जाने से) कुछ ज्वर होगया था, इसके अतिरिक्त इन चारों सालों में कोई रोग नहीं हुवा। शायद सिर का दर्द भी कभी नहीं हुवा। अब मैं 'डाक्टर जी का विद्यार्थी' न रह कर प्राकृतिक चिकित्सा का पक्षपाती होगया था और औषध जरा भी प्रयोग नहीं करता था। चार साल पहिले मैं इतनी दवा खानेवाला था कि एक समय मुझे भोजन से १५ मिनट पहिले सोडा बाई कार्ब, भोजन खाते खाते मध्य में एक दवा और भोजन के अन्त में एक खट्टी खट्टी दवा पिलाई जाती थी, पर अब औषध से यहां तक घृणा हो गयी थी कि मलेरिया के दिनों में जो सब को कुनीन की गोलियां खिलायी जातीं थी उनके खाने में भी मुझे ऐतराज था। द्वादश या त्रयोदश में एकवार डाक्तर साहिबने यह भी कह डाला कि यदि तुम कुनीन नहीं खाओगे तो जरूर बुखार आजायगा, तो भी मैंने नहीं खायी। बुखार आना कोई जरूरी तो था ही नहीं, नहीं आया। प्राकृतचिकित्सामें एक वार मैंने ६ महीने तक जलचिकित्सा की और उनके सिद्धान्तानुसार घी नमक मसाला से सर्वथा रहित सादा भोजन खाता रहा। 'उपवास चिकित्सा' पुस्तक पढकर एकवार ७ दिन का उपवास भी किया। दो या चार दिन का उपवास तो कई वार किया था। इन दोनों चिकित्साओं से भी कुछ समय के लिये काफी बडा लाभ हुवा। परन्तु पूरा और स्थिर लाभ तो आसनों और प्राणायाम से हुवा जिसका कि प्रसंग अगले प्रकरण में आवेगा। इस प्रकार मेरे पुराने सब शारीरिक कष्ट अब हट गये थे। अब केवल एक तो वीर्यरक्षा की चिन्ता रहती थी, क्योंकि स्वप्नदोष होते थे। महाविद्यालय में आकर कामविचार क्या होता है इस का एक अनुभव हुवा था और इन चार सालों में तीन या चार वार एक स्वप्न आकर [बालों का सजाना

संबन्धी विचार का ही अब तक मुझ पर कामजनक प्रभाव होता था। चारों वार ऐसा ही स्वप्न आया।] भी स्राव हुवा, नहीं तो अब भी सदा विना किसी स्वप्नके ही (कभी उस समय पता लग जाता था और कभी कभी प्रातःजाग करही पता लगता था) स्वप्नदोष होता था। इस वीर्यरक्षाके साथ तथा उस प्राण की त्रुटि को सुधारने के साथ अंदर की लडाई के बेशक अब भी लगी रही किन्तु शरीर में किसी रोग (जिसे संसार 'रोग' कहता है) का कष्ट नहीं हुवा और ये दो बातें भी विना औषध के मनन से, विचार से, इच्छाशक्ति से ठीक हो जायंगी यह आशा समायी रहती थी अतः सदा उत्साह ही रहता था।

(३) मेरे आत्मा पर मननका जो प्रभाव हुवा उसे वर्णन करना असंभव है। इस मनन से कभी अन्दर इतना सुख होता था कि वास्तव में मैं उसे सह नहीं सकता था। एक दो बार मैं आनन्द में रुदनोन्मुख भी हुवा हूं कि 'हे भगवन् तूने मुझे इतना आनन्द क्यों दिया है, यह आनन्द औरोंको भी दे दे...'बस इस विषय में इतना कहना ही पर्य्याप्त है।

इस प्रकार जिज्ञासा द्वारा मैंने तो 'मनन' नामक ही एक अनमोल वस्तु प्राप्त की है जिसने मेरा उद्धार किया है। इसी के कारण मैं समझता हूं— अभिमान रखता हूं कि मेरे पास कुछ चीज है। इस लिये और भी जो कोई अपना स्वभाव तक बदलना चाहता है उसे मेरा यही कहना है कि 'खूब मनन करो, विचारो।' इस योग से ही स्वभाव बदल सकता है। मनुष्य में जैसी वृत्तियां उठती हैं वह वैसा ही कर्म करता है, उससे वैसा ही संस्कार पडता है और वह फिर और अधिक वैसी ही वृत्ति को पैदा करता है इस प्रकार इस चक्र में जो जिधर बह रहा है वह उधर ही दूर दूर जाता जा रहा है और उस स्वभाव में और पक्का होता जाता है। स्वभाव को दूसरी तरफ प्रवृत्त कराने के लिये वृत्तिधारा को दूसरी तरफ बहाना आवश्यक है और इसके लिये एक तरफ चित्तवृत्ति का निरोध (अर्थात् योग) करके ही दूसरी तरफ धारा बहायी जा सकती है। इसलिये मैं कहता हूं कि योग ही स्वभाव बदलने का एकमात्र उपाय है। इसे ही मैं 'मनन' कहता हूं-मनन में एक तरफ से रोकना और दूसरी तरफ बहाना ये दोनों कार्य होते हैं। इसलिये मैंने यह योगजिज्ञासा की कहानी सुनाते हुवे गुरुकुल के अपने ब्रह्मचारिओंको कहा था कि यदि मैं इतनी सेवा करने में सफल हो सकूं कि तुम में से १० ब्रह्मचारिओं को ही मननशील बना सकूं,तो मैं समझूंगा कि मैंने १० हजार छात्रों को पढाने जितना काम किया है और मुझे इतने कार्य का ही पुण्य होगा। मनन इतनीही महत्व की वस्तु है। मननशील बनाने का अर्थ है 'मनुष्य बनाना; क्यों कि मननमें ही मनुष्य का मनुष्यत्व है। इसलिये मननशील बनानेका अर्थ है 'मनुष्य' बनाना॥

चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन।

शारीरिक बलके साथ सद्गुणोंका विकास।

(३)

बलं बलवतामस्मि। भ. गीता. ७।११

आत्मनो बलम्। छां. उ. ७।२६।१

बलंसत्यादोगीयः। बृ. उ. ५।४।१४

जैसा कि पछले लेख में बतलाया है, बलवान शरीरका प्रबल मनोवृत्तियों के साथ निकट सम्बन्ध है, इतना ही नहीं कई उत्तमोत्तम गुणों का और बलवान शरीर का भी निकट सम्बन्ध है।

१ पौरुष.

पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखनेवाला सामान्य गुण कौन है? इस गुण को हम पुरुषत्व कहेंगे। मान के लिये, सत्य के लिये वा धर्म के लिये कठिन कष्ट सहने पडे, या प्राणों पर भी बीती तब भी इन बातों की पर्वाह न करना, इच्छित वस्तु के प्राप्त करने में आपत्तियों की पर्वाह न कर प्रयत्न में लगे रहना, अपने स्वामित्व, श्रेष्ठत्व, अथवा स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिये प्राण भी त्यागने को तत्पर रहना, इत्यादि गुण पुरुषत्व में आते हैं। यह पौरुष मनुष्यमें स्वाभाविक है इसलिये कहा है—

पौरुषं नृषु ॥ भ. गीता. ७।८

मनुष्य में पौरुष या पुरुषत्व है। पुरुषत्व है इसी लिये इसको पुरुष कहते हैं। पुरुषत्व से हीन मनुष्य पुरुष कहने योग्य नहीं है।

ऊपर दिये हुए गुण शरीर में तभी रह सकते हैं जब उसमें कष्ट सहने की ताकत हो और कष्ट सहने की ताकत तभी आसकती है जब स्वास्थ्य अच्छा हो और शरीर बलवान हो। इससे यह प्रतीत होता है कि पुरुषत्व सुदृढ शरीर का अनुगामी है। जो स्नायु कसे हुए न होने के कारण कष्ट नहीं सह सकते वे अपकार का प्रतिकार करने का मौका आनेपर स्फुरण कैसे पावेंगे? इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो रजपूत, मराठे, पुरविये या पंजाबियोंसे बनियों की तुलना करो। धर्म का अभिमान, कुल का अभिमान, मानी पन तथा श्रेष्ठ मनोवृत्ति पहले वर्ग के लोगों में अधिक दिखाई देती है। साधारणतः हम कह सकते हैं कि शौर्य, साहस, स्वाभिमान आदि गुणों के लिये जो लोग प्रसिद्ध हैं वे ही औरों की अपेक्षा शरीर-बल में श्रेष्ठ हैं। तीव्र जिज्ञासा से प्रेरणा पाकर उत्तर ध्रुव के हिममय प्रदेश में, या जहां परदेशी मनुष्य को कष्ट देकर मार डालते हैं ऐसे तिब्बतादि देशों में जाने का साहस करना, नाइल नदीका उद्गमस्थान ढूंढ निकालने के हेतु आफ्रिका के पहाडों में यात्रा करना, मुसलमानके भेषमें मक्का देख आना आदि साहस के काम करनेवाले लोग भारत की अपेक्षा इस समय यूरप में अधिक मिलते हैं।

२ ऋषियोंका साहस।

परंतु प्राचीन समय में देखिये ऋषिलोग हिमालय की चोटियों की खोजमें कैसे साहस करते थे तथा दक्षिण भारत में सबसे पूर्व आश्रम स्थापन करनेवाला अगस्त्य ऋषिही था। तिब्बत की उत्तर सरहद तक ऋषियों के आश्रम थे और भारत वर्ष में कोई ऐसा सुंदर स्थान खाली नहीं है कि जिसके साथ ऋषियोंका संबंध न हुआ हो। भयानक गुहाएं, उच्चतम दुर्गम गिरिशिखर, महान अरण्य, आदि कठिन स्थानों में अपने आश्रम स्थापन करके वहां से दिव्य ज्ञान का प्रवाह चलाना ऋषियों के दिव्य पुरुषार्थ से ही होता था। इसका एक मात्र कारण यह था कि वे अपना स्वास्थ्य योगादि साधनों से सिद्ध करके परम पुरुषार्थी बनते थे।

जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, जिन्हे यह इच्छा ही नहीं होती कि कोई भी काम करना चाहिये, उन मनुष्यों से ऐसे साहस के तथा पुरुषत्व के काम नहीं बन सकते । अफजुलखां से मिलते समय, शाइस्ता खाँ के महल में प्रवेश करते समय, शिवाजी महाराजने जो साहस प्रकट किया उसे निर्बल मनुष्य कदापि न बता सकता । यदि इसमें किसी को शक हो, यदि कोई समझता हो कि ऐसा साहस एक निर्बल मनुष्य भी कर सकता है, तो उसे चाहिये कि वह उन लोगों की तुलना जिन लोगोंने स्टन्त विद्या में अपने स्वास्थ्य की आहुति दे दी हो अन्यान्य लोगों से करें। तब ऊपर के कथन की प्रतीति होगी। इसी लिये कहा है कि—

३ बल ।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयः ।

छां. उ. ७ । ८ । १

विज्ञानसे बल बढकर है । यह बात अनुभव की भी है, । जिन राष्ट्रों की दिन प्रति दिन उन्नति हो रही है उनसे उन राष्ट्रों की तुलना जिनकी अवनति हो रही है करें, तो यही बात सिद्ध होगी । यूरपकी जातियां आज सारे संसार में फैली हुई हैं। उनका प्रभाव समस्त जगत् पर है। उनके उत्कर्ष का एक बलवान कारण है उनका सुदृढ शरीर और उसका अनुगामी पुरुषत्व । हम लोगों और उनमें आज महत् अंतर दिखता है । इसका कारण भी ऊपर की बात में मिलेगा । उनका तो यह हाल है कि अपने उद्योग की वृद्धि के लिये वे आज अमेरिका, कल आस्ट्रेलिया, परसों चीन इस प्रकार नये नये देश पर कब्जा कर रहे हैं; और हमारा हाल यह है कि हमारा देश बहुत बडा है इससे हम लोग सैकडों वर्षों से मुसलमान, फ्रेंच, पोर्टुगीज, अंग्रेज आदि लोगों को बुला रहे हैं ; इंग्लैण्ड के प्युरिटन सम्प्रदायी स्वतन्त्रता के लिये चार, पांच हजार मील दूर अमेरिका में चले गये । अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये कुटुम्बियों के साथ परदेश को जानेवाले या हथेलीपर प्राण ले लड़ाई लडने वाले बोअर लोगों में और अकाल के कारण प्राण निकलने लगने पर भी अपने घरमें ही प्राणत्याग करनेवाले हम हिन्दुओं में भारी अन्तर है । क्यों कि हमारे शरीर में कष्ट सहने की शक्ति ही नहीं है । इसी लिये श्री० स्वामिजी महाराजने कहा था कि तप का जीवन व्यतीत करना चाहिये । तपसे ही कष्ट सहनेकी शक्ति आ सकती है । उपनिषद् में कहा है-

४ तपका महत्व ।

तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीः ।

महानारा० उप० २२।१

बलेन तपः । महाना० उ० २३ । १

"तपसे शत्रुओंका पराजय किया जाता है। बल से तप हो सकता है ।" तात्पर्य बल से तप और तपसे शत्रुनाश होकर विजय और यश प्राप्त होता है। अर्थात् जो बलहीन है वह किसी प्रकार भी उन्नत नहीं हो सकता है।

स्वास्थ्य से जिस दूसरे गुण का पोषण होता है वह है धीरज। जिनकी मनोवृत्तियां उथली नहीं रहतीं, वा चंचल नहीं पर गहरी रहती हैं उन्हीं में यह गुण रहता है । वायु की झकोर से पत्तियां छोटी छोटी डगालें या छोटे छोटे पौधे हिल जाते हैं परन्तु बडे वृक्ष की पींड नहीं हिलती । इसी प्रकार क्षुद्र कारण से निर्बल मनुष्य की मनोवृत्ति क्षुब्ध होती है सबल की नहीं, जिनकी मनोवृत्तियां यथार्थ में गहरी हैं और प्रबल हैं उनकी वृत्तियां क्षुद्र कारण से क्षुब्ध नहीं होतीं । जिनको जरा जरासी बात में क्रोध आ जाता है उनका क्रोध गहरा नहीं रहता, वह तुरन्त ही निकल जाता है । इसके विपरीत जिन लोगों को विशेष कारण से ही क्रोध आता है उनका क्रोध जल्द शान्त नहीं होता। पहले बतलाया ही गया है कि मनोवृत्ति प्रबल होने के लिये बलवान शरीर की आवश्यकता होती है । तब यह सिद्ध ही है कि जिसका शरीर बलवान तथा सुदृढ है उसी में साधारण बातों से फिर वे चाहे प्रतिकूल हों वा अनुकूल, मनोवृत्ति में फरक न होना, संकट आने पर विना

घबराहट के प्रयत्न करते रहना, फल प्राप्त होने के लिये अति उत्सुक न होकर धीरज से तथा शांतता से कोशिश करना आदि बातें पाई जावेंगीं और जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, जिनका शरीर निर्बल है उनमें इसके विपरीत गुण दिखेंगे अर्थात् किसी बात का स्वीकार एकदम कर लेना, एकबार स्वीकृत की हुई बात को तुरंत ही छोड देना, जरासी बात में क्रोधित होना या हँस देना, क्षुद्र लाभ से या क्षुद्र बात में सफलता प्राप्त होने से फूल जाना, थोडे से नुकसान से या जरासी असफलता से धीरज छूट जाना, किसी बात की धुन सवार होनेपर उसके पीछे अधिक आवश्यक बातों को भूल जाना आदि। अब हम लोगों की ओर देखिए—

५ अंध अनुकरण।

अंग्रेजों का राज हो कर पूरे सौ वर्ष भी न हुए इतने में हम लोगों ने उनका कितना अनुकरण किया है? यही अनुकरण विचार से किया जाता तो कुछ कहना ही न पडता; किन्तु रंज इसी लिये होता है कि हमारा यह अंध अनुकरण हम लोगों की मानसिक दुर्बलता को जाहिर करता है। किसी बात को बडे उत्साह से शुरू करना और थोडे ही समय पश्चात् उसमें शिथिल हो जाना; क्रिकेट के खेल के समय अपने पक्ष के खिलाडी ने एकाद गेंद ऊँची उडाई तो उसके लिये ऐसी जोर से तालियाँ बजाना कि कान के पर्दे फट जावें और विपक्ष के खिलाडी ने जरासी गलती की तो उसके लिये उसकी हँसी उडाना, सार्वजनिक काम में प्रारंभ में बडा उत्साह दिखलाना किन्तु थोडे ही समय में उदासीन होना आदि हमारे कार्यों से हम लोगों के मन की दुर्बलता सिद्ध होती है। अन्न, कपडा व्यायाम उद्योग आदि नित्यकी बातों में भी जो नियमितता तथा स्थिरता आवश्यक है उसका सोवां अंश भी हम लोगों में नहीं है। हम लोगों में देखें तो कोई कोई उपोषण में इतनी अधिकता करते हैं कि तबियत बिगड जाती है और कोई कोई आधसेर घी एकही दिन में खाकर उसे हजम करने के लिये गुडसी को गोदमें ले बैठते हैं। दूसरी दूसरी बातों में भी यही बात नजर आती है। विद्यार्थियों में कोई केवल पढाई में मशगुल हैं; कोई केवल खेल में मस्त हैं; अन्य लोग भी कोई केवल रुपया कमाने में भिडे हैं और कोई केवल चैन उडाने में लगे हैं; कोई संसार के कीडे ही हो गये हैं और कोई संसार को विषतुल्य मान कर बदन में भभूत लगाकर साधू बन गये हैं! यहां गीताका उपदेश देखिये—

६ नियम पालन।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
भ. गीता.

"अधिक खाने वाले, बिलकुल न खानेवाले, अति सोनेवाले या बिलकुल जागनेवाले उद्योगमें सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते।" यह हमारे धर्मकी शिक्षा है, परंतु उसके विरुद्ध आचरण ही सब कर रहे हैं।

इस प्रकार हम लोगों में एक छोर तक दौडने की बुरी आदत रोम रोम में घुस गई है। हम लोगों में व्यायाम, खान पान, चैन आदि बातें उचित प्रमाण में नहीं हैं, यूरपीयनों में इन बातों को उचित प्रमाण में रखने का बडा गुण है। पुरखाओंसे चली आई प्रथा इसका एक कारण है किन्तु उथली तथा दुर्बल मनोवृत्तियां (जो दुर्बल शरीर से उत्पन्न होने वाले दोष हैं) इसका दूसरा और बलवान कारण है। स्थिरता तथा नियमितता बलवान तथा सुदृढ शरीर के साथ चलाने वाले गुण हैं। यदि इसमें आशंका हो तो नीरोग तथा बलवान मनुष्य की स्थिति पर विचार किया जाय। उससे विदित होगा कि जरासी बात पर से चिड् जाना, क्रोधित हो जाना, या ऐसे खाना जैसे आठ दिनका भूखा हो, या किसी भी बात में एकाएक एक छोर से दूसरे छोर को जाना आदि बातें उस मनुष्य से कदापि न होंगीं। मौका बडने पर शक्तिवान मनुष्य भी रात रात भर जागता है और इसके बाद चौबीस घण्टे सोता है, या किसी दिन उपासे रहकर भी काम करता रहता है और कोई होड लगावे तो बहुतसी मिठाई खा जाता है; किन्तु इन बातों से नियमितता के ऊपर के

कथन को झूट कहना ठीक न होगा। क्यों कि नीरोग और बलवान मनुष्य ये बातें मौका आनेपर ही करता है और वह उन्हे सह सकता है। इस प्रकार बर्ताव करने का उसका स्वभाव नहीं है। यदि यह देखा जाय कि कमजोर मनुष्य नियमों का उलंघन कितना करता है और बलवान कितना करता है, तो विदित होगा कि कमजोर मनुष्य अधिक उलंघन करता है। जो लोग बिलकुलही कम जोर होते हैं उनमें अनियमितता विशेष रहती है। नीरोग बालकों की अपेक्षा रोगी बालक अधिक चिड चिडा उतावला तथा अधीर रहता है। इससे भी ऊपर लिखी बात समझमें आजावेगी।

हिंदुओं को कोई चिढावे तो उन्हे क्रोध आता है पर वह तुरन्त ही शान्त हो जाता है। देशी कपडा, गोरक्षा, धर्म- जागृति, इतिहास संशोधन आदि बडे बडे और सदा के महत्व के कार्य हों, क्रिकेट आदि खेल हों, जलसा, वार्षिकोत्सव आदि कार्य हों, दुर्बल लोगों का चित्त यदि प्रयत्न से उस ओर खींचा हो तो उनकी मनोवृत्तियां उमड उठती हैं, परन्तु जितने जल्द ऐसी संस्थाओं की वृद्धि होती है उतने ही जल्द वे नष्ट हो जाती हैं। यह चंचलता मानसिक दुर्बलता से होती है और यह मानसिक दुर्बलता शरीर की दुर्बलता का फल है। वीर लोगों का हाल इसके विपरीत है। वे धीमे और मनकी बात को जाहिर न करने वाले होते हैं। इस की जड है दृढ निश्चय, मन की स्थिरता, आदि अनमोल गुण। इसी लिये उनमें यदि कोई हलचल शुरू हो जावे तो वह जल्द शांत नहीं होती। वे कोई भी नई बात करने को जल्द तैयार नहीं होते। पर एकबार आरंभ कर देनेपर उसे प्राण जाने तक नहीं छोडते।

संस्थाओंकी आयु।

यही कारण है कि यूरप में छोटे से छोटे क्लबसे लगाकर पार्लियामेंट तक जो छोटी बडी संस्थाएँ हैं वे सब बडी धूमधाम से लगातार कई वर्षों तक चली हैं। किन्तु अपने देशमें सौ दोसौ वर्षोंकी बात तो बहुत दूर है, पचास वर्ष तक अच्छी तरह से चली हुई संस्थाएं भी बहुत ही कम मिलेंगीं। ऐसी संस्थाएँ यदि हों भी तो उनके विषयमें यही दिखेगा कि उनके आरंभ में जो उत्साह तथा उन्नति दिखाई देती थी वह २०।२५ वर्ष तक ही रह सकी। जिस प्रकार हमारा शरीर दुर्बल है और जिस प्रकार हमारी जिन्दगी थोडी है, उसी प्रकार हमारी संस्थाएं कमजोर और अल्पायु होती हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि आयुष्य स्वाथ्यपर निर्भर है। इसी लिये जो लोग चिरकाल तक जीते हैं और जिनका स्वास्थ्य उत्तम से उत्तम रहता है उनकी चलाई हुई संस्थाएं भी उन्नति - शील तथा चिरंजीवी होंगीं। किसी मनुष्यने एक अखबार चलाया या एक कम्पनी शुरू की और वह ४०।४५ वर्ष की उमर में ही इस संसार से चल बसा तो उसे अपने चलाये हुए उद्योग की उन्नति करने के लिये समय कितना मिलेगा? परंतु जो लोग ८०।९०वर्ष तक जीवित रहते हैं। उनके प्रारम्भ के २५ वर्ष लडकपन और जवानी में बीत जाते हैं इससे उन वर्षों को छोड भी दें तो भी उन्हे उद्योग करने में जो समय मिलता है वह हम लोगों से दुगना तो अवश्य ही रहता है। ऐसी हालत में उनकी संस्थाओंका चिरंजीव होना योग्यही है। इस प्रकार मनुष्य की आयुसे और उसकी चलाई संस्थाओं की आयुसे कुछ सम्बन्ध अवश्य ही जान पडता है।

८ आनंदी स्वभाव।

स्वास्थ्य पर निर्भर रहनेवाले दूसरे गुण हैं खुष मिजाज और क्षुद्र मत्सर का अभाव। इसके विपरीत गुण हैं बिगडा - दिल, मत्सर, और क्षुद्र तथा अमुख्य बातों में मन लगाना। ध्यान पूर्वक देखने से विदित होगा ये विपरीत गुण उन्ही लोगों में अधिक मात्रामें पाये जाते हैं जिनका शरीर निर्बल है। यदि शरीर नीरोग तथा बलवान न होगा तो मन आनन्दित और उदार रहने की सम्भावना नहीं है। जिसके बदन में ताकत कम है उसमें निःस्पृहता, निडरपन, धीरज, साहस आदि गुण कमही रहेंगे क्यों कि इस कमजोर मनुष्य को बलवान से अपनी रक्षा करने के लिये झूट, चापलूसी, आदि उपायोंसे

काम लेना आवश्यक हो जाता है। इस बात के लिये स्त्रियों का उदाहरण बिलकुल ठीक होगा। स्त्रियां स्वभावही से पुरुषों की अपेक्षा निर्बल होती हैं। इससे उनमें पुरुषों के बराबर ऋजुता, मत्सर का अभाव आदि बातें होना सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष पुरुषों में भी जो निर्बल हैं उनमें सबल की अपेक्षा चापलूसी, मत्सर, कुटिलता आदि अवगुण अधिक रहते हैं; तब स्त्रियों की बात ही क्या ? संस्थाएँ भी न चलने का कारण उनके संचालकों के मत्सर, कुटिलता, उत्साहका अभाव आदि मानसिक दोष हैं और इन दोषों का होना संचालकों के निर्बल शरीर का परिणाम है। नीरोग, तथा हट्टे-कट्टे मनुष्य साधारणतः आनन्दी वृत्तिके, मत्सर-रहित तथा उत्साही रहते हैं। उनके मन में क्षुद्र विचार शायद ही कभी आते हैं। जरासी बात में वे बिगडते नहीं, आपत्ति आने पर वे किंकर्तव्यमूढभी नहीं होते। अशक्त मनुष्य की स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध होती है। बहुधा वह खुश-मिजाज नहीं रहता। उसका मन सर्वदा दूसरों के विषयमें शंकित रहता है। उसके पहिचान का कोई व्यक्ति यदि सहजही में उससे न बोला तो उसे लगता है कि 'इसके मनमें मेरे विषयमें कुछ बुरा भाव उत्पन्न हुआ तभी तो वह मुझसे नहीं बोला'। उसकी स्त्री से यदि कोई जरा अधिक दिल खोलकर बोला तो उसके दिलमें अनेकानेक तरंग उठे ही। उसे लोगों के प्रति मत्सर भी मालूम होता है।

९ धंधे की उन्नति।

मालूम होता है कि धन्धे की उन्नति और स्वास्थ्य का भी कुछ सम्बन्ध अवश्य है। जिस धन्धे में हिम्मत तथा पराक्रम की आवश्यकता होती है उस स्वतन्त्र व्यवसायमें, जैसे बकालत, डाक्टरी, व्यापार, ठेकेदारी आदि, उन्ही लोगों की उन्नति होती है जो शरीर से बलवान हैं। इन व्यवसायों में उन्नति करनेवाले लोगों में ऐसे शायद ही मिलेंगे जिनका मस्तिष्क बलवान नहीं है या जिनके मज्जातन्तु बिगड गये हैं। कमरे में बैठकर किताबों के पन्ने टरकाना और छपे हुए खानों को पूरा करना इस काम को छोडकर दूसरे किसी भी काम में विना शरीर बल के मनुष्य की बढती नहीं हो सकती। यदि हम हर एक व्यवसाय का प्रसिद्ध व्यक्ति देखें तो इस कथन की सत्यता प्रतीत होगी। सब प्रसिद्ध व्यापारी, वकील, डाक्टर, ठेकेदार गवई आदि लोगों को देखें तो विदित होगा कि वे सामान्य मनुष्य से अधिक तन्दुरुस्त हैं। शरीर में बल न होने से जिनमें उत्साह, धीरज, साहस आदि गुण नहीं हैं, या कम हैं; ऐसे लोगों को देखना हो तो आजकलके बी. ए. तथा एल. एल बी. को देखिये। यदि व्यवसाय में असफल हुए लोगों को देखें तबभी उनमें अधिकांश लोग निर्बल ही मिलेंगे। यदि इस दृष्टि से न देखें कि बलवान शरीर से किन किन गुणों का पोषण होता है और केवल साधारण दृष्टिसे इस विषय को सोचें तो भी विदित होगा कि बलवान शरीर और कर्तृत्व-शक्ति में कुछ सम्बन्ध अवश्य है। आजतक संसार में जो बडे कर्तृत्व-वान लोग हुए हैं उनकी शरीर-स्थिति का हाल इसी बात को बतलावेगा। प्राचीन काल के उदाहरणों को छोड दें और केवल वर्तमान समय के कर्मवीरों के उदाहरण लें तब भी यही सिद्ध होगा। श्रीदादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, श्री. विष्णू शास्त्री चिपलूनकर, सर फिरोज शाह मेहता और लोकमान्य तिलक, श्री. स्वा० श्रद्धानंदजी, ला. लाजपतराय आदि लोग देशभक्त और कर्मवीरों के नाते प्रसिद्ध हैं। इन सबका स्वास्थ्य साधारण मनुष्यसे श्रेष्ठ दर्जे का था।

१० विजय और स्वास्थ्य।

तात्पर्य संसार में विजय प्राप्त करने का प्रथम मुख्य साधन श्रेष्ठ दर्जे का स्वास्थ्य है। यह नहीं कि युद्ध में ही विजय होना या हार जाना शरीर के बलपर निर्भर है, किन्तु भिन्न भिन्न देशोंके व्यापारी और कारखाने वालों के झगडों में भी हार जीत इसी बात पर निर्भर है।

शरीर का स्वास्थ्य और कई अच्छे अच्छे गुणों का सम्बन्ध ऊपर बताया गया है। वह केवल अनुमान-गम्य ही नहीं किन्तु उसे प्रत्यक्ष अनुभव का भी आधार है। मर्दानी खेलों का जिन्हे विशेष शौक है उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है; उन्ही में बुद्धि, चतुराई, लोकप्रियता आदि गुणों की मात्रा बढी चढी रहती है। कडे परिश्रम के खेलों का शौक और ऊपर बतलाये हुए गुणों का ऐसा निकट सम्बन्ध है कि यदि वे नीरोग बालक जिन्हे ऐसे खेलों का शौक नहीं है और ऐसे बालक जिन्हे खेलों का शौक है और जो नीरोग हैं, इन दोनों की तुलना करें तो विदित होगा कि ऊपर लिखे गुण दूसरे प्रकार के बालकों में अधिक प्रमाण में नजर आवेंगे।

यदि हम चाहते हैं कि लोगों पर हमारा प्रभाव हो, और लोग हमारी बात मानें, तो हमारा शरीर भव्य होना चाहिये। हर एक मनुष्य अपने निजी अनुभव से जान सकता है कि दुबले पतले शरीरवाले मनुष्य के प्रति एकाएक आदर उत्पन्न नहीं होता। कभी कभी साहब हिन्दु का अपमान करते हैं इसका कारण कुछ अंशमें यह भी है कि हमारा शरीर दुबला पतला है और हमारी आकृति छोटी है। ऐसा कभी नहीं सुना जाता कि पठान या राजपूतों को साहबने ठोकर मार दी। यदि कोई कहे कि पठान लोग हिन्दुस्थान में बहुत थोडे हैं और जो हैं वे बहुधा साहबकी नौकरी ही नहीं करते। इसी लिये उन्हे ठोकर मारने के उदाहरण कम मिलते हैं। किन्तु यह कथन यथार्थ नहीं है। मानो कि ये लोग थोडे हैं। परन्तु जिस प्रकार हम हजारों बार सुनते हैं कि सोल्जर लोग गांव में घुसे और गांव वालों से उन्होंने मारपीट की उसी प्रकार रोहिलों या पठानों की टिल्ल उडाने का एक भी उदाहरण हमें क्यों नहीं सुनाई देता ? वाचक अपनेही मनमें विचार करें कि ठिनगा चीनी या ब्रह्मी मनुष्य मिले तो उसके प्रति कितना आदर उत्पन्न होता है और ऊंचा पूरा,हृष्ट पुष्ट मनुष्य मिले तो उसके प्रति कैसा भाव उठता है। भव्य शरीर के ताकतवर मनुष्य का अपमान करने की, वा एकाएक उसकी हँसी उडाने की किसी की हिम्मत नहीं होती। रोजीना व्यवहार में इसके कई उदाहरण मिल सकते हैं।

हम लोगों को याद रखना चाहिये कि राजकीय हक केवल मुह की बकबक से, अखबारों में लम्बे लम्बे लेख लिखने से, लम्बी और नटसदृश अभिनवयुक्त वक्तृता से नहीं मिलते। संसार का नियम है कि यदि किसी वस्तुपर एक मनुष्य का कब्जा है और दूसरा उसे लेना चाहता है। यदि दूसरे मनुष्य में उस वस्तु को पाने के लिये लडने भिडने की ताकत न होगी तो उसे वस्तु कभी मिल नहीं सकती। हमें चाहिये कि हम सरकार को सिद्ध करके बतला दें कि जो हक हम मांग रहे हैं उनके मांगने तथा उनकी रक्षा के लिये हम योग्य हैं। जिन लोगों की यह सामर्थ्य नहीं कि दिये हुए हकों का अच्छा उपयोग करें उन्हे हक देनेसे कुछ भी लाभ नहीं है। यही अंग्रेज सरकार तथा अन्यान्य राष्ट्रों का सिद्धान्त है। इसी लिये हम लोगों को चाहिये कि हम लोग अपने को सुदृढ बना लें और पुरुषार्थ प्राप्त करें जिससे कि हम हक मांगने के लिये योग्य हो जांय।

" राज्य प्राप्त कर उसका रक्षण करने में जिन गुणों की आवश्यकता है वे मर्दोंके गुण हैं। जो लोग अपना मत बन्दूक या संगीनों के बल भी मौका पडने पर सिद्धकर सकते हैं वे ही यथार्थ में राजकीय हक पाने के योग्य हैं। "

११ योग साधनसे व्रजदेह।

तात्पर्य शारीरिक बलके साथ राष्ट्रीय सद्गुणों का निवास होता है। इसलिये वैयक्तिक और राष्ट्रीय उन्नति चाहनेवाले लोग अपने बलकी उन्नति करने का यत्न अवश्य करें। योग दर्शन पाठक खोलकर देखेंगे तो उनको ये सूत्र दिखाई देंगे—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥
रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वादीनि
कायसंपत् ॥ ३६ ॥

योगदर्शन वि. पा.

औपनिषदिक प्रमाणों से उपनिषदोंका अर्थ ।
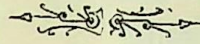
थोडे समय के पूर्व हमने वैदिक प्रमाणों से वेदका अर्थ किया था अब उसी रीति से हम उपनिषदोंका अवलोकन करते हैं ॥

उपनिषद् में उद्गीथ ओ३म् को आठवां रस कहा है । वह उद्गीथ सातवें रस सामका भी रस है । वह साम छठे रस ऋक् का भी रस है। अब यहां सातवें तथा छठे रस साम तथा ऋक् की व्याख्या स्वयं उपनिषदों से ही की जाती है ।

" औपनिषदिक ऋक् साम समीक्षा । "

१ इयमेवर्गग्निः साम'''इयमेवसाऽग्निरमस्तत्साम॥ छान्दो० १।६।१॥

अर्थात् यह पृथिवी ही ऋक् है और यह अग्नि ही साम है ... पुनः इस अग्नि साम में भी जो सा है वह (इसके पार्थिव अंश) पृथिवी का नाम है और जो (पिछला) अम है वह शुद्ध अग्नि का नाम है सो वह पृथिवी + अग्नि ही साम है ॥

२ अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम''' अन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम॥ छान्दो० १।६।२॥

अर्थात् अन्तरिक्ष ही ऋक् है और वायु ही साम है... पुनः इस साम में भी सा नाम अन्तरिक्ष का और अमनाम वायु का है अतः अन्तरिक्ष+ वायु ही साम है ॥

३ द्यौरेवर्गादित्यः साम ... द्यौरेवसादित्योऽमस्तत्साम ॥ छन्दो० १।६।३॥

अर्थात् द्यौ ही ऋक् है और आदित्य ही साम है पुनः इस साम में भी द्यौ का वाचक सा और आदित्य का वाचक अम होने से द्यौः+आदित्य ही साम है ॥

४ नक्षत्राण्येवर्क् चन्द्रमाः साम...नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ॥ छा० १ । ६ । ४ ॥

अर्थात् नक्षत्र ही ऋक् और चन्द्रमा ही साम है... पुनः इस साममें भी सा का अर्थ नक्षत्र और अम का अर्थ चन्द्रमा होने से नक्षत्र + चन्द्रमा ही, साम है॥

५ अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम...। अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलंपरः कृष्णं तदमस्तत्साम् ॥ छान्दो० १।६। ५, ६।।

और जो यह आदित्य नाम सूर्य का सफेद चमक, श्वेत ज्योति है वही ऋक् है और जो उस की नीली टिकिया, दूसरा काला भाग है वह साम है... पुनः इस साम में भी सा का अर्थ सूर्य की शुक्ल भाः और अम का अर्थ उस का दूसरा काला भाग नीली टिकिया होने से आदित्य की शुक्ल भाः+उस के नीले काले दूसरे भाग का ही एक नाम साम है ॥

अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥ तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥ तस्यर्क च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥ छ०१।६।६--८

अर्थात् उस आदित्य के अन्दर जो यह ज्योतिस्वरूप पुरुष दिखाई पडता है जिस की मूंछें दाढी, बाल सब सूर्य की किरणें ही होने से अत्यन्त चमकीले हैं और जो अपने नाखुनों के सब से अगले सिरेतक सर्वथा उत्तम चमकीला ज्योतिर्मय ही है उसी आदित्यान्तर्गत पुरुष का नाम उत है क्योंकि वह सब पापों से ऊपर उठा हुआ उन से सर्वथा रहित है और साथ ही क्योंकि जो उस तेजोमय पुरुष को ऐसा जान कर प्राप्त होता है वह भी सब

पापों से ऊपर उठ जाता, उनसे सर्वथा रहित हो जाता है। अतः उस आदित्यान्तर्गत पुरुष का नाम उत् है परन्तु ऋक् और साम दोनों उसी को गाना चाहते हैं अतः (वही गायनीय नाम गीथ भी है अत उत् और गीथ दोनों नाम मिलाकर उस का ही एक नाम उद्गीथ बना अतः) वह आदित्यान्तर्गत पुरुष ही उद्गीथ है अतः उसे ही गावे अर्थात् उसी आदित्यान्तर्गत हिरणमयपुरुष को ही उद्गीथ जान सदा उसी की ही महिमा का गान करे क्योंकि इसी का गान करनेवाला उस आदित्य लोक से भी परले जो वैद्युतादि देवताओंके इष्टलोक हैं तथा जो भी देवताओं की कामनाएं हैं उन सब का ईश्वर अधिष्ठाता हो जाता है यह अधिदैवत ऋक् साम समीक्षा समाप्त हुई॥

[टिप्पणी-ऊपर जितने भी ऋक् साम जोडे वर्णित हुए हैं उन सब में

" ऋच्यध्यूढं साम "

साम अपने सम्बन्धि ऋक् विशेष में अध्यूढ नाम अधिष्ठाता रूप में स्थित है और इसी कारण ही वह साम अपने ऋक् विशेष से सम्बद्ध ही (महान् तथा) गायनीय होता है इसी कारण ही हर ऋक् साम जोडे के सम्बन्ध में उपरोक्त शब्दों के साथ ही-

" तस्मादृच्यध्यूढँ साम गीयत "

शब्द बार बार दोहराए गये हैं ॥ छन्दो० १।६।१-८॥]

अथाध्यत्मं ॥ छादों० १।७।१॥

अब ऋक् साम सम्बन्धि अध्यात्म व्याख्यान करते हैं। छठा सातवां आठवां रस ये हैं:—

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः ॥ छा० १।१।५॥

अर्थात् वाणी ही ऋक् प्राण ही साम और ओम् अक्षरही उद्गीथ है अतः वाक, प्राण और ओम् केही नाम क्रमशः ऋक् साम और उद्गीथ हैं ॥

१ वागेवर्क् प्राणः साम...वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ छान्दो० १।७।१॥

अर्थात् वाणी ही ऋक् और प्राण ही साम है ... पुनः इस साम में भी सा का अर्थ वाणी और अम का प्राण होने से वाणी+ प्राण ही साम है॥

२ चक्षुरेवर्गात्मा साम...चक्षुरेव सात्माऽमस्तत्साम ॥ छान्दो० १।७।२॥

अर्थात् चक्षु आंख ही ऋक् और आत्मा ही साम है... पुनः इस साम में भी साका अर्थ चक्षु और अम का अर्थ आत्मा होने से चक्षु+आत्मा ही साम है॥

३ श्रोत्रमेवर्ङ् मनः साम...श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ छान्दो० १।७।३॥

अर्थात् श्रोत्र कान ही ऋक् और मन ही साम है...पुनः इस साम में भी साका अर्थ श्रोत्र और अम का अर्थ मन होने से श्रोत्र+मन ही साम है ॥

४ अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णंतत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढँ साम तस्मादृच्यध्यूढं साम गीयते अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ छा० १।७।४॥

और जो यह आंखका सफेद श्वेत चमकदार भाग है यह ही ऋक् और जो नीला दूसरा काला भाग है वह साम है।उपरोक्त सब ऋक् साम जोडों की न्यायीं इस आंख के श्वेत कृष्ण भाग रूप जोडे में भी साम रूप कृष्ण भाग, ऋक् रूपी श्वेत भाग में अधिष्ठाता रूप में स्थित होने के कारण ही गायनीय होता है क्यों कि प्रत्येक साम अपने ऋक् विशेष में सम्बद्ध ही गायनीय होता है॥ फिर उस साम में भी जो यह आंख की श्वेत चमक है वही सा और जो यह नीली काली दूसरी है वही अम होनेके कारण ही यह आंखकी श्वेत ज्योति+काला नीला दूसरा भाग दोनों का इकट्ठा नाम साम है॥

अथ य एषो ऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद् ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्यरूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ छा० १।७।५॥

और जो यह आंखके अन्दर पुरुष दिखाई देता है वह ही ऋक् साम उक्थ, यजुः, ब्रह्म है यह सब उसी के नाम हैं उस का रूप वही है जो उस आदित्यान्तर्गत पुरुष का, उस के गानेवाले ऋक् साम भी वही हैं जो उस पहिले आदित्य पुरुष के और उस का

नाम भी वही उद्गीथ है जो उस पूर्वोक्त आदित्यान्तर्गत हिरण्मय पुरुष का ॥

स एष ये चैतस्माद्वार्ञ्चो लोकास्तेषां
चेष्टे मनुष्यकामानां चेति ॥ छा० १।७।६॥

वह यह आदित्य तथा चक्षु अन्तर्गत तेजोरूप हिरण्मय पुरुष परमात्मा ही मनुष्यलोक पृथिवी तथा अन्य सब लोकों का ईश्वर है ॥

तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गाय-
न्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ छा० १।७।६ ॥

और जो यह बीन बांसुरी बजाने वाले गाते हैं वह भी उसी पुरुष की महिमा गाते हैं इसी लिये दाता लोग उन्हें धन देते हैं और वह उस धन रूप दान के ग्रहण करने के अधिकारी होते हैं ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ
स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मा-
त्पराञ्चो लोकास्तांश्चाप्नोति देव-
कामास्तांश्च ॥ छा० १।७।७॥

और जो यह इस प्रकार परमात्मा को जान कर साम रूप उस की महिमा गाता है वह उन, आदित्य देवता वाले मन्त्रोंसे परले लोकों और देवलोकोंकी इच्छानुसार प्राप्त होता है ॥

अथानेनैव ये चैतस्माद्वार्ञ्चो लोकास्तां-
श्चाप्नोति मनुष्यकामाँश्च ॥ छा० १।७।८॥

और इन चक्षु आदि मनुष्य सम्बन्धि मन्त्रोंके द्वारा वह इधर के सब लोकों और मनुष्य लोकों को इच्छानुसार प्राप्त होता है ॥

तस्मादु हैवं विदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥ कं
ते काममागायानीत्येष ह्येव कामगानस्येष्टे
य एवं विद्वान्साम गायति
साम गायति ॥ छान्दो० १।७।८,९॥

(इस प्रकार परमात्मा का ज्ञाता सब मनुष्यसुख, देवसुख तथा सब लोकों में कामचार से प्राप्तसुख, प्राप्त करता है अतः उसे ही उद्गाता समझना चाहिये) ऐसा ब्रह्म वेत्ता उद्गाता ही (अपने यजमानसे) पूछे कि तेरी किस कामना की सिद्धि निमित्त मैं साम गाऊं (अन्य कोई रागी इस प्रकार नहीं पूछ सकता) क्यों कि जो उपरोक्त चक्षु तथा आदित्य अन्तर्गत पुरुष परमात्मा को देखता है और उसे अनुभव करता हुआ साम गाता है वही उद्गाता काम गान का अधिष्ठाता है वही यजमानकी कामना सिद्धि निमित्त साम गाकर उस की वह कामना सिद्ध कर सकता है अतः वही यजमान से उपरोक्त प्रश्न पूछ सकता है ॥

ऊपर छा० १।१।५ तथा १।७।१ में साम का एक अर्थ प्राण किया गया है । प्राण को साम क्यों कहते हैं ? इसका उत्तर है कि—

साम प्राणो वै साम प्राणो हीमानि स-
र्वाणि सम्यंञ्चि सम्यचि हास्मै स-
र्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्याय कल्पन्ते सा-
म्नः सायुज्यं सलोकतां जयति य
एवं वेद ॥ बृहदा० ५।१३।३॥

प्राण को साम कहने का कारण यह है कि यह सब, प्राण में ही समभाव से प्राप्त हैं अर्थात् प्राण के साथ सब का एक सा सम्बन्ध है और इस तत्व के ज्ञाता को एक साही सब पदार्थ श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, अर्थात् सब ही भूत उस को श्रेष्ठ बनानेके लिये एकसा यत्न करते हैं और वह साम प्राण परमात्मा को जान उस के समीप हो ब्रह्म लोक में जाता है । इस प्रकार साम वही है जो सब में सांझा सब से वही सम्बन्ध रखने वाला हो तथा जिस के ज्ञाता को श्रेष्ठ बनाने के लिये सब एक सा ही यत्न करें !!

ऊपर छा० १।७।२ में आत्मा को साम कहा है और चक्षु को सा कहा है और छा० १।७।१ में वाक को सा कहा है इन का कारण बृहदा० १।६ में कहा है यथा—

त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्ये-
तदेषां सामैतद्धि सर्वैर्नामभिः समं...॥१॥ अथ
रूपाणां चक्षुरित्येतदेषां...सामैतद्धि सर्वैः रूपैः
समं.. ॥२॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषां सामै-
तद्धि सर्वैर्कर्मभिः समं... ॥३॥ बृह० १।६।१-३॥

नाम रूप और कर्म यह एक त्रिपुटी तिक्कड़ी है उस त्रिपुटी में से वाणी सब नामों की, चक्षु सब रूपोंकी और आत्मा सब कर्मों का साम इस कारण है कि यह वाणी ही सब नामोंमें साम है यह चक्षु ही सब रूपोंमें साम है और यह आत्माही सब कर्मों

में सम है अतः साम का अर्थ सांझा एकरूप सम ही है ॥

इस प्रकार ऋक् सामके अनेक अर्थ उपनिषदोंसे ही लिखकर हम इस औपनिषदिक ऋक् साम समीक्षा को यहां समाप्त करते हैं ॥

" अथ उक्थ ब्रह्मयजुः क्षत्र शब्दानां औपनिषदिकी व्याख्या ॥"

बृहदारण्यक के ऊपर उद्धृत हुए ब्राह्मणमें वाक् चक्षुः और आत्मा की नामों, रूपों, कर्मोंका क्रमशः उक्थ भी कहा गया और इसके लिये हेतु भी वहां दिया गया है यथाः—

१ तेषां नाम्नां वागित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति...॥१॥ अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्ति ॥ २ ॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्ति ॥ ३ ॥
बृह० १।६।१३॥

वाणी सब नामों की, चक्षु सब रूपोंकी और आत्मा सब कर्मोंका उक्थ इस कारण है कि इस वाणी ही से सब नाम जन्मते हैं, आंख से ही सब रूप प्रचलित होते हैं और आत्मा से ही सब कर्मों का प्रादुर्भाव होता है, अतः सब का स्रोत होनेसे ही यह सब उक्थ है क्योंकि नामों का स्रोत होने से ही वाणी नामों का उक्थ है इसी कारण आंख और आत्मा भी ॥

प्राण को उक्थ नाम देने का कारण बृहदा० ५।१३।१ में लिखा है किः-

उक्थं प्राणो वा उक्थं प्राणो हीदं सर्वमुत्थापयत्युद्धास्मादुक्थ विद्वीरस्तिष्ठत्युक्थस्य सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

प्राणको उक्थ कहने का कारण यह है कि प्राण ही इस सब को उठाता है और क्यों कि इस प्राण के द्वारा ही उक्थ का ज्ञाता वीर अर्थात् तत्त्ववेत्ता कर्म योगी इस प्राण के भी ऊपर ठहरता है अर्थात् प्राण को वश में कर लेता है और उत्कृष्टस्थिति को लाभ करता है अर्थात् ऊंचा दर्जा पाता है इस उक्थ तत्त्व का ज्ञाता उक्थ की समीपता तथा उस के सालोक्य को प्राप्त होता है। यहां उक्थ तथा प्राणसे तात्पर्य परमात्मा का भी ले सकते हैं अतः प्राणवेत्ता परमात्मा के समीप ही ब्रह्म लोक में जाता है ॥

इस प्रकार उक्थ वही है जो सबको ऊपर उठाकर अपनी प्राप्ति उन्हें करवा देवे। और जो सब का स्रोत हो ॥

२ तेषां नाम्नां वागित्येतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति ॥१। अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषां...ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति ॥२॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषां ...ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्माऽऽत्मो एकः सन्नेतत्त्रयं तदेतदमृतं सत्येन छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राण श्छन्नः ॥३॥ बृहदा० १।६।१-३॥

वाणी सब नामोंकी, चक्षु सब रूपोंकी और आत्मा सब कर्मों का ब्रह्म इस कारण है, कि यह वाणी ही सब नामोंको धारण पालन पोषण करती है यह आंख ही सब रूपोंको और यह आत्मा ही सब कर्मों को ।

अतः ब्रह्म का अर्थ धारण पालन पोषण करने वाली ही है ।

सो यह नाम रूप और कर्म रूपी त्रिपुटी सत् कहलाती है अर्थात् सत् वही है जिसकी मूर्ति आकार हो, कोई नाम हो और वह कोई कर्म भी करे परन्तु विरुद्ध इसके यह आत्मा एक है । आत्मा ही एक है यह त्रिपुटी तो सत् है वह यह आत्मा अमृत है अमृत स्वरूप वह आत्मा सत्य स्वरूप त्रिपुटीसे ढका हुआ है अर्थात् प्राण, ज्ञान, जीवन, आत्मा, परमात्मा अमृत है और नाम और रूप सत्य हैं उस नाम रूप रूपी सत्य से यह आत्मा अमृत रूपी प्राण ढका हुआ है ॥ अर्थात् अव्यक्त परमात्मा अपने व्यक्त नाम रूप कर्मोंसे ढका हुआ रहता है और इसी प्रकार अव्यक्त जीवात्मा भी अपने नाम रूप कर्मों से ढका हुआ रहता है और इसी प्रकार अव्यक्त प्रकृति रूप आत्मा सूक्ष्म तत्त्व भी अपने व्यक्त नाम रूप कर्मों से ढका हुआ रहता है । सारांश यह कि आत्मा, सूक्ष्मरूपेण सब एक है नाम रूप कर्मों से त्रिपुटि रूपी सत् व्यक्त होता है ॥

३ यजुः प्राणो वै यजुः प्राणो हीमानि सर्वा

गुरुकुलकांगडी–रजतजयन्ती का महोत्सव !!!

गुरुकुलकी स्थापना ।

जिस समय महात्मा गांधीजीके असहकार का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय महात्मा मुन्शी-रामजी के द्वारा कांगडी गुरुकुल की स्थापना हो कर सरकारी शिक्षणालयों के साथ असहकार करनेका क्रियात्मक प्रारंभ हो चुका था। गुरुकुल द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाका पवित्र जीवन स्रोत जबसे चलना प्रारंभ हुआ तबसे भारतराष्ट्रके सब नेताओंका ध्यान राष्ट्रीय शिक्षाकी ओर विशेष रीतिसे आकर्षित हुआ। इस प्रकार सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाका क्रियात्मक प्रारंभ करनेवाले पूर्वाश्रमके महात्मा मुनशीरामजी अथवा उत्तर आश्रमके श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी भारतीय राष्ट्रीय शीक्षा प्रणालीके आद्य प्रवर्तक किंवा सच्चे आचार्य माने गये और सब देशमें राष्ट्रीय शीक्षाके सब प्रवर्तकोंने इन्हीं का न्यूनाधीक अनुकरण किया यह बात सब लोग जानते ही हैं।

गुरुकुल का यश।

कांगडी गुरुकुल शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान दिन प्रतिदिन बढने लगा और गत पचीस वर्षों में जो राष्ट्रीयशिक्षाप्रदानका कार्य उन्होने किया, उस कारण विपक्षी भी उसकी प्रशंसा खुले दि ◌ से करने लगे। यहांतक इसकी प्रतिष्ठा बढ गई की शिक्षा का विचार करनेवाले सज्जन इस गुरुकुल को देखना और इस पद्धतिका विचार करना अत्यावश्यक समझने लगे और इस हेतुसे स्वदेशी और विदेशी शिक्षाविभागके अध्यक्ष इस संस्थाका दर्शन करने के लिये आने लगे और इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करने लगे।

मनुष्यकृत संस्थाओंमें दोष रहना स्वाभाविक ही है, उस नियमानुसार इस संस्थामें कोई दोष रहे होंगे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु दोषों के रहते हुए भी इस गुरुकुलकी गुणोंकी अधिकताके कारण सर्वत्र इसकी प्रशंसा हुई और इन पचीस सालोंमें इस संस्थाने प्रशंसायोग्य कार्य करके दिखाया भी है। इस लिये हम कह सकते हैं कि इसकी बुनियाद इस समय आर्योंके हृदयोंमें इतनी गहरी होगई है, कि यह संस्था अब निःसंदेह चिर-स्थायी होकर रहेगी और अपनी हस्तीसे श्री० स्वा० श्रद्धानंदजीका जीवित और जाग्रत स्मारक बनकर इस देशमें अपने आदर्शको पूर्ण करेगी।

इस वर्ष इस गुरुकुल संस्थाको २५ वर्ष होने के कारण उसका रजत जयन्ती महोत्सव हुआ और सब आर्योंने इसमें संमिलित हो कर इस महोत्सव को सफल और सुफल बनाया यह बहुत ही हर्ष की बात है। हम चाहते हैं कि इसी प्रकार यह आदर्श संस्था दिन प्रतिदिन अधिकाधिक लोकप्रिय बन कर उन्नतिको प्राप्त हो और उसके "सुवर्ण जयन्ती" तथा "रत्नजयन्ती" महोत्सव करनेके अवसर योग्य समयमें आजांय और उस समय यह संस्था अपनी विविध शाखाओंको पूर्ण रीतिसे सफल बना सके और इसकी वृद्धिके योगसे श्री० स्वा० श्रद्धा-नंदजीका यश उज्वल बन कर चारों दिशाओंमें फैल जाय। परमेश्वर हमारी हार्दिक आशाको पूर्ण करे और संपूर्ण आर्यजनता अपने तन मन धनसे तथा अपने पारस्परिक विद्वेषरहित सहयोगसे इस संस्था को परिपूर्ण बनानेकी पराकाष्ठा करें।

उत्सव की सफलता

इस उत्सव में श्री० महात्मा गांधी, पं० मदन मोहन मालवीय, डा० मुंजे, श्री० राजेन्द्रप्रसादजी, साधु वास्वानी, प्रि० ध्रुव, राष्ट्रमहासभाके सभापति श्री० श्रीनिवास आयंगार आदि सुप्रसिद्ध और सुयोग्य विद्वान नेतागण उपस्थित थे; इस लिये यह उत्सव अधिक चित्ताकर्षक हुआ और साथ साथ भी यह बात सिद्ध हुई की, अनेक राष्ट्रदलोंके नेता एक दूसरेके साथ पूर्ण विरोध करते हुए भी इस संस्था की वेदीपर आकर अपने अपने मतभेदोंको भूलकर

एक दिलसे कार्य कर सकते हैं। अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षाके विषय में सबका ऐकमत्य ही है। यदि गुरु कुल अपनी त्रुटीयोंको दूर करके, अपने आपको पूर्ण बनाकर थोडेही समयमें देशके सब नेतागणोंको अपनी ओर अधिक खींच सके, तो राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने में भी इस संस्थासे बहुत ऊंचे दर्जे का कार्य होना संभवनीय है।

व्याख्यानों और संमेलनोंका वर्णन पाठकोंने वृत्त-पत्रों में पढाही होगा इस लिये उसको यहां दुहराना उचित नहीं है। सब दृष्टिसे यह उत्सव सफलता-पूर्वक समाप्त हुआ इस लिये हम प्रबंधकर्ताओंको धन्यवाद देते हैं। इस वर्षके उत्सव में हाजरी अपेक्षा से भी अधिक हो गई थी और जितने लोग आये थे उनके लिये पर्याप्त स्थान भी नहीं था। तथापि आर्योंके दिल बडे होनेके कारण बाह्य स्थान की न्यूनता की पूर्ती हृदयों की विशालता से दूर होगई और सब महोत्सव बडे आनंदसे पूर्ण हो गया।

त्रुटियोंका प्रदर्शन.

उत्सव के प्रबंधकर्ताओंने अपनी पूरी परा-काष्ठा करके प्रबंध किया था, उत्सवका महामंडप, छोटा मंडप आदि सब स्थान उत्तम बने थे, परंतु श्रोताओंने जो अपनी त्रुटियों का प्रदर्शन किया था वह क्षमा करने योग्य न था। वृत्तपत्रों में उत्सवकी सफलता ही वर्णन की जाती है और उन वर्णनों में त्रुटियोंको बताया नहीं जाता। इसका कारण यही है कि जनता अपनी त्रुटियोंको सुनना पसंद नहीं करती और अपने सद्गुणोंकी प्रशंसाही सुनना चाहती है। यदि किसीने दोष बतानेका यत्न किया तो उसपर जनताका क्रोध भी होता है। आर्य समाजके वार्षिको त्सव आज पचास वर्ष हो रहे हैं, गुरुकुलों के उत्सव पचीस वर्ष हो रहे हैं ये सब उत्सव बडे समारोहके साथ होते हैं, तथापि इस समयतक किसी वृत्तपत्रमें जनताका चित्त त्रुटियोंकी ओर आकर्षित नहीं किया परंतु हर वर्ष गुणप्रशंसाही गाई जाती है। इसलिये संभव है कि जनताभी अपने दोषोंको जानती नहीं होगी। इस कारण जिन दोषोंका प्रदर्शन हरएक जलसेमें होता है और जिनका प्रदर्शन इस जलसे में भी हुआ, उनका प्रकाशन यहां करने की बडी आवश्यकता है। और हमें आशा है कि पाठक भी इस लेखका योग्य विचार करेंगे।

सभ्यता।

वेदमें " सभ्यो भवति य एवं वेद। " (जो यह जानता है वह सभ्य होता है) ऐसे आदेश अनेक स्थानोंपर आगये हैं। अर्थात् वेद के आदे-शानुसार सभ्य बननेके पूर्व कुछ विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। " सभ्य " शब्द का अर्थ " सभा में बैठने योग्य " है। अर्थात् सभामें बैठने योग्य बननेके लिये मनुष्य को कुछ विशेष शिक्षा प्राप्त करना वेद की दृष्टिसे अत्यावश्यक है। सभाके कुछ नियम होते हैं, उनका जो पालन कर सकता है उसी को सभा में प्रविष्ट होने का अधिकार वैदिक धर्मके अनुसार प्राप्त हो सकता है। अर्थात् हरएक मनुष्य सभामें बैठने योग्य नहीं है, परंतु सभा में वही मनुष्य जा सकता है कि जो सभाके नियम पालन करने में तत्पर हो।

सभाके योग्य मनुष्यही सभ्य होते हैं, सभ्योंकी आचारपद्धति सभ्यता कही जाती है। जो वैदिक सभ्यताके दावेदार हों उन को उचित है कि, वे अपने आपको सबसे पूर्व सभाके योग्य बनानेका उपाय करें और पश्चात् सभ्यताका प्रचार करने का भार अपने ऊपर लें।

" सभा " वह होती है कि जो "सब मिलकर प्रकाशित होती हो। " सब उपस्थित पुरुषोंका प्रकाश अधिकसे अधिक जिससे प्रकाशित होता हो। पाठक विचार करें की क्या ये वैदिक शब्दों के अर्थ हमारी सभाओं में ठीक संगत होते हैं? सभा, सभ्य और सभ्यता के वैदिक भाव हमारी सभाओंमें संगत होते हैं वा नहीं यही पाठकोंको देखना चाहिये। और पूर्ण विचार करके निश्चय करना चाहिये कि कौनसा दोष हम में है और उसको दूर किस प्रकार किया जा सकता है।

शोर ।

हमने गुरुकुल के बीससे अधिक जलसे देखे हैं और लाहोर आर्य समाजके दस जलसे देखे हैं। जिन जलसोंमें पांच हजार से पंद्रह हजार तक उपस्थिति होती थी ऐसे ही जलसे ये थे। इनको देखनेसे हमारा निश्चय हुआ कि आर्यजनता सभामें बैठने योग्य अभीतक बनी नहीं! आर्य समाज पचास वर्ष कार्य कर रहा है और जनता का अधिक से अधिक आकर्षण करनेकी शक्ति वह रखता है। परंतु उसके प्रयत्नसे भी मनुष्योंको वह शिक्षा इस समयतक नहीं मिली कि जिससे मनुष्य सभामें बैठने योग्य बन सकें !!!

इन महोत्सवोंकी सभाओंमें कई प्रतिष्ठित पुरुष वेदीपर बैठते हैं, साधारण जनता सभास्थानके एक भागमें बैठती है और दूसरे विभागमें स्त्रियां बैठती हैं। शोर मचाने में स्त्रियोंका प्रयत्न सबसे अधिक है, तथापि वेदीपर बैठे हुए प्रतिष्ठित पुरुष तथा अन्य श्रोतागणोंका भाग शोरमें भी कोई कम नहीं है। युरोप अमेरिकाकी विशाल सभाओं में जहां इस प्रकार की साधारण जनता भी उपस्थित होती है वहां जो शांति रहती है उसका सौवां हिस्सा भी शांति भारतीयों की सभा में नहीं होती !!! वैदिक धर्मियों के लिये तो यह शोर बडा भारी लांछन है। प्राचीन ग्रंथोंमें महापरिषदोंका वर्णन है परंतु वहां शोर होनेका कोई वर्णन नहीं है। साधारण वक्ता भी अपनी आवाज पचास हजार सभ्य मनुष्यों तक पहुंचा सकता है, परंतु इन सभाओं में पाच हजार तक भी बडी आवाज का वक्ता अपना गला पूरा फाड देनेके विना नहीं पहुंचा सकता!! वक्ता को सदा अपने आवाज में ही बोलना चाहिये। अपनी आवाज से ऊंचे स्वरमें वक्ता को बोलने की आवश्यकता उत्पन्न होना श्रोताओं की असभ्यता की निशाणी है। निश्चयसे भारतीय प्राचीन आर्यसभ्यता सभामें शोर मचाने की आज्ञा नहीं देती है।

अन्य छोटे वक्ताओं की कथा तो छोड दें, परंतु महात्मा गांधी और पं० मदन मोहन मालवीय जैसे सुप्रतिष्ठित वक्ता वेदीपर आनेपर भी जब जनता चुप नहीं रहती तो पाठक ही विचार कर सकते हैं कि वैदिक धर्मियों के लिये इससे अधिक लांछन तो क्या हो सकता है? गत उत्सवमें राष्ट्रीय शिक्षासंमेलन के सभापति महात्मा गांधीजी थे। सभाका प्रारंभ होते ही शोर शांत करने की प्रार्थना महात्माजी को चालीस सेभी अधिक वार करनी पडी! महात्माजी बार बार कह रहे थे कि "आपको शांत होना चाहिये" और श्रोतागण अधिकाधिक शोर मचा रहे थे। यह दृश्य स्पष्टतासे सिद्ध कर रहा है कि हमारी जनता अभीतक सभामें बैठने के योग्य भी नहीं बनी !!!

जो लोक केवल शोर मचानेके लिये हि सभास्थान में आते हैं और वक्ता के शब्द सुननेकी इच्छा नहीं रखते, अथवा जो चाहते हैं कि वक्ताका गला बबर के समान पुकारनेसे शीघ्र ही फट जाय, क्या उनकी उन्नत्ति की कभी संभावना है? पचास साल व्यतीत हुए, आधी शताब्दी चली गयी, तो भी सभा में बैठने की शिक्षा लोगोंने प्राप्त नहीं की, क्या यदि इसी प्रमाण से उन्नति होनी है तो यह मामला लाखों वर्षों का ही बनेगा। पाठक विचार करें और सोचें कि यह अवस्था आशाजनक है वा निराशा बढाने वाली है।

युरोप अमरिकाके लोग शांतिसे सभामें बैठना जानते हैं इस लिये वे सभासे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। परंतु हमारे देशभाई शोर मचाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, इस लिये ज्ञानसागर में डुबकी लगानेपर भी कोरे के कोरे ही रह जाते हैं !!! इसी कारण सेकडों सभाएं होनेपर भी जनता जहां की वहां ही है। शोरके संबंध में तो हम कह सकते हैं कि हमारी जनता पचास वर्षके पूर्व जहां थी वहीं आज है। नेताओं को भी इसका विचार करना चाहिये।

वेदीपर बैठे प्रतिष्ठित पुरुष वक्ता के भाषण पर भाष्य वहां के वहां ही करना अपना अधिकार सम-

झते हैं, स्त्रियां आपसमें बातें करना परम आवश्यक समझती हैं ; अन्य जनता भी अपने घरकी बातें करनेका यह अवसर है ऐसा मानती है। इस लिये वक्ता भी समझता है कि सुनना तो किसीने नहीं है, इस लिये सोच विचार करके अपना मजमून तैयार करने की आवश्यकता क्या है ? चलो अपना समय किसी न किसी प्रकार काटेंगे हीं! वक्ता और श्रोता इस ढंगसे जहां मिलते हैं वहां क्या हो सकता है ? सोचिये तो सही।

इस लिये हरएक वैदिक धर्मी सज्जनसे हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि वह सभाके योग्य बनकर सभामें जाय, और अपने कारण कोई आवाज या शोर होने न दें। सभामें शांति रखना उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है अन्यथा सभा करनेके परिश्रम वैसेही व्यर्थ जांयगे जैसे इस समय तक व्यर्थ हुए हैं।

वक्ता का व्याख्यान चलता है, स्त्रियां अपनेसे हो सकता है उतना अधिकसे अधिक शोर मचातीं हैं, छोटे बालक चिल्लाने में अपनी माताओंके साथ स्पर्धा करते हैं और सभा में शोर मचाने की शिक्षा अपनी माताओंसे ठीक प्रकार पाते हैं, अन्य श्रोता गण "चुप रहो" की आवाजसे अथवा "जय" को आवाजसे शोर को बढाते हैं, वेदीके प्रतिष्ठित पुरुष वक्तृत्वपर भाष्य करते हैं, और साथ ही साथ कोई भद्र पुरुष आगया तो उसके स्वागत के लिये अभ्युत्थान देने, कुशल प्रश्न पूछने आदि से शोर बढाते हैं, सभाके प्रवंध कर्ता उसको प्रमुख स्थान में बिठलाना चाहते हैं और वह विनयसे प्राप्त स्थानमें बैठना ही पर्याप्त समझता है, इस प्रकार विनय भी शोर का कारण बनता है!! इतने में प्रवंध कार्य में दक्ष स्वयं सेवक आते जाते रहते हैं, घोषणाएं दी जातीं हैं, गुम हुए बालकोंकी रोती हुई शकलों का प्रदर्शन किया जाता है, और भी ऐसे कई प्रकार हैं कि जो सिद्ध करते हैं कि हम न तो सभा के योग्य बने हैं, न सभा चलाना जानते हैं और न सभा से अधिक से अधिक लाभ उठानेकी अकल रखते हैं। परंतु बडी बडी सभा करनेका केवल शौक हुआ है। यदि शिक्षित और सभ्य जगत् के साथ अपना संबंध जोडना अभीष्ट है तो आर्य जनताको उचित है कि वे सभामें शांतिसे बैठना सबसे पहिले सीखें और सभा करने के कष्टों से पूरा लाभ उठानेका यत्न करें।

बोलनेका शौक।

जनताके अनेक दोषोंमें से शोर मचानेका एक दोष हमने ऊपर बताया है, यदि इसमें कुछ सुधार हुआ तो आगे इसी प्रकार के अन्यान्य दोष भी बताये जांयगे। अब यहां वक्ताओं का एक दोष बतानेकी इच्छा है। बहुतसे वक्ता अपना व्याख्यान तैयार करने के विना ही वेदीपर खडे होते हैं। इसलिये विना सोचे विचारे जितना बोल सकते हैं उतना बोलते हैं। हमारा यह विचार है कि वक्ता केवल बोलने की ओर अपना विशेष ध्यान देने की अपेक्षा, यदि अपना विषय सोच विचार करके पहिले से तैयार करके आजाय और थोडे शब्दोंमें अपना संदेशा सुनावे तो जनता का लाभ अधिक होगा। वक्तृत्व केवल समय बितानेके लिये नहीं होना चाहिये, परंतु कुछ विशेष संदेशा सुनाने के लिये ही होना चाहिये। यदि कोई सुनाने योग्य संदेशा न हो तो न बोला जाय। विना अंतःस्फूर्तिके बोलना व्यर्थ होता है।

समय काटने वाले वक्ता जनताके सुधार करने में हमेशा ही असमर्थ होते हैं। स्फूर्तिके दस वाक्य जो कार्य कर सकते हैं वह कार्य दो घंटे के वक्तृत्व से भी नहीं हो सकते। परंतु शोक की बात यह है कि इस प्रकार का समय काटनेका वक्तृत्व घण्टा डेढ घंटा करने के पश्चात्, वारंवार घडी दिखाई जानेके नंतर, लोग सुननेको तैयार नहीं है यह स्पष्ट जाहिर होने के बाद भी जब ये वक्ता कहते रहते हैं कि "यदि मुझे और समय मिलता तो मैं यह बात आपको सिद्ध करके बता सकता" इ० तब बडा आश्चर्य प्रतीत होता है! वास्तवमें उत्तम वक्ताके लिये आध घंटे का समय अपना तात्पर्य श्रोताओंको समझाने केलिये पर्याप्त है। जो वक्ता अधिक समय लेनेपर भी अपना विषय अधूरा छोडते हैं, तथा " मेरा

विषय कभी पूर्ण नहीं होता " ऐसा कहने के शौकी हैं वे इस समय के लिये योग्य नहीं हैं।

इसलिये वक्ताओंको अपना विषय पहिले से तैयार करके वेदीपर आना चाहिये और अपने समय के पूर्व पांच मिनिट समाप्त करना चाहिये। इससे श्रोताओंका असमाधान कम होगा और उपदेशका कुछ असर होगा।

समय काटनेका वक्तत्व करते रहनेकी अपेक्षा सभा बंद रखना लाभदायक है। पाठक देख सकते हैं कि महात्मा गांधीजी पंद्रह मिनिटोंमें या आध घंटे में ही अपना महत्वपूर्ण वक्तत्व समाप्त करते हैं। उनका हरएक वाक्य पूर्ण मननीय विचार से भरा हुआ रहता है, कभी कोई शब्द व्यर्थ प्रयुक्त नहीं होता। इस भावपूर्ण वक्तृत्वके साथ खोकले वक्तृत्वकी यदि तुलना की जाय तो पता लग सकता है कि समय काटनेवाले खोकले वक्तत्व कितनी हानि करते हैं।

हृदयमें संदेशा न होते हुए ही कईयोंको सभाके सन्मुख खडा होकर बोलनेका शौक होता है। सभापतिने पांच मिनिट समय देनेपर आधा घंटा बोलने की महत्वाकांक्षा जो वक्ता रखते हैं वे सबसे पहिले सभापतिका अपमान करके जनताको नियम तोडने की शिक्षा अपने आचरणसे देते हैं। इसलिये ऐसे वक्तृत्वसे लाभकी अपेक्षा हानि बहुत होती है।

वक्तृत्व की परीक्षा जनता करती है और सुनने योग्य वक्ता का वक्तृत्व सुनती है। खोकला वक्तत्व शुरू होनेपर अपनी नापसंती दर्शाती है। इसलिये वक्ताको उचित है कि अपना वक्तृत्व सभाको पसंद न होनेपर वह शांतिसे बैठ जांय और अपना उपदेश श्रोताओंके कानोंमें जबरदस्तीसे ठोंसनेका यत्न नकरें।

कार्यवाही की लंबाई ।

संपूर्ण जगत् में उत्तर भारत के लोग ही कार्यवाही की इतनी लंबाई सह सकते हैं। चीन में भी लंबी कार्यवाही इसी प्रकार होती है अथवा इससे भी लंबी होती है, परंतु उसमें आनेजानेकी सुविधाका ख्याल और शांतिका ख्याल रखते हैं इस लिये चार दिनों की निरंतर कार्यवाही होनेपर भी हरएक मनुष्य दोचार घंटे ही आरामसे और शांतिसे बैठता है और जानेवाला गडबड न करते हुए शांतिसे चले जाता है। वह बात भी भारत में नहीं है। यहां हरएक मनुष्य सब कार्यवाही में बैठना चाहता है। परंतु शांतिसे बैठना जानता ही नहीं अतः अतिदीर्घ कार्यवाही होनेके कारण बैठे बैठे थक जाता है, तथापि उठ कर चुप चाप बाहर जाना पसंद नहीं करता। वहां ही बैठा रहता है, थक जानेके कारण उसका ध्यान सुनने में तो होता ही नहीं, परंतु बैठना तो है, इस लिये अपने साथियोंके साथ घरके व्यवहारकी बातें करता रहता है। उनको इस बात का पता तक नहीं रहता कि मेरे इस अनुचित व्यवहारसे अन्य श्रोताओंको कष्ट होंगे।

लंबी कार्यवाहीसे यह होना अत्यंत स्वाभाविक है। सवेरे चार घंटे, दोप्रहरको चार घंटे और रात्रीके समय तीन घंटे, इस प्रकार दस ग्यारह घंटे उपदेशश्रवण करना बडी थकावट का कार्य है। बडा ध्याननिष्ठ योगी भी दस घंटे चित्तकी एकाग्रता कर नहीं सकता। फिर साधारण मनुष्य क्या कर सकते हैं? बिचारे श्रोतागण थक जाते हैं और अंतमें गडबड मचाते हैं और बताते हैं कि जिस प्रकार अतिभोजन बदहजमी करता है उसी प्रकार अतिउपदेशभी मानसिक अपचन का रोग पैदा करता है। इसीलिये उपदेशका परिणाम किसीकेभी आचरणमें दिखाई नहीं देता।

वास्तविक देखा जाय तो सवेरे डेढ घंटा, दोपहरको दो घंटा और रात्रीके समय डेढ घंटे की कार्यवाही पर्याप्त है। यदि कार्यवाही थोडी छोटी की जाय तो श्रोता त्रस्त नहीं होंगे और संभवतः शांतिसे सुननेकी ओर झुक सकेंगे।

अधिक लंबी कार्यवाही रखना भी सभाके उद्देश्य को घटानेवाला हो रहा है। किसी भी अन्य देशमें ऐसी बडी कार्यवाहियां नहीं होतीं, इसलिये जो होती है वह परिणामकारक होती है, क्यों कि श्रोताओं में ऐसी थकावट नहीं आती और वे दिलचस्वीके साथ वक्तृत्व सुनकर लाभ उठा सकते हैं।

विदेशियोंकी साक्षियाँ ॥

चार पांच वर्षोंके पूर्व एक जापानी सज्जन गुरुकुल कांगडी में संस्कृत पढनेके लिये आये थे। जलसेके समय वे उपस्थित थे। हमारे पूछनेपर उन्होंने यहीं कहा था कि जो ऊपर के लेखमें वर्णन किया है। उन का कहना था कि जापानमें सभाओंमें अत्यधिक शांति होती है और ऐसी अशांति और शोर कभी नहीं होता।

एक युरोपीयन तत्त्ववेत्ता जो कि इस समय हिमालयमें ध्यानका अभ्यास कर रहे हैं एक समय गुरुकुल जलसेमें आयेथे, उनसे भी हमने यह बात पूछी तो उन्होने इस अशांतिको बुरीतरहसे अनुभव किया, यह बात उनके कहनेसे विदित हुई।

इस समय भी एक डच देशके चित्रकार गुरुकुल में संस्कृत पढनेके लियेरहे हैं वे भी यही बात कहते हैं।

तात्पर्य कोई भी विदेशी सभ्य मनुष्य इस शोर का गौरव नहीं करता है और सभी एक मतसे इस का तिरस्कार ही करते हैं। इसलिये पाठकोंसे सानुरोध प्रार्थना है कि वे इन त्रुटियोंका विचार करें और उनको अतिशीघ्र दूर करनेका पुरुषार्थ करें।

प्रशंसनीय सद्गुण।

आर्य समाजके जलसोंमें आर्योंके कई प्रशंसनीय सद्गुणभी दिखाई देते हैं। स्वावलंबन यह मुख्य गुण इनमें बढ रहा है।जहां लाख पचास हजार यात्री जमा होती है वहांका सब इंतजाम स्वयंसेवकों-द्वारा अति उत्तम रीतिसे किया जाता है। यह एक बात ही आर्योंका स्वावलंबन सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। यही स्वावलंबन आगे जाकर स्वराज्य के अनमोलगुणमें परिणत होगा, इसलिये हम इसकी प्रशंसा खुले दिलसे करते हैं।

जलसे में स्त्री पुरुष बालबच्चे प्रायः खुले स्थान में रहते हैं, परंतु कुदृष्टिसे देखादेखी नहीं होती और प्रायः परस्पर का व्यवहार अति धर्म-भावसे होता है। इसके अतिरिक्त जेवर, रुपये, नोटें, सोनेकी घडियां आदि पदार्थ उत्सव स्थानमें कहीं भी गिर जांय तो उनकी कभी चोरी नहीं होती। जिसको मिलते हैं वह सीधा प्रबंध कर्ताके दफ्तर में उन चीजोंको पहुंचा देता है। यह अस्तेय वृत्ति बडी उच्च है और वह आर्यों में गत पचास वर्षोंमें स्थिर रही है यह निःसंदेह प्रशंसा की बात है।

दानभाव भी आर्यों में बढ रहा है और आर्योंके दानसे जितनी संस्थाएं चल रहीं हैं उतनी किसी अन्य जातीने नहीं चलाईं। यह गुण भी प्रशंसनीय है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य गुण हैं जो वर्णन करने योग्य हैं। उन सबका वर्णन यहां करने की आवश्यकता नहीं है। यहां इतनाही बताना है कि वे सद्गुण उस समय अधिक प्रकाशित होंगे और अधिक लाभ दायक सिद्ध होंगे,जब हम अपनी सब कार्य वाहियां अधिक शांतिके साथ निभा सकेंगे।

यदि पाठक इन बातोंका योग्य विचार करेंगे, तो उनको अपना मार्ग निःसंदेह दिखाई देगा। भारत वर्षमें इस समयमें भी महा पुरुष बहुत हैं, परंतु भारतीय जनता उनसे लाभ उठाना जानती ही नहीं। महात्मा गांधी जैसे जगत् के मार्गदर्शक भारत में अवतीर्ण हुए हैं। भारतीय जनता उनकी " जय " करना जानती है, उनका दर्शन करना चाहती है, परंतु उनके उपदेशके अनुकूल आचरण करना नहीं चाहती। यही हमारी दशा रहेगी तो क्या होगा ? हमें एक प्रसंगका स्मरण है कि दर्शन के लिये उत्सुक जनताकी भीड में महात्मा गांधीजी एक समय दब गये थे और बडी मुष्कीलसे उनके अनुयायियोंने उनकी रक्षा की ! ! क्या यह हमारा प्रेम है ? या इसको भक्ति कहें या मूर्खता कहें? गत उत्सव में भी दर्शकोंने महात्माजीके दर्शन करनेके लिये गुरुकुल बागकी बाड तोडकर बडा नुकसान किया था। " दर्शन " के सामने नुकसान की पर्वाह जनताको नहीं है ! यह मूढ भक्ति है, यह तमो गुण है, यह घातक फूर्ति है। इस लिये स्पष्ट शब्दों में सच्ची बात पाठकोंके सन्मुख रखी है, जो योग्य विचार करेंगे और अपने दोषोंको दूर करेंगे वे लाभ के भागी होंगे। अन्यों के लिये यह लेख नहीं है।

तपस्या का पातक ।

रामायण के उत्तर-काण्ड में 'शंबूक की कथा' है। प्रायः सभी लोग उसे पढ चुके होंगे। उसका सारांश इस प्रकार है "प्रभू श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में संपूर्ण प्रजा सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करती थी। इतने ही में एकाएक एक दुर्घटना हुई। एक ब्राह्मण का लडका छोटी ही उमर में मर गया। ब्राह्मण ने समझ लिया कि राज्य में कोई पाप हुए बिना अकालमृत्यु नहीं हो सकती। यही सोच ब्राह्मण श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुंचा, और उसने सब हाल उन्हे सुनाया। श्रीरामचन्द्रजीने खोज कराई, तब पता चला कि, शंबूक नामक एक शूद्र तपस्या कर रहा है। तब रामचन्द्रजीने उस तपस्वी शूद्रका सिर काट डाला। ऐसा करनेपर ब्राह्मण का पुत्र जीवित हुआ। और इस प्रकार रामचन्द्रजी का कलंक छूटा।"

इसपर कईयों का आक्षेप है कि 'यदि शूद्र तपस्या करने लगें तो फिर ब्राह्मणों की श्रेष्ठता कैसे रहेगी? तब ब्राह्मणों को भू-देव कौन मानेगा? रामायण में यह कथा इस गरजसे लिख दी गई है कि जिससे ब्राह्मणों का बडप्पन बना रहे।' इत्यादि।

जो लोग यह कहते हैं कि इतिहास-पुराण में बुरा (उनकी दृष्टिमें) लिखा है, वह सब ब्राह्मणों ने अपना वर्चस्व बढाने के लिए घुसेड दिया है, वे पहले सोच लें कि कहीं उनके लेखों में इतिहास के अज्ञान का प्रदर्शन तो नहीं होता।

आवश्यकता तो इस बात की है कि प्रथम अपने प्राचीन ग्रंथों की कथाओं का, उस समय की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितिपर दृष्टि रख, अच्छा अध्ययन किया जाय। फिर चाहे ब्राह्मण दोषी हों चाहे क्षत्रिय। परन्तु विचार करने की यत्किंचित भी चेष्टा न कर किसी भी बात का अत्यधिक विपर्यास कर अपने मस्तिष्क का पागलपन दूसरी जातियों के मत्थे मढना उचित नहीं। यह बात, यद्यपि, विपक्षियों को आज अच्छी लगती है, पर जब वह निष्पक्षपाती विद्वानों के सन्मुख पहुंचेगी तब हँसी हुए बिना रह नहीं सकती।

इस बातमें कोई भी संदेह नहीं करता कि इतिहास और पुराण की बहुतसी कथाएं उनमें पीछे से शामिल करा दी गई हैं। परन्तु शामिल कराने वाले का उद्देश तो उन्ही दिनों की इतिहास की दृष्टि बता सकेगी। इन कथाओं की वा अन्य किन्हीं कथाओं की महत्ता तब तक नहीं विदित हो सकती, जब तक कथाओं के लिखने के समय की सामाजिक, धार्मिक, राजकीय और आर्थिक दशा न समझ ली जाय। इन कथाओं का तत्कालीन परिस्थिति से ऐसा घनिष्ठ संबंध है कि जो उस पर ध्यान न देकर इन कथाओं के संबंध में लिखते हैं उनकी निःसंदेह विद्वानों के सामने हंसी होती है।

'ईसप-नीति' नाम की पुस्तक में नीतिकुशल ईसप ने जो कथाएं लिखीं हैं वे तत्कालीन राजकीय परिस्थिति में क्रांति कराने के लिए ही लिखीं थीं। और इष्ट क्रांति उनके कारण हुई भी। इस बात पर विचार करने ही से पता चलेगा कि कुत्ते-बिल्ली की कथाओं से राष्ट्र की भवितव्यता का कैसा निकट संबंध है। इस उदाहरण को पुराना और विदेशी कहकर यदि छोड दें, तो अपने देश के कई नाटक आदि ग्रंथ भी ऐसे मिलेंगे। मराठी भाषा के 'कीचकवध' आदि नाटक वर्तमान परिस्थिति का विचार करकेही लिखे गये हैं। इन नाटकों को देखनेवाला तत्काल जान सकता है कि वे व्यंग अर्थ से लिखे गये हैं। इसका कारण यही है कि नाटक देखनेवाला अपनी परिस्थिति से परिचित रहता है। इसीसे नाटक लिखनेवाला दर्शक के मनपर जिस बात का परिणाम कराना चाहता है वह बात सहज ही में दर्शकों के मन में जमजाती है।

वाचक इससे समझ गये होंगे कि 'कीचक-वध' जैसे तात्कालिक महत्व के नाटकों में रंगमंचपर कीचक का वध दिखलाना मुख्य उद्देश नहीं होता। मुख्य उद्देश बिलकुल भिन्न होता है । और वह कहीं भी शब्दों द्वारा स्पष्ट रीतिसे व्यक्त नहीं किया जाता । परंतु कथा की रचना ही इस प्रकार से की जाती है कि वह हेतु श्रोता के मनपर पूर्णतया प्रतिबिंबित हो जाय । इसी को शास्त्रकार " अर्थवाद " कहते हैं । सभी शास्त्रकार इतिहास पुराणों की बहुतेरी कथाओं को 'अर्थ वादात्मक' समझते हैं । यदि यह बात मानली जाय कि कथाएँ अर्थवादात्मक होती हैं,तब उनके उद्देश की पूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि उनमें ऐतिहासिक सत्य हो, या वे प्रक्षिप्त न हों। वे जिस अर्थवाद के लिए लिखी गई हों, अर्थात् जिस विशेष बात को बतलाने के लिए लिखी गई हों वह बात श्रोता को प्रतीत हो जाने ही से उन कथाओं का काम हो जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि वह खास मौका या वह अवसर निकलजानेपर उन कथाओं का महत्व भी नष्ट हो जाता है। पर इस पर किसीका भी वश नहीं चलता । यह तो अवश्य ही होगा । ऐसा हो जानेपर वे कथाएं ग्रंथ में केवल लिखी रह जाती हैं ।

यही कारण है कि शास्त्रकारोंने श्रुति का धर्म ही सनातन अर्थात् चिर काल तक टिकनेवाला माना है । अन्य धर्म अर्थात् स्मृति, इतिहास और पुराण का धर्म खास खास समय के लिए है । इस बातमें सब शास्त्रकारों का ऐकमत्य है। जब हम शास्त्रकारों की मानी हुई इस बात को देखते हैं तब हमें विदित हो जाता है कि भिन्न भिन्न पुराण भिन्न भिन्न विगत समय का धर्म बतलाते हैं अतएव आज उनसे विशेष लाभ नहीं है । यदि पुराणों का कुछ उपयोग हुआ तो करना चाहिए, न हुआ तो छोड देना चाहिए । उसके लिए विवाद मचाने की बिलकुल आवश्यकता नहीं ।

' जिस विशेष समय की वह कथा है, उस समय भी शूद्रों को तपस्या करने की मनाई क्यों ? ब्राह्मण मात्र तप करें और शूद्र उससे वंचित क्यों रखें जांय? यह पक्षपात किस लिए ? होना यह चाहिए कि जिसको जो अच्छा दिखे सो करे। ऐसा इस समय के शिक्षित लोग कहते हैं। परंतु असली बात यह है कि इस प्रकार के विचार उत्पन्न होने और सच मालूम होने का कारण आज की परतंत्रता है । आज की परतंत्रता के कारण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के व्यवसाय ही बंद पड गये हैं । वे सब व्यवसाय परकीयों के अधीन हैं । अतएव यच्चयावत लोगों को मुंशीगिरी के लेखन व्यवसाय की ओर ही दृष्टि रखना अतीव आवश्यक हो गया है । इसीसे प्रत्येक मनुष्य नोकरी मिलने के लिये स्पर्धा करता है। परंतु जिस दासता के कारण अथवा जिन परकीय लोगों के कारण सब का वृत्तिक्षय हुआ है, उसका उन्हे अबतक पता ही नहीं है!!! वे सच्चे शत्रु को मित्र समझ रहे हैं और जो कभी भी शत्रु न थे उन्हीं को वे शत्रु समझने लगे हैं ।

अब देखें कि यदि शूद्र तपस्या करने बैठें तो क्या होगा? यदि ब्राह्मणों के समान चारों वर्ण वेदाध्ययन जपजाप्य, योगसाधन, त्रिकाल स्नान आदि करने लगें और इन अनुत्पादक धंधों में समय बिताने लगें तो जो भयंकर आर्थिक आपत्ति देश पर गुजरेगी, उसकी थोडीसी भी कल्पना यदि किसीको होगी तो शंबुककी कथाके सब आक्षेप स्वयं मिट जांयगे ।

सब शूद्र उत्पादक व्यवसाय करनेवाले हैं । सब कारीगर (Arts-men and Crafts-men) शूद्र हैं। यदियॆ सब लोग तप करने बैठें,तो राष्ट्र की उत्पादक शक्ति नष्ट हो जानेसे यह राष्ट्र आर्थिक संकट के कारण मिट्टी में मिल जायगा। यदि शूद्र अपने उत्पादक धंधे बंद कर दें, तो वैश्य व्यापार किस बातसे करेंगे ? व्यापार के लिए कुछ न कुछ उत्पन्न होने की आवश्यकता है । उत्पन्न करले वाले शूद्र तपस्या करने में दिन बितावें तो वैश्यों का व्यवसाय बैठ जायगा । इससे संपत्ति नष्ट हो जावेगी। तब क्षत्रियों को रक्षा करने के लिए कुछ बचेगा ही नहीं । क्षत्रिय और ब्राह्मण ये दो वर्ग राष्ट्रमें अनुत्पादक व्यवसाय करनेवाले होते हैं। वैश्य लोग अंशतः उत्पादक धंधा करते हैं और शूद्र संपूर्णतया उत्पादक धंदा करते हैं ।

राष्ट्रमें यदि सुस्थिति रखनी हो तो अनुत्पादक व्यवसायों में अनावश्यक भीड न होने देनी चाहिए; और उत्पादक धंधों में ऐसा प्रबंध होना चाहिए जिससे परस्पर स्पर्धा न बढे। हमारे चातुर्वर्ण्य में यह बात उत्तम रीतिसे साधी गई थी। ब्राह्मण प्रतिशतक पांच, क्षत्रिय प्रतिशतक पचीस, वैश्य प्रतिशतक दस और शूद्र प्रतिशतक साठ यह है प्राचीन प्रबंध। धंदे भिन्न भिन्न जातियों में बांट दिये हैं अतः परस्पर स्पर्धा होनी संभव ही नहीं। सब धंदे समान महत्व के गिने गये हैं, एक जाति दूसरी जाति का धंदा न करे यह मूल भावना है इन कारणों से अपने धंदों को इतना अधिक संरक्षण मिला है कि जितना संरक्षक जकात (कर) से भी मिलना संभव नहीं। परतंत्रता के कारण सभी लोगों के व्यवसाय बैठ गये यह प्रश्न ही भिन्न है। परंतु स्वतंत्रता होने पर इस संरक्षण से जो लाभ हो सकते हैं वे पिछले इतिहासमें आज भी हम देख सकते हैं।

आजकल राजनिर्बंध न होने के कारण ब्राह्मण लुहार बने और क्षत्रिय हाथ में लोटा-आचमनी ले पंडिताई करने लगे। परंतु इससे जो हानि हुई वह हृदयद्रावक है। वर्तमान समय में बी. ए. पढा हुआ मनुष्य मास्टरी अर्थात् ब्राह्मणों का धंधा करके चालीस रुपये बडी कठिनाई से पा सकता है। परंतु अपढ बढई सहज ही में साठ सत्तर रुपये महावारी कमा लेता है। अनुत्पादक धंदे का शिक्षक और उत्पादक धंदे का बढई दोनों की आमदनी का अंतर विचारणीय है। शिक्षक के व्यवसाय में आदर का मोह है। तो उस आदर के लिए आमदनी डुबानी पडती है और शरीर खराब करना पडता है। आदर या मान कुछ कम रहते भी उत्पादक धंदों में लगे हुए लोगों का शरीर स्वस्थ, बलवान और नीरोग रहता है। पहले धंदे जातियों पर अवलंबित रहते थे वैसे अब नहीं हैं; पर ध्यान रहे कि शारीरिक स्वास्थ्य व्यवसायों पर निर्भर है। एक ही बढई के घर में एक भाई बढई और दूसरा शिक्षक बना, तो शिक्षक की अपेक्षा बढई ही अधिक धन प्राप्त करता है और स्वस्थ एवं सुदृढ रहता है। और धनको उत्पन्न करता है।

ब्राह्मणों के व्यवसाय के काम प्रायः बैठकर ही करने पडते हैं। अर्थात् शारीरिक श्रम बहुत कम होते हैं। इससे बुद्धि और विचार-शक्ति बढती है परंतु शरीर क्षीण होता है। इसीसे इस अनुत्पादक धंदेमें प्रतिशतक पांचसे अधिक लोग न होने चाहिए। अन्य सब व्यवसायों में व्यावहारिक कामों के योग्य बुद्धि बढती है, संपत्ति मिलती है और शरीर मजबूत रहता है। इसी से इन धंदों में पंचानवे प्रतिशतक मनुष्य रहने चाहिए।

क्षणभर मानलो कि ब्राह्मणों के व्यवसाय में नब्बे प्रतिशतक लोग हो गये और अन्य कामों के लिए दस प्रतिशतक लोग ही रहे, तो आर्थिक अडचनों के मारे राष्ट्र मरणोन्मुख हो जावेगा। ठीक ऐसा ही आज हमारे देश का हाल है। यदि अब्राह्मणों का आन्दोलन और भी बढ जायगा तो हमारा देश अधिक आपत्ति में ही पडेगा। शिक्षित लोगों की बेकारी का यही सच्चा कारण है। यदि हर एक मनुष्य मनचाहा उद्योग करने की स्वतंत्रता पा लेवे तो स्पर्धा उत्पन्न होकर लाभ का घट जाना अपरिहार्य हो जाता है।

" स्पर्धा व्यवहार की जननी है सही, पर वह लाभ का वध करनेवाली भी है। " यह अर्थशास्त्र का सिद्धान्त भूल जाने से काम न निकलेगा। यदि यहाँ भी यही बात शुरू हो जाय कि जिसको जो चाहे सो व्यवसाय करे तो बेकार लोगों की संख्या भी अपरिमित बढ जावेगी।

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि तप किसको करना चाहिए और किसको तप न करना चाहिए। इस बात का विचार करते समय देश की आर्थिक परिस्थिति और उत्पादक तथा अनुत्पादक धंदों में लगे हुओं के संख्या प्रमाण पर भी दृष्टि डालनी होगी। राष्ट्र में यह संख्याप्रमाण सदैव सम होना चाहिए विषम कदापि न होने पावे। उसमें अमुक जाति का महत्व बढाना और अमुक जाति का महत्व घटाना ऐसी क्षुद्र भावनाओं के लिए स्थान ही नहीं रहता।

अब शंबूक की कथापर विचार करें। यह कथा रामायण के अंतिम भाग में लिखी गई है। सब

संशोधकों का एकमतसे यही कहना है कि महाभारत के पश्चात् रामायण लिखी गई । सब लोग मानते हैं कि महाभारत का अंतिम संस्करण ईसाके पूर्व तीन चार शतक में लिखा गया । उसके पश्चात् रामायण का अंतिम काण्ड लिखा गया होगा । अथवा यदि यह मान लिया जाय कि प्रक्षिप्त भाग उस समय लिखा गया तो वाचकों को सहज ही में प्रतीत होगा कि वह ऐसा समय था जब बौद्ध मत का प्रभाव चारों ओर प्रस्थापित था ।

बौद्धोंने जातिभेद तोड दिया, वर्ण नष्ट किये,और सबके लिए सम प्रमाण में निर्वाण का मार्ग खोल दिया । बौद्ध-संघोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एकसे हो गये । सभी मोक्ष के अधिकारी थे । निर्वाण के सिवा अन्य बात किसीको भी मोहक न थी; अतः हर कोई सीधा मोक्ष का मार्ग लेता, तप करता, और शरीर को कष्ट देता । फिर अन्य व्यवसाय कौन करता ? बस यही सारे देश का हाल था । सभी को निर्वाण प्राप्तिके लिए उत्सुक बनाकर भगवान् बुद्धने ही इस आपत्तिको देश पर लाई। संसार की आवश्यकता ही क्या? यह कह कर कोई भी विवाह करके प्रपंच के लिए तैयार न होता था । हमे निर्वाण चाहिए, संसार के मोहमें कौन पडे ? यह कह कर बहुतेरे लोग अपना अपना व्यवसाय छोड कर निर्वाण के लिए बौद्ध-विहारों में इकट्ठे हुए । अब वाचक स्वयं सोचें कि राष्ट्र पर इस समय क्या बीति न होगी ? मोक्ष के प्रलोभन से लोगों को छुडाना अति ही कठिन काम है । बौद्धों की अविचारी समता और निर्वाण की लालसाने लोगों की जो भयंकर हालत कर दी थी, उसकी कुछ कल्पना करनी हो तो क्षणभर सोचिए कि खेती की फिकर छोड कर यदि सब किसान तप करने लगें या ऐसे ही अन्य किसी कार्यमें लग जावें तो फसल का क्या हाल होगा ?

ऐसी अवस्था में धर्माचार्योंपर कैसा भारी उत्तरदायित्व आ पडता है ! ! लोगों को निर्वाण की भूख लगी, उन्हे अन्य कुछ भी न सूझता था, संपूर्ण कारीगरी के काम बंद हो गए, सब व्यवसाय रुक गए, इससे सब लोग आर्थिक संकट में पड गए, सभी लोग 'भिक्षु' बनने लगे । अब इन निर्वाण-पथ-स्थित भिक्षुओं को भिक्षा कौन दे ? भिक्षा देनेवाले भी तो आवश्यक हैं न ? इन भिक्षुओं की संख्या जब तक प्रतिशतक चार या पांच रहती है, तब तक वे देशं के लिए बोझ नहीं होते । परंतु यदि वे पचास प्रतिशतकसे भी अधिक हो जाँय तो समाज पर कितना बोझ पडेगा ? चारोंही वर्णोंके स्त्री-पुरुष निर्वाण की आशा से भिक्षु बने । वे स्त्री-पुरुष विहारों में खा-पीकर आराम से पडे रहने लगे । तब उनमें अनैतिक विहार आरंभ हुए । यहां तक कि भगवान बुद्ध को भी बुढापेमें पश्चात्ताप करना पडा । यह बात भगवान बुद्ध के चरित्रमें ही लिखी है। उस समय के धर्माचार्यों के सन्मुख दूसरी बृहत् समस्या यह थी कि गृहस्थाश्रम की संस्था पुनः किस प्रकार आचार में प्रचलित की जाय ? कारण यह था कि भिक्षु और भिक्षुणीयां विहारों में उक्त प्रकार से रहने लगे जिससे कुटुंब-संस्था ही नष्ट हो गई थी ।

तीसरा प्रश्न जो उस समय के आचार्यों के सन्मुख उपस्थित हुआ वह यह था कि वृद्धोंको कौन सम्हाले ? तरुण पुरुष और स्त्रियां भिक्षु और भिक्षुणी बन गईं तब घरमें जो वृद्ध स्त्री-पुरुष बचें उनकी देखभाल करनेको कोई न बचा । अतः उन वृद्धों को बडा कष्ट होने लगा । इस संकट से उन्हे बचाना आवश्यक हो गया ।

ऐसे कई अनिष्ट परिणाम बौद्ध धर्म की क्रांति के कारण और निर्वाण का मोह तीव्रतम हो जाने से हुए । देश के तत्कालीन लोगों पर हुए इन सब कुपरिणामोंका विचार यहां करने की आवश्यकता नहीं । प्रस्तुत विषय के लिए उक्त तीन प्रश्नों का विचार करना ही पर्याप्त होगा ।

उक्त आपत्तियों में से एक एक भी राष्ट्र का नाश करने में समर्थ है । तब वे तीनों आपत्तियां जिस समय इकट्ठी आन पडीं उस समय के अनर्थ का क्या कहना ? उसकी तो केवल कल्पना ही की जा सकती है । विचार शील मनुष्य समझ सकते हैं कि धर्मके संचालकोंको उस समय एक जटिल समस्या का सामना करना पडा होगा । सब लोग समता, विश्व-

बंधुत्व, निर्वाण, अहिंसा आदि श्रेष्ठ-तत्वोंके तूफान में फंस गये थे, इससे संसार में बैठने के लिए कोई तैयार न था। इस बिगडे सिलसिले को सुधारना और वर्णाश्रम धर्मसंस्था पर सबको लाना बडा कठिन काम था। इस दशा को आज भी सब लोग समझ सकते हैं क्यों कि आज भी समाज का सिलसिला बिगड गया है और वह सुधारने से भी नहीं सुधारता।

समाचारपत्र और मासिक पत्रिकाएँ चला कर समाज का मन बदलने का वह समय न था। उस समय मोक्ष की इच्छा अत्यंत जागृत थी। अतः यदि कुछ संभव था तो इस मुख्य बात के अनुकूल पुराणकी कथाओं से ही संभव था। हरिदास और पौराणिक लोग समाज में इन कथाओं को कहकर ही जनता का मन झुकाने की चेष्टा करते थे। अतएव जो कुछ सुधार करना हो वह पुराण की कथाओं से, स्मृतियों के अर्थ बदलकर, कथाओं के रूपक बैठालकर, उपनिषद् और गीता के श्लोकों का इष्ट अर्थ करके ही हो सकती थी। इस परिस्थिति को थोडे समयमें बदलना असंभव था। इसीसे इतिहास और पुराणों में काल की परिस्थिति के अनुरूप कथाएं बनाकर शामिल की गईं। इन कथाओं के लेखकों का उद्देश बुरा न था क्यों कि वे आजकल के नेताओं के समान स्वार्थ साधने की गरज से सत्य को झूठ सिद्ध करनेवाले न थे। अब तक हमने जिस परिस्थिति का वर्णन किया है, उस कठिन परिस्थिति को यदि अच्छी तरह समझ लें, तो विदित होगा कि ऐसी महत्तर आपत्ति को पार कर समाज को सुरक्षित रखने के लिए जो कथाएं लिखी गईं उनका महत्व क्या है ?

प्रथम हम शंबूक की कथा ही लेंगे। उसमें लिखा है कि " यदि शूद्र तपस्या करे तो आर्थिक पाप होता है और उससे लडके अकाल में मरते हैं।" वाचक उपरोक्त वर्णन से जान सकते हैं कि यह पाप कैसे होता है। कारीगर लोग यदि धनोत्पादक उद्योग-धंदे छोडकर तपस्या के समान अनुत्पादक व्यवहार करने लगें तो समाज में धन नहीं रहता और दिन प्रतिदिन दरिद्रता आती जाती है। दारिद्र्यावस्थामें बालकों की मृत्युसंख्या बढना स्वाभाविक ही है। दरिद्रता के कारण बडे बडे मनुष्य भी छोटी उमर में मरने लगते हैं, तब छोटे बालक मरेंगे इसमें आश्चर्य ही क्या ? जब यह बात हम समझ लेंगे तब हमें विदित होगा कि शूद्र के पाप का बालक की अल्प वय की मृत्यु से क्या संबंध है। तभी हम लोग यह भी जान लेंगे कि कथा की बात ऊटपटांग नहीं है।

कथा का उद्देश और उस समय की परिस्थिति को देखने से पता चलता है कि पवित्र और उच्च लेखक के स्वप्न में भी अमुक जाति का महत्व घटाना और अमुक का बढाना ऐसी कोई बात न थी। लेखक का एकमात्र श्रेष्ठ उद्देश था कि अनुत्पादक धंदों में अनावश्यक भीड न हो और अनुत्पादक धंदों की ओर झुका हुआ जन समाज उस ओर से लौट पडे।

अब वर्तमान परिस्थिति की ओर दृष्टि डालिए। इस समय समता, विश्व-बंधुता जैसे अनेक मोहक नामों से देशके कारीगर लोग मुंशीगिरी, शिक्षक का काम आदि अनुत्पादक पेशों को प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। वे इस समय समझते हैं कि यह बडा प्रगतिक कार्य है। परंतु यह आंदोलन बुद्ध आंदोलन जैसा ही है। यदि जाति-विशिष्ट भावना को बिलकुल छोड दें और सोचें कि संपूर्ण भारतवर्ष के मनुष्यों में से लोग उत्पादक और अनुत्पादक व्यवसायों में किस प्रमाण में बँट रहे हैं तो स्पष्ट होगा कि हमारे टूटे फूटे स्वराज के दिनों में जितने लोग धनोत्पादक धंधो में लगे हुए थे उससे अब बहुत ही कम लगे हैं। अनुत्पादक धंधों में भीड होने लगी है और इससे चारों ओर बेकारी बढने लगी है और दारिद्र्य बढ रहा है।

यूरोपीयन लोगों की बहुत दिनों की यही इच्छा है कि इस भारतवर्ष में जातियां आपस में लडें और कोई भी धनोत्पादक धंदा न करे। यूरोप में उद्योग -धंधों की वृद्धि होवे और हिंदुस्थान उनका सदा का ग्राहक बन जाय। यहां जो शिक्षा प्रचलित है जिसके कारण हिंदुस्थानी लोग उत्पापक धंदे कर ही नहीं सकते और अनुत्पादक धंदों में ही अधिक

ध्यान देते रहते हैं। यह शिक्षा भी इसी गरज से जारी है। इस शिक्षा में ही पले हुए हमारे नेता भी समता, विश्व-बंधुता आदि शब्द सीख गये हैं। परंतु हम नहीं जानते कि उसके भीतर उलटे स्क्रू के चक्कर से हम किस प्रकार नीचे गिर रहे हैं। वर्तमान समय की आपत्ति न तो धार्मिक है और न राजनैतिक है, वह केवल आर्थिक है। यह वास्तविक सत्य होते हुए भी चतुर यूरोपीयन लोगोंने भारतीय कारीगरों को विश्वास करा दिया है कि जिन यूरोपनिवासियों ने उन के व्यवसाय डुबोये और उन्हे सदा के लिए आर्थिक संकट में डाल दिया, वे यूरोपीन ही उनके तारक हैं और शिक्षित तथा प्रगति करती हुई हिन्दी जातियाँ ही उनकी मारक हैं !! आज की शिक्षाने जो मोहनी फैलाई है वह यही है। इस शिक्षा की पद्धति में भी कैसा भारी राजकाज है सो इन लोगों को कुछ वर्ष के बाद मालूम होगा। इस बात के लिखने का कारण यही है कि शंबूक की कथा जैसे रामायण के लिखने के समय उपयोगी थी वैसे वह आज भी है। उसका उपदेश समझने की जितनी आवश्यकता आज है उतनी आवश्यकता शायद उन दिनों में भी न थी, जब कि यह कथा लिखी गई थी। उस समय देश की भीतरी क्रांति से लोग अनुत्पादक धंदों को अपना रहे थे, पर आज परकीय शासन के कारण देश के उत्पादक धंदों को डुबाकर परकीयों के कारखानों को जीवित रखने के लिए ये लोग अनुत्पादक व्यवसायों की ओर प्रवृत्त किये जा रहे हैं। इससे प्रतीत होगा कि ये आंदोलन करनेवाले लोग अपनी ही हलचल से 'स्वतः का नाश और शत्रु का लाभ कर रहे हैं।" यही कारण है कि वर्तमान समय की परिस्थिति बहुत विकट है।

इस व्यापक दृष्टि से देखने से प्रकट होगा कि अब्राह्मणों का—क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका-अनुत्पादक धंधों में पडना उन्हीका नाश करावेगा। यह राष्ट्रीय पाप है।

हम वाचकों को सूचित करते हैं कि वे उक्त दृष्टिसे शंबूक की कथा को देखें। उस कथा में उन्हे सनातन आर्थिक सिद्धान्त ही दिखाई देगा। यूरोपीयन लोग और उनके अनुगामी कुछ देशी विद्वान बारंबार कहते रहते हैं कि ये और ऐसी कथाएं पीछे से पुराणों में घुसेड दी गई, इन कथाओं में विषमता की भावना भरी है, ये कथाएँ अनैतिहासिक एवं कभी न घटी घटनाएँ हैं। हमी लोगों में से कई लोग हैं वे इन बातों पर विश्वास करते हैं। परन्तु कोई भी यह नहीं देखता कि इन कथाओं की जड में कौनसा सिद्धान्त स्थित है। इसपर आश्चर्य न करें तो और क्या करें ?

अब तक इस का विचार कर देखा गया कि इस कथा का उद्देश क्या है। इन लोगोंका दूसरा सिद्धान्त है कि "ब्राह्मणों का महत्व बढाने के लिए ऐसी कथाएं लिखकर पक्षपात किया गया है। इस सिद्धान्त का अब विचार करना है। इस बात का विचार करने की गरज से ही इस लेखके आरंभ में हमने दो घटनाओं का उल्लेख किया है। देखना है कि उन आपत्तियों से बचने के लिए पुराण के लेखकों ने कौनसी कथाएँ रचीं।

महाभारत के आदि-पर्व के आरंभ ही में जरत्कारु नामके तपस्वी विद्वान ब्राह्मण की कथा है। "इस ब्राह्मण विद्वान ने निश्चय किया था कि आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा और इसी निश्चय से वह तपस्या कर रहा था। आगे चलकर उसे उसके पितरों का दर्शन हुआ। ये पितर इस विद्वान के अविवाहित रहने से दुःखी थे क्योंकि उन्हे सद्गति नहीं मिलती थी। तब आगे चलकर पितरों को सद्गति प्राप्त करा देने के लिए जरत्कारुने विवाह किया। इस जरत्कारु के पुत्र उत्पन्न होते ही उसके पितरों को सद्गति मिली।"

इस कथा में लोगों को विवाह करके गृहस्थाश्रम स्वीकार करने का उपदेश किया गया है। इसमें कहा गया है कि अविवाहित रह कर ही तप करने से सद्गति नहीं मिलती अपितु पुत्र उत्पन्न कर वंश चालू रखना ही आवश्यक है। इस कथा में ब्रह्मचर्य या तपस्या का पाप करनेवाला ब्राह्मण है। यहां भी जाति के संबंध की निंदा अथवा प्रशंसा नहीं है। किन्तु इसमें अत्यंत सद्धेतु ही अभिप्रेत है और वह उद्देश यही है कि बौद्ध धर्म के कारण नष्ट

मुद्रक तथा प्रकाशक--- श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय ।
स्वाध्याय मंडल औंध जि. सातारा

REGISTERED 1463

वर्ष ८ अंक ५ **क्रमांक** ८१ वैशाख संवत् १९८४ मई सन १९[illegible]

छपकर तैयार है।

महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय≡)

वी. पी. से ॥।=)

मंत्री.- स्वाध्यायमंडल औंध (जि. सातारा)

संपादक---श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य--- म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

वर्ष ८
अंक ५
क्रमांक ८९

वैशाख
संवत् १९८४
मई
सन १९२७

वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

दिव्य मनुष्य ।

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽ मध्यमासो
महसा वि वावृधुः । सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो
दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥

ऋग्वेद ५ । ५९ । ६

" (ते) वे सब (अ-ज्येष्ठाः) बडे नहीं हैं, (अ-कनिष्ठासः) कनिष्ठ नहीं हैं, (अ-मध्यमासः) मध्यम भी नहीं हैं, परंतु वे सब के सब (उद्भिदः) उदय को प्राप्त करने वाले हैं, इसलिये (महसा) उत्साहसे (वि वावृधुः) विशेष रीतिसे बढने का यत्न करते हैं । (जनुषा) जन्मसे वे (सुजातासः) उत्तम कुलीन हैं और (पृश्निमातरः) भूमि को माता माननेवाले अर्थात् मातृभूमिके उपासक हैं, इसलिये ये (दिवः मर्याः) दिव्य मनुष्य (नः अच्छा) हमारे पास अच्छी प्रकार (आजिगातन) आ जावें । "

सब मनुष्य समान हैं । जन्मसे उच्च नीच यह भेद असत्य है । इस लिये सब अपने आपको इस प्रकार समझ कर मातृभूमिकी सेवा करनेकी पराकाष्ठा करें और सबकी उन्नति करने में अपना सामर्थ्य खर्च करे ।

—०—

स्वाध्याय मंडल का कार्य ।

१ यजुर्वेद की छपाई ।

यजुर्वेद की छपाई वेगसे चल रही है। १२ अध्याय छप चुके हैं और आगे छपाई चल रही है। प्रत्येक मंत्र स्वतंत्र और स्पष्ट अक्षरोंमें पदच्छेदपूर्वक दिया है। पुस्तक अति शुद्ध छपने का यत्न किया जा रहा है। युरोपमें छपे पुस्तक, प्राचीन हस्तलिखित अनेक पुस्तकें, भारत वर्षमें मुद्रित पुस्तकें इनकी सहायताके अतिरिक्त यजुर्वेद कण्ठस्थ रखनेवाले पंडितों की भी पूर्ण सहायता से यह पुस्तक मुद्रित हो रहा है। तथा पाठ निश्चित करने में बडा प्रयत्न किया जा रहा है।

उदाहरणार्थ यजु. अ. ११। ८० मंत्रका अंतिम भाग जर्मन, अजमेर तथा मुंबई मुद्रित पुस्तकों में " भस्मसा कुरु " ऐसा छपा है। वास्तव में " मस्मसा कुरु " ऐसा पाठ शुद्ध है। इस प्रकार बहुतसी बातोंका विचार होकर अतिशुद्ध पाठ मुद्रित किया जा रहा है। पाठक शीघ्रता कर रहे हैं; परंतु इसप्रकार छपाई करनेके लिये श्रम और समय अधिक ही लगेगा और यह कार्य अति शीघ्र होना असंभव है। इसलिये देरीकी क्षमा पाठक करेंगेही। संपूर्ण यजुर्वेद और दो मासमें पूर्ण छप जायगा। नित्य पाठके लिये यह पुस्तक अत्यंत लाभदायक होगा। इस पुस्तक के साथ सर्वानुक्रम, मंत्रपाद सूची, ऋषि सूची, देवता सूची आदि सब देनेका विचार किया है। इसके पश्चात् अथर्ववेद छप जायगा।

२ छूत अछूत ।

छूत अछूत पुस्तक के द्वितीय भाग का मुद्रण शुरू है। करीब आधा छप चुका है और आगे छप रहा है। अगले मासमें संपूर्ण छपकर तैयार होगा। छूत अछूत के विषय में अर्थात् अछूतताके निवारण के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं उनके लिये यह पुस्तक विशेष सहूलियतसे दी जायगी। यह पुस्तक प्रचारार्थ ही छपी है। यदि पाठक इसका प्रचार करेंगे तो उनको पूर्ण सहूलियत दी जायगी।

३ अथर्ववेद स्वाध्याय ।

पाठक अथर्ववेद स्वाध्याय शीघ्र छापने के लिये प्रेरणा दे रहे हैं। " वैदिक धर्म " में हम प्रतिवार २४ पृष्ठ छाप रहे हैं। हमारा विचार है, यदि ग्राहक बढ जांयगे तो इतने ही मूल्य में हम आठ पृष्ठ और अधिक दे सकेंगे अर्थात् अथर्व वेद स्वाध्याय के ३२ पृष्ठ प्रतिवार दे सकेंगे। इसके अतिरिक्त १६ पृष्ठ अन्य रहेंगे ही। अर्थात् यदि ग्राहक संख्या बढ गई तो हम वैदिक धर्म मासिक ४८ पृष्ठोंका करनेका विचार कर रहे हैं। परंतु यह हमारी इच्छा पाठकों की सहायता पर ही निर्भर है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और ग्राहक बढाने में योग्य मदत देंगे।
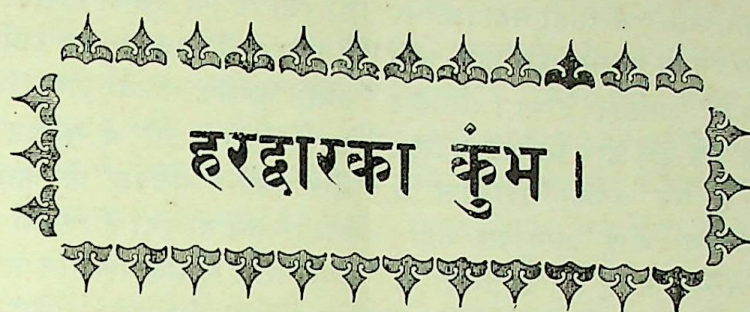
हरद्वारका कुंभ।

हरद्वार में कुंभ मेला बडी धूम धामसे चल रहा है। पं० मदनमोहन मालवीय जी साधु-संगठन में लगे हैं और बहुत आशा हो रही है कि इन साधुओंकी शक्ति राष्ट्रकार्य में परिवर्तित हो जायगी। साधुसंत करीब एक करोडसे अधिक इस भारत वर्ष में हैं। उनके खानपान के लिये भारत वर्ष का कई करोड रुपया खर्च हो रहा है। परंतु शोक इस बातका है, कि इन, एक करोड आदमियों को देश का अथवा समाज का एक अंशमात्र भी ख्याल नहीं है। इस कारण यह करोडों रुपयों का व्यय व्यर्थ ही हो रहा है। यदि ये साधुसंत, अछूत-उद्धार, पतितपरावर्तन शुद्धि, संगठन, बालशिक्षा, स्त्रीशिक्षा, निरक्षरों को साक्षर बनाना आदि कामों में लग जांयगे तो देश का बहुत लाभ हो सकता है। परंतु साधुसंत जिस रीतिसे इस समयतक पाले गये हैं और खिलाये जा रहे हैं, उस रीतिके होते हुए कोई सुधार होना संभवनीय नहीं दिखाई देता है।

इस लिये उनके लिये होने वाले दान का व्यय करनेवाली एक मंडली होनी चाहिये और जो साधु, बैरागी या उदासी संन्यासी उस मंडली के आधीन कार्य करे उसी को दान देना चाहिये। अन्योंको कोई दान न दिया जावे। यदि इस प्रकार दान पर कुछ नियंत्रणा हो जायगी तो ही उदासियों का सुधार संभवनीय है अन्यथा कोई सुधार नहीं होगा। क्यों कि भोले हिंदु लोग भगवे कपडे देखकर दान देते ही जांयगे और जब कार्य न करते हुए पालना होती रहेगी तब कार्य करेगा कौन? अतः कुंभमेलों पर व्याख्यान करने की अपेक्षा "साधु सुधार समिती" की स्थापना होनी चाहिये और उसकी शाखाएं स्थान स्थानपर दक्षतासे कार्य करने के लिये नियुक्त होनी चाहिये।

साधु और सन्यासियोंकी अव्यवस्था हद दर्जेकी है। अखबारों द्वारा प्रसिद्ध हुआ है कि इन उदासियों की हुल्लडसे हरद्वारके मेले में करीब चालीस आदमी मर गये और करीब उतने ही दब गये। अर्थात् इन साधुओंको इतनी धुंद चढी हुई है और उनको दूसरों की जानकी भी इतनी पर्वाह नहीं है कि इनके मेलेके एक ही दिन में चालीस पचास आदमी केवल घसीटा घसीटी से ही मर सकते हैं!! इन के अमानुष बदइंतजामीका कोई और सबूत देनेकी आवश्यकता नहीं है। हम पहिले स्नान करेंगे और दूसरे पीछे से करेंगे, इसी विवादसे इतने आदमी पीसे गये! बैरागी और उदासी जो इतनी लापर्वाहीसे बर्ताव कर सकते हैं वे जनता का सुधार क्या कर सकते हैं?

भीडमें किस प्रकार चलना चाहिये यह बात हिंदुस्थानियों को अभी सीखनी है। स्टेशनपर तिकिटे लेने के समय, स्टेशन के दरवाजेमें से अंदर घुसने या बाहर आने के समय, रेल के द्वार से अंदर घुसने के समय तथा इसी प्रकार के अन्यान्य प्रसंगोंमें हिंदी लोग जो बर्ताव करते हैं वैसा बर्ताव किसीभी सभ्य देशमें नहीं किया जाता, इतनाही नहीं परंतु यदि यूरोप में कोई ऐसा बर्ताव करेगा तो उसी समय दंड का भागी होगा।

परंतु यहां कोई उसका ख्याल करताही नहीं। कतार बांध कर ये कार्य करने से किसी को कष्ट नहीं होंगे और सब का कार्य शांतिसे होगा। तिकिट घर के छोटे सुराखसे जब दस हाथ तिकिट के लिये अंदर घुसेड देते हैं तब उनको पशुवृत्ति में फंसे द्विपाद प्राणी समझना कोई अत्युक्ति नहीं। भारत वर्षमें यही वृत्ति सब जगह है। बैरागियों में यह सबसे अधिक है, इसी लिये ही हरद्वार में उनकी भीड में चालीस आदमी दब गये और सीधे स्वर्गधामको पहुंच गये।

वास्तवमें व्यवस्था, इंतजाम, शांतिसे कार्य करने आदि सभ्यताके शुद्ध गुणों में उन्नति करने का ही यह समय है। अव्यवस्था, बद इंतजामी, अशांति आदि के कारण हमारा इतना नुकसान हो रहा है कि उसका हिसाब लगानाही अशक्य है। परंतु वृत्तपत्रकार इन राष्ट्रीय आवश्यक गुणोंकी उन्नति करनेके लिये लेख लिखना पसंदही नहीं करते !! सभाओं में गडबड, रेलमें गडबड, यात्रा और मेलों में गडबड के कारण हमारे देश की इतनी हानि हो रही है कि जो कार्य हम करते हैं वे हमारे लिये लाभदायक होने के स्थानपर हानिकारक हो रहे हैं!!! कुंभ मेला धार्मिक मेला है। भारत वर्ष धर्म के लिये प्रसिद्ध है। ऐसी अवस्था में धार्मिक देशके धार्मिक मेले में संमिलित होने वालों की बद इंतजामीसे चालीस आदमी दबकर मर जाते हैं, यह इस देशकी धार्मिकताके लिये लांछन है। धार्मिक लोग इस का विचार करें और अपने स्थानपर इस विषयमें जो हो सकता है करें।

हमारी शारीरिक शक्ति के ऱ्हासके कारण।

पिछले भागों में बतया गया है की हमारे शरीर का ऱ्हास किस प्रकार हो रहा है और शरीर के बल का क्या महत्व है? अब हमें विचार करना है कि इस ऱ्हास को किस प्रकार रोक सकते हैं और शरीर के बल को किस प्रकार सुधार सकते हैं? इसके पहले हमे एक बात और करनी चाहिये। वह बात यह है कि हम लोग विचार करें कि किन किन कारणों से हमारे शरीर का ऱ्हास हुआ। किसी रोग का कारण मालूम हो जाने पर जिस प्रकार उसकी चिकित्सा करना सरल हो जाता है उसी प्रकार इस ऱ्हास के कारण मालूम हो जाने से यह भी मालूम हो जावेगा कि उसे किस प्रकार रोकें। इसी लिये पहले अपन यह देखें कि अपने शरीर के ऱ्हास के क्या कारण हैं?

(१) क्षात्र कार्यक्षेत्रका अभाव।

यह बात सिद्ध ही है कि हमारा दुर्भाग्य और हमारे समाज का जीर्णत्व इस ऱ्हास के अपरिहार्य कारण हैं। यह प्रथा है कि किसी बात के काल, आकाश आदि नित्य कारणों को छोड देते हैं और उसके विशेष कारण देखे जाते हैं। उस प्रथा के अनुसार इस ऱ्हास के विशेष कारण देखें तो उनमें से मुख्य कारण यह दिखता है कि फौजी मुहकमे में बडे बडे ओहदे हिन्दुओं को न देने की सरकार की नीति है। इस देश पर अंग्रेजों के शासनके इस काल में एक अत्यंत दुःखदायक बात हुई है वह यह कि लोगों में संग्राम-पराङ्मुखता और भीरुता की वाजिब से बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

व्यक्ति के समान राष्ट्र को भी व्यायाम की आवश्यकता होती है। लोगों के धैर्य, साहस, कर्तृत्व-शक्ति आदि गुण प्रगट होकर उनका विकास होने के लिये देशपर कुछ संकट आने चाहियें और उन संकटों का लोगों के द्वारा ही निवारण होना चाहियें। एक कहावत है कि "वे संकट जो मनुष्य को बिलकुल कुचल नहीं डालते, मनुष्य के गुरु और उपकार कर्ता हैं।" हम लोग इस कहावत को यथार्थ मानते हैं। तब वह देश के लिये भी कामयाब क्यों न होगी? यदि कोई यह कह कर हमारा सांत्वन करना चाहें कि हमारे देशवासी पलटनमें भरता हुई हैं और वे लडाइयां भी लडते हैं इसलिये यह कहना व्यर्थ है कि हम लोगों की नामर्दी का कारण अवास्तव शांतता है। किन्तु इस प्रकार समझना व्यर्थ है। क्यों कि इस कथन का तब तक कुछ मतलब ही नहीं है जब तक जिस किसी की इच्छा हो उसे फौज में भरती होने की गुंजायश नहीं है और भरती होनेपर उसकी लियाकत के अनुसार उसे उत्तरदाई ओहदा नहीं मिलता। इतने ही से यदि बहादुरी की शिक्षा मिलती तो ताजमहल बनाने वाले कारीगर भी अभिमान से कह सकते हैं कि वे पत्थर काटने वाले या चूने की टोकनी ढोने वाले मजदूर को शिल्प-कला की शिक्षा देते हैं! प्रत्यक्ष अंग्रेजों को हमारा यह सवाल है कि, "यदि फ्रान्स तुम्हारी सब लडाइयां लडने का ठेका सौ साल के लिये ले लेवे, तो तुम उसे कितनी खुशी से मंजूर करोगे? और इसके लिये तुम फ्रान्स के कितने उपकार मानोगे?" निश्चय जानो कि अंग्रेज इस बात को कभी न मानेंगे। तब क्या इस बात का दोष सरकार के मत्थे नहीं है कि भारतवासि को शांतता देकर वे नामर्द बना दिये गये?

(२) लडकों की कमजोरी।

लडके को मकान से बाहर न निकल ने दें, उसे घर में ही निठल्ले बिठालकर उसे डरपोक, नजाकती तथा निरुपयोगी बना दें और उसे कहें कि 'हमने तुम्हे गर्मी तथा सर्दी से कुछभी कष्ट न होने दिया।' तो वह लडका अपने पालक के प्रति कृतज्ञ कैसे हो सकता है? या वह पालक कृतज्ञता के लिये कितना योग्य हो सकता है? बस हमारी कृतज्ञता के लिये हमारी सरकार इतनी ही योग्य है। हिन्दुस्थान की बेबन्दशाही को नष्ट करना बहुत ही आवश्यक था। किन्तु फजूल और बे मतलब के लाड करने वाले माता पिता का प्रेम जिस प्रकार लडकों को नुकसानदायक होता है उसी प्रकार सरकार की अवास्तव शांतता प्रदान की नीति का फल जनताकी नामर्दगी हुआ है।

३ सुराज्यसे स्वराज्य अच्छा।

"परकीयों के अच्छे सुराज्यसे अपना स्वराज्य हजार गुणा अच्छा है, यह श्री स्वामिजीने अपने सत्यार्थ प्रकाशमें कहा है, इसकी सत्यता पाठक इस विचारसे देख सकते हैं कि इस विदेशी शासन के कारण हमारा क्षात्रतेज प्रतिदिन न्यून होने लगा है।

परकीयों का राज कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसके अधिकार में रहने वाले लोगों को लडाई के तथा अपने खुद के पराक्रम से शत्रु से अपना रक्षण करने के मौके न मिलें तो देश के लोगों को कैसी भारी हानि होती है? जिस समय रोमन लोगोंने ब्रिटनको जीता, उस समय लोगों की रक्षा की जबाबदेही रोमन लोगों ने खुदपर ही ले ली। इससे ब्रिटिश लोगों को जो हानियाँ हुई उनमें सबसे बडी हानि यह हुई कि ब्रिटिशों को लडाई के मौके न मिले। इससे वे नामर्द बन गये और आत्मरक्षा के लिये भी अयोग्य एवं असमर्थ बन गये। परिणाम यह हुआ कि ज्यूट्स, सेक्सन आदि लोगों ने उन्हे सहज ही में जीत लिया। यह मनगढन्त नहीं है अंग्रेज इतिहास लेखक भी इसे मानते हैं। यदि हम कहें कि अंग्रेज इस बात को जानते हुए भी हम लोगों को स्वतन्त्र रीति से लडाई लडने का मौका नहीं देते और इसी लिये हम लोगों में नामर्दी आगई है तो उसमें गलती ही क्या है?

मराठों के राजत्वकाल में या मुसलमानों के समय जिस प्रकार सेंधिया- हुलकर सदृश लोग साधारण सिपाही की नौकरी से सेनापति के ओहदे तक चढ

सकते थे, उसी प्रकार जब तक हमारी सरकार हमारी सेना के लोगों को मौका नहीं देती और जब तक हमलोगों को निश्चय नहीं हो जाता कि साधारण मनुष्य भी अपनी योग्यता के बल पर कमान्डर-इन-चीफ बन सकता है, जैसा कि इंग्लैण्ड में होता है, तब तक ऊंची जाति के तथा ऊंचे दर्जे के लोग फौजी नौकरी के विषय में उदासीन ही रहेंगे। साथ ही जब तक फौजी नौकरी में लोगों को उत्तेजना नहीं मिलतो तबतक लोग ऐसे व्यवसायों में ध्यान न देंगे जो मनुष्य को मर्द बनाते हैं। इसका परिणाम शरीर के लिये अवश्य ही विपरीत एवं हानिकारक होगा। जिस प्रकार बुद्धिको तेज रखने के लिये वाचन, वादविवाद आदि की आवश्यकता होती है उसी तरह शरीर क शक्ति और शौर्य कायम रखने के लिये द्वंद्व युद्ध लडाई, शर्त बांधकर खेल खेलना आदि बातों की अत्यंत आवश्यकता है। जब लोगों को विदित हो जाता है कि अपना बल, अश्वारोहण-पटुत्व, शूरता आदि के अजमाने के मौके कभी भी न आवेंगे तब इन बातों को ओर से चित्त हट जाना और इन व्यवसायों की जड जो स्वास्थ्य उसके विषयमें लापरवाह रहना स्वाभाविकही है। फौजी मुहकमें के अनुसार ही अन्यान्य मुहकमों में भी सरकार की नीति है कि हिन्दुस्थानियों को जबाबदेही एवं महत्व पूर्ण कार्य न दिये जावें। इसीसे हम लोगों को अपनी योग्यता तथा पराक्रम दिखलाने के लिये समय नहीं मिलता और हम नामर्द हो चले हैं।

[४] क्षत्रधर्म का नाश।

इसप्रकार चातुर्वर्ण्य मेंसे हमारे क्षात्र धर्मका इस समय करीब करीब नाशसा हुआ है। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस समय हम अपने क्षात्रधर्म के पालन में किस प्रकार असमर्थ हैं अर्थात् देशकी पराधीनतामें हम अपने धर्मकोभी पूर्णतासे पालन नहीं कर सकते।

शरीर के स्वास्थ्य के ऱ्हास का दूसरा कारण यह है कि भारतीयों में आजकल की शान्तता के कारण चैनबाजी और विषयासक्तता बहुत बढ गई है। पहले अधिकांश जवानों का चित्त शरीरको कमाने में लगा रहता था क्यों कि उन्हें लडाईमें नाम कमाने की बडी आकांक्षा रहा करती थी। इस प्रकार युवक स्वभावहो से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते थे और इसीसे उनका चित्त विषयासक्त नहीं रहता था। जब जब वे मुहीम पर रहते तब तो ब्रह्मचर्य भंग होता ही नहीं था। किन्तु यह स्थिति अब बदल गई है। छुटपन में मर्दानी खेलों की आवश्यकता अब प्रतीत नहीं होती इससे लोगों का उत्साह शयनागार की ओर ही झुकता है। इस प्रकार के उत्साह से लोगों ने जो काम किया सो क्या है? उन लोगोंने कर्तूत कर ब्रह्मदेव के संतति-निर्माण काम में मदद दी और भारत की आबादी बीस करोड से तीस करोड बना दी! लोगों के इस कार्य में अकाल तथा प्लेगने भारतीय प्रजा का बलि लेकर बहुत विघ्न किया इसे लोग बेचारे क्या करें? हिंदुस्थान के बाहर रहनेवाले मुसलमान जब भारत में आये तब उन्हे यहां अमित धन और शांतता मिली। परिणाम यह हुआ कि वे अपनी वीरता, परिश्रम आदि गुण खो बैठे और ऐषआरामी एवं नामर्द बन गये। बस वही हाल हम लोगों का हुआ। रंज केवल इसी का है कि मुसलमान राज्य कमाकर उसका ऐश्वर्य भोगने से नामर्द हुए किन्तु हम लोगोंने न तो राज्य ही कमाया और न धन दौलत कमाई, तिस पर भी ऐष आरामी तथा विषयासक्त बनकर हम लोगों ने अपने को नामर्द बना लिया। शिकार खेलना, घोडे को सवारी करना आदि बात तो दूर रहीं, अखाडा खेलना और कुश्ती लडना तक लोगों को पसंद नहीं है।

(५) विषयासक्तिसे कमजोरी।

इस प्रकार के शरीर को सुधारनेवाले व्यवसाय छूट जाने पर लोगों में जो कुछ ताकत बची उसका उपयोग सिवा विषयासक्तिके और किस बात में हो सकता है? स्वास्थ्य तथा शरीर की हानि उन लोगों में इतनी तीव्रतासे नहीं दिखाई देती जो दिनभर खेतों में परिश्रम करते रहते हैं। दिनभर लगातार परिश्रम करके थक जाने पर जब वह मनुष्य सोता

है तब उसे गहरी नींद एकदम घेर लेती है। उसे दूसरे ढंग कहाँ से सूझ सकते हैं? किन्तु नौकरी करने वाले बाबूलोगों का हाल भिन्न है। उन्हे शारीरिक परिश्रम के काम कम रहते हैं और कामदेव को उत्तेजना देनेवाले बहुत साधन रहते हैं। तब वे अपनी शांतता का उपयोग विषयासक्ति में न करें तो और क्या करें?

हम लोगों के शरीर की अवनति का कारण मर्दानी उद्योगोंका अभाव और बहुत अधिक विषयासक्ति है। यह पढकर कई लोग प्रश्न करेंगे कि हमारे नाना और हमारे पिता के समय लोगों का आचरण करीब करीब एकसा था। तब हमारे ही समय में इतना भारी फरक क्यों हुआ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि कई बातें ऐसी होती हैं जिन का परिणाम तुरंत नहीं दिखाई देता। वह कुछ समय के उपरान्त दीख पडता है। जब हम लोग परहेज की चीजें नहीं खाते तब हमारे शरीर में रोग होने की तैयारी शुरू हो जाती है किन्तु रोग प्रत्यक्ष रूप से जब तक बाहर नहीं आता तब तक हमे उसका पताही नहीं रहता। उदाहरण के लिये फेफडे बिगडना शुरू हो जाने पर भी बहुत दिन बाद कमजोरी आदि बातें मालूम होती हैं और तब हम जानते हैं कि क्षय हुआ। जब फेफडे बिगडने लगे थे तभी नहीं मालूम हुआ। यही हाल मनुष्य की शारीरिक अवनतिका भी है। विषयों में अतिरेक करने से या व्यायाम न करने से जो दुष्ट परिणाम होता है वह दोषी चाल चलन वाले मनुष्यपर कभी कभी नहीं दिखाई देता, किंतु उसकी संतानपर होता है। कभी कभी तो यह घातक परिणाम दोषी आचरणवाले मनुष्य में नहीं दिखाई देता उसके लडके में भी नहीं दिखाई देता किन्तु उसके नाती में दिखाई देता है।

(६) दरिद्रता।

इसमें कोई शंका नहीं है कि वर्तमान पीढी के लोगों में दिखनेवाली कमजोरीका कारण दिन-ब-दिन बढने वाली दरिद्रता तथा वर्तमान शिक्षा है। किन्तु इन दो बातों का जो परिणाम पहले की पीढी पर हुआ उसमें और वर्तमान पीढीपर होने वाले परिणाम में कुछ अंतर है। इससे वर्तमान पीढीके शरीर पर जो बुरा परिणाम दिखना चाहिये उसके कहीं अधिक बुरा परिणाम नजर आता है। इसका कारण उपर्युक्त बातमें है।

(७) ब्रह्मचर्यका अभाव।

ऐश आराम और विषयासक्ति के साथही और एक बात शरीर के बिगाडने में हाथ बँटती है। वह है जवान लडकों में ब्रह्मचर्य का अभाव। आजकल के बालक आवश्यक व्यायाम तो करते नहीं और उन्हे शिक्षा के हेतु काव्य, नाटक, उपन्यास आदि पढना आवश्यक है। इसका परिणाम यह होता है कि लडकों में ब्रह्मचर्य घटता जा रहा है। परन्तु इसका दोष कुछ अंश में अपने समाज के प्रौढ स्त्रीपुरुष के मत्थे मढना चाहिये; क्योंकि उनसे एक अक्षम्य अपराध प्रायः होता है। माता पिता अपने पुत्र तथा बहूका मीलन कराने एवं उसका कौतुक देखने के बडे इच्छुक होते हैं। पहले की पीढी में ऋतुस्नात होने के पूर्व पत्नि से पति का मिलना सख्त मना था। इतनाही नहीं शय्यागृह का प्रवेश यदि दूसरा को मालूम हुआ तो वह अक्षम्य अमर्यादा समझी जाती थी। प्रौढावस्था में भी शय्यागृह से उठकर जाना किसी को विदित न हो इसके लिए हर तरह की फिक्र की जाती थी। किन्तु अब समयने पलटा खाया है। आज कल कमजोरी के कारण लडकियों को रजोदर्शन भी जल्दी होता है और रजोदर्शन होते ही पति-पत्नि को मनमाना बर्ताव करने की स्वतन्त्रता रहती है। कई अविचारी लोग रजोदर्शन के पूर्व ही पतिपत्नि की भेंट कराने का अविचार करते हैं। परिणाम यह होता है कि व्यायाम और अन्य खेल खूद आदि की ओर ध्यान रहने से नवयुवकों की शक्ति बेफायदे के काम में खर्च होती है। शरीर और मस्तिष्क की पूर्ण वृद्धि में जो शक्ति खर्च होनी थी वह विपरीत काम में खर्च हो जाने से मनुष्य निःसत्व हो जाता है। यदि युवकने शाकुंतल, मालती माधव, कादंबरी आदि ग्रन्थ पढे हों तो उसका मन अकाल-परिपक्व रहता है और मस्तिष्क तथा मज्जामंडल अल्प कारण से उद्दीपित

हो जाते हैं। ऐसी दशामें स्त्री संग करने से शक्ति का अवास्तव व्यय विषयासक्ति में होता है। यदि इसी समय वह यवक स्कूल या कालेज में पढता हो तो पढाई, परीक्षाकी फिकर और स्त्रीसेवन इन तीन बातों में उसकी शक्ति का व्यय होता है इससे उसके शरीर को तथा मज्जामण्डल को हानि होती है। इस प्रकार उसके वीर्य का अकाल ही में ऱ्हास होकर वह निर्बल, निःसत्त्व तथा अकाल वृद्ध होता है।

इससे पाठकों को पता लगेगा कि " गुरुकुल शिक्षा प्रणाली " कितनी लाभदायक है। कम से कम इस समय की विपरीत परिस्थिति की हानि कम करने के लिये गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही एक उत्तम साधन हो सकता है।

८ अन्नका दुर्भिक्ष्य।

हमारी शारीरिक कमजोरीका एक और कारण है। यह खानेपीने के पदार्थोंकी न्यूनता है। प्रतिदिन यह न्यूनता बढ रही। जहां रुपये को दो तीन सेर घी मिलता था वहां आज आधा सेर भी मुष्कीलसे मिलता है। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थ बहुत महंगे हो रहे हैं। गौएं आदि कट जाने के कारण दूध की कमी हो रही है। यह सवाल हरएक के सामने है। स्वराज्य स्थापना के सिवाय इसका कोई दूसरा इलाज नहीं है।

९ आजकी शिक्षा।

सांप्रतकी दुरवस्था आने का कारण है अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक की महत्ता। पहले जमाने में जब कि अंग्रेजोंका राज न था तब नौकरी मिलना या न मिलना परीक्षा पर निर्भर न था। उस समय जवान मनुष्य को ऊँचा ओहदा शायद ही कभी मिलता था। प्रायः हरएक को छोटी नौकरी से ही जीवन संग्राम में पदार्पण करना पडता था और जब तक ऊँचा ओहदा नहीं मिलता था तब तक किसी भी युवक का महत्व अवास्तव रीतिसे नहीं बढता था। किन्तु अंग्रेजी राज में नौकरी प्रायः परीक्षा पर अवलम्बित है। इससे परीक्षा पास होते ही युवक की योग्यता का दर्जा निश्चित हो जाता है और उसे महत्व प्राप्त होता है। इसके साथ ही पिता का अधिकार घट जाता है। ऐसे युवक पर बुजुर्गों का कुछ भी प्रभाव नहीं पडता और वह स्वच्छंद से बर्ताव करने लगता है। कई बार यह भी होता है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक अपने पितासे अधिक ज्ञान रखता है। (वास्तव में अधिक ज्ञान न होनेपर भी परीक्षाएँ अधिक पास कर चुकने से उसे यह भ्रम हो जाता है)। ऐसी दशा में उसपर उसके पिता का अधिकार नहीं रहता। इसके साथ जवानी, शृंगार रस प्रधान पुस्तकों का पढना, मानसिक श्रम अधिक हो जाने के कारण जरासी बात से उत्तेजित होने वाला मन, जवान स्त्री, चाह, काफी, आदि कितनी ही उत्तेजना देनेवाली बातों की सहायता रहने पर वह नौजवान तुरन्त ही " जन्टल मैन " बन जाता है। उसे शरीर कमाने के कामोंसे घृणा होती है। और वह अपनी उमर का वह समय, जो शरीर कमाने में बिताना चाहिये था, विषय के उपभोग में तथा मानसिक श्रम में बिता देता है। इससे उसकी शक्तियां अकालही में खर्च हो कर उसे असमय में वृद्धावस्था प्राप्त होती है।

१० घरकी कुशिक्षा।

शरीर के बल में घाटा पडने का एक छोटासा कारण अपनी वर्तमान गृहशिक्षा भी है। मालूम होता है बहुतेरे मा-बाप इस बात को नहीं जानते कि बालकों में कष्ट सहने की ताकत जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है। वे बालकों के प्रति अपना यही कर्तव्य समझते हैं कि जितना बन सके अधिक से अधिक कपडे छूटपन में बालक को पहिनाना चाहिये, उसके कल्याण के हेतु जितनी जल्द बन सके उसे स्कूल में भरती कर देना चाहिये और उसे जरा भी ऊधम न करने देना चाहिये जिससे उसे जरा भी चोट आने का डर न रहे। वर्तमान समय में माता पिता का यह प्रमाण वचनही हो गया है कि ' बालकों को चाहिये कि वे देवता के समान बैठे रहें '। बेचारे मा-बाप

यह नहीं जानते कि उनकी इन समझों के ही कारण बालकों में कमजोरी, कमकूवत आदि दोष आजाते हैं। जिन लोगों के पास खानेपीने की कमी नहीं है ऐसे धनवानों में भी यह इच्छा नहीं दीखती कि उनके बालक हृष्ट-पुष्ट होवें, उनका बदन लाल लाल रहे, वे कुश्ती में विजय प्राप्त करें, वे दण्ड, बैठक और अखाडे का शौक रखें। घरमें बालक ने जरा भी गडबड न की तो माता खुश रहती है! रात के दस ग्यारह बजे तक जगकर बालक जब खूब रटता है और अपनी कक्षा में ऊंचा नम्बर प्राप्त करता है तब पिता की इच्छा पूर्ण होती है और वह संतुष्ट रहता है!! पिता कभी भी इस बात की पर्वाह नहीं करता कि बालक अपने से कमजोर क्यों है और उसकी भलाई बलवान बनने में है या एक दो कक्षाएं अधिक पढने में है? ऐसा पिता क्वचित ही नजर आता है जिसे यह फिकर हो कि लडका १५। १६ सालका हो जाने पर १२। १४ सालके लडकों के समान कमजोर क्यों दिखता है? गरीब तथा धनवान सभी में यह इच्छा दिखाई देती है कि उनके लडके अगली कक्षामें जितने जल्द जा सकें उतनाही अच्छा होगा। किंतु लडकों के स्वास्थ्य की ओर उनका बिलकुल ध्यान नहीं रहता। तब वे लडकों को साहस के और वीरता के काम करनेमें उत्तेजना क्यों कर दे सकते हैं? पहले समय में यह दशा कदापि नहीं थी। पहले समय में वे माताएँ थीं जिन्होंने श्री शिवाजी महाराज को अफजलखांसे अकेले मिलने की इजाजत दी थी, वे माता पिता थे जिन्होंने विश्वासराव की उमर सोलह साल की रहने पर भी उसे लडाई में भेजने की आना कानी न की। तभी तो लडके शूर और साहसी होते थे। किन्तु आज मा-बाप ही डरपोक बन गये हैं, तब वे अपने लडकों को शूरता और साहस के कामों में उत्तेजना कैसे दे सकते हैं?

११ व्यसनोंकी वृद्धी।

हमारे राजकर्ता के सहवास के कारण हम लोगों में जो सुधार हो रहा है वह सुधार और मदिरा आदि व्यसन भी हमारे शरीर को बिगाड रहे हैं। जब कभी देश में सुधार होता है तब जीवन-संग्राम में बडी झटापटी और तीव्रता आती है। इस तीव्रता के कारण शरीर को कष्ट होना स्वाभाविक है। इसी लिये सुधार के साथ जो श्रमाधिक्य होता है उससे (यदि उचित उपाय न किया जाय तो) शरीर का बिगाड अवश्य ही होगा। इस कथन की सत्यता प्रतीत न होती हो तो गांव-खेडों की रहन सहन की तुलना किसी बडे शहर की रहन सहन से की जावे या किसी भी बडे शहर के लोगों की तुलना बम्बई या कलकत्ते के लोगों से की जावे। इस तुलना से विदित होगा कि जितना सुधार अधिक उतना ही मनुष्य का उद्योग अधिक होता है और इस उद्योग के पीछे दौड धूप भी बढ जाती है। दूसरा उदाहरण-पचास वर्ष पहले के किसी सद्गृहस्थ या व्यापारी की तुलना आज के व्यापारी से कीजिए।

गांव का २५ वर्ष की उमरवाला नौ जवान और बम्बई में नौकरी करनेवाला उसी उम्र का मनुष्य इन दोनों की तुलना कीजिए। आपको पता चलेगा कि दूसरे प्रकार के मनुष्य को पहले की अपेक्षा दुगना परिश्रम करना पडता है। पहले प्रकार का मनुष्य प्रातःकाल को मुंहहाथ धोकर आराम से खेत में जावेगा या किसी से गप-शप करने में या अपना काम करने में लग जावेगा। वह स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ आदि में घंटों तक बैठ जावेगा। तदुपरान्त पूरा आध घण्टा उसे भोजन करने में लग जावेगा। भोजन कर चुकने पर सम्भवतः कुछ देर आराम करेगा, लेटेगा या सोवेगा। इसके बाद दो-तीन घण्टे फिर काम करेगा। सायंकाल के समय किसी अड्डे पर जाकर या किसी मंदिर में जाकर या अपने घरही में आंगन में बैठकर अपने मित्रों से गप्पे मारते हुए या इधर उधर का वार्तालाप करने में अपना समय बितावेगा। इसके बाद भोजन कर के अपने कुटुम्बियों से, अपने बाल-बच्चों से बातें करेगा। इसके बाद वह तुलसीदास जीकी रामायण उठाकर चार छह दोहे पढेगा और फिर निश्चिन्त होकर सोवेगा।

अब दूसरे प्रकार के मनुष्य का दिन-क्रम देखिये। सवेरा होते ही वह जल्दीसे बजार जाकर कुछ भाजी लावेगा, घर आकर जल्दी जल्दी अन्यान्य काम करते हुए जब देखेगा कि नौ-साढे नौ बज गया तब जल्दी जल्दी थोडा अन्न खाकर दफ्तर की ओर दौडेगा। दफ्तर में पांच घंटे से लेकर सात आठ घंटों तक आसन जमाकर काम करेगा। घर लौटने पर जरा इधर उधर की गपशप करेगा और फिर चिठ्ठी लिखना या कुछ पढना-लिखना आदि काम करते करते नींद आने पर सो जावेगा। यह तो प्रौढ पुरुषों का हाल हुआ।

बालकों का हाल भी इससे बहुत भिन्न नहीं है। पहले समय के बालक और आजकल के बालकों में भी इसी प्रकार का अन्तर है। पहले बालकों को पाठशाला में जल्दी नहीं भेजते थे। इससे उन्हे बहुत दिन तक पाठशाला की फिकर नहीं करनी पडती थी। स्कूल में जाने पर भी पढाई अधिक न होने के कारण कुछ तकलीफ नहीं थी। अब तो यह हाल है कि विना परीक्षा के पास किये पेट नहीं पलता। इस से स्कूल में छः सात घंटे और कालेज में आठ नौ घण्टे मानसिक श्रम करना आवश्यक हो गया है। शास्त्र का नियम है कि विना घिसे श्रम होना असम्भव है। तव पढाई न करनेवाले बालकों की अपेक्षा पढाई करनेवाले बालकों की शक्ति कितनी ही अधिक खर्च होगी?

आयुष्य की दीर्घता केवल दिनों की संख्यासे न गिनकर यदि श्रमों से गिनी जावे तो ज्ञात होगा कि मॅट्रिक पास होनेवाला विद्यार्थी यद्यपि उमर में अठारा वर्ष का ही है तब भी उसका परिश्रम (घडीभर उस परिश्रम से लाभ है या नहीं यह बात छोड देंगे।) अपढ मनुष्य के पचीस तीस वर्ष में किये हुए परिश्रम से अधिक निकलेंगे। इससे मॅट्रिक पास करने में उसकी आयुके २५। ३० वर्ष बीत चुकते हैं। इसी तरह सवेरे से संध्यातक एक सरीखा उद्योग में लगा हुआ मनुष्य और नित्य का व्यवसाय करने के बाद पुस्तकके चालीस पचास से लेकर सौ दो सौ पन्ने पढने वाला शिक्षक, प्रोफेसर या और कोई रुजगारी इनके उद्योगों को देखें तो विदित होगा कि इन लोगों के मस्तिष्क को तीस, चालीस वर्षों में इतना परिश्रम होता है जितना अपढ मनुष्य के मस्तिष्क को पचास, साठ साल में भी नहीं होता। तब इस प्रकार के मनुष्य का शरीर दुर्बल होना अथवा उसकी आयु कम होना उचित ही है। सुधार के साथ शरीर कैसे अधिक अधिक घटता जाता है इसके जानने के लिये बैल-गाडी और घोडा-गाडी का दृष्टान्त लें। बैलगाडी दिन-भर में अधिक से अधिक दस घण्टे चलती है। इतने समय में वह केवल बीस मील की यात्रा करती है। किन्तु घोडा गाडी उतने ही समय में पचास, साठ मील का अन्तर तय करती है। यदि दो एकसी मजबूत गाडियाँ लें और एक में बैल जोतें और दूसरे में घोडे, तो अधिक काम पडने के कारण घोडे की गाडी उतने ही समय में अधिक कमजोर हो जावेगी। यही हाल उन लोगों का है जिनकी रहन सहन सुधरे हुए देशवासीयों के समान हैं। शिक्षा, उद्योगधंधों की ईर्ष्या आदि के साथ मद्य और दूसरे दूसरे उत्तेजक पेयपदार्थ भी शरीर को हानि पहुंचाते हैं। उत्तेजक पेय-पदार्थों से रक्ताशय तथा मस्तिष्क की क्रिया तेजी से चलती है। इन पदार्थों के सेवन के बाद जो फुर्ती आती है वह खतम हो जाने पर भारी थकावट आती है। इससे स्पष्ट होगा कि इन पदार्थों के सेवन से देहरूपी रथ को कृत्रिम वेग किस प्रकार मिलता है और इस वेग के कारण शरीर के पुर्जे किस प्रकार घिस जाते हैं। इस प्रकार शिक्षा, उद्योग-धंधों की ईर्ष्या, अंग्रेजी राज में चाय, काफी, आदि किंचित उत्तेजक पेय पदार्थों से लगाकर मद्य जैसे अत्यंत उत्तेजक पेय पदार्थ का प्रचार आदि सब बातों से शरीर तथा मस्तिष्क में ४० या ५० वर्ष में ही वह परिवर्तन हो जाता है जो इन कारणों की अभावावस्थामें ७० या ८० में होता। इसका परिणाम (प्रतिकार के उपयोंका अवलम्बन न करने पर) शरीर के न्हास में और आयु क्षीण होने में ही होगा।

(१२) धार्मिक क्षेत्रका संकोच।

बहुतसे लोग समझते हैं कि इस समय हम अपने धार्मिक क्षेत्रमें बडे आजाद हैं, परंतु यह उनका भ्रम है। संध्या, अग्निहोत्र आदि करनेमें हम बेशक आजाद हैं, परंतु चातुर्वर्ण्य और चार आश्रमों के धर्मपालन करनेमें हम इस समय स्वतंत्र नहीं है, यह बात पाठक ठीक स्मरण रखें। इस लेख में हमने स्पष्ट रूपसे बताया है कि इस समय हमारे क्षात्रधर्म की उन्नति नहीं हो सकती, इतनाही नहीं, परंतु हम अपने क्षात्र धर्म का पालन भी नहीं कर सकते हैं। धनुर्वेदादी के प्रयोग करना, तथा वेद के युद्ध प्रसंग के मंत्रों का प्रत्यक्ष करना, इस समय सर्वथा अशक्य है।

हमारा धर्म चार वर्णोंके कर्तव्योंके संघरूप है। यदि एक वर्ण के कार्यक्षेत्रसे पूर्णतया वंचित हम हो गये तो समझना चाहिये एक चौथाई धर्मसे हम वंचित हो गये। यह कार्य क्षेत्रका संकोच केवल यहां तक ही नहीं है, आगे जा कर पाठक जान सकते हैं कि वैश्य धर्म के क्षेत्रमें भी हम मर्यादासे बाहर कूद नहीं सकते हैं। यह सब जानते हैं। क्षत्रिय और वैश्य ये दो ही वर्ण बडे और प्रबल वर्ण हैं। छाती से लेकर जंघाओं तक शरीर का भाग देखिये। यदि यह भाग अत्यंत क्षीण हुआ तो अन्य शरीर की गति क्या होगी? यही अवस्था हमारी हो गई है।

हमारा बुरा भला जो कुछ स्वराज्य था उस समय हमारे कार्यक्षेत्रका संकोच इतना नहीं हुआ था। बाहरके कार्यक्षेत्र के संकोचसे ही शारीरिक ऱ्हास हो जाता है। और जब तक बाहर का कार्यक्षेत्र बढेगा नहीं तबतक यह ऱ्हास कम होना भी अशक्य सा है। इससे पाठक जान सकते हैं कि सांप्रतकी हमारी राजनैतिक अवस्था धर्मपालन के लिये भी विपरीत है। इसलिये हरएक धार्मिक मनुष्यको स्वराज्य सिद्धिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। जिससे हम अपने धर्म का पालन पूर्ण रीतिसे कर सकें और पूर्ण उन्नत हो सकें।

योगजिज्ञासाकी कहानी।

(ले०- श्री० पं० अभय देवशर्माजी, विद्यालंकार)

१३ योगसंबन्धी ज्ञान।

जब से मेरी जिज्ञासा योगजिज्ञासा में परिणत हुई थी और मैंने 'योगी बनना' अपना लक्ष्य बनाया था उसके बाद से ही मैं यह स्पष्ट अनुभव करता चलने लगा कि मुझे योग की तरफ ले जाने वाली सामिग्री तथा साधन स्वयमेव जुडते चले जा रहे हैं। प्रारंभ में दो चार जगह ऐसी बातें सुनने को मिली जिन से कि मेरा योग की तरह जाने का इरादा पक्का हो गया, मैंने समझ लिया कि यही एकमात्र मार्ग है। फिर अचानक कहीं कहीं से मुझे योग संबन्धी पुस्तकें पढने को मिलती गयी। इसी तरह आगे मुझे संपूर्ण आसन गुरुकुल में ही सीखने का सुयोग मिल गया। फिर कहीं कहीं से विशेष आसन और प्राणायाम की विधियां पता लगी और धीरे धीरे योग की उत्तमोत्तम क्रियायें परमात्मा की परम कृपा से बडे अच्छे अच्छे पूज्य महात्माओं से मिलती चली गयी। यह सब कथा तो आगे क्रमशः आवेगी, किन्तु यहां इस प्रकरण में इतना ही कहना है कि गुरुकुल वास के अन्त तक (अर्थात् इन दो वर्षों में) मुझे योग संबन्धी क्या क्या ज्ञान कहां कहां से प्राप्त हुवा।

इन वर्षों में भिन्न भिन्न समय में जो मैंने योग-संबन्धी पुस्तकें पढी उनकी सूची मैं इकट्ठी यहीं नीचे देता हूं। योग संबन्ध में छोटी मोटी पुस्तक तक जो

कुछ मैंने पढा उसकी यह परिपूर्ण सूची हैं। ये पुस्तकें भोजन के बाद या सफर में या अन्य ऐसे ही (जब कि मैं अभ्यास नहीं कर सकता था) अवसरों पर पढी गयी हैं।

(क) हिन्दी की पुस्तकें।

(१) योग सोपान-यह एक बहुत छोटी सी पुस्तक है (२) धर्म निर्णय-इसमें योगिओं की कहानियां है (३) योगसमाचार संग्रह-योगसंबंधी बातों का यह अच्छा संग्रह है (४)एकाग्रता व दिव्य शक्ति यह 'ओ इष्णु हारा' की एक पुस्तक का अनुवाद है (५) चरणदास के 'भक्तिसागर, पुस्तक के एक दो योगसंबंधी प्रकरण भी पढे हैं। यह कविता में है।

(ख) संस्कृत पुस्तकें।

(१) शिवस्वरोदय-इसमें नासिका के स्वरों का वर्णन है (२) घेरंडसंहिता और (३) हठयोगप्रदीपिका-ये दोनों हठयोग की बडी उत्तम पुस्तकें हैं। घेरंडसंहिता संक्षिप्त और अधिक क्रमबद्ध है (४) शिवसंहिता यह भी हठयोग की पुस्तक है। पर इसमें विस्तार अधिक है और इसमें मुझे अत्युक्तिभी अधिक दीखती है।

(ग) अंग्रेजी की पुस्तकें।

(1) How to be a yogi (2) Mystery of Breath (3) अये टिकन 'रामचरककी' Hath Yoga (4) और Science of Breath ये चारों छोटी छोटी पुस्तकें मुझे लालाजी से मिलीं थीं।

(5) Nature's finer forces का केवल अन्तिम भाग पढा है। (6) एनि बीसेंट की 'Thought Power' तथा लेड बीटर की (7) Clairvoyanceतथा (८) Dream भी पढ डाली है।

इन सब पुस्तकोंमें से संस्कृत की चारों पुस्तकोंसे हठयोगसंबंधी बहुत परिचय प्राप्त हुवा और बहुतसा ज्ञान होना अभी शेष है तथा श्वाससंबन्धी दोनों अंग्रेजी पुस्तकों से कुछ प्राण की व्यायामें मैंने सीखी हैं। शेष सब पुस्तकों से तो साधारणतया मुझे योग में बढने को प्रबल प्रेरणा ही मिली है।

पातंजल योगदर्शन तो मैंने द्वादश में अपनी पढाई में ही पढा था। अब उससे लाभ उठाने का भी विचार किया और उसके साधन पाद में लिखे योग के आठ अंगों में से प्रारंभिक दो अंगों को अर्थात् यम और नियमों को अपने जीवन में लानेका खूब यत्न करने लगा। इसके लिये यह नियम किया हुआ था कि एक यम और एक नियम को लेकर उन पर तीन दिन तक विशेषतया ध्यान रखता था और तीन दिन तक संध्या में इन्हीं दोनों पर विचार किया करता था इस प्रकार एक पक्ष में पांचों यमों और नियमों पर एकवार विशेष अमल और विचार पूरा हो जाता था। इन दिनों मैं इन का पालन बडी सचिन्तता से करता था, दूर तक देखता था कि मेरे किसी कर्म से कहीं कोई हिंसा, स्तेय या असत्य तो नही होता है। इन दिनों यम नियमोंपर मेरा विचार भी काफी गहरा होगया था।

हठयोग की संस्कृत पुस्तकें देखने पर और विशेषतया उनमें 'चन्द्र' का (जिसका कि वामप्राण से संबन्ध है) बडा महात्म्य वर्णित देखकर मुझे खास तौर पर चिन्ता हुई कि सबसे पहिले अपने प्राण की यह त्रुटि दूर करनी चाहिये। यह तो मैंने समझ ही लिया था कि मेरी शारीरीक कमजोरी या कब्ज आदि का असली कारण यही प्राण की त्रुटि है। इस त्रुटि के कारण आयु कम होती है (बल्कि एक कथन के अनुसार तो 'छे मास में मृत्यु होजाती है') यह भी मैंने कई जगह पढा था। अतः इस त्रुटि की तरफ मेरा बहुत ध्यान था। यद्यपि इन पुस्तकों में मुझे कुछ ऐसी क्रियायें भी दीखती थीं जिनसे कि मुझे आशा थी कि मेरा प्राण सुधर सकता है, किन्तु इन्हे विना गुरु के करना मैं भयावह समझता था। अतः प्रबल इच्छा किसी प्राणविद्या जानने वाले गुरु के पाने की थी और उनके विना मिले मैं अभी तक कोईभी हठयोग की क्रिया नहीं करता था। तो भी दो आसन (जिन्हें कि कईओं को व्यायाम के तौर पर करते देखा था और सुना था कि इनसे कब्ज हटती है) मैंने सीखे थे और कभी कभी

क्रिया कर करता था । इतने में यह हुवा कि वार्षिकोत्सव पर श्री० पं. श्री. दा. सातवलेकर जी गुरुकुल में आये हुवे थे और एक दिन जब कि मैं उनके पास से गुजर रहा था अचानक उन्होंने मेरा दुबला शरीर देखकर मुझसे वाचचीत छेडदी पंडित जीने भी शायद तब नये नये ही आसन सीखे थे। उन्होंने आसनों का परीक्षण कर देखने को कहा और हम७८ विद्यार्थिओं ने चार दिन लगा कर उनसे सब आसन खसी लिये । अभी तक तो इन पुस्तकों के संस्कृत श्लोकों में लिखे आसनों का वर्णन पढ कर इनकी विधि कुछ समझ नहीं पडती थी । किन्तु अब एकवार क्रियात्मक तौर पर करके देख लेने पर मैं आसनों के प्रकरणों को बहुत कुछ समझने लगा । इन आसनों से भी मेरे शरीर में पर्याप्त लाभ दिखायी दिया । इस प्रकार यमनियमों के बाद आसनों से भी मेरा परिचय होगया ।

आगे एक दिन 'धर्मनिर्णय' पुस्तक पढते हुवे वहां एक प्राणायाम लिखा देखा । यह कुंभक प्राणायाम था और वहां विस्तार से स्पष्ट स्पष्ट लिखा हुवा था । मैंने सोचा कि इसे स्वयं करने में क्या हर्ज है । और मैं ने करना शुरु कर दिया । इसके करने से मैंने देखा कि मुझे स्वयं अच्छी तरह शौच आ जाता है । इस तरह इस प्राणायाम द्वारा मेरी कब्ज की चिन्ता का सर्वथा ही अन्त हो गया ।

किन्तु मेरी मुख्य चिंता तो आजकल अन्दर के उस प्राण संबन्धी त्रुटि की थी और इसके लिये मुझे किसी प्राणाभ्यासी योगी की तलाश रहती थी । पर गुरुकुल में रहते हुवे मैं योगिओं की तलाश में कैसे फिर सकता था अतः यह सोचा था कि कम से कम अपनी दो मास की छुट्टिआं तो इसी काम में लगाऊं । एक महात्मा का पता, जो कि इटावे में रहते थे लाला मुरारी लालजी ने मुझे बताया और कहा कि उनके दर्शन करके ही देख लो। इतने में जब की चतुर्दश श्रेणी की हमारी दो मास की छुट्टियां प्रारंभ होने में थोडे ही दिन रह गये थे तो दफ्तर के एक नये चपडासी से एक विचित्र प्रकार से ऐसी बात छिड जाने से उस चपडासी ने लालाजी को बतलाया कि यहां पास हो नागल ग्राम में एक योगी रहते हैं । यह समाचार सुन कर तो मुझे विशेष खुशी हुई कि वे स्वर योगी हैं । मैंने निश्चय कर लिया कि इन छुट्टिओं में मैं नागल और इटावे तो अवश्य होकर आऊंगा और अभ्यास के लिये यदि कहीं रहना पडे तो दो महीने वहीं विताउंगा ।

---

(१४) योगियों की तलाश ।

छुट्टियां प्रारंभ होते ही मैं अकेला अपना विस्तर उठाकर चुपचाप नागल ग्राम में पहुंचा और वहांसे 'भूरिया स्रोत' के इन सन्त के आश्रमका पता लगाया । ये स्वरयोगी साधु केवल लंगोट पहिनते थे, शरीर लंबा चौडा सर्वथा सुडोल और स्वस्थ था। पर उन्होंने मेरे पहंचने से एकही दिन पहिले से मौन धारण कर लिया था । तोभी उन्होंने मुझे एक निरभिमान जिज्ञासु देखकर सायंकाल इशारे से मेरा आगमन प्रयोजन पूछा। मैंने अपना हाल सुनाया, तो उन्होने स्वयं करके मुझे एक आसन बतलाने की कृपा की जिससे कि मेरा प्राण ठीक हो सके । अगले दिन प्रातः उन्होने गंगा की रेत पर लिखकर मुझे यह संदेश पहंचाया 'अभी उन्हें यहां कष्ट होगा, वे देर तक रहना चाहते हैं तो वे फिर कभी आवें '। अतः मैं वहां दो दिन ही रहकर उन्हें प्रणाम कर और आशीर्वाद लेकर चला आया ।

यहां से मैं हमीरपुर गया और पिता जी के एक परिचित इटावे निवासी महाशय की चिट्ठी इटावे में एक वैश्य सज्जन के यहां ठहरने के लिये लेकर इटावा पहंच गया । पहिले दिन ही सायंकाल ४ बजे मैं यमुना तट पर इन संन्यासी जी की तलाश में गया । स्वामीजी एक विद्वान् महात्मा थे, एक गद्दी के अधीश थे। रेलपर यात्रा नहीं करते थे। वहां इनकी बहुत स्तुति सुनी, पर मैंने देखा मेरे लिये यहां सफलता की आशा नहीं है क्यों कि मैंने उस आश्रम के बाहर के दर्वाजेपर इस आशय का तख्ता लगा हुवा देखा कि स्वामीजीसे प्रश्न आदि पुंछना मना है । और लोगों की बात चीतसे भी इस बात की पुष्टि हुई । खैर, बडी प्रतीक्षा के बाद ८बजेके लगभग

पता लगा कि अब उनके दर्शन हो सकते हैं। वे बहुत से लोगोंसे घिरे बैठे थे उन पर पंखा हो रहा था। इन सबके पीछे मैं भी प्रणाम कर के बैठ गया, पर वहां तक तो वे जो कुछ कहते थे वह भी नहीं सुनायी देता था। कुछ देर बाद उन्होंने चुटकी बजायी जिसका कि यह मतलब था कि अब सब चले जांय। केवल दर्शन पाकर मैं भी सबके साथ उठ आया। उस समय वहां यह भी पता लगा कि कल स्वामीज नाव द्वारा कहीं बाहर चले जांयगे और बहुत दिनोंमें लौटेंगे। मैं सोचता सोचता नौ दस बजे शहरमें अपने ठिकाने पर पहुंचा। " एक तो स्वामी जी से प्रश्न आदि करना मना है, फिर वे लोगों से घिरे रहते हैं तो उन तक पहुंच होना कठिन है और यदि कसी तरह कुछ दिनों में मेरी उन तक पहुंच हो भी सके तो वे कल ही कहीं बाहर चले जांयगे; अतः यहां किस प्रयोजन से और ठहरूं " इस प्रकार सोच कर मैंने निश्चय किया कि प्रातः की ही गाडी से मैं चला जाऊं और यह अपना अभिप्राय उन वैश्य सज्जन जी को कह दिया। उन्होंने कहा 'आप तो एक महीना तक ठहरने का इरादा करके आये थे, एक ही दिन में चल दिये'। मैंने सब हाल कह सुनाया। और प्रातः ४ बजे की रेल से रवाना होने के लिये स्टेशन पर भी प्रातः ही पहुंच गया। पर वहां उस दिन मुसाफिरों को टिकट नहीं दिये गये। खबर सुनी कि गाडी बहुत भरी है और इसमें फौज जा रही है, अतः आज कोई मुसाफिर नहीं जा सकेगा। गाडी आयी और चली गयी। मैं क्या करता? हमीर पुर पहुंचने के लिये तो वही एक मात्र ठीक गाडी थी। अतः यह सोचकर कि अब कल इसी गाडी से जाऊंगा मैं शहर लौट आया। दिन भर काटा। सायंकाल इच्छा हुई कि 'चलूं आज फिर यमुना तट पर घूम आऊं—स्वामी जी तो वहां नहीं होंगे पर आश्रम के अन्य लोगों से परिचय प्राप्त करूंगा'। आश्रम के समीप मैं ज्यों ही पहुंचा तो मैंने आश्चर्य से देखा कि सामने स्वामी जी अकेले आश्रम की तरफ चले आ रहे हैं। मैंने प्रणाम किया और उनके पीछे पीछे मकान के ऊपर चल दिया। एक और आदमी दौडा आया और उसने स्वामीजी के विराज जाने पर उन्हे पंखा करना प्रारंभ किया। मैं भी स्वामी जी की आज्ञा से सामने बैठ गया। पता लगा कि स्वामीजी कहीं होकर अभी लौटे आ रहे हैं! जहां बहुत दिनों के लिये जाना था वहां नहीं जा सके। स्वामी जी ने मेरा हाल चाल पूछा। इतने में स्वामी जी का अंगोछा उड कर नीचे जा गिरा। वह पंखा करनेवाला सेवक अंगोछा उठाने और उसे धोकर लाने के लिये नीचे चल गया। पंखा मेरे हाथ लगा और मैं खडा हो कर उनके और समीप आकर पंखा करने लगा। एक अन्य आदमी के समीप होने का जो संकोच था वह भी हट गया और मैं अकेला ही स्वामी के पास रह गया। अब मैंने खूब खुल कर स्वामी जी से बातें कीं। वाम प्राण को ठीक करने के संबन्ध में (जो कि मेरी मुख्य जिज्ञासा थी) तो स्वामीजी ने बडी सरलता से कह दिया कि यह विषय मेरा अनुभूत नहीं है, केवल शास्त्रों में पढा हुआ है अतः कुछ नहीं बतला सकता। आगे समाधि क्या है, कुंडलिनी क्या है इत्यादि विषय पर बातें होती रहीं; जिन से कि बडा संतोष मिला। इनमें से एक बात यहां भी लिखने योग्य है। कुंडलिनी के प्रकरण में स्वामीजी ने कहा कि " उपनयन संस्कार में जो -

मम व्रते ते हृदयं दधामि
मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व
बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

यह मंत्र बोला जाता है यह केवल बोलने का मंत्र नहीं है किन्तु किसी समय सच्चे आचार्य इस मंत्र के साथ सचमुच एकचित्तता द्वारा ब्रह्मचारी के अन्दर प्रविष्ट होते थे और उसके कुंडलिनी के मार्ग को साफ कर देते थे। इस क्रिया से ही आचार्य और ब्रह्मचारी का संबन्ध जुडता था और ब्रह्मचारी वास्तव में उपनीत (पास लाया गया) होता था। पर आजकल तो ऐसा कोई नहीं दिखलायी देता "। यह मैंने स्वामी जी के भाव को अपनी भाषा में जरा स्पष्ट करके लिख दिया है। अस्तु।

इस प्रकार अपनी सब बातें पूछ कर और अंत में उनका आशीर्वाद लेकर और प्रणाम करके बडी प्रसन्नता से वापिस लौटा। स्वामीजी की कृपालुता का मुझे अभीतक स्मरण बना हुआ है।

यह घटना मेरे जीवन की उन कुछ घटनाओं में से एक है जिनने कि इस बातमें मेरी श्रद्धा दृढ की है कि कल्याणस्वरूप परमात्मा बडे अद्भुत तरीकों से हमारी इच्छायें पूरी करते हैं या हमें लाभ पहुंचाते हैं। मेरी गाडी छूट जाना, फिर यमुनातट पर जाने की मेरी इच्छा होना, स्वामीजी के आते ही अकेले मिल जाना और उनका अंगोच्छा नीचे गिर जानेसे सर्वथा एकान्त हो जाना ये सब बातें मेरे लिये होती चली गयी और मैं जो कि पिछले दिन सर्वथा निराश हो लौट जानेवाला था अब बडा आनन्दित होकर लौटा।

इटावे से मैं सीधा महोवा गया। यह हमीरपुर के जिले में ही है। सुना था कि वहां एक योगी ठहरे हुवे हैं। वहां उनके भी दर्शन किये। उनकी बातों ने मेरी इस श्रद्धा को और पक्का किया कि योगियों की तालाश में भटकनसे भी कोई नहीं मिलता और जब समय आता है तो घर बैठे गुरु मिल जाते हैं। अपनी इस श्रद्धा के कारण वास्तव में मैं आजकल भी अपने प्रयोजन के कोई योगी न मिलने से कुछ भी दुःखी या व्याकुल न था। जिस से जो कुछ मिलता था उसे ही बहुत और अपने बडे कल्याण की वस्तु समझता था।

इसी वर्ष मेरी सगी बहिन का विवाह होकर चुका था और उसे एक सुयोग्य और साधु स्वभाव पति मिले थे। जब मैं ज्वालापूर महाविद्यालय में पहिली बार ही बहिन को मिलने गया था और इन अपने भगिनीपति पं. रामावतार जी शास्त्री (जो ज्वालापूर महा विद्यालय के स्नातक हैं और तब वहीं अध्यापक थे) से पहिली बार ही परिचय हुवा था, ये तभी समझ गये थे कि मुझे योग की तरफ रुचि है। अतः इन्होने मुझे यह कहा 'यदि आपने योगमार्ग में ही जाना है तो आप एक बार पं. दौलतरामजी से अवश्य मिलिये। वे पहिले अनूपशहर के पास रहा करते थे। एकबार मैं भी विरक्त होकर यहां से भागकर उनके पास गया था और वहां ६महीने तक रहा था...'। रामावतारजी ने मुझे वह क्रिया भी बतलायी थी जो पं. दौलतरामजी ने उन्हें प्रारंभ में उपदेश की थी और वे अब मेरे कहने पर पंडितजी का ठीक ठीक पता अनूपशहर पत्र लिखकर मालूम कर रहे थे। इस प्रकार मेरी बहिन के विवाह ने भी मुझे एक योगी का पता बतलाया। अस्तु। जब तक मैं छुट्टिओं से लौटा तब तक उनका पता भी रामावतारजी ने मालूम कर लिया था। इस लिये अब आगे के सब से पहिले अवसर पर ही अर्थात् स्नातक परीक्षा देनेके बाद गुरुकुलोत्सव तक जो नये स्नातकों को घर जाने के लिये लगभग एक मास का अवकाश मिलता था उसमें हो मैंने घर न जाकर अनूपशहर जाने का निश्चय किया और गया।

इस प्रकार अब मैं योगिओं की तलाश में रहने वाला अर्थात् लोगों को भी दिखायी देने वाला 'योग जज्ञासु' बन गया। असल में तो योग के जिज्ञासु का ही पद बहुत ऊंचा है, भगवद्गीतामें कहा है —
"जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते।" मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं ऐसा योगजिज्ञासु हो गया था कि 'शब्द ब्रह्म को अति वर्त्तन कर गया था,' अर्थात् मेरी बुद्धि वाणी के प्रपंच में (पुस्तकों शास्त्रों वचनों के शब्द जाल में) बिलकुल न फंस कर पीछे रखे हुवे तत्त्व को सीधा देखने लगी थी, किन्तु मैं अपने को योगका जिज्ञासु अवश्य अनुभव करता था और (यद्यपि गीता के इस वाक्य का तो उस समय पता न था) अन्दर ही अन्दर ऐसा (उचित या अनुचित) अभिमान भी रखता था कि मुझे कोई वस्तु मिल गयी है-मुझे कोई 'पद' प्राप्त हो गया है। अस्तु।

मेरी यह योग की जिज्ञासा पूरी हुई या नहीं। पूरी हुई तो कैसे ? इत्यादि आगे की कथा पाठक अग्रिम भागोंमें देख सकते हैं।

प्रथम खण्ड संपूर्ण।

ग्रंथ और ग्रंथकारों का स्वागत।

सामवेद संहिता।

भाषाभाष्य

[भाष्यकार— श्री. पं. जयदेवजी शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ। प्रकाशक — आर्य साहित्य मंडल, अजमेर। मू. ३) रु.]

सामवेद संहिता संपूर्ण का भाषा भाष्य आर्य जनताके सन्मुख रखने के कारण हम श्री. पं. जयदेवजी शर्मा, विद्यालंकार का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। इस पुस्तक में प्रारंभमें विस्तृत भूमिका दी है, जिसमें सामवेदके शाखा भेद, साम ब्राह्मण, सामगान, छंदस्, देवता, आदिके विषयमें उत्तम अनुसंधान किया है। पश्चात् सामवेदका पूर्ण भाष्य दिया है, नंतर कुछ शब्दोंके अर्थ दिये है। पं. जयदेवजी की अर्थ लेखन शैली ऐसी सुबोध है कि प्रायः सर्वत्र भावार्थ न लिखते हुए ही केवल अर्थ द्वारा ही स्पष्ट भावार्थ प्रदर्शित होता है। हमारा ख्याल है कि इसी प्रकार यदि वेदका सरल अर्थ लिखा जावे तो अत्यंत उत्तम होगा। हमें खुषी होती है कि श्री० पं०जयदेव शर्माजीने यह कार्य हाथमें लिया है और वे क्रमशः चारों वेद इसी प्रकार अक्षरार्थ से सुशोभित प्रकाशित करना चाहते हैं। इस लिये हम आर्यजनतासे सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि हरएक आर्य इस अत्युपयोगी और अत्यंत प्रशंसनीय पुस्तक द्वारा अपने घरकी शोभा बढावें और पंडित जीका उत्साह द्विगुणित करें, पंडित जीका यह भाष्य देख कर हमारा निश्चय हुआ है कि वे इस कार्य के लिये योग्य हैं। हमारा यह भी निश्चय है कि आर्य जनता ऐसे सुयोग्य विद्वान का उनके ग्रंथ अपनाने द्वारा उत्तम स्वागत करेगी। ग्रंथ की योग्यता की दृष्टिसे तथा आकार की दृष्टिसे मूल्य अति अल्प है। इसलिये हरएक मनुष्य इसको खरीद सकता है।

२ अक्षर तत्त्व

(श्री. पं. गौरी शंकर भट्ट। मसवान पुर, कानपुर मू. ॥) पं. गौरी शंकर भट्टजी के अक्षर पाठ संपूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उन्होने जिस ढंगसे सुलेख अक्षर तत्त्व बताया है वह अति लाभदायी है। जिनके मनमें बालकोंके अक्षर सुडौल हों ऐसी भावना है, वे इस पुस्तकका सहारा अवश्य लें।

३ अथर्व वेद और जादूटोना।

[श्री.पं. जयदेव शर्मा, विद्यालंकार । प्र. महेश पुस्तकालय अजमेर ।मू. ।॥) [पुस्तक बडी खोज के साथ लिखी है।

4 Our Duty Towards Our Depressed Brethren. 5 What is Arya Samaj.

६ वैदिक यज्ञ,

ये तीनों पुस्तक श्री० पं. शंकर नाथ जी प्रधान आर्य प्र०सभा बंगाल बिहार ने लिखकर प्रकाशित किये हैं। आर्य समाज के विषयमें जो लोग कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे उक्त अंग्रेजी पुस्तकें पढें। "वैदिक यज्ञ" पुस्तक में पंडित जीने यज्ञके अहिंसात्मक होनेके विषयमें बहुत भावपूर्ण लेख लिखा है वह पुस्तक हरएक को पढने योग्य है।

७ स्वास्थ्य साधन।

(ले०-श्री० पं० रामचंद्रजी, गुरुकुल, होशंगाबाद' मू० ।) ईशभक्तिसे शारीरिक शक्ति प्राप्त करनेके उपाय इस पुस्तकमें लिखे हैं वे उत्तम हैं।

८ शुद्धिसमाचार ।

इस पत्रिका का यह उदयांक बहुत ही प्रेक्षणीय है श्री स्वा. चिदानंद सन्यासी श्रध्दानंद बाजार; दिल्ली। के संपादकत्वमें शुद्धिसमाचार प्रकाशित होता है। मू० १) है। अवश्य संग्राह्य है।

९ सार्व देशिक

(सं०-श्री० नारायण स्वामिजी, सार्वदेशिक भवन एस्प्लेनेड रोड देहली।(वा० मू० २) आर्य समाजके सार्वदेशिक मिशन की उत्तम बाते तथा उत्तम वैदिक उपदेश इसमें पाठक देख सकते हैं।

नवम वर्षका

इतिवृत ।
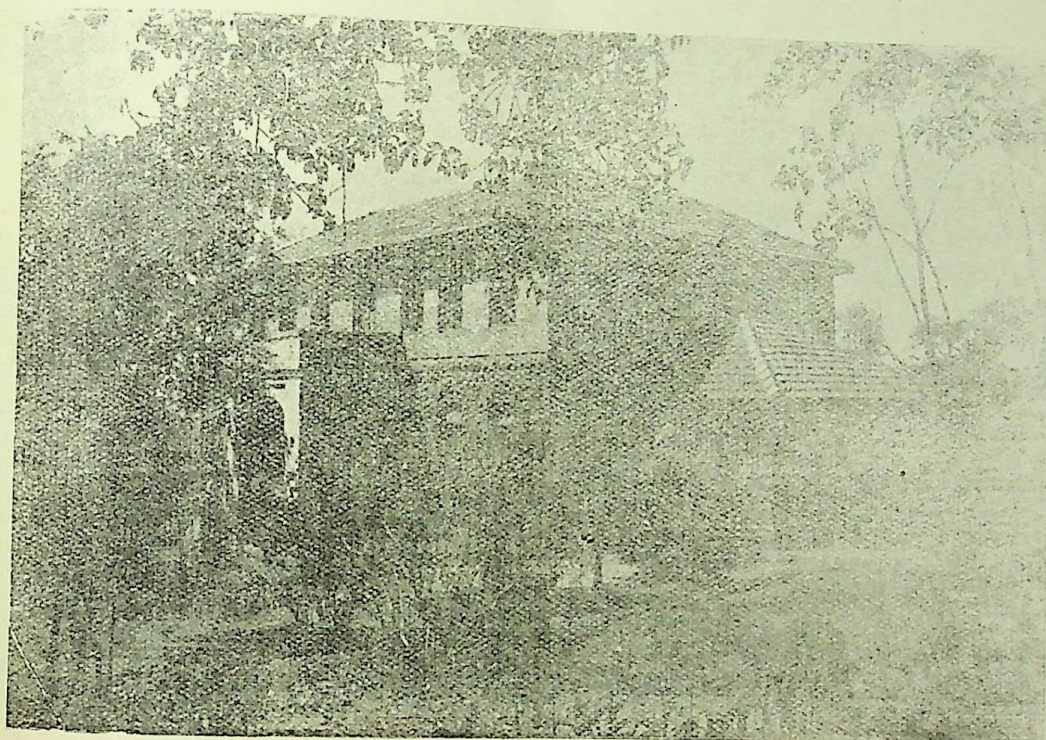
स्वाध्याय मंडल.

स्वाध्यायमंडल आश्रम।

द्वारा

प्रकाशित

पुस्तकों का सूचीपत्र.

मंत्री- स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

स्वाध्याय मंडल।

औंध (जि. सातारा)

स्वाध्याय मंडलके कर्मचारी गण।

स्वाध्याय मंडल का उद्देश्य।

(१) वेदोंका स्वाध्याय करना और कराना।

(२) वैदिक शब्दों के मूल अर्थ की खोज करना।

(३) मूल वेदोंका अर्थ मूल वेदोंके आधारसे करना।

(४) लोगों में वैदिक धर्म की जागृति करना।

(५) वैदिक धर्म के सुबोध ग्रंथ प्रसिद्ध करना।

(६) वैदिक धर्मकेसाथ अन्य धर्मग्रंथोंकी तुलना करना।

(७) वैदिक धर्मकेसाथअन्यमत ग्रंथोंकी तुलनाकरना।

(८) वैदिक दृष्टीसे गाथाओंका अर्थ निश्चित करना।

(९) प्रचलित युरोपीयन मतकी समालोचना करना।

(१०) प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर देना।

ये स्वाध्याय मंडल के उद्देश्य हैं और इसी दृष्टिसे आज नौ वर्ष इस मंडलका कार्य चल रहा है जिसका वृत्त इस लेखद्वारा प्रसिद्ध किया जाता है। आशा है कि वैदिक धर्मके प्रेमी इस कार्यको बढानेके लिये सहायता देंगे।

औंध (जि. सातारा) श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
१ जनवरी १९२७ स्वाध्याय मंडल, औंध

स्वाध्याय मंडल।

" वेदका पढना पढाना सुनना सुनाना, सब आर्योंका परम धर्म है। "
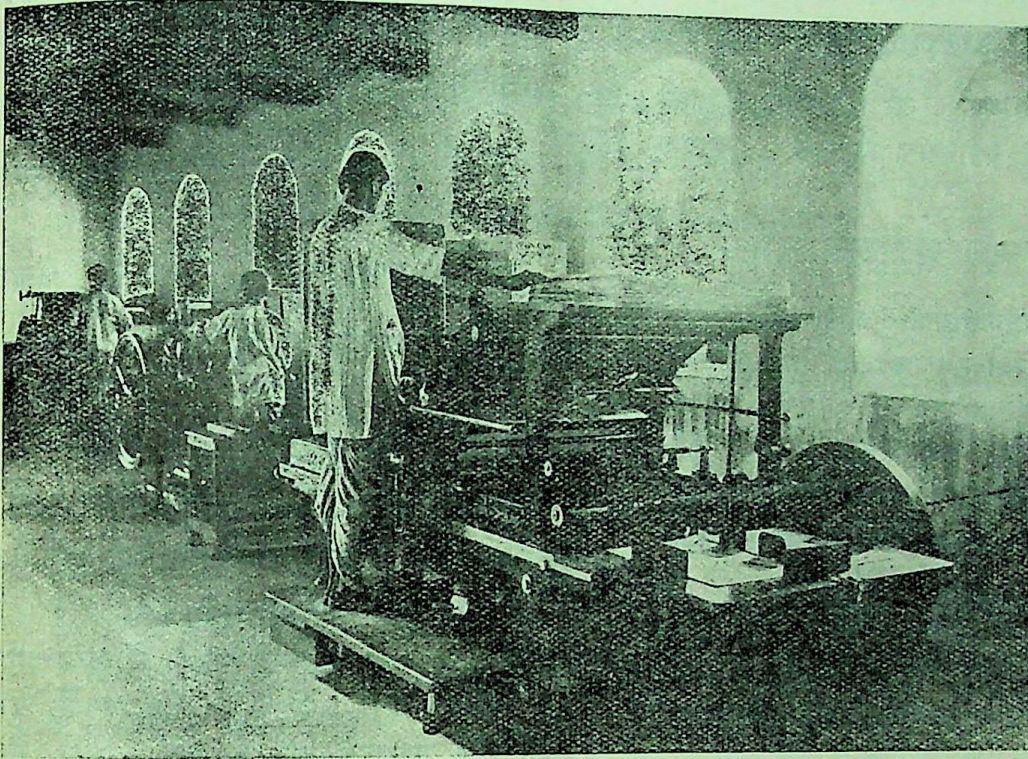
भारत मुद्रणालय का छपाई कार्यालय।

नाम

(१) नाम-इस संस्थाका नाम ' स्वाध्याय मंडल ' है।

उद्देश।

(२) उद्देश—(पूर्व स्थानमें दिये हैं।)

कार्यक्षेत्र।

(३) कार्यक्षेत्र- उक्त उद्देशोंके अनुसार वैदिक तत्वज्ञान और वैदिक धर्मके सुबोध ग्रंथ प्रचलित अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध करना तथा वेदके पठन पाठनके लिये उचित सहायता और उत्तेजना देना।

स्वाध्याय मंडलका व्यय।

(४) स्वाध्याय-मंडल का व्यय-पुस्तक प्रकाशन में लाभकी आशा न करनेके कारण, स्वाध्याय मंडल के व्यय आदिके लिये, उदारचित्त ' दानी महाशयों की उदारता ' परही विश्वास रखा है। आशा है कि धनिक लोक स्वयं द्रव्यकी सहायता करेंगे और दूसरे लोक सहायता करवायेंगे।

=o=

सहायक आदिके नियम।

प्रतिपालक वर्ग।

(५) स्वा० मंडलके प्रतिपालक — जो धनिक पांच सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वा० मंडलको दान देंगे, वे स्वा० मंडलके 'प्रतिपालक' हो सकते हैं। इनको " स्वाध्याय-मण्डल" के सब पुस्तक मिलेंगे

पोषकवर्ग ।

(६) स्वाध्याय मंडलके पोषक-जो धनिक सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वाध्याय मंडलको दान देंगे वे स्वाध्याय मंडल के 'पोषक' हो सकते हैं। इनको वह पुस्तक मिलेंगे कि जो इनकी रकम आने के पश्चात् मुद्रित होंगे ।

सहायकवर्ग ।

(७) सहायक— जो यथाशक्ति द्रव्यकी सहायता करेंगे वे स्वाध्याय मंडलके 'सहायक' हो सकते हैं।

स्थिर सहायक वर्ग ।

(८) स्थिर-सहायक—जो २५, ५०, १००, अथवा अधिक रु. स्वाध्याय मंडलके पास अनामत रखेंगे वे 'स्थिर सहायक' होंगे। (दो वर्षके पश्चात् जिस समय चाहे उस समय इनका धन वापस हो सकता है) इनको क्रमशः १०, ४॥ और २ रु. के पुस्तक (डाकव्यय समेत) प्रतिवर्ष भेट किये जायंगे ।

मासिक सहायता ।

(९) मासिक-सहायक-जो प्रतिमास यथाशक्ति सहायता करेंगे वे 'मासिक-सहायक' होंगे ।

सूचना ।

सूचना—सहायक, स्थिर सहायक, तथा मासिक-सहायक आदिको उनकी रकम प्राप्त होनेके अनुसार स्वा० मं० के पुस्तक मिलेंगे ।

सबको उचित है कि वे स्वा० मंडलके पुस्तक स्वयं पठन करें, इन पुस्तकोंका प्रचार करनेमें सहायता करें और उक्त प्रकारके पालक, पोषक, सहायक आदिकोंकी संख्या बढानेमें सहायता दें। क्यों कि आर्थिक सहायताके विना 'स्वाध्याय-मंडल' का कार्य चल नहीं सकता।

वार्षिकवृत्त

(१०) वार्षिकवृत्त—स्वाध्याय मंडलका वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा जिसमें स्वाध्याय मंडल के सब कार्य का विवरण आदि प्रकाशित होगा ।

प्राप्तिपत्र ।

(११)प्राप्ति पत्र-प्रत्येक दानका प्राप्तिपत्र स्वाध्याय मंडलसे दानी महाशयके पास पहुंचेगा । तथा वार्षिक – वृत्तमें उसका उल्लेख रहेगा ।

पुस्तक विक्रीके नियम ।

(१२) उधार पुस्तक देना बंद किया है। सब पुस्तक वी. पी. द्वारा ही भेजे जाते हैं अथवा पेशगी मूल्य आनेपर भेजे जाते हैं।

कमिशन ।

(१३) कमिशन-व्यौपारियों के लिये निम्न प्रकार कमिशन दिया जाता है—

१०० रु.	पुस्तकोंपर	२०	फी सैंकडा
५० "	"	१५	" "
२५ "	"	१०	" "
१० "	"	५	" "

बदलेमें पुस्तक ।

(१४) बदलेमें पुस्तक नहीं दिये जाते, क्यों कि उनकी विक्री करनेका साधन यहां नहीं है।

पेशगी मूल्य ।

(१५) पेशगी मूल्य भेजने से लाभ-जो लोग ५) पांच अथवा अधिक रु. की पुस्तकें, पुस्तकों का सब मूल्य पेशगी म. आ. द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको उक्त कमिशनके अतिरिक्त पांच फी सैंकडा कमिशन अधिक मिलेगा और डाक व्यय माफ होगा। वी. पी. से पुस्तकें मंगवाने वालोंको यह लाभ नहीं होगा। पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस बातका विचार अवश्य करें।

नियम परिवर्तन ।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा। परंतु, स्वा० मंडलकी उन्नतिके लिये सब सभासद अपनी सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार कर के योग्य सूचनाका अवश्य स्वीकार किया जायगा।

औंध, जि. सातारा
१ जनवरी १९२७

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध.

[स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित]

वैदिक धर्मके ग्रंथ

१ आगम निबंध माला।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद समुद्र-का मंथन करनेसे अनेक " ज्ञान रत्न " प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है।

(१) वैदिक-राज्य पद्धति। मू. ।-)
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ।।।)
(४) वैदिक चिकित्सा शास्त्र। मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ।।)
(६) वैदिक सर्पविद्या मू. ।।)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ।।)
(८) वेदमें चर्खा। मू. ।।)
(९) शिवसंकल्पका विजय। मू. ।।।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ।।)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ।।)
(१२) वेदमें रोग जंतु शास्त्र। मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. ≡)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)
(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)
(१६) वैदिक जल विद्या। मू. =)
(१७) आत्मशक्तिका विकास। मू. ।-)
(१८) वैदिक उपदेश माला। मू. ।।)

२ धर्म शिक्षा के ग्रंथ

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें " धर्म शिक्षा " की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक बढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैय्यार किये हैं।

(१) बालकोंकी धर्म-शिक्षा

प्रथमभाग प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू. -)

(२) बालकों की धर्म-शिक्षा

द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू. =) दो आने।

(३) वैदिक पाठमाला

प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू ≡)

अन्य श्रेणीयोंके लिये पुस्तक तैयार हो रहे हैं।

[३] योगसाधन माला ।

" योग साधन" का अनुष्ठान करने से शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इसलिये यह "योग-साधन" हरएक मनुष्यको करने योग्य है।

१ संध्योपासना.

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है। मू० १॥) डेढ. रु०

२ संध्याका अनुष्ठान ।

(यह पुस्तक पूर्वोक्त "संध्योपासना" में संमिलित है, इस लिये "संध्योपासना" लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है।) मू० ॥) आठ आने।

३ वैदिक प्राण विद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार " मनकी भावना " रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू. १) एक रु.।

४ ब्रह्मचर्य

इस पुस्तकमें "अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त का विवरण है। ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्य-रक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं। यह पुस्तक "सचित्र" है। इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है। मू०१।) सवा रु.

५ योग साधन की तैयारी

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं हैं। मू. १) एक रु.।

६ आसन ।

इसमें उपयोगी आसनों का वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू. २) रु.

७ सूर्यभेदन व्यायाम

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम । मू. ॥।)

" योग साधन" के अन्य पुस्तक छप रहे हैं मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी।

[४] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

१ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या

"नर-मेध" मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन। वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है. इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है। मू०१)एक रुपया

२ यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या।

"सर्व-मेध" एक ईश्वर की उपासना। य. अ. ३२में एक ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

३ यजुर्वेद ३६ की व्याख्या

"शांति-करण" । सच्ची शांति का सच्चा उपाय । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥)

तत्त्वज्ञान के भंडारमें " उपनिषद् ग्रंथ " अमूल्य ग्रंथ हैं। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं। और मृत्युके समय अमृतमय शांति प्रदान करते हैं। हरएक मनुष्यके लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

१ ईश उपनिषद् ।

इस पुस्तक में ईश उपनिषदकी व्याख्या है। मू.॥।=

२ केन उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष, आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें कहां है और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है।

मू. १।) रु.

६ देवता-परिचय ग्रंथ-माला।

" वैदिक देवता" ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में "देवता ओंका परिचय" करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है--

१ रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥)

२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=)

३ ३३ देवताओंका विचार। मू. ≡)

४ देवता विचार। मू. ≡)

५ वैदिक अग्निविद्या मू. १॥)

"अन्य" देवताओंका विचार और परिचय कराने वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

७ ब्राह्मण बोध माला।

१ शत--पथ--बोधामृत । मू।)

६

[८] स्वयं-शिक्षक-माला।

१ वेदका स्वयं शिक्षक।

प्रथम भाग। मू, १॥) डेढ रु०

२ वेदका स्वयं शिक्षक।

द्वितीय भाग मू. १॥) डेढ रु०।

संस्कृत- पाठ-माला।

[स्वयं संस्कृत सीखने का अत्यंत सुगम उपाय।]

हरएक आर्यका कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा सीखे और वेद तथा आर्ष शास्त्र स्वयं पढे, उसका मनन करे और प्रचार करे।

यह कर्तव्य तबतक ठीक रीतिसे पालन नहीं हो सकता, जबतक संस्कृत सीखनेके सुगम साधन निर्माण नहीं हुए हों। इस कठिनता का हम गत दस वर्षोंसे मनन कर रहे हैं। इन वर्षोंमें हमने अनेक प्रयत्न किये, छोटे और बडे विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न रीतियोंसे पढा कर अनुभव लिया और इतने अनुभव का और मननका निछोड इन पुस्तकोंमें संगृहित किया है। इसी लिये ये पुस्तक अत्यंत सुगम और सबके उपयोगी सिद्ध होगये हैं।

ये पुस्तक हमने छः से दस वर्षोंके बालकों और बालिकाओंको पढाये और अनुभव लिया, कि ये छोटे बालक पहिले महिनेसे ही छोटे छोटे वाक्य संस्कृत में बोलने लगते हैं और इन पुस्तकों की पढाई करना उनके लिये एक बडा आनंद का कार्य हो जाता है !! इसी प्रकार स्त्रियों और पुरुषोंके लिये भी ये पुस्तक अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

इसी लिये आपसे निवेदन है कि आप इन पुस्तकों की सूचना अपने समाजके आर्य सभासदों, सदस्यों और प्रेमी भद्र पुरुषोंको दीजिये। हर एक आर्य भाई अवश्य संस्कृत सीखे। कईयोंको अबतक पता नहीं है कि ऐसी सुगम पुस्तकें बनी हैं। इस लिये आप यथा संभव जितनोंको इन पुस्तकों की सूचना दे सकते हैं दीजिये, ताकि आपकी प्रेरणा द्वारा वहां के भद्रपुरुष संस्कृत के अभिज्ञ बनें।

आप अपने समाजके अधिवेशनों में इसकी घोषणा दीजिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि आपके स्थान पर अधिक से अधिक मनुष्य संस्कृत पढने वाले बनें।

हरएक की सुविधा के लिये इस संस्कृत पाठ-मालाके बारह पुस्तकों का मूल्य म० आ० से केवल ३ तीन रु. रखा है। वी. पी से ४ रु० होगा। इस लिये ग्राहक म० आ० से ही ३) रु भेजें, वी. पी. से मंगवाने पर उनका व्यर्थ नुकसान होगा।

आशा है कि आप इस संस्कृत के प्रचार के लिये इतनी सहायता देंगे।

जहां अन्य स्थानोंमें सहस्रों मनुष्य इन पुस्तकों से लाभ उठा रहे हैं, वहां आपके परिचित मनुष्य क्यों वंचित रहें ?

इस लिये इन पुस्तकों की सूचना आप अधिक से अधिक मनुष्योंतक पहुंचानेकी कृपा कीजिये।

संस्कृत पाठमाला के अध्ययन से लाभ।

(१) आप किसी दूसरेकी सहायताके विना अपना कामधंदा करते हुए फुरसत के समय इन पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान बढा सकते हैं।

(२) प्रतिदिन घंटा अथवा आध घंटा पढनेसे एक वर्षके अंदर आप रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

(३) पुस्तक अत्यंत सुगम हैं। विना नियमोंको कंठ किये आपका संस्कृत भाषामें प्रवेश हो सकता है।

(४) घरमें पुत्रों, पुत्रियों और स्त्रियोंको इन पुस्तकों का पढना और पढाना अत्यंत सुगम है। इस प्रकार आपके घरके सब मनुष्य संस्कृत जाननेवाले हो सकते हैं।

(५) पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकों से बडा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है तो आप इन पुस्तकों के ग्राहक बन जाइये।

संस्कृत पाठ माला

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है ।]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है-

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग

इन चार भागोंमें पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक. लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।

इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अंक ४७ [भीष्मपर्व ५]

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशकेलिये ८)

महाभारत

महाभारत के पठन से लाभ।

—o—

(१) आर्यजातिका अत्यंत प्राचीन इतिहास विदित होगा।
(२) आर्यनीति शास्त्रका उत्तम बोध होगा।
(३) भारतीय राजनीति शास्त्र का ज्ञान होगा।
(४) आर्यों की समाजसंस्थाओंकी उत्क्रांतिका बोध होगा।
(५) आर्य राजशासन पद्धतिका पता लगेगा।
(६) ऋषियोंके धर्मवचनों का बोध होकर सनातन मानव धर्मका उत्तम ज्ञान होगा।
(७) चार वर्णों और चार आश्रमों की प्राचीन व्यवस्था के स्वरूपका पता लग जायगा।
(८) कई आलंकारिक कथाओंके मूलका पता लग जायगा।
(९) वैदिकधर्मके प्राचीन आचार विचारोंका ज्ञान होगा और-
(१०) प्राचीन आर्य लोगोंका सदाचार देखकर हमें आजकी स्थितिमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहियें, इसका निश्चत ज्ञान होगा।

तात्पर्य हरएक अवस्थामें अपने प्राचीन पूर्वजोंके इतिहास का ज्ञान प्राप्त होनेसे अनन्त लाभ हो सकते हैं।

इसलिये, आप स्वयं महाभारत का पाठ कीजिये, मनन कीजिये और बोध प्राप्त कीजिये तथा दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा कीजिये।

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है. १२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म. आ. ६) और वी, पी, से ७) रु, है॥

आप अपना नाम ग्राहक श्रेणीमें लिखवा कर अपना चंदा आ. से ६) रु. भेज दें तथा अपने मित्रोंको ग्राहक बनने के लिये उत्साह दीजिये।

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥ १५ ॥
कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम्
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥
तस्य ते न व्यथां काञ्चिदिह पश्यामि भारत।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः॥ १७ ॥ [७६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

संजय उवाच— ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत्।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥
यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥
मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥
अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम्।

अप्रतिहतशस्त्रवाले इन्ही वैकुण्ठवासी हरिने पूर्व कालमें आविर्भूत होकर देवताओं और असुरोंसे अति गम्भीर स्वरमें पूछा था "कौन जयी होगा?" ॥ उनके बाद जिन लोगोंने उस समय कहा "हे कृष्ण! हम लोग जयी हुए! वहां श्रीकृष्णजीके प्रसादसे इन्द्रादि देवता सबोंने इस तरहपर कहके जयलाभ कर त्रैलोक्य प्राप्त किया था॥ इस लिये हे भारत! विश्वभुक् त्रिदिवेश्वर वही हरि जब हम लोगोंके जय होनेके लिये इच्छा करते हैं, तो इस जयके होनेके विषयमें कुछ कष्ट मुझे नहीं दीखता है ॥ (१५–१७)

भीष्मपर्वमें इक्कीस अध्याय समाप्त। [७६३]

भीष्मपर्वमें बाईस अध्याय।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर बोले हे भरतर्षभ! इनके बाद भीष्मकी सेनाके प्रतिपक्षमें व्यूह रचना कर लेनेके लिये अपनी सेनाको राजा युधिष्ठिर प्रेरित करने लगे ॥ अनन्तर कुरुकुलश्रेष्ठ युद्धसे स्वर्गकी इच्छा करनेवाले पाण्डवोंने अपने शत्रुओंके प्रतिपक्षमें यथोद्दिष्ट अनीक व्यूहकी रचना कर ली ॥ सव्यसाची अर्जुन मध्यभागमें शिखण्डीकी सेनाकी रक्षा करने लगे। सेनाके आगे चलनेवाले धृष्टद्युम्नकी रक्षा भीमसेन स्वयं करने लगे ॥ (१–३)

सात्वतवंशके प्रधान धनुष्मान् श्री-

' केन ' उपनिषद्

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है--

१ केन उपनिषद् का मनन,
२ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
३ उपनिषद् का अर्थ,
४ सांप्रदायिक झगडे,
५ " केन" शब्द का महत्त्व,
६ वेदान्त,
७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास,
८ अग्नि शब्दका भाव,
९ उपनिषद् के अंग,
१० शांतिमंत्रोंका विचार,
११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
१२ तीन शांतियोंका भाव,
१३ ईश और केन उपनिषद्,
१४ " यक्ष " कौन है? ,
१५ हैमवती उमा,
१६ पार्वती कौन है?
१७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती,
१८ इंद्र कौन है?
१९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
२० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
२१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्ठी,
२५ त्रिलोकी,
२३ अथर्वाका सिर,
२४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
२५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र,
२६ आत्मवान् यक्ष,
२७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
२८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
२९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त,
३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता,
३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं. इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य १।) रु. डाकव्यय=) है।

मंत्री स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

(मराठी) पुरुषार्थ (मासिक)

स्वधर्माची जागृति करून स्वतःच्या पुरुषार्थानें आपली उन्नति करून घेण्याचे निश्चित मार्ग दाखवणारें मासिक. या मासिकामध्यें आरोग्य वाढविणारे सुगम योगसाधनाचे मार्गही दाखवले जतात. याच्या योगानें हजारों माणसांनीं आपलें आरोग्य वाढवलें आहे. वार्षिक वर्गणी म. आ. नें २) रु. व व्ही पी. नें २॥)रु. नमुन्याचा अंक मागवा.

स्वाध्याय मंडल औंध (जि० सातारा)

स्वाध्याय मंडल का नवम वर्ष।

स्वाध्याय मंडलके नवम वर्षका इतिवृत्त पाठकोंके सन्मुख रखा जाता है। पाठक इसमें देख सकते हैं कि इस मंडलके कार्य की प्रगति इस वर्ष कितनी हुई है।

धन्यवाद।

इस वर्ष कई कारणों से स्वाध्याय मंडलका कर्जा बढ गया था और उस कारण आगे कार्य चलना असंभव हो गया था। ऐसे कठिन प्रसंगमें श्री. सेठ शूरजी वल्लभ दासजी से८०००)रु. तथा श्री.गणपतराव गोरे जीसे ३६०५)रु. की दो तीन वर्षोंके लिये स्थायी सहायता प्राप्त हुई, जिससे उस समय के कर्जेका बोजा दो तीन वर्षोंके लिये कम हुआ और इस वर्षका कार्य चलाना संभव हुआ, इसलिये श्री. सेठ शूरजी वल्लभदासजीको तथा बा. गणपतरावजी को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। क्यों कि यदि इनसे इतनी सहायता इस समय इकट्ठी न आती, तो कार्य करीब बंद होनेकी ही संभावना थी। अतः आगे का कार्य सुकर करनेमें सहायता देनेके कारण हम उक्त महानुभावों के शतशः धन्यवाद गाते हैं।

अथर्ववेद स्वाध्याय

पूर्वोक्त सहायता प्राप्त होते ही अथर्व वेदका स्वाध्याय लिखना शुरू किया और इस समयतक प्रथम कांड आधा छप चुका है और आगे लेखन का कार्य चल रहा है। यह क्रमशः वैदिक धर्म मासिक में छप रहा है और जिन ग्राहकोंने पढा उन्होने इसी प्रकार कार्य चलानेका उत्साह दिया है। इसलिये यह अथर्ववेदका भाषाभाष्य इसी प्रकार आगे मुद्रित करनेका विचार निश्चित किया है। इससे कुछ स्थिर कार्य होता रहेगा। यह भाष्य " वैदिक धर्म " मासिक में खंडशः छपकर ग्राहकोंके पास जायगा जिससे ग्राहकोंको बहुत सस्ता भी मिलेगा और मासिक स्वाध्याय करने वालोंको सरलतासे स्वाध्याय करना अत्यंत सुगम होगा।

यजुर्वेदका मुद्रण

यजुर्वेदका शुद्ध मुद्रण करनेका संकल्प गत वर्ष प्रसिद्ध किया था। जिसका मुद्रण इस वर्ष शुरू हो गया। अब थोडे ही समयमें यजुर्वेद का मुद्रण पूर्ण हो जायगा। यजुर्वेद के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ, युरोपमें मुद्रित पुस्तक, भारतवर्षमें मुद्रित पुस्तक आदिकी सहायतासे पाठभेदादिका निश्चय करके, तथा जो पंडित यजुर्वेद को कंठस्थ रखते हैं उनके द्वारा शुद्ध करवाके-जहांतक हो सके वहांतक-अतिशुद्ध मुद्रण करनेका संकल्प किया है, और अतिपरिश्रमसे यह वेदोंके पुस्तकोंका शुद्ध मुद्रण कार्य चलाया है। जब इसी प्रकार दो तीन महिनोंमें यजुर्वेद मुद्रित हो जायगा, तब अथर्ववेद छपेगा और इसी प्रकार चारों वेदों की संहिताएं छापी जायगी, तत्पश्चात् वेद के शाखाग्रंथ भी छापनेका विचार है और उसकी तैयारियां चलायी हैं।

पादानुक्रमणिका

इस समय तक वेदोंकी जो अनुक्रमणिकाएं बनी हैं, वह मंत्रके प्रथम चरण की बनी हैं। इसलिये मंत्रका द्वितीय, तृतीय और चतर्थ चरण देखनेक कार्य उनसे नहीं हो सकता। इस कारण हमने प्रय त्नसे वेदोंकी पादानुक्रमणिकाएं बनाई हैं जो वेद पाठियों के लिये बडी लाभदायक होगी। हमारी वेद छपाई में यह एक विशेषता होगी।

वेद छपाईके लिये टाइप बडा लिया है इसलिये नित्यपाठ करनेवालोंके लिये ये पुस्तक बडे सहायक हो सकते हैं।

संस्कृत पढाई

संस्कृत भाषाका ज्ञान होनेके विना हमारे आर्ष ग्रंथ समझ नहीं सकते और केवल भाषांतर द्वार- आर्ष ग्रंथोंका हृद्गत समझमें नहीं आसकता। इस लिये हरएक वैदिक धर्मीको संस्कृत भाषाका जाननी अत्यावश्यक है। परंतु आजकल की पढाई ऐसा हुई है कि जिसमें अन्यान्य भाषाओंका ज्ञान तो होता है परंतु संस्कृत का ज्ञान नहीं होता, इसलिये हरएकका मार्ग कठिन हुआ है। इस कठिनताको दूर करनेके लिये हमने " संस्कृत पाठ माला " मुद्रित की है। जिसके २४ भागोंके अध्ययनसे संस्कृतकी सब पढाई पूर्ण हो सकती है। जिन लोगों ने इस पद्धतिसे संस्कृतका अध्ययन किया है उन्होने इस पाठविधिकी श्रेष्ठताका अनुभव किया है। इन पुस्तकों की पाठविधि इतनी सुगम है कि आठ वर्षके लडके भी दो तीन महिनोंमें थोडा थोडा संस्कृत बोलने लग जाते हैं। बडे अभ्यासियोंकों तो लाभ होता ही है। इसकी पाठविधि ऐसी सुगम है कि साधारण भाषा पढनेवाले भी एक वर्षके अभ्याससे महाभारत रामायण के साधारण श्लोक समझनेकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

वेदका स्वयंशिक्षक

इस संस्कृत पाठ मालाकी २४ भागों की पढाई होनेके पश्चात् वेदमें प्रवेश करनेके लिये " वेद स्वयं शिक्षक " लिखे गये हैं। इसके दो भाग प्रसिद्ध हुए हैं, आगेके भाग यथाक्रम प्रसिद्ध हो जांयगे

स्वाध्यायमण्डल के परिश्रम

इस प्रकार स्वाध्याय मंडलके परिश्रम स्वाध्याय करनेवालोंकी कठिनता दूर करनेके लिये हो रहे हैं। जो पाठक इस स्वाध्याय मंडलके कार्यके साथ प्रारंभसे परिचित हैं उनको इस कार्यके लाभ के विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इतन करनेपर भी स्वाध्याय मंडलकी आर्थिक अवस्था समाधानकारक नहीं है।

कर्जा

प्रतिवर्ष कर्जा बढ रहा है। यद्यपि इस वर्ष कुल कर्जा करीब २३०००) रु. है तथापि उसमेंसे करीब १००००) रु. का कर्जा पुस्तक प्रकाशनसे स्वयं और क्रमशः उतरने वाला है इसलिये उसका इतना बोजा नहीं है। परंतु शेष १३०००) रु० का कर्जा दो तीन वर्षोंमें उतरना आवश्यक है। यदि पोषक वर्गके सौ ग्राहक सौ रु० देकर बनाये जांयगे तो यह बहुतसा कर्जा उतर सकता है। यदि पाठक इस रीतिसे पोषक वर्ग के ग्राहक बढानेकी सहायता करेंगे तो हम द्विगुणित उत्साहसे कार्य करके दिखा देंगे।

ग्राहकोंका लाभ

पोषक वर्गके ग्राहकोंको कमसे कम प्रतिवर्ष १६) रु. के पुस्तक अवश्यही मिलते हैं, संभव हुआ तो अधिक भी मिलते रहेंगे। क्यों कि स्वाध्यायमंडल की ग्रंथ प्रकाशन की शक्ति प्रतिदिन बढ रही है। इसलिये छः वर्षों में ही उनको दान की रकम की पुस्तकें प्राप्त होकर आगे प्रकाशित होनेवाले सब पुस्तकों पर उनका अधिकार हमेशाके लिये रहेगा। केवल सौ रु० देनेवालोंको इतने ग्रंथ देनेका साहस केवल स्वाध्यायमंडलने ही किया है। इसलिये ग्राहक इस रीतिसे अपना लाभ करते हुए इस संस्था को भी सहायता कर सकते हैं।

जो पोषक वर्गके ग्राहक होते हैं उनको पूर्वमुद्रित पुस्तकें १५ फी सेकडा न्यून मूल्यसे दी जाती हैं।

यह भी उनके लिये एक बडा लाभ है। इसलिये आशा है कि पाठक इस रीतिसे अपने लाभ के साथ स्वाध्याय मंडलकी भी सहायता करेंगे और धर्म प्रचारके कार्य की सहायता करेंगे।

गुजराती पुस्तकें।

स्वाध्याय मंडलकी पुस्तकें बहुत भाषाओंमें प्रसिद्ध हो रही हैं। गुजराती भाषामें प्रकाशित करने का कार्य तो नियमपूर्वक चल रहा है। इस समय तक सूर्यभेदन व्यायाम, आसन तथा बालक धर्म शिक्षा के पुस्तक गुजरातीमें छप चुके हैं, ब्रह्मचर्य पुस्तक का मुद्रण भी शीघ्रही होगा। इसके पश्चात् अन्यान्य पुस्तकें यथाक्रम मुद्रित होती रहेंगी। गुजराती पुस्तकें मिलनेका पता-- श्री. म. बापुलालजी पटेल, आर्यसमाज, आनंद (जि. बडोदा)। जो केवल गुजराती भाषा जानते हैं वे इन पुस्तकोंसे बडा लाभ उठा सकते हैं।

मराठी भाषा में।

मराठी भाषा में भी स्वाध्यायमंडल की पुस्तकें स्वा० मंडल द्वारा ही प्रकाशित की जा रही हैं। प्रायः प्रति मास सौ पृष्ठोंका एक पुस्तक प्रकाशित होता है। इस वेगसे थोडेही समयमें सब पुस्तकें मराठी भाषामें प्रकाशित हो जायगी।

पाठक इस कार्य के भारका अवलोकन करें और जो हो सकता है वह इस कार्य की सहायता के लिये करें।

औंध (जि. सतारा) १।१।२७ — निवेदक श्रीपाद दामोदर सातवळेकर स्वाध्यायमंडल

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा) का

नवम वर्षका आयव्यय।

(ता. १ । १ । २६ से ता. ३१ । १२ । २६ तक)

परिशिष्ट १

आय	रु०	आ०	व्यय	रु०	आ०
गतवर्षकी रोकड	७३	०	मुद्रणालय		
वैदिकधर्म चंदा...............	२५९३	१	यंत्रव्यय ९००		
महाभारत "	४४७०	१२	टाइप ५७५-९		
पुरुषार्थ "	२३५२	५	फर्निचर २७१-१५		
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त	६१४६	९		१७४७	८
दान प्राप्त—			पुस्तकालय	६६६	४
पोषकवर्ग ४८०			पुस्तक छपाई (मुंबई में)	२९६५	१०
मासिक सहायता ५९			कागज आदि	५८२७	११
इतर दान २१३			वेतन	५९१८	२
यज्ञ सहायता १			डाकव्यय	१६९०	१
	७५३	०	स्टेशनरी	१२८	२
स्थिरसहायक चंदा..........	६९	०	रेलवे व्यय	६७१	८
छपाईसे प्राप्त..............	२९८	४	विज्ञापनव्यय	७८	२
कागज विक्रीसे प्राप्त	६७	८	यंत्रदुरुस्ती	२२६	०
विज्ञापन से प्राप्त	२२	०	साधारण व्यय	१८२	९
कर्जा—			कर्जा निवृत्ति	७०८०	११
स्थिरसहायकवर्ग १२३२०)			स्थिरग्राहकचंदा वापस	११५	१२
अनामत १३-९)	१२३३३	९	औंधमें रोकड	१८८१	०
रु.	२९१७९	०		२९१७९	०

स्वाध्याय मंडल का हानिलाभ पत्रक।

(ता, १।१।२६ से ता. ३१।१२।२६ तक)

परिशिष्ट २

आय		रु०	आ०
वैदिकधर्मचंदा—			
गतवर्षका शेष	८५०- ०		
इसवर्ष प्राप्त	२५९३- १		
	३४४३- १		
बाद पेशगी	६५०- ०	२७९३	१
महाभारतचंदा			
इस वर्ष प्राप्त	४४७०-१२		
बाद पेशगी	२१९०- ०	२२८०	१२
पुरुषार्थचंदा			
गतवर्षका शेष	६०६- ०		
इसवर्षमें प्राप्त	२३५२- ५		
	२९५८- ५		
बाद पेशगी	८००- ०	२१५८	५
स्थिरग्राहकचंदा-			
गतवर्षका शेष	१२- ०		
इसवर्ष प्राप्त	६९- ०		
	८१- ०		
बाद पेशगी	१०- ०	७१	०
दानप्राप्ति-			
पोषकवर्ग	४८०- ०		
मासिकसहायता	५९- ०		
इतरदान	२१३- ०		
यज्ञसहायता	१- ०	७५३	०
पुस्तकविक्रीसे प्राप्त		६१४६	९

व्यय		रु०	आ०
आरंभ दिनका पुस्तकसंग्रह		१६२९६	०
पुस्तक छपाई		३८६५	१०
कागज आदि		५०२६	९
अन्यव्यय-			
वेतन	५९१८- २		
डाकव्यय	१६९०- १		
स्टेशनरी	१२८- २		
रेलवेव्यय	६७१- ८		
विज्ञापन	७८- २		
यंत्रदुरुस्ती	२२६- ०		
साधारणव्यय	१८२- ९	८८९४	८
घटावः—			
टाइपका	१६५०- ०		
यंत्रका	६६०- ०		
पुस्तकालयका	१४०- ०		
मकानका	६५०- ०	३१००	०
आयकाशेष स्थिरकोशकेलिये		६१५८	१०

(आगे अगले पृष्टपर देखिये)

आय	रु०	आ.	व्यय	रु०	आ०
छपाईसेप्राप्त	२९८	४			
कागजविक्रीसे प्राप्त	६७	८			
विज्ञापनसे प्राप्त	२२	०			
कर्जामें छूट					
अंतिमदिन पुस्तक संग्रह	८२००	१४			
	२०५५०	०			
रु.	४३३४१	५	रु.	४३३४१	५

स्वाध्याय मंडल औंधका आर्थिक अवस्था पत्रक।

(ता. ३१। १२।२६ के दिन)

परिशिष्ट ३

कोश और कर्जा		रु०	आ०	संपत्ति		रु०	आ०
स्थिरकोश-				मुद्रणालय-			
गतवर्षका शेष	२२०४५- ७			मकान	१२७९७- १		
इसवर्षमें जमा	६१५८-१०	२८२०४	१	यंत्रादि	१३२६८- ६		
यंत्रादिघटाव -				टाइप	४५५४-१२		
गतवर्षका शेष	३५६७- ३			अन्य सामान	२१७३- १	३२७९३	४
इसवर्षमें	३१००- ०	६६६७	३	फर्निचर		१४७	४
कर्जा--				पुस्तकालय		२८३६	७
(१) स्थिरसहायक				पुस्तक संग्रह		२०५५०	०
गतवर्षका	११४५- ०			रोकड बंकमें		१८८१	०
इसवर्षका	१२३२०- ०						
	१३४६५- ०						
बाद वापस	११५-१२	१३३४९	४				
(२) अन्यकर्जा							
कागजका	१२७३-१४						
छपाई	९००-०						
अनामत	१३- ९						
पेशगी	३६५०-०						
बैंक	४१५०- ०	९९८७	७				
	रु.	५८२०७	१५		रु.	५८२०७	१५

इस वर्ष के दानका ब्यौरा

पोषक वर्ग।

श्री. सौ. तापीबाई, मुंबई	१००)
म. बोध रामजी सूद	१००)
" मगनलालजी जौहरी	१००)
सेठ प्रागजी प्राणजीवन व्यास	१००)
श्री. अ. नि. देशपांडे राळेगांव	७०)
श्री. पं. आ. इनामदार औंध	१०)
	४८०

मासिकदान।

श्री. वी. एस. मराठे, मुंबई	५५)
म. दि. वा. दत्तवाडकर, औंध	४)
	५९)

स्थिरसहायकवर्ग।

श्री० सेठ शूरजी वल्लभदासजी	८०००)
म. गणपतरावजी गोरे	३६०५)
" बूधरामजी सूद	४००)
ला. रामचंद्रजी टनन	१००)
म. बिहारीलाल वासुदेव प्रसादजी	१००)
" माधवराव गेजी	५०)
" बी. एन्. सरपाल	५०)
म. रामप्रसादजी, आग्रा	१०)
पं. पुष्करदत्तजी शर्मा	५)
	१२३२०)

दान

गुप्तदान अंबाला	१००)
म. मन्नालालजी गुप्त.	५०)
पं. हरिशरणजी	३४)
म. बलदेव नरोत्तम सारंग	१०)
" रामचंद्रजी इगतपुरी	५)
" विश्वदास जी टीचर लंखा	५)
" बलसिंहजी व्याया	४)
पं. व्यंकटाचार्य उडीपी.	२)
" चक्रपाणीजी —	१)
म. भगवानस्वरूपजी भटनगर	१)
श्री. धर्मपत्नी महादेव प्रसादजी	१)
	२१३)

स्थिर ग्राहकवर्ग।

म. व्या. व. दांडेकर, इंदूर	२५)
" ग. गो. नवरे शिव	२३)
" सत्यदेवजी नागपुर	१०)
" नत्थूरामजी शर्मा	७)
" ना. वी. मा. —	४)
	६९)

भूलका सुधार.

इसी पुस्तकके पृष्ठ ४ पर " स्थिर सहायक वर्ग " के नियम ८ में " भेंट के पुस्तकों का क्रम " उलटा पढना चाहिये, जैसा " २) ४॥) और १०) रु. के पुस्तक अथवा इसी हिसाबसे अधिक पुस्तक भेंट के रूपमें मिलेंगे। "

मुद्रक तथा प्रकाशक--- श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.

छूत और अछूत।

[प्रथम भाग]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १) रु. है डाकव्यय।)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक--- श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.

REGISTERED 1463

वर्ष ८ अंक ६ क्रमांक ९० ज्येष्ठ संवत् १९८४ जून सन १९२७

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४।।) विदेशके लिये ५)

विषयसूची ।

वर्ष ८
अंक ६
क्रमांक९०

ज्येष्ठ
संवत् १९८४
जून
सन १९२७

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।
स्वाध्याय मंडल, औंध जि. सातारा।

जनताका हित करनेवाले शूर पुरुष ।

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा
रभसासो अञ्जयः ॥ अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा
अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥

ऋग्वेद० १। १६६। १०

जिनके (नर्येषु) मनुष्योंका हित करने वाले (बाहुषु) बाहुओं में (भूरीणि भद्रा) बहुत कल्याणकारी बल है, (वक्षः सु) छातीके ऊपर (रुक्माः) तेजस्वी (रभसासः) सुंदर (अंजयः) आभूषण हैं। (अंसेषु) कंधोंपर (एताः)ये शस्त्र हैं जिन (पविषु) शस्त्रों में (क्षुराः) उस्त्रेके समान तेजधारा हैं। (वयः पक्षान् न) जैसे पक्षी पंखों को धारण करते हैं उस प्रकार (श्रियः) शोभादायक शस्त्रास्त्र (अनु वि धिरे) जो धारण करते हैं।

जनताका हित करने वाले शूरवीर अपने बाहुओंका बल बढावें, कमरमें और कंधोंपर तेज शस्त्रास्त्र धारण करें और उनका उपयोग शत्रुको दूर करने में करें और अपने पुरुषार्थ से जनताका हित करें ।

——o——

चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन।

शारीरिक बल बढाने के उपाय।

१ ब्रह्मचर्य।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥अथर्व० ॥

बालकों का स्वास्थ्य बना रहे, उनके शरीर में फुर्ती और उत्साह रहे तथा उनकी आयु बढे इस लिए अत्यन्त आवश्यकता ब्रह्मचर्य की है। छोटी उमर में वीर्य के नाश के सदृश स्वास्थ्यको और आयु को हानि पहुँचाने वाली और दूसरी बात शायद ही कोई हो। लोग समझते हैं कि शरीर में वीर्य उत्पन्न होनेपर उसके व्यय करने में कोई हानि नहीं। किन्तु यह ख्याल बिलकुल गलत और घातक है।

इंद्रिय-विज्ञान-शास्त्र के विद्वानों को अभी पूरा पता नहीं चला कि वीर्य उत्पन्न होने पर उसका व्यय न किया जाय तो शरीर को क्या लाभ होता है। हमारे ऋषिमुनियोंकी यह दृढ संमति है कि वीर्यरक्षणसे अनेक लाभ हैं। बहुतेरे विदेशी विद्वानों का भी मत है कि अनुपयुक्त वीर्य शरीर सोख लेता है और उससे शरीर में उत्साह बढता है। जिस मनुष्य के शरीर में पुरुषत्वके अभाव के कारण वीर्य उत्पन्न नहीं होता, वा जिस जानवर (नर) का पुरुषत्व कृत्रिम रीतिसे घटा दिया जाता है, उसमें त्वेष, स्वाभिमान आदि गुण कम होते हैं। इससे विदित होगा कि शरीर में वीर्य रहनेसे क्या लाभ होता है।

वीर्य का व्यय होने के पूर्व शरीर में जो शक्ति, उत्साह और श्रमसहिष्णुता रहती है वह वीर्य का व्यय होने पर बहुत समयतक फिर नहीं आती। इससे भी वीर्य के व्यय से होनेवाली हानि विदित होगी। वीर्य भाफ के सदृश है। भाफको जितना अधिक दबाओ उतनी ही अधिक शक्ति उसमें आती है। इसी प्रकार वीर्य को दबा रखने की शक्ति शरीर में जितनी अधिक होगी उतनी ही श्रमसहिष्णुता, चपलता और उतना ही उत्साह अधिक होगा।

जवानी में मनोवृत्तियों का प्रबल एवं श्रेष्ठ होना वीर्य की अधिकाई का फल है। जवानी का जोश शरीर में रहने पर स्त्री, पुरुषों के आचरण में बडा भारी फरक दिखाई देता है। विपत्ति—पीडित मनुष्य के लिए हृदय का अकुलाना, कुल की मर्यादा की रक्षा में वा स्वाभिमान के लिए प्राण-त्याग करने को तैयार होना, प्राणों के समान प्यारी प्रिया के लिए अतीव साहस के काम करना आदि काम तभी तक हो सकते हैं जब तक शरीर में वीर्य का जोश हो। कुशल से कुशल योद्धा उतरती उमर में धीमे काम भले ही करे; किन्तु आंधी के समान प्रबल वेग से शत्रु पर हम्ला करना, वा वज्रपात के समान भयानक आवाज उठा सारे संसार को जीत लेना आदि, संसार को चकित करनेवाले काम जवानी में ही हो सकते हैं।

पुरुषत्व और पराक्रम तथा कुछ श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का सम्बन्ध लोग बहुत प्राचीन समय से जानते हैं। यह बात अंग्रेजी के वर्चू (virtue) शब्द से जो लॅटिन भाषासे लिया गया है (vir=a man) और संस्कृत के पौरुष शब्द से सिद्ध होती है। देखिये—

Vir = a man
वीर = मनुष्य
Vir-tue=सद्गुण
वीर-त्व =वीरता

प्रसिद्ध पहलवान शरीर का सामर्थ्य न घटे इसलिए स्त्री को वर्ज्य कर देते हैं। वा (वे विवाहित हों तो) कुश्ती वा दंगल लडने के पहले कुछ दिन वे ब्रह्मचर्य से रहते हैं। इंग्लैण्ड आदि देशों में नावों की दौड के पूर्व नाविक कुछ दिन ब्रह्मचर्य से रहते हैं। इन बातों से ज्ञात होगा कि वीर्य का नाश होने से शक्ति को कैसी हानि होती है। वीर्य का व्यय होने से मस्तिष्क की शक्ति कम होती ही है। इसे जानकर ही पहले के लोग गुरु के पास अध्ययन पूरा हो चुकने के पश्चात् विवाह करते थे। अब भी लोगों की समझ है कि पत्नि की भेंट के पश्चात् वा दो, एक पुत्रों के पिता का पद प्राप्त होनेपर युवक का अध्ययन खतम हो चुकता है। वा नवीन विषय का आकलन वा नया अध्ययन उससे नहीं हो सकता। इस समझ का कारण यही है कि उन्हे पूर्णतया विदित है कि वीर्यनाश का फल मस्तिष्क की शक्ति क्षीण करना है। हम लोग पुराणों में पढते हैं कि स्त्री को देखकर जब कोई ऋषि मोहित हो जाता था, तब तपस्या के कारण प्राप्त हुई प्रचण्ड मनः-शक्ति वा सिद्धि नष्ट हो जाती थी। इसकी जड उपरोक्त कथन में है। हमें पुराणों से विदित होता है विश्वामित्र आदि ऋषियों की स्त्री के दर्शन से कैसी अवनति हुई। इससे सिद्ध है कि मनः-शक्ति, पराक्रम आदि का बीज अधिकांश में वीर्य ही है। इसीलिए 'वीर्य' शब्द, जिस का अर्थ शौर्य है, 'रेतस्' अर्थ में आता है। तब स्पष्ट ही है कि ब्रह्मचर्य जितना बढाया जावे उतना ही शरीर में उत्साह अधिक रहेगा।

यह ब्रह्मचर्य केवल स्त्रीसंग न करने से वा जल्दी विवाह न करने ही से, नहीं बढ सकता। सच्चा ब्रह्मचर्य रखना हो तो स्त्री के संबन्ध की बातों का मन को अयोग्य समय में स्पर्श भी न होना चाहिए। मन में वासना उत्पन्न होते ही वीर्य की उत्पत्ति होती है। और वह वीर्याशय में इकट्ठा होता है। जब उस स्थान में वीर्य बहुत इकट्ठा हो जाता है तब स्वप्न में स्त्रीसंग का आभास होता है और वीर्यपतन होता है। वीर्यनाश का दूसरा मार्ग यह है कि मन में स्त्रीके सम्बन्ध का बुरा भाव उत्पन्न होते ही वीर्य उत्पन्न होता है और वह मूत्र से मिलकर निकल जाता है। इस प्रकार स्वप्नावस्था न होने पर भी थोडा थोडा वीर्य नाश हो सकता है। इसी लिए जिसके मन में काम की इच्छा उत्पन्न होती है उसके अविवाहित रहने से वा विवाहित रहते हुए स्त्री से अलग व्रतस्थ रहने से कुछ लाभ नहीं। हमारे ऋषि तो अष्टविध मैथुन के विषयमें कहते ही हैं, परंतु बैबल में भी कहा है—

Who-so-ever looketh on a woman to lust after her, hath committed adultery with her already in his heart.

अर्थात् प्रत्यक्ष व्यभिचारी के सदृश परस्त्री के विषय में कामवासना रखनेवाला मनुष्य भी व्यभिचारी है।

हजरत ईसा मसीह का यह कथन है। हमारे ऋषियोंने तो सहस्रोंवार कहा है। इसी प्रकार कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष स्त्रीसंग करनेवाले के सदृश जिसके हृदयमें ब्रह्मचारी रहते हुए स्त्री सम्बन्ध के कुविचार आते हैं वह ब्रह्मचारी नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर विदित होगा कि वर्तमान युवकों में ब्रह्मचर्य का बहुत ही अभाव है। जिनके विवाह जल्द हो जाते हैं उनके ब्रह्मचर्य की बात करना ही व्यर्थ है, किन्तु अविवाहितों में भी उपरोक्त कारण से ब्रह्मचर्य कम रहता है। मातापिता की गलती से और लडकों का पिण्ड जन्मसे ही कमजोर रहने के कारण वे छोटी उमर में ही जवान हो जाते हैं। और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के कारण उनका मस्तिष्क और ज्ञानतन्तु निर्बल हो जाते हैं। इसी लिए उनके मन में कामवासना बहुत जल्द उत्पन्न होती है।

खानपान ।

इन कारणों के सिवा व्यायाम तथा पुरुषत्व के खेलों का अभाव है ही। साथ ही बालकों का आहार भी एक कारण है। हमारे भोजन के पदार्थों में पौष्टिक पदार्थ कम रहते हैं और तेल, मिरच, मसाला आदि पडे हुए पदार्थ अधिक रहते हैं। आजकल चाय, काफी आदि उत्तेजक पेय पदार्थों का प्रचार भी बहुत हो गया है। इससे यह आहार भी बालकों को छोटी उमर में युवावस्था प्राप्त कराने का कारण होता है। युरोपीय डाक्टरोंने इस विषय की खोज तथा अभ्यास किया है कि बालकों को छोटी उमर में काम की इच्छा उत्पन्न होना, इसी का परिणाम बुरी आदतें लगना और स्वप्नावस्था के समान विकार हो जाना आदि का कारण क्या है? उन सब का कथन है कि चाय, काफी आदि वस्तुएँ तथा बहुत मसाला पडी हुई चीजें खाने से बालकों में कामवासना उत्पन्न होती है।

अंग्रेजी स्कूलों में तथा कालेजों में जानेवाले विद्यार्थी नित्य इन पेयों का सेवन करते हैं। और इन पेयों का सेवन करनेवालों की संख्या बढती ही जाती है। इन पदार्थोंने कुछ लोगों को अवश्य ही बुरी आदतें लगा दी हैं और आगे चलकर औरों को लगा देवेंगे। जो बालक काफी व्यायाम नहीं करते, तथा जिनके ज्ञानतन्तु अभ्यास के कारण क्षीण हो जाते हैं ऐसे बालकों में चाय, काफी सदृश उत्तेजक पेयों के कारण कामवासना उत्पन्न होना तथा बुरी बातों की ओर चित्त झुकना सम्भव है। अब यूरपादी देशों में भी हल्ला होने लगा है कि इन उत्तेजक पदार्थों के सेवन से ब्रह्मचर्य कम होता जाता है। कामवासना जागृत करनेवाली दूसरी वस्तुएँ मिर्च और मसाला है। सब लोगों को कबूल है कि मिर्च और मसाले उत्तेजक वस्तुएँ हैं। इसीलिए इन वस्तुओं से कामवासना जागृत होना निश्चित ही है।

तब सिद्धान्त यही निकलता है कि यदि हम देशके नवयुवकों का ब्रह्मचर्य कायम रखना तथा बढाना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि चाय, काफी, मसाला, मिरचं आदि उत्तेजक वस्तुएँ उन्हे बिलकुल न दें।

यदि कोई ध्यानपूर्वक देखे कि ठण्ड और गरमी का मनुष्य के शरीरपर क्या परिणाम होता है, तो उसे विदित होगा कि उष्णता से शरीर में तुरन्त ही फुर्ती आती है किन्तु कुछ समय के बाद शरीर को वह कमजोर कर देती है। उष्ण पदार्थों का यह परिणाम जानकर आप स्वयं जान सकते हैं कि उत्तेजक पदार्थों से कैसी हानि होती है। क्यों कि उत्तेजक वस्तुओं की तासीर गरम रहती है और मनुष्य का पिण्ड जितना कमजोर होगा उतनी ही अधिक हानि गरम तासीर की वस्तुएँ करती हैं। शराब जैसी अतीव उत्तेजक वस्तुएँ बलवान मनुष्य हजम कर जाता है। किन्तु कमजोर मनुष्य के शरीर में उनसे तुरन्त ही उष्णता बढती है। और उसे हानि होती है। इसीसे यदि आप बालकों और युवकों में ब्रह्मचर्य कायम रखना चाहते हैं तो आप को चाहिए कि आप उष्ण एवं उत्तेजक वस्तुओं का सेवन उन्हे मना कर दें।

मनकी शुद्धि ।

ब्रह्मचर्य की रक्षा करने का एक और उपाय है मन को शुद्ध रखना। हमारे प्रौढ एवं सभ्य लोगों में एक बुरी आदत यह है कि वे मामूली बातचीत में भी असभ्य एवं अश्लील बातें करते हैं। तथा उन्हे अश्लील भाषण और अश्लील विषय की चाह है। साथ ही वे जब बालकों में भी यही चाह पाते हैं तब उसे फौरन रोकते नहीं, उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। यह असावधानी अतिही निन्दनीय है। वर्तमान कालेज के विद्यार्थियों में, उनके क्लबों में, तथा बडी उमर के लोगों में वार्तालाप का बिलकुल मामूली विषय और हँसी का विषय यही रहता है। पहले के लोग बालकों के सन्मुख ऐसी बातें कदापि न करते थे और बडी फिकर करते थे कि लडकों को असभ्य बातें दिखने न पावें। किन्तु अब बिलकुल विपरीत बातें होती हैं। माबाप को पर्वाह नहीं रहती कि उनके लडके शाकुन्तल, सुभद्राहरण आदि नाटक देखते हैं, या राणा भीमदेव, राठोड वीर

दुर्गादास आदि देखते हैं। परिणाम यह होता है कि जिन बालकों का पिण्ड ही कमजोर होता है, शिक्षा के कारण जिनका मस्तिष्क ऐसा कमजोर हो जाता है कि वह जल्द ही उत्तेजित होवे, जिन्हे पौष्टिक आहार नहीं मिलता केवल उत्तेजक आहार मिलता है, जो छुटपन ही से असभ्य बातें सुनते रहते हैं, जो शृंगार-रस-प्रधान नाटक पढते और देखते हैं, ऐसे बालकों में दीर्घ ब्रह्मचर्य किस प्रकार दीख सकता है। इसीसे ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली अन्य परिस्थिति को नष्ट न कर केवल प्रौढ विवाह का प्रचार कर ब्रह्मचर्य की रक्षा का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब तक युवक का पिण्ड कमजोर हैं, थोडेही समय में जिसका मस्तिष्क परिपक्व हुआ है, जो व्यायाम नहीं करता, नाटक, गल्प कथाएँ और उपन्यास पढता है, जो उष्ण तथा उत्तेजक पदार्थ सेवन करता है, उस युवक का मन शुद्ध रहना असंभव है। और जब तक मन शुद्ध नहीं तब तक ब्रह्मचर्य की रक्षा भी नहीं हो सकती। केवल विवाह देरसे करने ही से क्या? इसी लिए आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा करना हो तो उपरोक्त ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले सब कारण नष्ट कर दिये जाँय।

वर्तमान समाज की परिस्थिति ऐसी है कि नवयुवक को यौवन प्राप्त होनेपर कुछ समय विश्राम मिलता है किन्तु युवतियों को विश्राम करीब करीब बिलकुल नहीं मिलता। इसका परिणाम स्त्रियों को तथा भावी संतान को हानिकर होता है। जिस प्रकार यौवन प्राप्त होने के पश्चात् कुछ समय तक पुरुष ब्रह्मचारी रहे तो उसके शरीर की वृद्धि अच्छी तरह होती है। इसी प्रकार रजोदर्शन के पश्चात् पत्नि को पति से कुछ समय दूर रखनेसे उसके शरीर की वृद्धि को अवकाश मिलता है। भावी सन्तान की भलाई के लिए, तथा उनका स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिए आवश्यक है कि लडकों के सदृश लडकियां भी यौवन प्राप्त होने के पश्चात् कुछ दिन व्रत से रहें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि भेंट होने पर भी उनका एकान्त कुछ नियमित समय के अन्तर से होवे। अर्थात् वे ऋतुगामी हों। लौकिक दृष्टि से विवाह के पश्चात् तुरन्त ही पति-पत्नि का एकान्त करानेवाले माबाप निम्न लिखित चरक के वाक्य पर ध्यान दें-

> ऊन-षोडषवर्षायां अप्राप्तः पंचविंशतिम्।
> यः पुमान् गर्भमाधत्ते कुक्षिस्थः स निपद्यते॥

ब्रह्मचर्य की आवश्यकता केवल नौजवान बालकों को ही नहीं प्रौढ पुरुषों को भी है। कई दिनों से विद्वान लोग कण्ठ शोष करके कह रहे हैं कि संसार की मनुष्य-जाति के स्वास्थ्य के न्हास का जबरदस्त कारण विषय का अतिरेक है। किन्तु विद्वानों के इस कथनपर लोगों ने अब तक ध्यान नहीं दिया। स्त्री-सम्भोग का मुख्य उद्देश प्रजोत्पत्ति है, सुख नहीं। इससे जिस सम्भोग का उपयोग प्रजोत्पत्ति के लिए नहीं अर्थात् जो केवल सुख के लिए है, वह सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है। सृष्टि के इन नियमों के उल्लंघन से हानि अवश्य ही होगी। कैसा आश्चर्य है कि लोग इस बात को नहीं समझते? गर्भ-धारण हो चुकने पर स्त्रीसे संग करना इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्र के भी विरुद्ध है। यदि लोग इन बातों पर ध्यान दें तो उन्हे विदित होगा कि वे कैसी भारी भूल कर रहे हैं।

अस्तु, उपरोक्त ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले कारणों को नष्ट कर दें और बालकों के ब्रह्मचर्य का समय बढा दें तथा प्रौढ पुरुष विषय का अतिरेक न करें तो स्वास्थ्य के न्हास को रोकने में बडी मदद होगी।

योग्य आहार।

शरीर-सामर्थ्य के न्हास के अनेक कारण हैं। उनमें एककारण दारिद्र्य है। दरिद्रता से संसार की फिकर बढती है। और पौष्टिक अन्न भरपूर नहीं मिलता। इसीसे शरीर के सामर्थ्य का नाश होता है। अतएव वर्तमान समय में जो हानि हो रही है उसको रोकने के लिए अपनी गरीबी नष्ट करने का प्रयत्न होना चाहिए। अपनी साम्पत्तिक दशा में सुधार करना बडा व्यापक प्रश्न है, अतएव वह बहुत कठिन है। इस कठिन प्रश्न को छोडकर भी

शरीर के ऱ्हास को रोक सकते हैं। इसके लिए उपाय है योग्य आहार।

विलायत में जो मजदूर आधे-पेट भोजन करनेवाले समझे जाते हैं, उन्हे रोजीना तीन छटाक दूध और आधी छटाक शक्कर मिलती है। किन्तु हमारे देश के मध्यम दशा के सरकारी नोकरों के बालकों को—खासकर जब कि माबाप शहर में रहते हैं—ये वस्तुएँ इतनी नहीं मिलतीं। तब हमारे देश के मजदूरों के हाल का क्या ठिकाना? पूरा पेटभर भोजन न मिलनेवाले मजदूरों तथा किसानों को छोड दें। जिन्हे पेटभर के भोजन मिलता है ऐसे हमारे देश के मजदूरों में से कितने होंगे जिन्हे रोज तीन छटाक दूध और आधी छटाक शक्कर मिलती है? हम नहीं समझते ऐसे मजदूर सौ में दस भी मिलेंगे। ब्राह्मणों में भी घी और दूध जैसी वस्तुएँ तेवहारों को छोड शायदही कभी मिलती हैं। ऐसी परिस्थिति में रहकर जिन बालकों को अतीव परिश्रम से विद्या सीखनी होती है, उनके शरीर की वृद्धि अच्छी तरह कैसे हो सकती है? उनमें साहस, श्रमसहिष्णुता आदि गुण कैसे आवेंगे?

हम लोगों का अन्न ही हलके दर्जेका है तब हमारा शरीर दृढ कैसे हो! इसीसे स्वास्थ्य को सुधारने के लिए हमारे भोजन में सुधार होना आवश्यक है। कोई कहेगा कि मजदूर पेटभर रोटी न मिलने पर भी मोटे ताजे होते हैं। इससे वह सिद्ध करना चाहेगा कि पौष्टिक आहार की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह उचित नहीं। पहले के लोगों के सदृश आजकल के लोगों का पिण्ड नीरोग और बलवान नहीं होता। दूसरे जो मनुष्य जन्म ही से बुद्धिमान है उसे कोई न पढावे तब भी वह स्वयं पढकर विद्वान हो जाता है। किन्तु इससे क्या कोई यह समझता है कि शिक्षा अनावश्यक है? इसी प्रकार कोई बलवान पिण्ड का मनुष्य सादे भोजन से हृष्ट पुष्ट होता है,इससे पौष्टिक अन्न की अनावश्यकता बतलाना व्यर्थ है। इससे यही सिद्ध होता है कि उन्हे अच्छा भोजन न मिलने पर भी वे ऐसे पुष्ट हैं, यदि पौष्टिक भोजन मिलता तो वे इससे भी पुष्ट और बलवान होते। वर्तमान समय में हमारा पिण्ड जन्म से ही बलहीन होता है, हमें पहले की अपेक्षा मानसिक श्रम अधिक करने पडते हैं, और जीवन संग्राम भी अब अधिक कठिन हो गया है। इसीसे हमें पौष्टिक भोजन की अतीव आवश्यकता है। सब प्राणियों के और लोगों के अवलोकन से भी यही विदित होगा कि हमें शरीर बलवान बनाने के लिए श्रेष्ठ भोजन करना आवश्यक है। साधारण नियम है कि प्राणि या वनस्पति का दर्जा जितना ऊंचा होगा उतनाही ऊंचा उसका भोजन रहता है।

संसार की उन्नति का इतिहास देखने से विदित होता है कि लोग जब गंगा, नील आदि नदियों की उपजाऊ कछारों में बसे और जब भोजन प्राप्त करने का परिश्रम कम हुआ, तब बुद्धि का विकास शुरू हुआ और तभी धर्म, काव्य, दर्शन, आदि उत्पन्न हुए। बहुतेरे लोगोंने अनुभव किया होगा कि हमें काव्य, संगीत आदि की विशेष चाह रहनेपर भी यदि बडी तेज भूख लगे तो हम ये सब बातें भूल जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जब तक पोषण अच्छी तरह नहीं होता तब तक अन्य व्यवसाय नहीं सूझते। अर्थात् पचन-इंद्रियों से जितना कम काम लिया जावेगा, और शरीर का पोषण जितनी अच्छी तरह से होगा, शरीर के भीतरी शक्तियों का उतना ही अधिक उपयोग मस्तिष्क के विकास में होगा। जिस दिन हम जडान्न खाते हैं उस दिन रोज की अपेक्षा खून का अधिक भाग उस अन्न के हजम करने में लग जाता है, इससे मस्तिष्क तथा अन्य अंगों की ओर जानेवाला खून का प्रवाह मंदा पड जाता है। यही कारण है कि शारीरिक और मानसिक व्यापार मंदे पड जाते हैं। तब आप जान सकते हैं कि चाहे जो भोजन हजम करनेवाले विशाल उदरवालों की अपेक्षा सदैव उत्साहित एवं फुर्तीले स्नायु की जिन्हे आवश्यकता है उन लोगों को थोडे समय में हजम होनेवाले पौष्टिक भोजन की कैसी भारी आवश्यकता है।

हमें याद रखना चाहिए कि पहले की अपेक्षा अब पौष्टिक भोजन की अधिक आवश्यकता है। हम लोगों ने पाश्चिमात्यों की सभ्यता को अपनाया है। इस सभ्यतासे जीवनसंग्राम अधिक कठिन होता जाता है। (किसी भी रुजगार में स्पर्धा बढती है; उससे पेट पालने में शारीरिक और मानसिक परिश्रम अधिक करने पडते हैं।) ऐसी दशा में शरीर बलवान बनाने के लिए हमें पौष्टिक भोजन की बहुत अधिक आवश्यकता है।

हम अपने भोजन में ऐसा परिवर्तन करें जिससे सुधार के कारण बढे हुए जीवन संग्राम से हमारे शरीर को हानि न पहुँचे। छुटपन में बहुत शारीरिक मिहनत करने के कारण जिसके शरीर में श्रमसहिष्णुता आगई है, वह मनुष्य यदि काम के लिए रोजीना ४-५ घंटे कडी, धूप, वा ठण्ड में घूमें, तो उसे हानि न होगी। किन्तु यदि कोई हाई कोर्ट का वकील कडी धूप में पैदल कचहरी को जावे या कडी ठण्ड में एक कुडता पहन कर काम करे तो उसे अवश्य ही हानि होगी।

अंग्रेजों का राज्य होने के पूर्व आज जैसी धांदली न मचती थी और साधारणतः मानसिक श्रम भी कम होते थे। अतः मामूली, मोटे अन्न से ही शरीर का पोषण होता था। किन्तु वर्तमान समय में जहाँ तहाँ स्पर्धा बढ गई है। इससे मानसिक परिश्रम अधिक करने पडते हैं। अतएव अब हमे ऐसे भोजन की आवश्यकता है जिससे शरीर और मस्तिष्क का खर्चा हुआ भाग शीघ्र पूरा हो। जिन प्राणियों की शक्तियां केवल खाये हुए भोजन को हजम करने ही में खर्च होती हैं ऐसे भैंस सदृश जीवों के भोजन की अपेक्षा उन जीवधारियों के लिए श्रेष्ठ भोजन की आवश्यकता होती है, जिनकी चपलता और कुछ अंश में मानसिक शक्तियों का अधिक उपयोग होता है। इससे भी ज्ञात होगा कि सुधरे हुए लोगों को श्रेष्ठ भोजन की आवश्यकता होती है।

शरीर का पोषण जैसे भोजन की पौष्टिकता पर निर्भर है वैसेही- किंबहुना उससे भी अधिक-भोजन के उचित पचन पर अवलम्बित है। इससे पौष्टिक भोजन करनेपर भी यदि उसे हजम करने के लिए काफी व्यायाम न किया जाय तो उस भोजन से कुछ लाभ नहीं। इससे लोगों को व्यायाम करना चाहिए ताकि पौष्टिक भोजन का दुरुपयोग न होवे।

मर्दानी व्यवसाय।

शरीर का ऱ्हास होने के जो जो कारण हैं उन्हें दूर कर देने से ही शरीर का ऱ्हास रुक सकता है। इन कारणों में से एक कारण यह बतलाया गया है कि भारतवासियोंको फौज में ऊँचे दर्जे के और जबाबदेही के काम न देने की सरकारी नीति। इसका प्रतिकार प्रथम किया जावे।

इसके सम्बन्ध में दूसरा उपाय यह है कि जिन उद्योगों से या जिन व्यवसायों से हम लोगों में उन गुणों का और उन वृत्तियों का विकास होगा जो युद्ध करने से विकसित होती हैं उन्ही उद्योगों और व्यवसायों का प्रचार किया जावे। युद्ध में जिन गुणों और वृत्तियों की वृद्धि होती है वे गुण और वृत्तियां हैं:- शूरता, स्वाभिमान, श्रमसहिष्णुता, प्राणों की बेफिक्री, एकता से काम करने की आदत आदि। इन गुणों का विकास करने के लिये जिन उपायों को हम कर सकते हैं वे हैं, कुश्ती, शर्यत, शिकार आदि। ये और इनके सदृश दूसरे व्यवसाय, जिनसे शरीर सुदृढ बनकर शूरता का प्रत्यक्ष रीतिसे विकास होता है, उन्हे काफी उत्तेजना देनी चाहिये और लोगों को इन व्यवसायों का व्यसनसा लग जाना चाहिये।

इसके साथ ही ऐसे उत्सव शुरू करना चाहिए जिनसे लोगों में एकराष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न हो, लोग समझने लगें कि हम सब एक ही देश के निवासी हैं इससे हम लोगों में से कुछ लोगों का भला हो या कुछ जातियों का भला हो तो उसी में हमारे देश का भला है। लोगों के मन में इस प्रकार के भाव उत्पन्न करनेवाले उत्सव हैं श्रीशिवाजी उत्सव, राणा प्रतापमहोत्सव आदि। रण-वाद्य के गंभीर घोष को सुनकर जो स्फूर्ति उत्पन्न होती है, हम लोग अपने देशकी भलाई के लिये लड रहे हैं इस बात के जानने से जो अभिमान

होता है, संकटों के आने पर उनका मुकाबला करने में प्रगट होनेवाला स्वावलम्बन, धीरज आदि गुण और शत्रू पर विजय प्राप्त कर स्वदेश को लौटते समय जो आनन्द होता है वह ऊपर लिखे उत्सवों से न होगा; किन्तु ये उपाय उसी प्रकार हैं जैसे माता के मर जाने पर आया का दूध पिलाकर लडके की प्राण रक्षा करना। ये उपाय कृत्रिम हैं सही, परन्तु असल के न होने पर कृत्रिम से ही काम चलाना आवश्यक है। इसलिये यदि लोग चाहते हैं कि हमारा देश नष्ट न हो जाय तो उन्हे ऊपर लिखे उपायों से काम लेना आवश्यक है।

व्यायाम भी एक उपाय है। लोगोंका ध्यान व्यायाम की ओर से हट गया है, इसीसे शरीर की हानि बहुत तेजी से हो रही है। पहले समय में दण्ड, बैठक, अखाडा खेलना आदि बातों का शौक अधिकांश लोगों को रहता था। इससे एक दूसरे की देखा-सीखी और भी कई लोग व्यायाम करने लगते थे। उस समय लोगों का ध्यान धर्म की ओर अधिक था। इससे बहुतेरे द्विज सूर्य नमस्कार का व्यायाम कम से कम सौ दो सौवार प्रतिदिन करते थे। साथ ही बालकों को स्कूलों की अधिक फिकर नहीं रहती थी, इससे उन्हे इधर उधर घूमने तथा ऊधम मचाने को अवसर मिलता था। इससे आ-बाल-वृद्धों को सहज ही में व्यायाम हो जाता था। परन्तु अब हाल बदल गया है। इससे यदि लोग चाहते हैं कि बालक व्यायाम करें तो उन्हे चाहिये कि वे बालकों को छोटी उमर में पाठशालामें न भेजें छोटी उमर में पाठशाला में भरती करने पर भी ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है जिससे बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर न हो। किन्तु इस प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध होने को अभी बहुत देर है।

इस प्रकार की शिक्षा से यह मतलब है कि बालकों को जितने कम समय तक एक स्थान में बैठना पडे उतना अच्छा होगा और वे खेल खेल में ज्ञान प्राप्त कर लें। बालकों में व्यायाम की रुचि उत्पन्न करने के लिये शिक्षकों और पाठकों को आवश्यक होगा कि वे मनको हरण करनेवाले क्रीडांगण-खेल के मैदान-बनावें और खेल के भिन्न भिन्न साधन बना दें। इससे लाभ यह होगा कि बालकों में खेल तथा व्यायाम की रुचि उत्पन्न होगी। साल में कम से कम एक बार सब बालकों को मौका दिया जाय जिससे वे अपना बल, साहस, कुशलता आदि दिखला सकें। जो बालक खेल में कुशल सिद्ध हों उन्हे ईनाम दी जावे जिससे उनका उत्साह बढे। शहर के भिन्न भिन्न स्थानों में अखाडे, व्यायाम-भुवन आदि खोले जावें। इन व्यायाम-भुवनों में दुष्ट एवं दुराचारी बालक न आने पावें।

जिस प्रकार हर एक बडे नगर में एक न एक बडा मन्दिर रहता है उसी तरह हर एक बडे नगर में एक बडा तथा सुन्दर अखाडा होना चाहिये। जहां तक बन सके यह अखाडा शहर के बीच कोई बडा मैदान खरीद कर उसमें बनवाया जावे। वहाँ व्यायाम के सब साधन रखें जावें तथा ऐसे भी साधन हों जिनसे व्यायाम के साथही दिल बह ले। इस अखाडे को इस प्रकार साफ, सुथरा तथा सुन्दर दशा में रखना चाहिये जिससे उसकी सुन्दरता से ही लोगों का दिल उसकी ओर खिंच जावे और लोग वहाँ आवें। इस अखाडे में कुश्तियां तथा अन्य हुनर की परीक्षा ली जावे और उसमें सफल होनेवाले बालकोंको ईनामें बांटीं जावें। पढनेवाले विद्यार्थियों की रुचि यदि व्यायाम की ओर हो जावे तो उनका जीवन अधिक सुखमय होगा तथा वे कम से कम दस पांच साल अधिक जीवित रहेंगे। लोगों को चाहिये कि इन बातों पर विश्वास करें और इन्हे समझें तथा अपने गांव में या शहर में इस प्रकार का अखाडा बना दें। इससे स्वार्थ के साथ ही बडा भारी देश-हित होगा।

आजकल स्कूलों तथा कालेजों में छात्र-वृत्तियां दी जाती हैं। ये छात्र-वृत्तियां अंग्रेजी, संस्कृत, मातृ-भाषा आदि भिन्न भिन्न विषयों में ऊंचा नंबर प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को मिलती हैं। इसी तरह और भी कुछ छात्रवृत्तियां रखी जावें और वे उन बालकों को दी जावें जो अधिक न रटकर पढाई में साधारण अच्छे हों और साथही स्वास्थ्य तथा

शरीर को अच्छा तथा सुदृढ रखता है । वर्तमान समय में बुद्धिमान लोगों का ही शरीर अधिक बिगडता और कमजोर होता जाता है इससे पढने वाले बालकों में व्यायाम की रुचि उत्पन्न करने के लिये छात्रवृत्तियां रखना आवश्यक है। शिक्षा का प्रचार होना जितना आवश्यक है उतनीही आवश्यकता है शिक्षा के कारण शरीर की हानि न होने देने की। तब क्या यह सिद्ध नहीं होता कि छात्र-वृत्ति उसी विद्यार्थि को मिले जो बुद्धिमान रहते हुए हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग रहे? देश में अच्छे अच्छे घोडे और बैल उत्पन्न होवें इसलिये जानवरों की प्रदर्शनी होती है। तब हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग विद्यार्थियों की संख्या बढाने के लिये विद्यार्थियों की प्रदर्शनी क्यों न होवे और उन्हे ईनाम क्यों न दीये जावें? विद्यार्थियों को शरीर बलवान बनाने की कितनी अधिक आवश्यकता है इस बात को जानकर यदि कोई धनवान हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान और नीरोग विद्यार्थियों के लिये दस पांच छात्र-वृत्तियां रख दें तो उनके विद्यार्थियों पर तथा देशपर अगण्य उपकार होंगे ।

बंगाल की सुविख्यात विदुषी श्रीमती सरला देवी घोशाल ने किसी कांग्रेस के समय कहा था, " राष्ट्रीय सभा के साथ ही जैसे औद्योगिक परिषद होती है, उसी प्रकार शरीर- सामर्थ्य की वृद्धि में तथा पुरुषत्व प्राप्ति में उत्तेजना देने के हेतु एक शरीर- सामर्थ्य की प्रदर्शनी भी हुआ करे। और कुश्ती में तथा पुरुषत्व के भिन्न भिन्न खेलों और कामोंमें जो प्रवीण सिद्ध होंगे उन्हे ईनाम दीये जावें।" यदि इस सूचनाके अनुसार काम हो तो क्याही अच्छा हो! सब लोगों ने मिलकर व्यर्थ का कोलाहल न कर देश के हित के लिए जो काम घर बैठे हो सकते हैं उनमें से एक काम यह है। बालकों को छोटी उमर में पाठशाला में न भेजना, उनसे खुली हवामें व्यायाम कराना, छुटपन का रटना बंद कर देना, आदि बातें प्रत्येक मनुष्य कर सकता है ।

साहस, पराक्रम, कर्तृत्व आदि गुणों का विकास करनेवाले व्यवसाय सरकारने बन्द कर दिये हैंउनकी कमी पूरी करनेके लिए एक उपाय है परदेश गमन।

परदेश की यात्रा में अनेक अडचनें आती हैं। परदेशियों से मिलजुलकर रहनेमें दूरदर्शिता तथा मनकी उदारता की आवश्यकता होती है। तथा अपनी महत्ता का उन्हे अनुभव कराने के लिए अपनी सब शक्तियों का उपयोग करना पडता है । इसीलिए हम कहते हैं कि उपरोक्त सब गुण पर-देश-गमन से प्राप्त होते हैं।

मजदूरी के लिए वा छोटे मोटे व्यापार के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के देशों में कोई कोई हिन्दू जाते हैं। किन्तु इससे भी श्रेष्ठ हेतु के लिए परदेश की यात्रा करनेवाले हिन्दू नहीं दीखते। अमेरिकाके उस उपजाऊ प्रदेश में जहाँ अभी कोई उपनिवेश नहीं हुए, वा अंग्रेजी उपनिवेशों के सिवा अन्य उपनिवेशों में यदि उच्च वर्ग के भारतवासी जाकर बसें तो अपनी श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को उत्तेजना मिलेगी। ऐसा करने में शरीर को असह्य कष्ट होंगे और सम्भव है प्राण-त्याग भी करना पडे। किन्तु याद रखना होगा कि जिस प्रकार मनुष्य को विना तपस्या के पुण्य की प्राप्ति नहीं होती उसी तरह देश का भी उद्धार कष्ट सहे बिना नहीं हो सकता ।

पश्चिम के लोग सदैव शरीर- सुखमें ही रत रहते हैं इसलिए हम उनका परिहास करते हैं। किन्तु देश के लिए, धर्मके लिए, तथा कीर्ति के लिए इह–लोक के सुख त्यागने का अवसर आने पर हम इस नश्वर देह को सर्वस्व मानते तथा और बातों को त्याग देते हैं। क्या यह असंबद्धता हमें न निकाल देनी चाहिए? यह असंबद्धता निकालनी हो तो हमें चाहिए कि जबतक युद्ध में शौर्य आदि गुणों को बतलाने का मौका सरकार नहीं देती, तबतक हमें शरीरके कष्टोंकी और प्राणों की भी पर्वाह न कर परदेशमें जाना चाहिए जिससे हमारी कर्तृत्वशक्ति को उत्तेजना मिले । लोगों में उपनिवेश बनाने तथा व्यापार करने की इच्छा उत्पन्न करने तथा बढाने के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए ।

देश-हित की जिन्हे इच्छा है वे उपरोक्त उपायोंकी महत्ता को जाने और इनके प्रसार का प्रयत्न करें जिससे शरीर- सामर्थ्य की वृद्धि होगी और चतु–र्विध पुरुषार्थ करना संभव होगा क्यों कि शरीर ही सच्चा धर्मसाधन है ।

यजुर्वेद का मुद्रण ।

मूल्य ।

यजुर्वेद का मुद्रण शुरू है और इस समयतक ८० पृष्ठ मुद्रित हो चुके हैं, उनमें से चार पृष्ठ इस अंकमें नमूने के तौर पर दिये हैं। आगे मुद्रण चल रहा है और इस महिने में १०४ पृष्ठोंका पहिला अंक तैयार हो जायगा। इस का मूल्य १०० सौ पृष्ठों का बारह आने के हिसाबसे होगा, परंतु जो लोग पेशगी मूल्य दो रु० भेज देंगे उनके लिये सौ पृष्ठों को आठ आने के हिसाबसे होगा। डाक व्यय अलग होगा। जो लोग पेशगी मूल्य भेज कर ग्राहक होना चाहते हैं वे मनीआर्डर द्वारा दो रु० भेज दें। यजुर्वेद के साथ सर्वानुक्रमणी, मंत्रपाद-सूची, ऋषिसूची, देवतासूची आदि बहुत भाग होंगे। यजुर्वेद के इन भागों का मुद्रण होनेके पश्चात् अथर्व वेद का इसी प्रकार मुद्रण होगा। और इन वैदिक ग्रंथोंका हरएक अंक सौ पृष्ठों का प्रकाशित होगा। पेशगी मूल्य भेजने वालोंको ही मूल्य की सहूलियत होगी। आशा है कि पाठक इस से लाभ उठावेंगे।

मुद्रण की विशेषता।

नमूनेके पृष्ठ देखने से ही पाठकों को पता लग जायगा कि इस मुद्रण में कुछ विशेषताएं हैं, जो इस समयतक मुद्रित हुए किसीभी पुस्तक में नहीं हैं। देखिये--

१ प्रत्येक मंत्र अलग अलग मुद्रित किया है। अर्थात् एक मंत्र समाप्त होने के बाद कुछ स्थान खुला छोड दिया है और पश्चात् दूसरा मंत्र शुरू किया है।

२ मंत्रोंके अंदरका पदच्छेद विशेष ख्याल से किया है।

३ अक्षर बडे रखे हैं जिस से पाठक खुली रीतिसे और सुबोधता से मंत्र पढ सकते हैं। किसी प्रकार एक मंत्र की दूसरे मंत्रके साथ संकीर्णता न हो इस का पूरा ख्याल रखा गया है।

४ बडे गाथा के मंत्र पूर्ण पंक्तिमें और छंद मंत्र छोटी पंक्तियों में रखे हैं जिससे यह भेद स्पष्ट प्रतीत हो जायगा।

५ नित्यपाठ के लिये जितनी बातों का ख्याल करना चाहिये उन सब बातों का ख्याल करके ही मुद्रण किया है।

पाठक इन सब बातों को नमूने के पृष्ठों में प्रत्यक्ष करें। इसके अतिरिक्त शुद्ध पाठ करने के सब चिन्ह इसमें दिये हैं। जैसा—

देवा ऽ अभिसंविशन्तु ।

यहां का [ऽ] चिन्ह यजुर्वेद के विशेष उच्चारण के आलाप के खटके के लिये ही है, इस का उच्चारण " देवा " शब्द के " आ " कार का उच्चारण किंचित लंबा करके एकदम बंद करना और उसी क्षण आगे के " अ " कार पर दबाव डाल कर " अभि " का उच्चारण करना। यजुर्वेदपाठमें इस उच्चारण की विशेषता है। न जाननेवाले इस आलापके खटके को मर्जी चाहे वहां बोलते हैं और उस कारण मंत्रोच्चार भद्दासा हो जाता है। यह कठिनता दूर करने के लिये जहां खटके के साथ मंत्र बोलना आवश्यक है वहां उक्त चिन्ह हमने रखा है। इस कारण जो पाठक इस पुस्तक के साथ यजुर्वेदका पाठ करेंगे उन्होंने इन चिन्होंका ख्याल करके यदि पाठ किया तो उनकी गलती होना संभव नहीं है। यह उच्चारण की विशेषता किसीभी अन्य पुस्तकमें नहीं है।

अनुस्वार, अनुनासिक और अर्धानुनासिक के चिन्ह क्रमशः

[꣸ , ꣳ , ँ]

ये यहां रखे हैं। ये प्रसिद्ध चिन्ह हैं। [꣸] इस अनुस्वारका उच्चारण "म्" अथवा अगले व्यंजनके वर्गका अंतिम वर्ण करनेकी बात सब जानते ही हैं।

[ꣳ]

इस चिन्हका उच्चारण "ग्वँ" के समान करना चाहिये। तथा [ँ] इस अर्धचंद्र का उच्चारण भाषा के 'जहाँ" शब्दमें जिस प्रकार अर्धानुनासिक सा किया जाता है उस प्रकार करना चाहिये। इस पुस्तकमें ये चिन्ह जहां जो चिन्ह आवश्यक है वहां ही वह दिया है। इस लिये इनके यहां दिये हुए उच्चारणविधि के समान यदि पाठक इनका उच्चारण करेंगे तो इस विषय की गलती नहीं होगी। पाठक इसका विशेष ख्याल रखें।

स्वरोंमें नीचे और ऊपर स्वर चिन्ह दिये हैं उनका निम्न स्वरमें और उच्च स्वरमें उच्चारण करने का विधान सब जानते हैं और वह स्पष्ट भी है। इसके अतिरिक्त

[᳘ , ꣲ]

ये दो स्वर चिन्ह इस यजुर्वेदमें अधिक हैं। इनमेंसे प्रथम चिन्हका स्वरोच्चार किंचित आगे बढा कर दबानेसे होता है और ꣲ इस स्वर का उच्चार द्विगुणित जोरसे नीचे दबानेसे होता है। जिस अक्षर के नीचें ये स्वर हों उनका इस विधि के अनुसार उच्चार करनेसे उच्चारण की अशुद्धि नहीं हो सकती।

साथ ही पाठकों को इस बातका ख्याल करना चाहिये कि जहां मंत्रमें चरण रेषा लिखी है वहां ही ठहरना चाहिये। बीचमें किसी अन्य स्थानपर ठहरनेसे स्वर बदल जाते हैं। अतः जहां चरणरेषा हो वहां ही रुकना चाहिये। इस पुस्तकमें चरणरेषाएं जहां चाहिये वहां ही रखी हैं और उनके अनुसार ही स्वरोंकी योजना की है।

यजुर्वेदमें विसर्ग (:) के कई चिन्ह हैं। अर्थात् [:, ÷, ऽः] इतने हैं और इनके उच्चारणमें थोडासा भेद भी है। परंतु यह सूक्ष्म भेद गुरुपरंपरासे ही समझमें आना संभव है, अन्यथा नहीं। इस कारण हमने विसर्ग चिन्ह (:) यही सर्वत्र रखा है। इसका पूर्ण उच्चारण ही सर्वत्र होता है। जिस प्रकार अंतमें विसर्ग बोला जाता है उसी प्रकार बीचमें भी बोलना चाहिये। यह यजुर्वेद की विशेषता कभी भूलना योग्य नहीं है।

वैदिक परंपरा।

जो वैदिक परंपरा इस देशमें शुरू है और जिस रीतिसे पुस्तक लिखे जाते हैं और मुद्रित कियेजाते हैं वह रीति भी यहां बतानी चाहिये। इस लिये उस पद्धतिसे एक मंत्र यहां रखा जाता है, पाठक देखें कि यह वैदिक पद्धति कितनी कठिण है-

पुवित्रेस्स्थोवैष्ण्ण्ण्व्यौसवितुर्व÷प्प्रसुवऽउत्त्पुंन्ना
म्म्यच्छिद्द्रेणपवित्त्रेणसूर्य्यस्स्यरश्मिम्मभि÷ ॥ देवी
रापोऽअग्ग्रेगुवोऽअग्ग्रेपुवोग्ग्रंऽइममुद्द्ययज्ञन्नंय
ताग्ग्रेयुज्ञपंतिꣳसुधातुंय्यज्ञपंतिन्देवयुवंम्म ॥ १२ ॥

यही मंत्र हमने निम्न प्रकार छापा है—

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुना
म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो
ऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवो ऽग्रं ऽ इममद्य यज्ञन्नयताग्रे-
यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

वैदिक परम्परा के अनुसार मंत्रो में पदच्छेद नहीं होना चाहिये, क्यों कि यह "संहिता" है और संहिता का अर्थ ही यह है कि जिसमें छेद नहीं अर्थात् एक दूसरे के साथ जुडे हुए पद जिस में हैं। जहां मंत्र समाप्त होता है वहां भी आगेके मंत्रका थोडासा भाग लिखकर ही ये वैदिक लोग

मंत्रांक कई स्थानों पर लिखते हैं। इस लिये कि मंत्र समाप्त होने पर भी दूसरा मंत्र प्रारंभ होने तक कुछ व्यवधान मध्यमें न समझा जावे। पाठक सोच सकते हैं कि यह रीति सर्व साधारण पाठकों के लिये कितनी कष्टप्रद हो सकती है। इस प्रकार लिखी या मुद्रित की हुई पुस्तकें सर्व साधारण पाठक पढ भी नहीं सकेंगे। क्योंकि इसमें कई अक्षर द्विगुणित हुए हैं, कई विसर्ग भिन्न प्रकार से लिखे हैं, तथा अनुसार अनुनासिक में भी न्हस्व दीर्घ का भेद लिखा होता है, किसी भी स्थानपर पदच्छेद नहीं होता है, जहां यकार का उच्चारण जकार किया जाता है वहां यकार के बीच में एक तेढी रेषा लगी होती है, ताकि पढने वालों को पता लगे कि यहां के यकार का उच्चार य नहीं परंतु ज है, नीचे वाले स्वरोंमें भी कई स्वर सीधे और कई गोल हैं, ये इस लिये कि इनके हस्तस्वर की गतीका इससे बोध हो। यद्यपि परंपराके विद्वानको यह पद्धति पूर्ण और स्पष्ट होने से सुबोध प्रतीत होती है, और हरएक चिन्ह जहां का वहां परिपूर्ण होनेसे यह पद्धति है भी पूर्ण और निर्दोष, परंतु सर्व साधारण पाठकों की दृष्टीसे यह अत्यंत दुर्बोध होनेसे सर्व साधारण जनों के लिये यह उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

हमने स्वाध्याय मंडल में जिससमय यजुर्वेद के मुद्रण का विचार निश्चित किया और सब पद्धतियों का सर्व साधारण पाठकों की सुभीताकी दृष्टिसे विचार किया, तब हमें यह प्राचीन वैदिक परंपरा की लेखनपद्धति इस समय सर्व साधारण जनता के लिये दुर्बोध होने के कारण अलग रखनी पडी।

तथापि हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि हरएक उच्चारण का स्पष्ट चिन्ह यदि किसी पद्धतिसे स्पष्टतया बताया जा सकता है तो इसी वैदिक पद्धतिसे ही बताया जा सकता है। क्यों कि इस वाजसनेयी संहिता का उच्चारण अन्य संहिताओं की अपेक्षा कुछ भिन्न और कुछ प्रखरसा है। देखिये-

परंपरा का उच्चारण	साधारण पाठ
पवित्त्रेस्स्थो	पवित्रे स्थो
व्वैष्णव्व्यौ	वैष्णव्यौ
सवितुर्व्वः	सवितुर्वः
प्प्रसवऽ उत्पुनाम्म्य	प्रसव उत्पुनाम्य
अच्छिद्द्रेण	अच्छिद्रेण
सर्य्यस्य रश्म्मिभिः	सूर्यस्य रश्मिभिः

यहां पाठक स्पष्ट रीतिसे देख सकते हैं कि साधारण पाठमें जहां द्वित्व नहीं है वहां यजुर्वेदके वैदिक उच्चारणमें द्वित्व हुआ है यहां तक यह द्वित्व होता है कि "वैष्णव्यौ" शब्द के "व्वैष्णव्व्यौ" ऐसा द्वित्व होकर उच्चारा जाता है। यह सब परंपराकी पाठविधि के अनुसार ठीक ही है, परंतु इतने चिन्ह लिख देने पर भी अपरिचित सर्व साधारण पाठक न तो इस प्रकार उच्चारण कर सकते हैं और नाही संपूर्ण स्वरोंका ठीक व्यक्तीकरण भी कर सकते। इसलिये शुद्ध वैदिक स्वरचिन्हों और द्वित्वादि रूपों से अलंकृत वैदिक परिपाठीसे मुद्रित पुस्तक सर्व साधारण जनों के लिये थोडीभी उपयोगी नहीं हो सकती, इतनाही नहीं, परंतु अवस्था यहांतक बदल गई है कि उक्त बतायी रीतिके अनुसार मुद्रित हुआ पुस्तक देखकर साधारण मनुष्य उसे पढनेमें भी प्रवृत्त नहीं होगा।

इस बातका अनुभव करके हमने वैदिक परंपराकी परिपाठी छोडकर सुबोध परिपाठी का ही अवलंबन किया है और उसमें जहांतक आवश्यक है वहांतक ही थोडेसे चिन्हों का उपयोग किया है। जिनका विवरण और स्पष्टीकरण इससे पूर्व बताया जा चुका है। यदि पाठक इन चिन्हों का पूर्वोक्त रीतिसे उच्चारण करेंगे तो वे बहुत शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। और उनको वेद पाठ करने में कोई कठिनता भी नहीं होगी।

इस प्रकार पाठक समझ गये होंगे कि प्राचीन परंपरा की परिपाठी और इस सुबोध परिपाठी में किस बातमें भेद है तथा उसमें कठिनता और सुबोधता कैसी है। मुंबई में व्यंकटेश्वर मुद्रणालय में प्राचीन परिपाठी के अनुसार यजुर्वेद संहिता के पुस्तक छपे हैं और सम्पूर्ण हस्तलिखित

यजुर्वेद के पुस्तक इसी परिपाठीके अनुसार होते हैं । परंतु ये पुस्तक सर्व साधारण जनोंके उपयोग के लिये कभी नहीं आये, केवल ये पुस्तक प्राचीन परिपाठीके पंडितोंमें ही रहे हैं । हमें वेदके जो पुस्तक मुद्रित करने हैं वे सर्व साधारण जनोंके लिये ही मुद्रित करने हैं, इस लिये अनावश्यक चिन्ह तथा द्वित्वादि रूप हटाकर ही हमने मुद्रण किया है ।

इसी प्रकार जर्मन मुद्रित, मुंबई निर्णयसागर मुद्रित और अजमेर मुद्रित यजुर्वेद के पुस्तकोंमें भी पूर्वोक्त चिन्ह और द्वित्वादि रूप हटा दिये हैं और सुबोध रीतिसे ही मुद्रण किया है । श्री. म. आल्बेर्त वेबर महोदय जीने जर्मन देशकी बर्लिन राजधानीमें जो महीधर भाष्यसमेत वाजसनेयी यजुर्वेद संहिता मुद्रित की है, उसमें द्वित्वादी रूप यहांतक हटानेका प्रयत्न किया है कि " गच्छ" के स्थान पर "गछ" ही मुद्रित किया है इसी प्रकार सर्वत्र किया है । मंत्र मेंही नहीं परंतु महीधर भाष्यमें भी " गच्छतु " के स्थानपर " गछतु " ही मुद्रित किया है । हस्त लिखित कई पुस्तकोंमें भी जहां संपूर्ण चिन्ह और द्वित्वादि रूप दिये होते हैं उनमें भी "गछ, गछतु" आदि प्रकार ही " छ " के पूर्वका " च् " कार नहीं लिखा होता है । कई पुस्तकों में होता है। परंतु जर्मन मुद्रित पुस्तकमें सर्वत्र मंत्रमें तथा भाषामें " च्छ " के स्थानपर " छ " ही मुद्रित हुआ है। जैसा—

" गच्छ "	के स्थानपर	" गछ "
गच्छति	"	गछति
यच्छ	"	यछ
इच्छ	"	इछ

इस प्रकार मंत्रमें और भाष्य में मुद्रित हुआ है । परंतु इन सब शब्दोंका उच्चारण नित्य " च्छ " के समान ही होता है । संस्कृत भाषामें क्या और वेदमें क्या यह " च्छ " ही उच्चारा जाता है । इस कारण सुबोध पद्धतिकी पुस्तकमें " च्छ " ही लिखना योग्य है, इस कारण हमने भी " च्छ " ही रखा है ।

इस समय तक जितने पुस्तक मुद्रित हुए हैं उनमें से यदि वैदिक परिपाठीके पुस्तक अलग रखे जांय, तो म० आल्बेर्त वेबर महोदय जी का बर्लिन जर्मनी में मुद्रित सभाष्य यजुर्वेदका पुस्तक ही सबसे उत्तम और सबसे शुद्ध है । विशेष टाइप बनाकर, विशेष संशोधनके साथ, और विशेष परिश्रमसे शुद्धाशुद्ध का विचार करके और पाठभेदोंका निश्चय करके यह पुस्तक सन १८५२ में मुद्रित हुई । मुद्रण विषयके जैसे उत्तमोत्तम साधन जर्मनी में उपलब्ध हो सकते हैं, तथा उत्तमोत्तम पुस्तकोंका और प्राचीन पुस्तकोंका संग्रह जैसा वहां उन्होंने किया है, तथा जिस संशोधक बुद्धिसे वे ग्रंथ संशोधनका कार्य करते हैं, साथही साथ उनको जर्मन विश्वविद्यालयों और उनके संस्कृतवेत्ता अध्यापकोंसे जैसी जिस प्रकार सहायता मिल सकती है, उनमें से हजारवां हिस्सा भी भारतवर्षमें नहीं है, अतः उनके पुस्तकोंमें अधिक गुण और यहांके पुस्तकोंमें अधिक दोष रहना स्वाभाविक है । एक एक जर्मन तथा यूरोपीयन संस्कृतज्ञ पंडित तीस तीस या चालीस चालीस वर्ष तक एक एक ग्रंथका अध्ययन करता है, तब तक संपूर्ण तुलनात्मक साधन इकठ्ठे करता है, खूब विचार करता है और पश्चात् शुद्ध ग्रंथ तैयार करके मुद्रण करता है । इतना स्वास्थ्य और इतना साधन भारत वर्षमें कहां है? यहां एकही पंडित को अपने उदरनिर्वाहके कार्य से ले कर अन्य कार्य करते हुए, असहाय स्थितिमें, साधनाभाव की अवस्थामें कार्य करना पडता है । इसके साथ अल्प अध्ययनसे महान कार्यको हाथ डालनेका स्वभाव भी है । इस कारण यहांके ग्रंथसंशोधन में और यूरप के ग्रंथसंशोधनमें जमीन आस्मान का भेद रहना स्वाभाविक ही है ।

इन यूरोपीयनोंके वेद विषयक संशोधनोंसे बडा बोध हम ले सकते हैं । और यदि यहां के पंडित उनसे कार्य करनेकी विधि सीख लेंगे तो यहां भी उनसे अधिक निर्दोष कार्य होना संभव है । यद्यपि इस समय तक के प्रकाशित सब पुस्तकों में जर्मन मुद्रित पुस्तक अधिक निर्दोष है तथापि वह पूर्ण

निर्दोष है ऐसा कहा नहीं जा सकता।

जर्मन मुद्रित यजुर्वेद मंत्रकी संहिता के रूपसे मुद्रित नहीं किया है, प्रत्युत मंत्रकी कंडिकाओंको अलग अलग करके छापा है जैसे —

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवा वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण ० ॥

यह मंत्रकी संहिता है, परंतु ऐसा न छापते हुए जर्मन मुद्रित पुस्तकमें इस मंत्रकी कंडिकाएँ अलग अलग छापी हैं जैसे--

इषे त्वा। ऊर्जे त्वा। वायव स्थ। देवो वः
सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ०।

इससे पाठक जान सकते हैं कि यद्यपि यह जर्मन मुद्रित यजुर्वेद अभ्यास करनेके लिये बहुत अच्छा है तथापि नित्य पाठ के लिये अथवा संहिताके पूर्ण मंत्रोंसे बननेवाले कार्य करने के लिये उपयोगी नहीं हो सकता। पूर्ण मंत्रके स्वर और होते हैं और उसकी कंडिकाएँ बननेके पश्चात् उसके स्वर और होते हैं। इस कारण इस पुस्तक के स्वर भी भिन्न ही हैं।

कंडिका की दृष्टिसे वे ठीक हैं, परंतु संहिताकी दृष्टीसे उनका उपयोग नहीं है, क्यों कि मंत्रकी संहिता बननेपर स्वर बदल जाते हैं। इस कारण वेद पाठकी दृष्टिसे यह जर्मन मुद्रित पुस्तक बहुत उपयोगी नहीं हो सकता। परंतु जो संहिता का अर्थ पढना चाहते हैं उनके लिये ही यह उपयोगी हो सकता है।

यद्यपि यह दोष नहीं है तथापि यजुर्वेद संहिता का कार्य इससे नहीं हो सकता, नित्य पाठ के लिये यह उपयोगी नहीं हो सकता, इससे मंत्रका पाठ नहीं किया जा सकता, इत्यादि दृष्टिसे यह पुस्तक संहिता के स्थान पर उपयुक्त नहीं हो सकता। पाठक यह भेद इतने विवरणसे समझ गये होंगे।

इस पुस्तक में स्वर के पूर्व के उच्चारण के खटके के चिन्ह भी सब स्थानपर दिये नहीं हैं। कई स्थानों पर दिये हैं और कई स्थानों पर नहीं हैं। संभवतः इसका कारण यह होगा कि संहिता पाठ के लिये यह पुस्तक मुद्रित ही नहीं किया गया है।

इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर थोडीसी अशुद्धियां भी रह गयी हैं। इनमें से कुछ नमूने के लिये यहां दी जाती है

जर्मन पुस्तक में अशुद्धियां —

अ०	मं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	श्रेष्ठतमाय	श्रेष्ठतमाय
,,	२	परमेण	परमेण
,,	१८	बधाय	बधाय
,,	२४	बधः	बधः
३	७	प्राणादपानती	प्राणादपानती
,,	२६	सुम्नाय	सुम्नाय
,,	४३	शम्योः	शंयोः
,,	५२	बन्धुर	बन्धुर
६	९	देवस्य त्वा	देवस्य त्वा
७	८	इन्द्रवो	इन्दवो
,,	२२	देवाव्यं गृह्णामि	देवाव्यं
८	२२	तज्जुषस्व	तं जुषस्व
११	८०	भस्मसा कुरु	मस्मसा कुरु
१२	२०	तृतीये	तृतीये
१२	३१	अग्ने	अग्ने
,,	४६	श्रयध्वम्	श्रयध्वम्

इन में से कुछ नेत्रदोष से और कई हस्तदोषसे रह गई हैं। इनमें से कई अशुद्धियां पाठ भेद के रूपमें सुधारी भी गई हैं।

"व" कारके स्थानपर कई स्थानों में "ब" कार छपा है उसका संभवतः यह कारण प्रतीत होता है कि प्रायः हस्त लिखित पुस्तकों में "व" कारके स्थान पर "ब्व" लिखा होता है

और वह पुराणी पुस्तकों में प्रायः " ब " के सदृश दिखाई देता है। इसी लिये " वध " के स्थान पर " बध " शब्द मुद्रित हुआ प्रतीत होता है। नहीं तो वेद को कंठस्थ करनेवाले भी जहां " ब " नहीं बोलते वहां " ब " छापनेका कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता।

य. ७।२२ में इस जर्मन मुद्रित पुस्तक में " देवाव्यं गृह्णामि " छपा है इस में " गृह्णामि " पद अधिक छप गया है। मंत्र २३ में यही मंत्रभाग छः वार आगया है और वहां " गृह्णामि " पद मध्य में नहीं है, परंतु प्रत्येक कंडिकाके अंतमें है। इन की तुलना से भी पता लगता है कि २२ वे मंत्रमें दो वार "गृह्णामि" की आवश्यकता नहीं है।

य. ११।८० में जर्मन मुद्रित पुस्तक में " भस्मसा कुरु " छपा है और पाठभेद पत्रक में " मस्मसा कुरु " पाठ लिखा है। अर्थात म. आल्बेर्त वेबर महोदयजीके मतसे " भस्मसा कुरु " यह पाठ यहां अभीष्ट है। इसी आधार पर म० ब्लूमफील्ड महोदयने जो वैदिक मंत्र पादसूची अमरिकाके हार्वर्ड विश्वविद्यालयकी ग्रंथमाला में मुद्रित की है उसमें भी " सर्वं तं भस्मसा कुरु " यही पाठ वाजसनेयी यजुर्वेद का समझकर स्वीकृत किया है। क्यों कि उक्त पुस्तकके आधारपर ही इस पुस्तक का विधान हुआ है। और " मस्मसा कुरु " यह पाठ तैत्तिरीय संहिता और शत पथ ब्राह्मणका मान लिया है। परंतु यह गलती है। इस- विषयमें जर्मन पुस्तक में जो महीधर भाष्य मुद्रित किया है उसके भाष्यकी पंक्तियां यहां देखिये--

" तं सर्वं जनं चतुर्विधं भस्मसा कुरु चूर्णी कुरु चर्वित्वा भक्षयेत्यर्थः भस्मसा शब्दो डाजन्तो निपातः चर्वणजन्यशब्दानुकरणवाची ॥ ८० ॥ "

इस भाष्य में भी "भस्मसा" शब्द दोवार आगया है, परंतु यहां भी " मस्मसा " ही शब्द चाहिये क्यों कि (चर्वणजन्य शब्दानुकरणवाची) अर्थात् " चबानेसे होनेवाले मुख के शब्द के अनुकरण का वाचक यह शब्द है " यह महीधर का कथन है। चबानेका शब्द " भस् भस् " ऐसा नहीं होता परंतु " मस् मस् " ऐसा होता है, मराठी भाषा में इसका " मच् मच् " ऐसा शब्द प्रचलित भी है। "भस्म" ऐसा किसी भी स्थानपर चबानेके शब्द का अनुकरण नहीं हो सकता। इसलिये हम कह सकते हैं कि जो भाष्य म. वेबर महाशयजीने छापा है उसके तात्पर्यार्थ का स्वीकार करनेपर भी " भस्मसा " पाठ शुद्ध नहीं सिद्ध होता, परंतु "मस्मसा पाठ" ही शुद्ध होता है। कंठस्थ रखने वाले पंडित " मस्मसा " ही बोलते हैं।

इस प्रकार कुछ अशुद्धियां रहीं तो भी उनके पुस्तक की उत्तमता न्यून नहीं होती। इस प्रकार के मुद्रण में ऐसी थोडीसी अशुद्धियां रहना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार जर्मन मुद्रित पुस्तक का विचार करने के पश्चात् भारत वर्षमें मुद्रित हुए पुस्तकोंका विचार हम करेंगे। (क्रमशः)

साहित्य चर्चा ।

१ भारत वर्ष का इतिहास ।

(ले०- श्री. आचार्य रामदेवजी, गुरुकुल कांगडी। प्र०- गुरुकुल कांगडी । म. १॥)

श्री० प्रो० रामदेवजी आचार्य गुरुकुल कांगडी का नाम भारत वर्ष में प्रसिद्ध है । इनके भारत वर्ष के इतिहास का प्रथम खंड मुद्रित होकर कई वर्ष हुए और इस समयतक उसके कई संस्करण भी मुद्रित हो चुके हैं । पाठक टकटकी लगा कर द्वितीय खंडकी प्रतीक्षा कई वर्षोंसे कर रहे हैं, परंतु कार्यवश आचार्यजीके द्वारा इस द्वितीय खंड का संपादन नहीं हो सका, जो अब प्रकाशित हुआ है । हमें पूर्ण आशा है कि पहिले खंड के समानही यह द्वितीय खंड भी पाठकों को प्रिय लगेगा और थोडे समयमें ही इसके कई संस्करण मुद्रित करने पडेंगे । जिस समय के इतिहास की खोज आचार्य रामदेवजी कर रहे हैं, उस समय का मानवी इतिहास, जैसा आज हम चाहते हैं वैसा लिखा हुआ उपलब्ध नहीं है । जो कल्पना इतिहास विषयक आज हम देखते हैं वह प्राचीन आर्य विद्वानों के अंदर थी ही नहीं। प्राचीन समयके विद्वान इतिहास शब्दसे कुछ अन्य भाव लेते हैं । और आजकल हम कुछ अन्य भाव लेने लगे हैं । यदि यह भेद समझना हो तो इस प्रकार समझा जा सकता है कि आजकल हम मनुष्यों की स्थूल घटनाओंको तिथिवार के क्रमसे लिखने को इतिहास कहते हैं, परंतु प्राचीन कालमें इसी इतिहासमें "मानवी अंतःकरणके परस्परविरोधी सनातन वृत्तियोंका सनातन खेल" ही देखा जाता था । इसलिये प्राचीन आर्य इतिहास लेखकोंको तिथिक्रमानुसार मानवी घटना ओंका संगतिकरण करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी कि हम आज समझ रहे हैं । वे क्षणभंगुर घटनामें सनातन भावना देखते थे । वह दृष्टि आजके इतिहासमें नहीं है । तथापि हम यह कदापि नहीं कहते कि आज कल की इतिहासकी कल्पना के अनुसार प्राचीन आर्यों का इतिहास देखनेके साधन इकट्ठे नहीं हो सकेंगे । आचार्य रामदेवजी के प्रयत्नसे इन दो खंडों में ये ही साधन इकट्ठे किये गये हैं । और इसलिये समुद्रमंथन से कुछ रत्न बाहर निकालनेके कार्य के समान यह बडा कार्य करने के लिये आचार्य जी सब इतिहासज्ञों के सन्मान के भागी अवश्य हो जांयगे । क्यों कि ऐसी खोज होनेके विना प्राचीन इतिहास का स्वरूप भी जनताके सन्मुख नहीं आ-सकता। इसलिये हम आचार्य जी की हार्दिक प्रशंसा करते हैं कि उन्होने कई वर्ष लगातार प्रयत्न कर के इधर उधर से थोडा थोडा मसाला इकट्ठा करके विशाल इतिहास के मंदिर की रचना करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है । इस समयतक इस दिशा से किसीनेभी इतना विस्तृत प्रयत्न नहीं किया, इस लिये आचार्यजीकी प्रशंसा अधिकही करनी चाहिये ।

इस ग्रंथके प्रथम भागके पांच अध्यायोंमें आर्योंके युद्ध तथा शस्त्रास्त्र,राज्यशासन, सामाजिक आचार, प्राकृतिक विज्ञान और शिल्पका वर्णन है । द्वितीय विभागमें महाभारतसे बौद्ध कालतक का राजनैतिक इतिहास है । तृतीय विभागमें शुक्रनीति का विचार है । चतुर्थ विभागमें भारतीय सभ्यता के विदेशोंमें प्रचारका वर्णन है ।

ये सब प्रकरण विशेष अन्वेषणासे लिखे होनेके कारण अवश्य पढने योग्य हैं ।

(२) अंत्यजस्तोत्र

(ले०- श्री० - अमृतलाल सुंदरजी । प्र० - श्री० जीवराम कल्याणजी, रोहावाला, कच्छ कोटडा । मू. आधा आना) यह पुस्तक गुजराती भाषामें है । अंत्यजोद्धार के विषयमें श्री. महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक आदि अनेक बडे व्यक्तियोंके विचार इसमें हैं । प्रस्तावना लेखक स्वयं महात्मा गांधीजी हैं । इस से पुस्तक की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है ।

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा ऽ अनूनवर्चा ऽ उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी ऽ उभे ॥ १०७ ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे ऽ इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो ऽ अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो ऽ अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः। भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता ऽ अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

इति द्वादशोऽध्यायः।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः।

मयि गृह्णाम्यग्रे ऽ अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।
मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महाँ २ ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन ऽआवः ।
स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

या ऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ १ऽरनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ ऽइभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

तव भ्रमास ऽआशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूꣳष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽअस्या ऽअदब्धः ।
यो नो दूरे ऽअघशꣳसो यो ऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ २ऽ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो ऽअरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

इयमुपरिं मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हैमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत ऽआग्रयण ऽआग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता ऽ इन्द्रम्॥५८

इति त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳ सुम्ने बृहते रणाय।
पितेवैधि सूनव ऽ आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥४॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्।
ऊर्मिर्द्रप्सो ऽ अपामसि विश्वकर्मा त ऽ ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे। ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा

वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो बस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्वयोऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ताऽइन्द्रम् ॥ १० ॥

इन्द्राग्नीऽअव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम् ।
पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥१२॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

[प्रथम भाग]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,

२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,

३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,

४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,

५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,

६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,

७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,

८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,

९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,

१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,

११ वैदिक कालकी उदारता,

१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,

१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल१) रु. है डाकव्यय।)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक--- श्री, दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय।
स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.

REGISTERED 1463

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

वर्ष ८
अंक ७
क्रमांक ९१

आषाढ
संवत् १९८४
जुलै
सन १९२७

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

शत्रुसे अभेद्य बनो!

**व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं
बहुला पृथूनि। पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा
मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥**

ऋ. १०।१०१।८

" (व्रजं) गौ के स्थान अच्छे बनाओ। वही आपका (नृपाणः) पीने का स्थान है। बहुत बडे बडे (वर्म) कवच (सीव्यध्वं) सीओ। (पुरः) अपने नगर ऐसे सुदृढ (आयसीः) कीले जैसे बनाओ कि जो शत्रुओं द्वारा (अधृष्टाः) पराजित न हो सकें। तथा आपके (चमसः) बर्तन (मा सुस्रोत्) न चूएं उनको दृढ बनाओ। "

(१) गौशालाएं उत्तम बनाओ, जिसमें जाकर आप ताजा दूध वारंवार पीते रहें और अपनी पुष्टि बढावें, (२) कवच उत्तम तैयार करो और अपने गांव भी उत्तम कीले जैसे शत्रुओंद्वारा अभेद्य बनाओ। अर्थात् अपनी ग्रामकी रक्षाके लिये सदा तैयार रहो। (३) अपने घरकी चीजें भी उसी प्रकार उत्तम अवस्थामें रखो। अर्थात् आपके शरीर, आपके घर और परिवार तथा आपके नगर बलवान तथा शत्रुसे अभेद्य हों।

धर्म किसे कहते हैं?

' धर्म ' शब्द का अर्थ।

' धर्म ' शब्द ' धृ ' धातु से बना है । ' धृ ' संस्कृत की धातु है । उसका अर्थ है (१) जीना, जीवन धारण करना; (२) रहना, होना; (३) धारण करना, आधार देना; (४) अधिकार करना, अपनाना; (५) उपयोग करना; (६) अभ्यास करना; (७) देखभाल करना; आदि। प्रसिद्ध वैय्याकरण पाणिनीजी अपने धातुपाठ में ' धृ ' धातु के अर्थ इस प्रकार देते हैं: ' धृ ' धारणे, पोषणे, अवस्थाने। संस्कृत भाषामें इस धातु का उपयोग ऊपर लिखे सात अर्थों में होता है। तब ' धर्म ' शब्द का धात्वर्थ हुआ " मनुष्य को इस संसार में (१) सुचारु रीति से जीवन व्यतीत करने के लिए, (२) इस पृथ्वी पर बस्ती कर अच्छी तरह रहने केलिए, (३) अपने जीवन का पोषण करने के लिए तथा दूसरे गरीब लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए, (४) इस संसारपर अपना अधिकार जमाने के लिए, (५) संसार का अच्छी तरह उपयोग करने के लिए, (६) संसार के सच्चे नियमों को जान कर उनका पालन करने के लिए, (७) सारांश हर प्रकार से अपनी रक्षा होने के लिए जिन जिन नियमों का पालन करना हमें आवश्यक है उन्हे धर्म कहते हैं।"

' धर्म ' शब्द का यथार्थ अर्थ जान लेने के पश्चात् यह भी मालूम कर लेना आवश्यक है कि संस्कृत भाषा में किन किन भिन्न अर्थों में इस शब्द का उपयोग किया जाता है। " (१) नियम, (२) प्रचलित नियम, (३) नीति-नियम, सद्गुण, सीधा व्यवहार, (४) कर्तव्य, प्राप्त कर्तव्य, (५) न्याय्य तथा पक्षपात रहित बर्ताव, (६) सदाचार, पवित्रता, (७) स्वभाव, शील, (८) विशेष गुण, (९) स्वार्थत्याग, आत्मसमर्पण, (१०) ईश्वर-भक्ति" आदि अर्थों में धर्म शब्द का उपयोग होता है। पहले दिए हुए धात्वर्थ का मिलान इन अर्थों से करने पर दोनों का सम्बन्ध पाठकों पर प्रकट हो जावेगा। यथार्थ अर्थ में जो बात संदिग्ध थी वह रूढ अर्थ में स्पष्टरूप से दिख पडती है।

उपरोक्त दोनों अर्थों को मिला देने से मालूम होगा कि " इस संसार में अपना जीवन आनन्दमय बनाने के लिए और सब प्रकारसे उन्नति करने के लिए मनुष्य को न्याय्य, निःपक्षपाती और सीधा आचरण रखना चाहिए और जनता के हित के लिए आत्मसमर्पण करने को तत्पर रहना चाहिए। इसी का नाम धर्म है। इस अर्थ को जान करही श्रीकणाद मुनिने धर्म का लक्षण इस प्रकार बतलाया है:—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

वैशेषिक दर्शन १। २

अर्थात् " जिससे ' अभ्युदय ' तथा ' निःश्रेयस ' की सिद्धि होती है उसे धर्म कहते हैं। " अभ्युदय का अर्थ है संसार में प्राप्त होनेवाली उन्नति। सामाजिक, राष्ट्रीय, औद्योगिक आदि बातों में जितनी उन्नति करना सम्भव है, वह सब प्रकार की भौतिक उन्नति ' अभ्युदय ' शब्द से बतलाई जाती है। ' निःश्रेयस ' शब्द से आत्मिक उन्नति का बोध होता है। सारांश श्री कणाद मुनि की धर्म की परिभाषा से यह मालूम होता है कि आधिभौतिक सुख प्राप्त करने के मार्ग और साथ ही आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करने के साधन दोनों धर्म में सम्मिलित हैं। इस का सरल अर्थ यही कि यदि मनुष्य सच्चे-धर्म नियमों का पालन करे, यदि देश के लोग इस सत्य धर्म के अनुसार आचरण रखें तो वह मनुष्य या वह देश

आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति निश्चयसे कर सकेगा। धर्म का पालन करनेवाला राष्ट्र या धर्म का पालन करनेवाला मनुष्य ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के मार्ग से कभी भी दूर नहीं रह सकता।

धर्म के आभास का परिणाम।

हो सकता है कि मनुष्य अपनी समझ के अनुसार किसी विशेष प्रकार का आचरण रखता हैऔर उसी को वेसमज से 'धर्म' कहता है। परंतु उसका यह आचरण वास्तव में मानव धर्म के विपरीत है। यद्यपि उसे स्वयं इस बात की सुध नहीं है। ऐसी दशा में उस मनुष्यकी उन्नति नहीं अवनति ही होगी। क्या इसका दोष धर्म के मत्थे मढा जा सकता है? कदापि नहीं। यह दोष उस मनुष्य के अज्ञान का है। इसीलिए अत्यन्त आवश्यक है कि धर्म पथ पर चलनेवाले तथा धर्म की निन्दा करनेवाले निश्चय कर लें कि सच्चा धर्म क्या है?

यह बात उदाहरण से अधिक स्पष्ट होगी। भारतवर्ष के हिन्दु-मुसलमान भाई धर्म के नामपर एक दुसरे का गला घोटने पर उतारू हैं। वास्तव में यदि दोनों में सच्चे धर्म के भाव भरे हैं तो दोनों में एकता होनी चाहिये। दोनों में से एक में भी यदि सच्चा धर्म उज्वल रूप से प्रकाशित होवेगा तो यह अनर्थ कदापि न हो सकेगा। किन्तु दोनों भाई धर्म के आभास को प्रधानता देते हैं और सच्चे मानव धर्मको गौण मानते हैं। परिणाम यह होता है कि जिस समय इन दोनों को मिलकर एक हो जाना चाहिए ठीक उसी समय ये एक दूसरेका सिर धुनने को तैयारहैं। कैसा आश्चर्य है? और यह काम करते समय वे अपने को दुसरे से अधिक धार्मिक समझते हैं। यही बात अन्य धार्मिक रीति रस्मों में भी पाई जाती है। धर्म से उन्नति अवश्य ही होती है किन्तु सच्चे मानव धर्म से; केवल धर्म के आभास से नहीं।

सच्चे धर्म का महत्त्व।

इसी से पाठक जान सकते हैं कि सच्चे धर्म से मनुष्य ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। अर्थात् जिससे ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो उसे ही धर्म कहते हैं। धर्म की महत्ता ऐसी भारी है कि उपनिषत्करोंने कहा है:—

(१) धर्मात्परं नास्ति। बृ. उ. १।४।१४
(२) यो वै स धर्मः सत्यमेव तत्। बृ. उ. १।४।१४
(३) धर्मः सर्वेषां मधु। बृ. उ. २।५।११
(४) धर्मान्न प्रमदितव्यम्। तैत्तरीय उ. १।११।१
(५) धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।
महानारायण उ. २२।६

"(१) धर्म से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। (२) सत्य ही धर्म है। (३) धर्म ही सबसे मधुर है। (४) धर्म कभी भी छोडना नहीं चाहिए। (५) धर्म ही सम्पूर्ण जगत् का आधार है।"

सच्चे धर्म का श्रेष्ठत्व इस प्रकार है। सच्चे धर्म का सभी को आधार है। सभी की उन्नति सच्चे धर्म से होती है। इस लिए उपरोक्त वर्णन यथार्थ में सत्य है। जो मनुष्य या देश सच्चे धर्म से चलेगा उसे उपरोक्त बातों की सत्यता प्रतीत होगी और वह कहेगा कि-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
मनुस्मृति ८-१।५

अर्थात् 'धर्म का घात करने से अपना ही घात होता है और धर्म की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है।' यह यथार्थ में सत्य है।

व्यापक धर्म।

हम कह सकते हैं कि धर्म सर्वव्यापी है। प्रत्येक पदार्थ में उसका खास धर्म रहता है। जिस प्रकार उस पदार्थ में धर्म की उन्नति या अवनति होती है उसी प्रकार उस पदार्थ की कीमत (महत्व) अधिक या कम होती है। यह बात प्रत्येक मनुष्य जानता है।

कोई मनुष्य बाजार में सोंठ लेने जावे तो वह, उसी सोंठ को अधिक दाम देकर भी खरीदेगा जिसमें सोंठ का धर्म अधिक होगा। किन्तु जिस में सोंठ के गुण ही नहीं उस वस्तु को मुफ्त मिलने पर भी वह न लेवेगा। यही बात प्रत्येक वस्तु की है। प्रत्येक मनुष्य दूसरी वस्तु के सम्बन्ध में

विचार करते समय उस वस्तु के धर्म का विचार करता है। परन्तु वह यह बात कभी भी नहीं सोचता कि अपना धर्म अपने पास है या नहीं; होना चाहिए या नहीं, उस धर्मका-मानव धर्म का-अपने में उत्कर्ष हो रहा है या अधःपात ! अपनी खुद की परीक्षा के समय वह इन सब बातों को भूल जाता है। किन्तु दूसरे की परीक्षा करते समय वह बहुत अच्छा परीक्षक बन जाता है !!!

सोंठ में सोंठ का धर्म है। अग्नि में अग्नि का धर्म है। और भी अन्यान्य वस्तुओं में अपने अपने धर्म हैं। जिस प्रमाण में उनके धर्म उज्वल रहते हैं उसी प्रमाण में उनकी योग्यता अधिक रहती है। इसी प्रकार मनुष्य में ' मानव धर्म ' है, इसी लिए वह मनुष्य कहलाता है। जिस प्रमाण में उसमें ' मानव धर्म ' की मात्रा अधिक उज्वल होगी, उसी प्रमाण में वह मनुष्य उच्च समझा जावेगा। आज तक जो जो महापुरुष हो गए हैं और अब भी जो लोग वंदनीय समझे जाते हैं उनमें दूसरों की अपेक्षा मानव धर्म का तेज अधिक प्रमाण में पाया जाता है। यह बात सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्यों कि प्रत्येक मनुष्य इसे जानता है।

यहाँ हमें दूसरे पदार्थों के धर्म का विचार करना नहीं है, किंन्तु ' मानव धर्म ' का ही विचार करना है। जिस प्रकार दूसरे पदार्थों में उनके विशेष धर्म रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य में भी मानव धर्म है। यह धर्म मनुष्य के ही समान प्राचीन है। इसी लिए गौड पदाचार्य करते हैं-

अजातोऽमृतो धर्मः। गौ. पा. ४। ६

' धर्म उत्पन्न नहीं हुआ अर्थात् बनाया हुआ नहीं है, वह खुद ही बना है और वह सनातन, शाश्वत अ-मृत रूप है। ' मनुष्य को चाहिए कि वह इस स्वयं-भू मानव-धर्म को ही माने। यह स्वयं-भू मानव-धर्म यद्यपि मनुष्य के समान प्राचीन है और यद्यपि वह प्रत्येक मनुष्य के साथ ही आता है तथापि कुछ विशेष नियमों का पालन करने से वह अधिक उज्वल हो सकता है और उसके विपरीत आचरण करने से वह मलिन भी हो सकता है। इसी लिए धर्म-शास्त्र बने हैं।

वृक्ष, वनस्पतियों के धर्म विशेष प्रकार के खात देने से तथा विशेष प्रकारसे उनकी फिकर करने से बढते हैं और न करने से घटते हैं। यही हाल मनुष्य के धर्म का है। इसी लिए इस शरीर को ' क्षेत्र ' (खेत) ' और इस खेत में काम करनेवाले आत्मा को ' क्षेत्रज्ञ (खेती का जानकार किसान) '' कहते हैं। शरीर रूपी खेत में कष्ट कर उसे उपजाऊ बनाना ही उसका काम है। तात्पर्य यह कि यदि मनुष्य योग्य नियमों के अनुसार चले तो उस में धर्म का विकास होता है और अयोग्य रीतिसे चले तो उसका मानव धर्म मलिन हो जाता है। यह नियम जानने से प्रत्येक मनुष्य को मालूम होगा कि प्रयत्न से मानव धर्म का विकास करना चाहिए।

इस लेखमें (१) धर्म के माने मनुष्य की आधिभौतिक और आध्यात्मिक उन्नति करा देनेवाले नियम और आचरण, (२) धर्म अपनी उन्नति का विरोध नहीं करता बल्कि उसमें सहायता पहुंचाता है, साथ ही वह पारमार्थिक उन्नति भी करा देता है, (३) धर्म सब जगत का आधार है, (४) धर्म के अनुसार चलने से मनुष्य का कल्याण अवश्यही होता है, (५) मानव धर्म की उन्नतिसे अपनी उन्नति होती है आदि बातें स्पष्टतया बतलाइ गई हैं।

आगामी लेखमें हमें विचार करना है कि रूढ धर्म का रूप किस प्रकार है।

प्राचीन भारत का स्वराज्य।

बहुतेरे इतिहासवेत्ताओं का मत है कि प्रजातन्त्र शासन पद्धति जारी करने का पहला मान ग्रीक लोगों को है। किन्तु प्रजातन्त्र की कल्पना तथा स्थापना जिस प्रकार ग्रीस के प्राचीन इतिहास में मिलती है उसी तरह भारत के इतिहास में भी मिलती है। इतिहास देवता के स्वप्न में भी ग्रीस न आया होगा इतने पहले अर्थात् वेदकाल में यह प्रजातंत्र शासनका विचार भारत में प्रचलित था।

१ विशस्त्वा सर्वा वांछंतु। ऋ. १० । १७३ । १

२ ध्रुवो राजा विशामयम्। ऋ. १० । १७३ । ४

३ त्वा ई विशो न राजानं वृणतां। ऋ. १०।१२४।८

४ त्वां विशो वृणतां राज्याय। अथ. ४ । ४ । २"

१ सब प्रजाएं तेरी ही इच्छा करें। २ प्रजाओंका संतोष बढानेवाला राजाही स्थिर है। ३ तुम्हेंही राजा के स्थान के लिये प्रजाएं चुनें। ४ सब प्रजाएं तुम्हारा स्वीकार करें।

इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि अति प्राचीन कालमें राजा लोकनियुक्त वा कमसे कम लोकसम्मत रहता था।

रामायण में लिखा है कि श्रीराम के राज-तिलक के समय दशरथ राजाने कहा था—

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥

इसी तरह सुग्रीव ने वालि से कहा था-

अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि रामायण कालमें राजा लोकनियुक्त रहता होगा। महाभारत में भी ऐसे ही वचन मिलते हैं। इन से विदित होता है कि प्राचीन काल में राजा लोक नियुक्त रहता था। इसीको वर्तमान राजनैतिक भाषा में कहना हो तो यों कहना होगा कि वह लोकनियुक्त अध्यक्ष रहता था।

" संगच्छध्वम्। संवदध्वम्। सं वो मनांसि जानताम्। समानो मन्त्रः। समितिः समानी। समानं मनः सहचित्तमेषां समानी व आकूतिः। समाना हृदयानि वः। "

इन ऋग्वेद के वचनों से

"नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमः।"

यजुर्वेद

" सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने "

अथर्व वेद

उपरोक्त वेद वचनों के आधार पर राव साहब पावगी तथा डॉ. प्रमथ नाथ बानर्जी महाशयों ने यह सिद्ध किया है कि वेदकाल से शुरूकर अर्वाचीन कालतक लोक-सभाएँ थीं और उनके द्वारा राजालोग राजकाज करते थे। उन दिनों में वर्तमान प्रजातन्त्र के सदृश शासन होगा ही यह मैं नहीं कहता। किन्तु इतना अवश्य ही सिद्ध है कि उस समय अनियमित राजसत्ता के साथही नियमित राजसत्ता, अल्पसंख्य जनसत्ता तथा लोकसत्ता का अस्तित्व था। इसकी पुष्टि देनेके लिए वेदवचन पुराणग्रन्थ, शिलालेख, परदेश के यात्रियों की यात्रा के वर्णन आदि आधार मिलते हैं।

सर चार्लस मेटकाफ साहब ने १८३२ में पार्लियामेन्ट के सन्मुख एक रिपोर्ट पेश की थी। उसमें उन्होंने कबूल किया था कि हमारी पंचायतें 'छोटे छोटे प्रजातन्त्र राज्य' (Little Republics) थे। सब लोग मानते हैं कि ये 'छोटे प्रजातन्त्र राज्य' बहुत प्राचीन कालसे जारी हैं। किन्तु इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। अन्य देशों में भी ये संस्थाएँ जारी थीं। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दुस्थान इन छोटे स्वसत्तावाले राज्यों से आगे बढा था? हिन्दुस्थान इसके आगे गया इस बातको

सिद्ध करने के लिए हम प्रो· न्हिज् डेविड्स साहब के ग्रन्थ का ही आधार बताते हैं। 'बौद्ध कालीन हिन्दुस्थान, नामक ग्रन्थ में वे कहते हैं, "बौद्ध काल के ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि उस समय राजसत्ता के साथ ही पूर्ण वा बहुंशी स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य थे। यह बात उत्तर काल के जैन ग्रन्थों से निःसंदेह सिद्ध होती है।" जैन धर्म के चलानेवाले श्री महावीरजी स्वयं प्रजातन्त्र राज में उत्पन्न हुए थे। महाभारत से विदित होता है कि महाभारत काल में वा उसके पहले ही से वृष्णी नामकी एक जाति का अस्तित्व था। इसके विषयमें भगवद्गीता में कहा है: "वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि।" इसका शासन अल्प संख्य जनता के आधीन था और उस राज्य के सूत्रसंचाल कों में से एक भगवान श्रीकृष्ण थे। इससे आगे बढ जब हम अर्वाचीन कालकी ओर आते हैं तब मंदासर के कुमार गुप्त तथा बंधुवर्मन् के शिलालेखों से विदित होता है कि छटवीं शताब्दि के करीब मालव जाति के लोग प्रजातन्त्र राज्य का अनुभव कर रहे थे। जबाब-देही की शासनप्रणालि में इंग्लैण्ड ने यह प्रथा शुरू की है कि किसी भी बात का दोषी राजा नहीं है, उसका मन्त्रि-मण्डल है। मुद्राराक्षस नाटक के आधार पर हम कह सकते हैं कि यही प्रथा आर्य चाणक्यने भी शुरू की थी।

किन्तु इन सब उदाहरणों से भी अच्छा उदाहरण मलबारके नायर लोगों की शासन पद्धति में पाया जाता है। यहां की शासन प्रणाली ठीक वैसी ही जबाबदेही की है जैसी कि इंग्लैण्ड में है। इनके राजप्रबन्ध का अन्तिम जोड ग्राम पंचायत है। इसे वे लोग "तारा" कहते थे। ये 'ताराएँ' अन्य स्थानों की ग्रामपंचायतोंके सदृश पूर्ण स्वतन्त्र रहती थीं। अनेक ताराएँ मिलकर एक परगना होता है उसे वे 'नाड' कहते थे। इन 'नाडों' को लोक-नियुक्त प्रतिनिधियों की 'कोट्टम्' नाम की सभा रहती थी जो हूबहूब पार्लियामेंट के सदृश थी। तेल्लीचेरी में ईस्ट-इण्डिया कम्पनीकी एक कोठी थी। इस कोठी की डायरी में ता० २८ मई १७४६ का हाल लिखते समय कहा है, "ये नायर लोग कालिकत के लोगों के नेता हैं। वे अपना काम पार्लियामेन्ट के समान चलाते हैं। हर एक बात में वे राज्यकर्ताओं की आज्ञा नहीं मानते। यदि मन्त्रि-मण्डल कोई गलत काम करे तो ये लोग उसे सजा देते हैं।" मद्रास सिविल सर्विस के मि. लोगेन साहबने लिखा है, 'उपरोक्त पार्लियामेन्ट नाडा के प्रतिनिधियों की कोट्टम् नामक सभा है। जब कभी सब लोगों को मिलकर कोई बातें करनी होती हैं तब कोट्टम् उन्हे निश्चित करती है। यह पार्लियामेन्ट के सदृश कोट्टम केवल मलाबार ही में नहीं थी किन्तु कनारा में भी सन१८३२। १८३३ तक थी। उसने अंग्रेजों को बहुत कष्ट भी दिया था। मलाबार की कोट्टम् १८ मार्च १७९२ तक, जब कि उस प्रदेश को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया, विद्यमान थी। अति प्राचीन कालसे अठारवीं शताब्दि के अन्त तक नायरोंकी 'तारा' तथा 'नाड' संस्थाओं द्वारा अत्याचार तथा जादती से देश की रक्षा होती रही है। इसी के कारण मलयाल के अहातेमें समृद्धि थी और कालिकत पूर्वपश्चिमका व्यापार का बडा केन्द्र बन गया था। (देखो मलबार गॅझेटीअर-प्रथम खण्ड।) इन नायरों के शासन में केवल राज-सत्ता ही मर्यादित नहीं थी, राजा का राजत्व काल भी निश्चित रहता था। पहले राजत्व काल की अवधि १२ वर्ष की रहती थी। तदनंतर 'महा मखम्, यज्ञ कर नया राजा चुना जाता था। यही अतिप्राचीन काल का "राजसूय यज्ञ" समझना उचित है।

इस वर्णन से आप लोगों को विदित हुआ होगा कि नायरोंकी शासनप्रणाली बहुत कुछ जबाबदेही शासन-पद्धति थी। राजा लोक-नियुक्त, उसकी अवधि १२ वर्ष की और उसका अधिकार मर्यादित ये बातें आजके इंग्लैण्ड के राजा के अधिकार से भी मर्यादित हैं। इंग्लैण्ड के नाम मात्र के राजा के मर्यादित अधिकार की अपेक्षा नायरों की शासन-पद्धति में विशेषता यह थी कि उनमें निश्चित-अवधि और लोक-निर्वाचन था। अर्थात् उनकी शासन-पद्धति 'लोक-निर्वाचित-निश्चित-अवधि-पूर्ण-मर्यादित, राजसत्ता थी। इस प्रकार इस पद्धति

में राजा की सत्ता नष्टप्राय थी। मन्त्रि -मण्डलका भी यही हाल था। गैरवाजिब तथा जन-मन- विरुद्ध बातें करनेपर वे पदच्युत किये जाते या दण्डित होते थे। लोकनिर्वाचित प्रतिनिधि जब लोक-मत विरुद्ध शासन करते हैं तब इंग्लैण्ड में यह मन्त्रि-मण्डल बरखास्त हो जाता है। नायरोंका शासन क्या इसी प्रकार न था ? इंग्लैण्ड की वर्तमान राजसत्ता से भी अधिक नियंत्रित राजसत्ता और इंग्लैण्ड के मन्त्रिमण्डलके सदृश मन्त्रियोंकी जनताके प्रति जबाब देही नायरों में प्रचलित थी। ये बातें अंग्रेज अधिकारियों ने ही लिख रखीं हैं। तब कौन कह सकता है कि नायरोंको उत्तरदायी शासन मालूम न था ? हम नहीं कहते कि नायरों का शासन ठीक वैसा ही था जैसा कि वर्तमान समय में लोग चाहते हैं। किन्तु तात्त्विक दृष्टिसे यह मानना होगा कि वे उस पद्धति के सिद्धान्तों से परिचित थे। हमें केवल इतनाही सिद्ध करना है कि भारतवासी उत्तर--दायी शासन तथा प्रजातन्त्र शासन के भिन्न भिन्न प्रकारों से पूर्णतया अपरिचित न थे। इसी लिए प्रजातन्त्र शासन स्थापित करने का श्रेय केवल पाश्चात्य लोगों को नहीं दिया जासकता। क्यों कि वैदिक काल से इस उक्त समयतक इस देशमें प्रजातन्त्र राज्य काही महत्त्व माना गया है।

सपत्न

(अर्थात् संकल्पशक्ति की सपत्नि।)

(ले० — उदयभानु)

ब्रह्माण्ड के पतित — पावन दिव्य लोक में महाराजा चित्त-देव राज्य कर रहे थे। बडे बडे ज्ञानी, मुनिजन जिस पद के लिये तरसते थे, भगवान् इन्द्र जिस पद की प्राप्ति के लिए कठोर तपश्चर्या में रत थे, उस सार्वभौम, सम्राट् पद पर दिव्य गुणों से युक्त श्रीमान् चित्तदेव विराजमान थे। जिस प्रकार समुद्र में बडे बडे नद अनिच्छित ही आकर सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे विद्या के समीप विनय सहज ही आजाती है, इसी प्रकार दिव्य दिव्य गुण दिव्य दिव्य शक्तियां महाराजा को प्राप्त थीं।

आपकी सती-साध्वी धर्मपत्नी का नाम कल्पना, देवी था। जैसे एक कृषक स्वतंत्र होते हुए भी तहसीलदार को अपना प्रभु समझकर उसका कृपा पात्र बनने में अपना कल्याण समझता है, ठीक इसी प्रकार संसार की प्रत्येक विजेय (जिस पर जय प्राप्त करना है) कल्पना देवी का कृपा पात्र बनने में अपना सौभाग्य समझता था।

दोनों (पति-पत्नी) बडे प्रेम से व्यवहार करते मानों स्वयं प्रणय ने ही इस दम्पति का वेष लिया हो, जनता इनके व्यवहार पर मुग्ध थी। यहां तक कि आवश्यक्ता पडने पर अपना सर्वस्व महाराजा के लिए अर्पण करने को उद्यत हो जाती।

इस प्रकार आमोद प्रमोद में आनन्द-सुख में, खेल-तमाशे में कई दिन व्यतीत हो गये। एकाएक महाराजाके चित्तमें इन विषयों से ग्लानि होने लगी, यहां तक कि उनकी अवस्था अब प्रथम से बिलकुल भिन्न हो गई। इसका कारण सर्व साधारण को तो मालूम नहीं हुआ परन्तु राज्य के जो धुरन्धर और प्रगाढ विद्वान थे वे समझ गये। उनकी कल्पना देवी अनुपम सुन्दर होते हुए भी शारीरिक स्वास्थ्य में अद्वितीय थी, परंतु दोनों पैरइनके शून्य थे, इस कारण वे चलने फिरने में असमर्थ थीं। महाराजाने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि किसी प्रकार कल्पना देवी के पैर ठीक हो जावें परन्तु असफल हुए। जिस प्रकार

गाडी का एक पैय्या टूट जाने पर गाडी निरुपयोगी हो जाती है इसी प्रकार महाराजा का गृहस्थाश्रम निष्फल होने लगा । इनकी दूसरी धर्मपत्नी संकल्पादेवी थीं; अपितु वे आंख से अंधी थीं ।

(२)

एक दिन महाराज अपने विश्राम-गृह में विराजमान थे। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। नगर में अशान्ति फैल रही थी। नगर में वर्षा न होने के कारण लोग महान् दुःखी थे मानों किसी पक्षियों के वन में वधिक का पदार्पण हुआ हो ।

महाराज को विवेक नामक मंत्री ने वर्षा निमित्त महायज्ञ करने का परामर्श दिया। इन दोनों धर्म पत्नियों ने प्रजा की सेवा करने निमित्त यज्ञ का कार्य अपने उपर लिया। चन्दन की लकडी, समिधा इत्यादिक एकत्र करने के लिए दोनों पत्नियों ने वन को गमन किया ।

यद्यपि दोनों का ध्येय एक ही महा-यज्ञ था, परन्तु सपत्निक द्वेष से दोनों साथ साथ रह कर कार्य न कर सकीं। जिस प्रकार छूत और अछूत ये दोनोंही अपना एक उद्देश अपनी उन्नति यह रखते हुए भी थोडे से स्वार्थ के लिए अपने राष्ट्रीय महायज्ञ का विध्वंस करने का अदम्य साहस रखते हैं, इसी प्रकार दोनों धर्म पत्नियां यह चाहती थ कि यज्ञ का कार्य मैं अकेली ही कर सक्ती हूं, मैं ही अकेली यश भाजन बन जाऊं परन्तु एक लंगडी थी और दूसरी अन्धी होने के कारण कुछ भी कार्य न कर सकीं।

(३)

उक्त दोनों देवियां पृथक् पृथक् वन में विचरती रहीं। घोर परिश्रम किया। चिन्ता में अव्यस्त रहीं। न खाने की सुध न भोग विलास की। चाहे इन देवियों ने आजन्म में धरातलपर पैर न रखा हो परन्तु आज सपत्निक द्वेष ने इन्हें बनकी कठोर भूमिपर चलने का अदम्य साहस, उत्कट कर्म वृत्ति उत्पन्न कर दी। दोनों बार बार परिश्रम करती थीं परंतु एक अंधी होने के कारण और दूसरी पैरों के शून्य होने के कारण असफल हुई ।

अन्त में दोनों देवियां वन के दुःखों को न सहन कर सकीं। व्यथित होकर रोने लगी। कभी कभी वृक्षों के समीप जातीं और कहने लगती, ए. वृक्षों ? तुम्हें हमने लगाया और बडा किया है, हमने तुम्हारी सेवा की है, आज हमारे ऊपर आपत्ति है तुम हमारी सहायता करो । रोती थीं, तडफती थीं और दोनों निर्जन वन में व्याकुल थीं ।

इनकी मूर्खता पर वृक्ष हंसते। इनकी कुंठित बुद्धि पर, इनके सपत्निक द्वेषपर वृक्ष, वायु के साथ अट्टहास करते, इनकी हंसी करते, इनकी बुराई करते मानों बार बार अपनी खड खडाहट द्वारा इन दोनों को सम्मिलित होकर कार्य करने का उपदेश दे रहे हों। चन्द्रमा आकाश मार्ग में कहीं भी नहीं दिखाई देता, मानों इनकी मूर्खता पर सदा के लिए अस्त हो गया। नदियों का मनमोहक कल कल निनाद अब स्वप्नवत हो गया मानों अपनी स्वामिनियों के दुखःपर अविरल अश्रुधारा समुद्र में बहाकर सदा के लिए शांत हो गईं। अलिगणों की मधुर गुंजाहट बन्द हो गई मानों वे भी इनके दुःखसे दुःखित होगये हों। पृथ्वीपर जहां देखो वहां ओस की बूंदे दिखाई देती मानों तारांगण रो रो कर अश्रुपात करते हों परंतु इन्हें कुछ भी नहीं सूझता था ।

वायु चंद्रमा की किरणों का सितार बजाकर एकता का पाठ पढाती, पक्षी गणों का झुंड, आकाश वृक्ष, पृथ्वी सभी एकता का, मिलकर काम करने का उपदेश करते थे परन्तु हाय ! सपत्निकद्वेष तेरी बलहारी है। तेरी ही कृपा द्वारा हम पिट रहे हैं, मारे जा रहे हैं, हमारी मा, बहिनोंका सतीत्व हमारी आंखों के सन्मुख विधर्मियों द्वारा नाश हो रहा है, हम मरणोन्मुख हो रहे हैं, अब मरने को कुछ घडी ही बाकी है तथापि हे द्वेष ? तू हमें नहीं छोडता। धन्य है !!

(४)

प्रजा का यज्ञ समाप्त हो गया था, वर्षा भी हो गई थी। सब लोग उक्त देवियों का हाल जानने को उत्सुक थे। जंगल में, कंदरामें, आकाश में, पाताल में, भूलोक द्यूलोक में सब जगह दूत भेजे गये ।

अन्त में एक निर्जन बन में दोनों देवियां करुणा

मयी वाणी से हाय देव ! हाय देव !! चिल्लाती हुई मृत्यु की घडी गिनती दिखाई दीं ।

चित्त महाराज को अपनी स्त्रियों की इस परीक्षा में अनवतीर्ण होने के कारण बडा क्रोध और तरस आगई मानों किसी महाबली की शरण में कोई आया हो । दोनों को भोजन दिया उनको मरने से बचाया और यह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य मंत्र दिया "हे देवियों! तुम्हारी असफलताका कारण तुम्हारा आपसका द्वेष है । यदि अंधी के ऊपर लंगडी बैठ कर काम करती तो अल्प समय में सफलता प्राप्त हो जाती...... दोनों संयुक्त होकर काम करतीं ।"

दोनों रानीयां प्रसन्न हुईं । इसी उपदेश को शिरोधार्य बनाकर सदा के लिए एक दूसरे की सहायक होती । अपने कर्तव्य को निभाती हुई दिव्य जीवन व्यतीत करती रहीं ।

यही हाल है हमारे संकल्प और कल्पना का; यही हाल है, छूत और अछूत का और यही हाल है आर्य सनातनका एतदर्थ यही हाल है हमारे जीवन का।

अपंग कल्पनामें विचार-शक्ति है, परंतु कार्य करने की शक्ति नहीं । अंधे संकल्प में कर्म करने की शक्ति है पर विचार - शक्ति नहीं है । आप एक संकल्प कीजिए और विचार उस संकल्प से भिन्न या विरुद्ध कीजिए तो परिणाम यह होगा कि उसी क्षण आप का अन्धा संकल्प गिर पडेगा, निरस्त हो जायगा, संकल्प की सारी ताकत नष्ट भ्रष्ट हो जायगी । इस कारण यदि विजय प्राप्त करना है तो संकल्प और कल्पना की एकता कीजिए । कल्पना के विरुद्ध हो जाने से प्रचंड संकल्प भी क्षणभर में नाश हो जायगा । इसी लिए मुनीश्वर पातञ्जली ने कहा है कि कल्पना और संकल्प का योग करो, उनमें अनुकूलता स्थापित करो और कभी अपने संकल्प के विरुद्ध कल्पना उदय हो जावे तो उस उदित कल्पना के प्रतिपक्ष की भावना अर्थात् निश्चित् संकल्प के अनुकूल विचार द्वारा उस वितर्क का नाश करो । यही संकल्प शक्ति का चंद्रोदय है ।

"मेमनः शिव संकल्पमस्तु ।"

यजुर्वेद [मूल मात्र]

इस समय पूर्वार्ध वीस अध्याय छप चुके हैं । आगे छपाई चल रही है । जो ग्राहक दो रु. म. आ. द्वारा भेजकर अपना नाम ग्राहक श्रेणीमें लिखेंगे, उनको सौ पृष्ठोंका मूल्य आठ आने होगा । अन्यों के लिये सौ पृष्ठोंका मूल्य बारह आनेके हिसाबसे होगा । डाकव्यय दोनों अवस्थामें अलग होगा ।

सोम ।
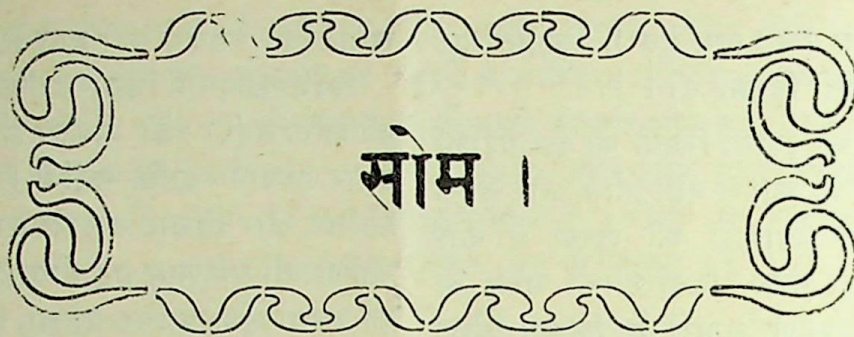
(ले०-श्री० प्रो० रुलिया रामजी कश्यप, एम्, एस्. सी.)

अग्नि आदि शब्दों की न्यायी वेद में सोम शब्द भी अनेक अर्थों में आता है। जैसे कहीं पर यह परमात्मा का वाचक है, कहीं पर चन्द्रमा का, कहीं पर मनुष्य विशेष का और कहीं पर औषध विशेष का। इनके उदाहरण वेदमें स्थान स्थान पर मिलते हैं यथा—

१. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

सामः उ० ३-१-१९-१ ॥

अर्थात् अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु, पृथिवी, द्यौ तथा मतियों (बुद्धियों अथवा विचारों) का उत्पादक सोम सबको शुद्ध पवित्र करने का सदैव यत्न कर रहा है ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥

साम० उ० ३. १. १९-२ ॥

अर्थात् जिस प्रकार सब देवों में ब्रह्मा सर्वोपरि है उसी प्रकार सोम भी सब देवों में सर्वोपरि देव है। इसी प्रकार कवियों में पदवीः की न्यायीं वह सर्वोत्तम कवि है। इसी प्रकार विप्रों में ऋषिवत्, मृगों में महिष वत्, गृध्रों में श्येनवत्, वनियों में स्वधिति वत्, सोम सर्वोत्तम विप्र, मृग, गृध्र और वनि है, यह सोम सब को पवित्र करनेवाला है और अपनी महिमा में अन्य सब को उलांघ जाता है। इस की महिमा उन सब की महिमा से अधिक महान है और यह शब्द करता ही रहता है क्यों कि वेद इसी का वचन है और बिजुली का द, द, द, शब्द भी इसी का शब्द है ॥)

इन दोनों मंत्रों से पता चलता है कि यहां उस सोम का वर्णन है जो अग्नि से विष्णु पर्यन्त सब देवों का पिता है जो पृथिवी से द्यौ पर्यन्त सब लोकों का उत्पादक है जो सब को मति, मनन शक्ति देता है। इस के अतिरिक्त सोम वह है जो देवों में ब्रह्मा समान, कवियों में पदवीः समान, विप्रों में ऋषि समान, मृगों में महिष समान, गृध्रों में श्येनसमान और वनियोंमें स्वधिति समान श्रेष्ठ है। इस के विना सोम सब का पावक और सब से महान् महिमावाला है। अतः इन विशेषणों से युक्त सोम केवल परमात्मा के विना अन्य कौन हो सकता है। अतः इन मन्त्रोंमें सोम शब्द परमात्मा का वाचक है। अर्थात् यहां पर सोम का अर्थ परमात्मा है ॥

२. दिवि सोमो अधिश्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

ऋग्० १० । ८५ ॥

अर्थात् सोम द्यौ लोक में आश्रित है उसी के द्वारा सूर्य्य की किरणें बलवान होती हैं, और (इन से उत्पन्न ओषधियों के साथ महिमावाली) पृथिवी भी उस सोम के द्वारा ही महान् है, बडी है (क्योंकि सोम छोटा है और पृथिवी बडी है)

और यह सोम इन नक्षत्रों तारागण के समीप विद्यमान है ॥

यहां पर साफ है कि सोम नाम चन्द्रमा का ही है क्यों कि चन्द्रमा ही आसमान में तारागण के बीच विद्यमान होता हुआ सूर्य्य की किरणों को शीतल तथा पुष्ट करता हुआ पृथिवी पर ओषधियां उगाकर पृथिवी की महिमा बढाता हुआ उसे मही बना रहा है और उस से छोटा भी है।

अतः यहां पर सोम शब्द चन्द्रमा का वाचक है, अर्थात् यहां सोम का अर्थ चन्द्रमा है ॥

३. अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥
अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणाहवम्।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
ऋग्० १ । ९३॥

अर्थात् हे अग्नि और सोम! जो आज तुम्हारे इस वचन को सेवे अर्थात् तुम्हारे वचन को सुन तदनुकूल आचरण करे, उसे तुम गौ घोडे आदि की बहुतायत से होनेवाली पुष्टि तथा उत्तम बल, वीर्य और इन सब से होने वाला सुख दो ॥ १ ॥ हे अग्नि और सोम ! आप सुखादि की वर्षा करने वाले हो मेरे इस उत्तम (ग्राह्य) श्रोतव्य तथा (दातव्य) वक्तव्य वचन को ध्यान दे कर (उत्तम प्रकार से) सुनो। सूक्त, उत्तम वचन, वेद सूक्त सुनने की इच्छा रक्खो तथा (इन सूक्तों में चित्त) देनेवालेके लिये सुख (साधक) होवो ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों में सोम से प्रार्थना है कि वह शब्दों को सुने, सूक्तों को सुनना चाहे, सुनानेवाले को सुख देवे और उस के विषय में यह भी बताया है कि वह बोलता है और अपने वचनानुकूल चलने-वाले को बल, वीर्य्य, धन, पशु आदि देकर सुखी तथा बलवान करता है। अतः यहां सोम कोई बोलने, सुनने और वेदसूक्तों को चाहनेवाला चेतन है। यदि कोई कहे कि ऐसा सोम तो परमात्मा है तो हम कहेंगे कि यहां ऐसे दो का वर्णन है। अग्नि और सोम दोनों के ही यही गुण वर्णित हैं अतः क्यों-कि परमात्मा दो नहीं हो सकते अतः- यहां सोम का वाच्य परमात्मा नहीं। परमात्मा से भिन्न बोलने सुनने वाला चेतन मनुष्य से भिन्न अन्य जानवर आदि भी हैं परन्तु उनकी वाणी व्यक्त नहीं होती, हां! तोते की तो कुछ व्यक्त भी होती है पर उसको बोध नहीं, समझ नहीं और वह बिचारा सूक्तोंकी कामना इस कारण कर ही नहीं सकता। अतः इन मन्त्रों में सोम किन्हीं जानवरों का वाचक नहीं, इति। शेष रहे मनुष्यही चेतन बोलने, सुनने, समझनेवाले हैं, पर उन में भी वेद के विद्यार्थि ही वेद सूक्तों को कामना कर सकते हैं।

अतः यहां वेदका विद्यार्थी मनुष्य विशेष ही सोम शब्द का वाच्यार्थ है ॥

४. हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ......॥७॥
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः। तत्रामृत-स्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत्। स कुष्ठो विश्व-भेषजः साकं सोमेन तिष्ठति। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ८ ॥
अथर्व०१९।३९॥

अर्थात् बिजुलीसे चलनेवाली नौका आकाशमार्ग से जाती हुई जहां जा कर रुक जाती है वहां हिमवान् (हिमालय= बरफानी) पर्वतों के शिखरोंपर हिम-वान के शिरपर, सर्वोच्च शिखर पर "अमृत" नामक ओषधि का दर्शन होता है, उसी स्थान से कुष्ठ ओषधि की उत्पत्ति है। वह कुष्ठ सब रोगों की एक ही दवा है, परन्तु वह सोम के पास ही ठहरती, अर्थात् कुष्ठ और सोम दोनों पास पास ही उगती हैं। वह कुष्ठ सब रोगों और सब दुःखदर्दों की नाश करनेवाली है, इसी स्थान में सर्वोत्तम दिव्य ओषधि पहाडी पीपल भी उगता है, क्यों कि अथर्व वेद के उस "कुष्ठ सूक्त" के छटे मन्त्र--

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥
अथर्व० १९ । ३९ ।९॥

का अर्थ है कि "इस (अर्थात् मैदान) से तीसरे अर्थात् पर्वत शिखर (क्यों कि मैदान पहिला, पहाड दूसरा और पर्वत शिखर तीसरा है) पर (द्यौ में अर्थात्) सूर्य्य के निरन्तर प्रकाश में (जहां सूर्य्य का प्रकाश मैदान तथा पहाड की अपेक्षा बहुत अधिक समय तक निरन्तर रहता है) दिव्य गुणों का निवासस्थान, दिव्य अश्वत्थ "पहाडी पीपल "उगता है, वहीं पर " अमृत " भी दिखाई पडता है; वहीं पर " कुष्ठ" पैदा होता है और उसी के पास " सोम" उगता है। वही कुष्ठ सब व्याधियों तथा पीडा ओं की अकेली ही नाश करने वाली है, अतः विश्वभेषज है ॥ "

इस प्रकार इस कुष्ठ सूक्त में पहाडी पीपल, अमृत, कुष्ठ और सोमके उत्पत्तिस्थान का वर्णन है। यह सब यहां ओषधि विशेषों के नाम हैं, अतः इस ओषधि सूक्त के देवता कुष्ठ ओषधि का साथी सोम भी ओषधि विशेष ही होना युक्तियुक्त है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि पर्वत शिखर पर उगने वाला सोम परमात्मा, चन्द्र वा पुरुष विशेष तो हो ही नहीं सकता, क्यों कि परमात्मा जन्मता ही नहीं, चन्द्र पर्वत में नहीं, वरञ्च आसमान में होता है और पुरुष विशेष पर्वत पर उगा नहीं करते अतः इस प्रसंग में वर्णित सोम शब्द ओषधि विशेष काही वाचक है, अतः यहां सोम शब्द का अर्थ एक ओषधि विशेष है जो हिमवान् पर्वतों के उच्चतम शिखरों पर पहाडी पीपल, अमृत और कुष्ठ के पासही वैसी ही भूमि में उगता है।

अतः यहां सोम का अर्थ ओषधि विशेष सोम ही है ॥

५. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥

ऋग्० ९। १। १॥

अर्थात् हे सोम! तू अपनी अत्यन्त स्वादु और सारे शरीर में जोश चढाने वाली धार के रूप में निचुडकर प्राप्त हो ताकि निचुडे हुए तुझे ऐश्वर्य्य शाली धनाढ्य बलवान इन्द्र पी सके॥ इस से सिद्ध है कि यहां पर सोम किसी स्वादु मीठे बहुत महंगे पेय पदार्थ का नाम है। साधारण बोल चाल में मीठे स्वादु पेय को रस कहते हैं। अतः यहां पर सोम नाम किसी रस का है और ऊपर सोम नाम एक ओषधि विशेष का वर्णन किया गया था, अतः उन मन्त्रों के द्वारा इस मन्त्र को पढने से पता चलता है कि इस मन्त्र का सोम रस, उसी सोम ओषधि-विशेष का स्वरस होगा॥ अतः यहां सोम का अर्थ सोम ओषधिका स्वरस है॥

इस प्रकार हमने सोम शब्द के पांच अर्थ परमात्मा, वेदका विद्यार्थी मनुष्य, चन्द्रमा, ओषधि सोम, तथा ओषधि सोम का स्वरस, किये॥

अब क्योंकि हम वेदोक्त ओषधियों का वर्णन करने, में गत ३, ४, मास से लगे हुए हैं इस कारण यहां भी हम अब सोम के पहिले तीन अर्थों को छोड कर केवल अन्त के दो अर्थों का ही इकट्ठा वर्णन करें ताकि, पाठकों को संसार प्रसिद्ध सोम ओषधि तथा उस के स्वरस की वेदोक्त तथा आर्ष महत्ताका अनुभव हो और जिससे कि स्यात् कोई भाग्यवान जिसे कश्मीर आदि देशोंमें भ्रमण करते हुए यह प्राप्त हो जावे, वह इस से लाभ उठा सके।

वेद में कई प्रकार की सोम ओषधि वर्णित है यथा—

१. उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये॥

अथर्व० ८। १। २॥

अर्थात् इस (मरणासन्न पुरुष) को इस का कल्याण करनेके लिये भग, अंशुमान सोम, मरुत देव, इन्द्र तथा अग्नि सब ने उत्तम रीत्या ग्रहण किया है॥ यहां पर अंशुमान सोमका वर्णन है जिसे मरणासन्न पुरुष को देनेसे वह जीवित रह जाता है, मरता नहीं। यह इस से पहिले पिछले मन्त्रों के मिलान से पता चलता है॥

इस प्रकार सोमकी एक जाति का नाम अंशुमान सोम है॥

२. प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः । सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥

ऋग्० १० । ३४ । १ ॥

अर्थात् जुए (द्यूत) की नरदें मुझे मौजवान् सोमके भोजन की न्यायीं आनन्द देती हैं ॥

अतः यहां सोम की दूसरी जाति मौजवान् सोम वर्णित है ॥

३. यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥

ऋग्० ८ । ८२ । ८ ॥

अर्थात् हे इन्द्र! तेरी सेनाओं के बीचमें ही उनके पास तेरे पानार्थ वह सोम विशेष भी विद्यमान है जो जलमें चन्द्रमाकी न्यायीं दिखलाई पडता है, वह सोम तेरा ही अपना है, उसे तू अवश्य पी ॥ अर्थात् चन्द्रमा सोम लडाई में जाती हुई फौजके साथ भी रखना चाहिये ताकि इन्द्र वहां उसे पी सके॥

अतः यहां सोम की तीसरी जाति चन्द्रमा सोम ओषधि (रस) वर्णित है जिसका वर्णन निम्न मन्त्र में अतीव सुन्दर तथा मनोहर है यथा-

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेत्यग्रम् । भागं देवेभ्यो विदधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥

ऋग्० १० । ८५ । १९ ॥

अर्थात् प्रतिदिन उत्पन्न होता हुआ सोम ओषधि का पत्ता नया नया नवीन ही होता है । दिनोंका यह झंडा है, क्यों कि एक पत्ता प्रतिदिन फूटने के कारण दिनों जितनी संख्या में ही पत्ते होते हैं; अतः पत्तों के द्वारा दिन गिने जाते हैं, उषा होनेसे तनिक ही पूर्व नया पत्ता फूटता है। निकलता हुआ, उगकर यह विद्वानों को उन का भाग देता है और उनकी आयु को यह चन्द्रमा सोम ओषधि बहुत ही लम्बी बढा देती है ॥ अतः इस में चन्द्रमा सोमका बडा ही सुन्दर वर्णन है कि प्रति दिन उषा होने से पूर्व इस के एक नवीन पत्र फूट निकलता है जिसे खाकर विद्वान अपनी आयुको बहुत ही बढा लेते हैं ॥

४. आपतये त्वा गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय ओजिष्ठाय ॥

यजुः० ५ । ५ ॥

अर्थात् "तुझे शरीर को न गिरने देनेवाले अर्थात् आयुरक्षक अत्यन्त ओजवर्द्धक शाक्वर (सोम) के लिये ग्रहण करता हूं ॥ "

अतः यहां पर सोमकी चौथी जाति शाक्वर सोम का वर्णन है क्योंकि शरीर को न गिरने देने वाला अत्यन्त ओजवर्द्धक आदि गुण युक्त शाक्वर विना शाक्वर सोम के कौन हो सकता है ॥

५. ६. ७. " एष ते गायत्र भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दो नामाना साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥ "

यजुः ४ । २४ ॥

अर्थात् मेरे सोम को कहे कि यह तेरा गायत्र भाग है मेरे सोमको कहो कि यह तेरा त्रैष्टुभ भाग है। मेरे सोम को कहो कि यह तेरा जागत भाग है और फिर मेरे सोम को यह भी कहो कि तू छन्दनामों का सम्राट् हो, अर्थात् छन्दों के नामों को धार कर प्रसिद्ध हो॥

अतः यहां पर सोमकी पांचवी, छठी, सातवीं जाति गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत सोम का तो वर्णन स्फुट ही है परन्तु छन्द नामों का सम्राट् हो कहने से अनुष्टुक्, पाङ्क्त, शाक्वर, रैवत, अग्निष्टोम और त्रिपादगायत्र सोम जातियां भी वर्णित हो गईं ॥

८ पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः। एकपदीन्द्विपदीन्त्रिपदीञ्चतुष्पदीमष्टापदीम्भवनानुप्रथन्ता स्वाहा ॥

यजु०८ । ३० ॥

अर्थात् बहुत शक्तियों का दाता, अत्यन्त सुन्दर रूप दायक (इन्दु) सोमने अन्दर बहुत महिमा उत्पन्न कर दी है। बुद्धि को रमणीय करके वह दुनिया में एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी, अष्टापदी वाणी का विस्तार करता है ॥ जिस सोमके पानसे वेदवाणी का इतना विस्तार होता है, सम्भव है उसे ही त्रिपदा गायत्र्यायुक्त नाम दिया जाता हो, क्यों कि त्रिपदा गायत्रि, गायत्रियों में सबसे लम्बी है और गायत्रि ही छन्दों में श्रेष्ठ है, अतः त्रिपदा गायत्रिही सर्वश्रेष्ठ छन्द है। अतः सम्भव है कि इसी कारण इस सोम विशेष को त्रिपदागायत्र्यायुक्त सोम नाम दिया जाता हो। परन्तु यह बात सर्वथा संदिग्ध है क्यों कि इस वेद मंत्र में स्पष्ट रीत्या त्रिपदा गायत्र्या युक्त सोमका वर्णन नहीं और वेदोंमें अन्यत्र कहीं पर भी इस का नाम मात्र भी कथन नहीं ॥

इस प्रकार वेद में स्पष्टतया केवल अंशुमान, मौजवान, चन्द्रमा, गायत्र्य, त्रैष्टुभ, जागत इन छः सोम ओषधियों का ही वर्णन है और किञ्चित् स्पष्ट रीत्या सातवीं शाक्वर सोम ओषधि का वर्णन है, परन्तु संदिग्धतया त्रिपदागायत्र्या युक्तसोमका भी वर्णन है ॥

और अनुमान गम्य वर्णन तो पांक्त का भी माना जा सकता है।

यह सोम जातियों का वर्णन वेद से किया गया अब इन सब का सुश्रुतोक्त सांझा लक्षण तथा इन में से प्रत्येक का नाम और विशेष लक्षण तथा इन का उत्पत्ति स्थान तथा प्रयोग प्रकार आदि विस्तृत वृत्त पाठकों के लाभार्थ सुश्रुतसे उद्धृत किया जाता है यथा-

सर्वेषामेव सोमाणां पत्राणि दशपञ्च च ।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च॥२०॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा ।
शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत्पञ्चदशच्छदः॥२१॥
शीर्य्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।
कृष्णपक्षक्षयेचापि लता भवति केवला ॥ २२ ॥

सुश्रुत० चिकि० अ० २९ ॥

अर्थात् सब सोमों के पन्द्रह पत्ते होते हैं वे सब शुक्लपक्ष में फूटते हैं और कृष्णपक्ष में गिर पडते हैं ॥ २० ॥ सोम के एक एक पत्ता नित्य प्रति उपजता है तब शुक्लपक्ष की पौर्णमासी के दिन पन्द्रह पत्ते हो जाते हैं ॥ २१॥ और वैसेही कृष्णपक्ष में नित्य प्रति एक एक पत्ता गिरता है, तब कृष्णपक्ष की आमावस के दिन अकेली लता अर्थात् बेल रह जाती है (क्योंकि पत्ते सब ही झड चुके होते हैं) ॥ २२॥

सर्व एव तु विज्ञेयाः सोमाः पञ्चदशच्छदाः ।
क्षीरकन्दलतावन्तः पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ॥ २६ ॥

सुश्रुत० चिकि० अ० २९ ॥

अर्थात् सब प्रकारके सोमों के पत्ते पंद्रह ही होते हैं और सभी सोमों में दूध, कन्द, लता, और नाना प्रकारके पत्ते होते हैं ॥

इस प्रकार सुश्रुतानुसार सब प्रकार के सोमों के सांझे लक्षण ये हैं-

१ बेल, २ कन्द, ३ दूध और ४ चान्द के साथ घटने बढने वाले १ से १५ और १५ से १ तथा आमावस को ० पत्ते ॥

इन सामान्य लक्षणों से युक्त सोम विशेष लक्षणों की भिन्नता के कारण २४ जातियों में विभक्त है, उन चौवीस के नाम ये हैं-

अंशुमानमुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः ।
दूर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्ष कनकप्रभः ॥ ३ ॥
प्रतानवांस्तालवृन्तः करवीरोंऽशवानपि ।
स्वयम्प्रभो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः ॥ ४॥
गायत्यस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाङ्करस्तथा ।
अग्निष्टोमो रैवतश्च, यथोक्त इति संज्ञितः ॥ ५ ॥
गायत्र्या त्रिपदायुक्ता यश्चोडुपतिरुच्यते ॥

अर्थात् १ अंशुमान्, २ मुंजवान्, ३ चन्द्रमा, ४ रजतप्रभ, ५ दूर्वासोम, ६ कनीयान्, ७ श्वेताक्ष, ८ कनकप्रभ, ९ प्रतानवान्, १० तालवृन्त, ११ करवीर, १२ अंशवान्, १३ स्वयंप्रभ, १४ महासोम, १५ गरुडाहृत, १६ गायत्र्य, १७ त्रैष्टुभ, १८ पांक्त, १९ जागत, २० शाक्वर, २१ अग्निष्टोम, २२ रैवत, २३ यथोक्त संज्ञक, २४ त्रिपदागायत्रियुक्त उडुपति॥

इन चौवीस के भिन्न भिन्न विशेष लक्षण यह हैं-

अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजतप्रभः।
कदल्याकारकन्दस्तु मुञ्जवाल्लशुनच्छदः।
चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा॥ २३॥
गरुडाहृतनामा च श्वेताक्षश्चापि पाण्डुरौ।
सर्पनिर्मोकसदृशौ तौ वृक्षग्रावलम्बिनौ॥ २४॥
तथान्यैर्मण्डलैश्चित्रैश्चित्रिता इव भान्ति ते।२५॥

अर्थात् अंशुमान सोम घृतके समान गन्ध वाला, कन्दवाला और चांदि के समान कान्ति वाला होता है॥ मुंजवान सोम के कंद की आकृति केले जैसी होती है और पत्ते लहसुन के पत्तों जैसे होते हैं॥ चन्द्रमा सोम की कान्ति सोने के समान होती है और वह सदा ही जल में विचरता है॥२३॥ गरुडाहृत सोम और श्वेताक्ष सोम दोनों सफेद रंग, सांप की कांचुली जैसे और वृक्ष के तने से लटकते हुए होते हैं॥ २४॥ अन्य प्रकार के चित्रित मण्डलों से चित्रित की तरह अन्य सोम प्रकाशित रहते हैं॥ २५॥

इस प्रकार सोमों के भिन्न भिन्न विशेष लक्षण वर्णित हुए, अब उन के विविध उत्पति स्थानों का वर्णन करते हैं; यथा-

हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रमलये तथा।
श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा॥ २७॥
पारिपात्रे च विन्ध्येच देवसुन्दे ह्रदे तथा।
उत्तरेण वितस्तायाः प्रवृद्धा ये महीधराः।
पञ्च तेषामधो मध्ये सिन्धुनामा महानदः॥ २८॥
हठवत् प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः।
तस्योद्देशेषु वाप्यस्ति मुञ्जवानंशुमानपि॥ २९॥
काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम्॥३०॥
गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाक्वरस्तथा।
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमाः सोमसमप्रभाः॥३१॥

अर्थात् हिमवान, अर्वुद, सह्य, महेन्द्रमलय, श्री-पर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्य पर्वत में तथा देवसुन्द ह्रद् (तालाव) में, तथा वितस्ता नदी के उत्तर में जो बडे बडे पांच पर्वत हैं उनके नीचे (दामन में) तथा उन सब के बीच में सिन्धु नाम वाला महानद (बडा दरया) है. उसी स्थान-पर सिन्ध में सब सोमों में उत्तम चन्द्रमा सोम मानों अपने हठ से ही वहां तैर रहा है और उसी के आसपास मुंजवान सोम और अंशुमान सोम भी वहीं पर हैं॥ २७-२९ कश्मीर में क्षुद्रक मानस नाम का एक दिव्य सुन्दर (तालाव) सरोवर है जिस में गायत्र्य, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत, शाक्वर सोम और अन्य भी चन्द्रमा की न्यायी चमकने वाले सोम पाये जाते हैं॥ ३०-३१॥

इस प्रकार विविध सोमों के भिन्न भिन्न उत्पत्ति स्थान भी वर्णित हुए। सभी जातियों के सोमों की प्रयोग विधि भी लिखी जा सकती है। परन्तु इस के पीने से जहां मनुष्य मृत्यु जरा से मुक्त होता है वहीं पर वह विधि इतनी कष्ट प्रद है और उस में इतने बचाव (Precautions) रखने की आवश्यकता है कि हम उसे पत्र में प्रकाशित कर प्रसिद्ध करना भयावह समझते हैं,तो भी हम इतना अवश्य लिखते हैं कि सोम विशेषका कन्द लेकर उसमें धातु विशेष की सुईसे च्छेद करके उसका रस धातुविशेष के पात्र में टपकाकर उसकी एक अञ्जुलिमात्र पीने से मनुष्य को उलटी वमन और जुलाब आकर शरीर शुद्धि हो, पश्चात् मांस, त्वक् आदि के झडने के पीछे नया मांस, त्वक आकर तथा पुराने दन्त, केश, नख झडकर नये दन्त, केश, नख आकर मनुष्य अत्यन्त सुन्दर, बलवान, मेधावी, यौगिक सिद्धिसिद्ध बन दश हजार साल तक शरीर को नयी युवावस्थामें रख सकता है, यह ऋषियों का कथन है॥ इति सोम प्रकरण समाप्त हुआ॥ १४॥

यजुर्वेदका मुद्रण ।

यजुर्वेदके मुद्रणके विषयमें गत अंकमें थोडासा लिखा गया था। अब कुछ शेष बातों का विचार यहां करना है। जर्मन पुस्तक में इतना विशेष प्रयत्न होने परभी कुछ अशुद्धियां रहीं हैं और जिन लोगोंने इस जर्मन पुस्तक को अपने आधार के लिये पूर्ण रूपसे लिया उन्होंने भी वही गलतियां की हैं। अजमेर मुद्रित पुस्तकोंमें वही जर्मन पुस्तक की अशुद्धियां जैसी की वैसी रही हैं। अध्याय ११ मंत्र ८० में अजमेर मुद्रित पुस्तक में ' भस्मसा कुरु " पाठ ही छपा है, यहां तक यह अशुद्धि पंहुची है कि यजुर्वेद के स्वामि भाष्य में भी यही पाठ छपा है और अर्थ लिखते हुए भी " जलाकर भस्म कीजिये " ऐसा ही अर्थ किया है। हम समझते हैं कि यह पंडितों की ही भूल है।

जर्मन मुद्रित यजुर्वेद का पुस्तक संहिता पाठ के लिये नहीं है, इसलिये उन्होंने प्रत्येक कंडिका अलग अलग छापी है,इस कारण उसके स्वरोंमें संहिताकी अपेक्षा कुछ भेद भी हुआ है। यह बात न देखते हुए ही अजमेर मुद्रित यजुर्वेदमें कई मंत्र कंडिका रूपमें छापे हैं और कई संहिता रूपमें छापे हैं। कोई एक क्रम रखना आवश्यक था, परंतु वैसा नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये अध्याय १९ मंत्र ९ " तेजोऽसि तेजो मयि धेहि " यह मंत्र देखिये। अजमेर मुद्रित पुस्तकमें इस मंत्रके छः टुकडे करके प्रत्येक टुकडा चरण रेषा से विभक्त करके छपा है। इस कारण संधि स्वर आदि अशुद्ध छपे हैं। यजुर्वेद स्वामि भाष्यमें यह मंत्र ठीक छापा है। इस प्रकार कई बातें विचारणीय हैं।

इन सब बातोंका विचार करके हम इस पुस्तक का मुद्रण कर रहे हैं और जहां तक हो सके वहां तक निर्दोष ग्रंथ मुद्रित करनेका यत्न कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक विशेष योजना हमने की है वह यह है कि भारत वर्ष में जहां जहां यजुर्वेदको कंठ रखनेवाले पूर्ण विद्वान पंडित हैं उनके पास हमारे यहां का छपा हुआ पुस्तक भेज दिया जायगा और उन को प्रार्थना की जायगी कि इस पुस्तक को जहां तक बन सके शुद्ध करके वापस करो। यदि उनके पाठमें कुछ भेद हुआ तो उनके पाठका विचार करके आवश्यक हुआ तो हम उसका एक परिशिष्ट अलग देंगे। विचार करने के पश्चात् उनका पाठ अनावश्यक सिद्ध हुआ तो वह नहीं दिया जायगा।

जो पाठक शुद्ध यजुर्वेद मुद्रण में सहायता देना चाहते हैं वे ऐसे वेद पाठियोंका पता हमें दें कि जिनको उत्तम रीतिसे पूर्ण यजुर्वेद मुखोद्गत हो और जिनका नाम वेदपाठियोंमें संमान से लिया जाता हो। हम उनके पास यह ग्रंथ भेज देंगे और उनसे-आवश्यक हुआ तो-कुछ पुरस्कार देकर भी-सहायता लेंगे। इस समय हमने दक्षिण भारत, काशी, ग्वालेर आदिस्थान के सुयोग्य वेदपाठियों से सहायता ली है और इन प्रांतों के ग्रंथों से भी सहायता ली है। परंतु इससे भी अधिक परिश्रम हम उक्त प्रकार करना चाहते हैं, ऐसा प्रयत्न इस समय तक किसी ने नहीं किया है। इस लिये हमें आशा है कि पाठक इस विषयमें हमें सहायता अवश्य देंगे।

मुद्रक तथा प्रकाशक--श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय ।
स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.

REGISTERED 1463

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक ८

क्रमांक ९२

श्रावण

संवत् १९८४

अगस्त

सन १९२७

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विशेष सूचना।

पाठक यह लेख सबसे प्रथम अवश्य पढें !!!

वैदिक धर्मके इस पूरे अंकमें गोमांसभक्षण के विषयपर एकही लेख छपा है। यह विषय इस समय चर्चाका विषय हुआ है। महाराष्ट्रके धुरंधर पंडित श्री० चिंतामणराव वैद्यजीने 'यंग इंडिया' नामक अंग्रेजी पत्रमें 'वैदिक कालमें गोमांसभक्षण की प्रथा थी और गोमेधमें गोवध होता था' यह लिख दिया है। यह लेख प्रसिद्ध होकर आज दो मास हो गये तोभी इस विषयपर किसीने कुछ लिखा नहीं। इस विषय में बडा पत्रव्यवहार हुआ परंतु कुछ बात निश्चित रूपमें बनी नहीं। इस लिये गोमांस विषयक जो जो शंकाएं यूरोपके वेदाभ्यासी पंडितोंने उठाई, तथा भारतीय विद्वानोंने भी इस विषयमें जो जो बातें प्रचलित की हैं, उन सबका उचित उत्तर वैदिक प्रमाणोंसे देना आवश्यक हुआ। इसी लिये यह लेख लिखा है।

तथा हिंदू महासभाके उत्साही अध्यक्ष डा० मुंजे महोदयने उद्घोषित किया है कि हिंदुओंमें जो जातियां निर्मांसभोजी हैं उनको इस समय मांसभोजन शुरू कर देना चाहिये। इस उद्घोषणाका परिणाम कई तरुण लोगोंपर हुआ है। इस लिये मांसभक्षण विषयपर भी कुछ विचार प्रकट करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

इस लिये 'अथर्व वेदका स्वाध्याय' न छपते हुए संपूर्ण अंकमें यही सामयिक महत्त्वका विषय छापना अत्यावश्यक हुआ। हमारा ख्याल था कि यह विषय इसी अंकमें समाप्त होगा, परंतु इस विषयमें जो जो शंकाएं इस समयतक उपस्थित की गई हैं उन सबका उचित उत्तर देकर इस विषय का प्रामाणिक और सर्वांगपूर्ण लेख प्रकाशित करनेका संकल्प करनेसे लेख बढ गया। यदि थोडा थोडा प्रकाशित किया जाता तो पढनेवालोंको पूर्वापर अनुसंधान भी नहीं रहता इस लिये यही एक लेख इस अंकमें प्रकाशित किया है। पूर्ण आशा है कि पाठक इसे पढकर वैदिक धर्म की मांसभक्षण के विषय की संमति निश्चित करेंगे।

जो जो पाठक इस विषय की शंका अपने मनमें रखते हैं अथवा जो युरोपीयनों की संमति मानते या जानते हैं उनको उचित है कि वे अपना मत अति शीघ्र हमारे पास लिखकर भेजें ताकि हम उन सबका विचार शेष लेखमें कर सकें।

यह धर्मका विषय है, यहां छिपानेकी आवश्यकता नहीं। यदि वैदिकधर्म गोमांसभक्षण की आज्ञा देता होगा तो हम वैसा कह देंगे, परंतु इस समय जो जो प्रमाण हमारे पास आगये हैं उन सबसे हमारा निश्चित मत यह हुआ है कि वैदिकधर्मके अनुसार गौ अवध्य है और मांस (मद्य, जूआ और व्यभिचार इन चार पातकों) से मनुष्यको दूर रखनेका ही वेदका स्पष्ट आदेश है। इस लिये अनुकूल या प्रतिकूल जो भी संमति पाठक रखते हैं उससे हमें सूचित करें ताकि आगेका लेख शीघ्रही पूर्ण किया जाय।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
संपादक-वैदिकधर्म।

संस्कृत पाठ माला।

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है।]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ· से ३) और वी. पी: से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति !

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है।

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक. लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

५ एकादश भाग।

इस भागमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासों का विचार किया है॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके६ भाग।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौवसिवे भागतकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

गौका महत्त्व।

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥

यजुर्वेद० २३। ४८

(१) सूर्यके समान (ब्रह्म) ज्ञान तेजस्वी है, (२) द्युलोक समुद्रके समान सरोवर है, (३) इन्द्र पृथ्वीसे भी बहुत बडा है, परंतु (४) " गौके लिये कोई उपमा ही नहीं है। '

सूर्य, द्युलोक और पृथ्वी इनकी महत्ता बहुत बडी है, तथापि उनके साथ तुलना हो सकती है, जैसी - ज्ञानकी तुलना सूर्यके प्रकाशसे की जाती है, समुद्रकी उपमा द्युलोक को दी जाती है और यद्यपि पृथ्वी बहुत बडी है तथापि इन्द्र उस पृथ्वीसे बहुत बडा है, क्यों कि उसीकी शक्ति मेघोंद्वारा पृथ्वीको सहायता करती है। इस लिये सूर्य, द्युलोक और पृथ्वी ये पदार्थ बडे होनेपर भी निरुपमेय नहीं हैं; परंतु हम कह सकते हैं कि "गौ ही एक ऐसी है जिसके लिये कोई उपमा नहीं," न उनके सदृश कोई अन्य वस्तु है; क्यों कि अकेली गौ मनुष्यका जितना हित करती है उतना किसी अन्यसे नहीं होता, इस लिये गौके लिये कोई उपमा नहीं है। अर्थात् उनके उपकार मानव जातीपर अनंत हैं।

गोमांस भक्षण की प्रथा ।

(१) म० वैद्यजीका मत ।

कुच्छ सप्ताह व्यतीत हुए " यंग इंडिया " पत्रमें श्री० म० चिंतामणराव वैद्यजीका गोरक्षण के विषय-पर एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने लिखा था कि " प्राचीन कालमें इस भारत भूमिमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी, वैदिक जमानेमें ऋषि लोग यज्ञ यागोंमें गोमांस का उपयोग करते थे, इतनाही नहीं प्रत्युत प्रात्यहिक क्षुधा शमन के लिये भी गोमांस का उपयोग होता था। "

श्री० महात्मा गांधीजीने इस लेख को जनताके सन्मुख रखने के अवसर में स्पष्ट शब्दोंसे लिखा था कि " श्री० वैद्यजीका यह विधान कई लोग आक्षे-पणीय समझेंगे; परंतु अतिप्राचीन कालमें लोग क्या करते थे और क्या नहीं इसके विवादमें हमें अपना समय खो देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि आज हम गोरक्षा किस युक्तिसे कर सकते हैं, यही इस समय हमें देखना है। "

अतिप्राचीन वैदिक कालकी प्रथा हमारे इस समयके लिये घातक सिद्ध हुई तो उसी प्रथाको स्वीकार करनेका आग्रह कोई नहीं करेगा; वेदने यदि "अग्नि शीत है" ऐसा कहा तो हम उस वेदा-ज्ञाको कदापि नहीं मानेंगे, ऐसा जो श्री शंकरा-चार्यजीने कहा है वह इस विषयमें भी सत्य है। केवल किसी बातकी प्राचीनता उसकी उत्तमताको सिद्ध नहीं कर सकती, अतः हम कह सकते हैं कि यदि वैदिक जमानेमें लोग गोमांस भक्षण करते थे ऐसा सिद्ध हुआ, तो उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि आज भी हमें गोमांस भक्षण करना आवश्यक है। कई बातें ऐसीं हैं कि जो वैदिक जमानेमें प्रचलित थीं, परंतु इस समय उनका प्रचार नहीं है। इतना होनेपर भी चूंकि हमारा धार्मिक संबंध ऋषिकाल-के तथा वैदिक कालके आचारसे घनिष्ट रूपमें है, इसलिये हमें देखना चाहिये कि क्या सचमुच वैदिक कालके ऋषिमुनी गोमांस भक्षण करते थे या नहीं। इतिहासिक खोजकी दृष्टीसे इसका विचार हमें करना चाहिये, धार्मिक अंध विश्वास को एक ओर रखकर केवल इतिहासिक सत्य तत्त्व देखनेके लिये ही यह खोज हमें करनी चाहिये। क्यों कि गोमांस भक्षण की प्रथाका प्राचीन कालमें अस्तित्व सिद्ध करेगा कि गौका पावित्र्य नवीन है, यदि अतिप्राचीन कालसे गौकी इतनी पवित्रता होती तो उसको काटकर खाने की संभावना कष्टसे मानने योग्य बनेगी। अतः हमें देखना चाहिये कि वैदिक समय में गोमांस भक्षण की प्रथा थी या नहीं।

(२) डा० मुंजेजी का मत ।

इसी समय और एक बात हुई जिसके कारण इसलेख को लिखनेकी अत्यंत आवश्यकता प्रतीत हुई, वह बात यह है कि अखिल हिंदू महासभाके अध्यक्ष और बडे उत्साही कार्यवाह नागपूर के सुप्रसिद्ध डाक्तर मुंजे महोदयजीने अपना यह मत प्रकाशित किया कि हिंदुमात्रको मांसभोजन करके हृष्ट पुष्ट होना चाहिये। जबसे हिंदू जातीने मांसभोजन छोड दिया और जैन बौद्धोंका अहिंसावाद अपनाया तबसे हिंदुजातीका शक्तिपात हुआ। इसलिये भविष्य कालमें अपनी जातीमें बल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो मांसभोजन करना आवश्यक है।

डाक्तर मुंजे महोदयजीने केवल मांसभोजन कर-नेकी ओर लोगोंको प्रेरा था; इतनेमें श्री. वैद्यजीका

लेख प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने वैदिक कालमें गोमांसभक्षणकी प्रथा होनेकी बात लिख दी। अब यदि कोई मनुष्य दोनों महाशयोंके मतोंका संगतिकरण करेगा, तो उसका फल यही निकल आवेगा कि भारत वर्षमें जबतक गोमांसभक्षण जारी था, तबतक के आर्य विजयशाली थे और जबसे अहिंसा मत प्रचलित हुआ तबसे इनका वैभव कम होने लगा।

हमें पूरा विश्वास है कि डाक्तर मुंजे और श्री. वैद्यजीके मत एकदूसरेकी पुष्टीके लिये नहीं लिखे गये हैं और उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारसेही अपनी स्वतंत्र संमतियां प्रकाशित की हैं; तथापि उन दोनों मतोंका करीब एक समय में प्रकाशित होना लोगोंको गोमांस भक्षणके प्रलोभनमें डाल सकेगा, इस लिये यह लेख विस्तारसे लिखना आवश्यक हुआ है।

श्री. वैद्यजीका उक्त मत जिस समय हमने देखा उस समय योगप्रदीपिकाका एक श्लोक हमारे सन्मुख उपस्थित हुआ। वह श्लोक यह है-

(३) योगमें गोमांस।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः।
हठयोगप्रदीपिका।

" नित्य गोमांस भक्षण करें और अमरवारुणी-मद्य-का पान करें, उसी को मैं कुलीन मानता हूं, इतर लोग कुलघातकी हैं। "

अर्थात् गोमांसभक्षण और मद्यपान करनेवाले लोग कुलीन और अन्य लोग कुलघातक हैं। यदि यह श्लोक किसीके सन्मुख आया, तो वह मनुष्य यही समझेगा कि योगशास्त्र ऐसे वाम मार्गका प्रचार करता है और योगियोंके मतसे गोमांस भक्षण और मद्यपान आवश्यक और धर्म्य बात है। श्लोक का अर्थ स्पष्ट है और जिस कारण उस ग्रंथमें यह श्लोक है, उस कारण उस ग्रंथका यह मत है, ऐसा कहनेमें कोई हानि नहीं। परंतु यहां विचार की बात यह है कि, योगग्रंथमें यह श्लोक है इस लिये योगके संकेतानुसार ही इसका अर्थ होना उचित है, कोशोंके अन्य अर्थ चाहे कुच्छ हों, यदि वे अर्थ योगशास्त्रकी परिपाठीके अनुकूल न हों तो ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकते। योगमें "गोमांसभक्षण" संज्ञाकी एक क्रिया है, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें देखिये—

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्॥
हठयोग प्रदीपिका।

" गो शब्दका अर्थ है जिह्वा, उसका प्रवेश तालु-स्थानमें करना, इसको योगप्रणालीके अनुसार गोमांस भक्षण नाम है।" इसी प्रकार " अमरवारुणी " नाम मस्तिष्ककी एक ग्रंथी के रस का है।

हरएक शास्त्रमें अपनी अपनी विशेष संज्ञाएं होती हैं। उनका अर्थ-निश्चय उनकी प्रणाली के अनुसार ही करना चाहिये। उनकी प्रणाली न देखी तो अर्थ का अनर्थ होने में देरी नहीं लगेगी। उक्त स्थानमें जिस प्रकार " गोमांस भक्षण " यह संज्ञा योग की एक विशेष क्रियाको है उसी प्रकार कई अन्य संज्ञाएं हैं कि जिनके कारण लोगोंको मांस भक्षण की प्रथा प्राचीन कालमें थी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है।

(४) प्रकरणानुकूल अर्थविचार।

ऐसे स्थानपर विचार इस बात का करना चाहिये कि यह शास्त्र कौनसा है, इसके महा सिद्धांत क्या हैं, उन महा सिद्धांतोंके अनुकूल यह अर्थ है वा नहीं, यदि अनुकूल हो तोही अर्थ सत्य होगा अन्यथा असत्य होगा। अब पूर्व लिखे गोमांस भक्षणवाले श्लोक के विषय में देखिये।

(१) यह श्लोक योग शास्त्र का है,

(२) योगशास्त्र प्रारंभसे ही " अहिंसा, सत्य, अस्तेय " आदि यमनियमोंका उपदेश करता है,

(३) इस लिये इस शास्त्र में आये " गोमांस भक्षण " का अर्थ अहिंसापरक ही होना चाहिये, जो हमने ऊपर बताया ही है।

जो शास्त्र प्रारंभ में अहिंसा का उपदेश करता है उस शास्त्रमें आगे स्वमतव्याघात की बात कभी नहीं आ सकती। चूं कि किसीभी योगशास्त्र में

हिंसा के अनुकूल आज्ञा नहीं है और संपूर्ण योग शास्त्रके ग्रंथ एक मतसे कायिक, वाचिक, मानसिक, शाब्दिक परिपूर्ण अहिंसा का उपदेश कर रहे हैं, इसलिये पूर्वोक्त "गोमांस भक्षण" वाले श्लोक का अर्थ भी कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसाके साथ युक्तियुक्त ही करना चाहिये। अन्यथा स्वकीय तंत्रसिद्धांतकी हानि होगी।

इसको कहते हैं कि 'प्रकरणानुकूल अर्थ करना।' ग्रंथ क्या है, प्रकरण क्या है, उसका सर्व तंत्र महा-सिद्धांत क्या है यह देखकर ही हमें वाक्योंका अर्थ करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो संस्कृत ग्रंथोंके शब्दोंके अर्थोंका अनर्थ होना कोई असंभव बात नहीं है। क्यों कि संस्कृतमें प्रायः योग रूढिके शब्द होते हैं और पूर्व योग से उनका अर्थ सुगमतासे बदला जाता है। इसलिये संस्कृत ग्रंथ पढनेके समय हमें इस पूर्वापर प्रकरणके संबंधका अवश्य ही ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये।

(५) ऋषिपंचमी।

क्या ऐसा विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि वेदके मंत्रोंसे गोमांस भक्षण की प्रथा सिद्ध होती है? जैसा कि श्री० वैद्यजीने लिखा है? हमारे विचार से नहीं, गोमांस भक्षण की तो क्या, परंतु मांस भक्षण की प्रथा भी अति प्राचीन नहीं है। ऋषि-काल का या वैदिक काल का भोजन बतानेवाला एक तेहवार हिंदुओं में इस समय में भी प्रचलित है, जिसको "ऋषिपंचमी" कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन यह तेहवार आता है। प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष में यह मनाया जाता है। इस दिन कोई मांसभोजन नहीं करते, इतनाही नहीं, परंतु खेतमें तयार हुआ अन्नभी नहीं खाते। जो अन्न 'अकृष्टपच्य" होता है अर्थात् कृषिसे उत्पन्न नहीं होता, हातसे भूमि खोदकर उसमें हाथसे बोये हुए कुछ विशेष निरशनके अनाज कंद मूल पत्ते और फल जो केवल हाथके प्रयत्नसे उत्पन्न होते हैं, वेही खाये जाते हैं। अर्थात् यह तेहवार उस समय का ऋषियोंका अन्न हमें बताता है कि जिस समय ऋषिलोग हल भी नहीं चलाते थे, प्रत्युत किसी साधारण रीतिसे जमीन खोद खोदकर उसमें थोडासा अन्न उपजाते थे। बैलोंके द्वारा बडे हल चलाकर चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्योंकी उत्पत्ति होनेके भी पूर्वकालकी स्मृति हमें इस तेहवार से मिलती है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य आजकल के हमारे भोजनका प्रधान अंग हैं, इसका नाम "कृष्टपच्य अन्न" है। इस प्रकारकी कृषि प्रारंभ होनेके पूर्व और बडे हल उपयोगमें आनेके पूर्व लोग कंद, मूल, फल, पत्ते और कृषिसे उत्पन्न न हुआ तृणधान्य खाते थे, नमक भी उस समय उपयोग में नहीं था।

इस दिन के भोजनके विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है—

> शाकाहारस्तु कर्तव्यः श्यामाकाहार एव वा।
> नीवारैर्वाऽपि कर्तव्यः कृष्टपच्यं न भक्षयेत्॥

"इस दिन शाकाहार करना चाहिये, अथवा श्यामाक धान्य खावें, किंवा तृण धान्य नीवार आदि (जो घास से उत्पन्न होता है) खाया जावे, परंतु खेतीसे उत्पन्न अन्न न खाया जावे।"

जहां खेतीके धान्य खानेका निषेध होगा वहां मांसके खाने की संभावना कहां होगी। अर्थात् तृण धान्य खानेकी प्रथा खेतीके धान्यके प्रथाके पूर्व समयकी है इसमें कोई संदेह नहीं है। और यदि मांसाहार अति प्राचीन होता तो इस दिन अवश्य किया जाता, जिस कारण इस दिन मांसाहार नहीं किया जाता और न उसका प्रतिनिधि उपयोग में आता है, उस कारण हम कह सकते हैं कि मांसाहार आर्य वंशजों में जो घुसा है वह तीसरी अवस्थामें घुसा है। (१) पहिली अवस्था=अकृष्ट-पच्य तृणधान्य, फलमूल, कंदमूल पत्ते आदि का भोजन. (२) दूसरी अवस्था=कृष्टपच्य गेहूं, चावल आदि भोजन, (३) तीसरी अवस्था=पूर्वोक्त भोजन में मांसके घुसनेकी है।

इस दृष्टीसे ऋषी पंचमीका तेहवार हमें अति प्राचीन ऋषिभोजन की प्रथा शाकाहारके होनेकी सूचना देता है।

यदि म. चिंतामणराव वैद्य इस ऋषिपंचमीके "ऋषि भोजन" का विचार करेंगे, तो उनको पता

लग जायगा, कि ऋषियों का भोजन क्या था। प्राचीन कालकी प्रथा हिंदुओंके शुभ दिवसोंमें आज भी आचारमें आती है। एकादशी, शिवरात्री, आदि तिथियोंमें; सोम,मंगल,गुरु, रवि आदि वारोंके दिन जो लोग उपवास करते हैं तथा अन्यान्य पवित्र माने हुए दिनों में निरशन का माना हुआ जो आहार है, उसमें भी कंद, मूल, फल, पत्ते और वन्य अकृष्ट-पच्य अनाज ही होता है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य उपवास के दिन इस लिये नहीं खाते कि यह नवीन अन्न है। चावल, गेहूं आदि धान्य खाने की प्रथा नवीन और अकृष्टपच्य कंदमूल, पत्ते आदि खानेकी प्रथा प्राचीन ऋषि लोगोंकी थी इस विषय में अब किसीको संदेह नहीं हो सकता। प्राचीन आचार की खोज करनेके समयमें भारतीय हिंदुओं के शुभदिवसोंके आचार हमें बडा ज्ञान दे सकते हैं। जिस समय गेहूं चावल आदि नवीन धान्य प्रचार में आ गया उस समय कंदमूलादि ऋषि भोजन पवित्र दिवसों केलिये रखा गया। इस प्रकार पुराणी प्रथा और नवीन रीतिका मेल यहां दिखाई देता है। शतपथ ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है. जैसा देखिये—

यद्वेवाशितमनशितं तदश्नीयात् ......॥ ९ ॥
......तस्मादारण्यमेवाश्नीयात् ॥ १० ॥

"जो भोजन न खानेके समान होता है वह उपवासके व्रतके दिन खाया जाय, ... वन्य (कंदमूल फल आदि) खाया जाय।"

यह कंद मूल फलका भोजन निरशनका भोजन है अर्थात् व्रत रखनेके दिन यदि कुछ खाना हो तो यह वन्य पदार्थ खाये जांय। शतपथ ब्राह्मण का समय इससे करीब पांच सहस्र वर्षोंका है। उस समय भी आज कल के समान ही उपवासका व्रत होता था और उस दिन आजकलके समान निरशन का भोजन उक्त प्रकार किया जाता था। शतपथ ब्राह्मणके समय चावल गेहूं उडद आदि खेतीसे उपजे धान्य विपुल होने लगे थे और अति प्राचीन ऋषिभोजन व्रतके दिन के लिये ही रखा गया था। इसका विचार करके पाठक जान सकते हैं, कि जो ऋषिभोजन हम ऋषिपंचमीके दिन प्रयत्नसे करते हैं और जिस दिन अरुंधती देवी के साथ वसिष्ठादि सप्तऋषियों का पुण्यस्मरण करते हैं और जो दिन ऋषियों के समान आचार करनेमें व्यतीत करते हैं, उस दिनके व्रतका निरशनका फलाहार शतपथ ब्राह्मण के इतना पुराना तो है ही, परंतु शतपथ ब्राह्मणके समय में भी वह अति प्राचीन बन गया था; अर्थात् शतपथसे भी कई सहस्र वर्षोंका यह ऋषिभोजन होना संभव है। इस प्राचीन ऋषिभोजन में मांस भोजन की बूभी नहीं, कृषिसे उत्पन्न भोजन नहीं, परंतु वनमें स्वभावसे उत्पन्न कंदमूल फल पत्ते और कुछ जंगली धान्य होता है। यदि वैदिक कालके ऋषियों के भोजन में मांस का थोडाभी संबंध होता, तो ऋषिपंचमी के समय के भोजनमें उसका थोडा अंश होता, या उसका कोई प्रतिनिधि भी होता।

(६) मांसका प्रतिनिधि।

"मांस" का प्रतिनिधि "माष, माह या उडद" माना है और जहां "मांसान्न" की आवश्यकता होती है वहां "माषान्न अर्थात् उडद और चावल" का ग्रहण करनेकी स्मार्त पद्धति भी श्री. वैद्यजीको ज्ञात ही होगी। परंतु उक्त ऋषिपंचमीके समय आहार में मांस प्रतिनिधि भी नहीं है। इसलिये हम कहते हैं कि ऋषिपंचमीका भोजन सच्चा ऋषि भोजन है और जो पूर्णरूपसे निर्मांस है। म. वैद्यजी इस ऋषिपंचमी व्रतको अच्छी प्रकार जानते हैं और इसकी गवाहीसे जो सिद्ध हो रहा है उसके खंडन में उनके पास कोई युक्ति नहीं है, यंह हम अच्छी प्रकार जानते हैं, क्योंकि हमें पता है कि वे ऋषि-पंचमी माननेवाले कुटुंबके ही कुटुंबी हैं।

यह ऋषिपंचमी व्रत सप्तऋषियोंके पूज्य स्मरण के लिये किया जाता है और प्रायः संपूर्ण भारत वर्षमें किया जाता है। इसलिये इसकी प्राचीनतामें यत्किंचित भी संदेह नहीं।

यहां दूसरी बात यह है कि आजकल जो जातियां मांस खातीं हैं उन सबमें वर्षमें कुछ दिन निर्मांस

भोजनके होते हैं और प्रायः सभी एक मतसे मानते हैं कि निरामिष भोजन उत्तम है। जगत में चीनी लोग सर्वभक्षक होनेमें सुप्रसिद्ध हैं, परंतु उनमें भी मंदिरोंके पूजापाठी लोग निर्मांस भोजी होते हैं और हिंदुस्थान के निरामिष भोजियोंकी प्रशंसा मुक्तकंठसे वे करते हैं। यही प्रथा मुसलमान और ईसाइयों में भी है। जगत् का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो निरामिष भोजन को बुरा मानता हो और जो व्रतके दिनों में भी निरामिष भोजन का उपदेश न करता हो।

अन्य धर्मोंकी बात छोड दें ऊपर शतपथ ब्राह्मणनें पूर्वोक्त स्थानमें उपवास के व्रतके समय वन्य कंदमूलफलही खानेको कहा है। हिंदुओंमें मांस भोजी हिंदु प्रायः श्रावणमास में मांस नहीं खाते, एकादशी आदि दिनोंमें नहीं खाते। परंतु इन दिनोंमें ऋषि अन्न खाते हैं, कई लोग हविष्यान्न खाते हैं। इस का तात्पर्य यह है कि भोजन में चावल गेहूं आदि आगये, मांस भी घुस गया, तो ऐसे समयमें अति प्राचीन कालका ऋषि भोजन पवित्र दिनों के लिये रखा गया है। इससे प्राचीन ऋषि भोजन सहज प्राप्त निरामिष वन्य फलभोज ही था इसका स्पष्ट पता लगता है।

इस समय तक जो आचार व्यवहार चला आया है उसका विचार करनेसे जो ऋषिभोजन का पता हमें चलता है वह यही है कि ऋषि निरामिष भोजी थे और अति प्राचीन वैदिक समयमें निरामिष भोजन ही प्रचलित था।

१ अति प्राचीन ऋषि भोजन = कंद, मूल, फल और वन्य सहज उत्पन्न आरण्यक तृणधान।

२ उसके बाद का भोजन = गेहूं, चावल, उडद आदि धान्य, (इस द्वितीय समयमें प्राचीन वन्य भोजन व्रतके लिये ही रखा गया था।)

३ तीसरे समय का भोजन = इस समय पूर्वोक्त भोजनमें मांस घुस गया था, (तथापि अति प्राचीन काल के ऋष्यन्न की श्रेष्ठता सर्वमान्य होनेसे व्रतादिके दिनोंमें द्वितीय और तृतीय समयके भोजन निषिद्ध माने गये।

इससे यदि कुछ सिद्ध हो सकता है तो यही सिद्ध होता सकता है कि मांसभोजन उस समय शुरू हुआ जिस समय आर्य लोग पतन के मार्ग में झुक गये थे। प्राचीन ऋषि कालमें आर्य लोग निरामिष भोजी ही थे।

(७) उत्क्रांतिवाद।

यदि उत्क्रांति का वाद सत्य है और यदि मनुष्यका शरीर वानर के शरीरसे उत्क्रांत हुआ है, तो यह बात निःसंदेह माननी पडेगी कि मनुष्य प्रारंभिक अवस्थामें निरामिष भोजी ही था। क्यों कि बंदर फलभोजी ही हैं। वे वृक्षोंके फल, पत्ते आदि खाते हैं। इसलिये मनुष्य स्वभावतः मांसभोजी नहीं है। जब वह जीवन कलहमें आता है और फलभोज असंभव हो जानेकी अवस्था प्राप्त होती है तब वह दूसरेको मारकर उसका मांस खाता है। इसलिये हम कैसे कह सकते हैं कि आदि वैदिक कालमें ऋषिलोग मांस और विशेषकर गोमांस खाते थे। यदि वैदिक समय मानव जातीका प्रथम अवसर है तो उस समय मानना पडेगा कि मनुष्य फल भोजी ही थे। जैसा कि हम देख आये हैं कि ऋषिपंचमी के व्रतका अन्न केवल कंदमूलफल ही है। वही ठीक प्रतीत होता है।

(८) सारस्वत ब्राह्मणोंकी ग्वाही।

आजकल ब्राह्मणोंमें सारस्वत नामके ब्राह्मण हैं। जिनके इतिहासमें लिखा है कि ये सरस्वती नदीके तीर पर रहते थे। अति प्राचीन समयमें बडा

अकाल पडा और कई वर्ष बिलकुल वृष्टि नहीं हुई और कुछभी फलफूल, कंदमूल, धान्य आदि कुछभी मिलना असंभव हुआ । उस समय सरस्वती नदी के तटपर रहनेवाले ब्राह्मणोंने नदीमें प्राप्त होनेवाली मछलियां खाकर जीव का धारण किया । बहुतदिन मछलियों के भोजनके स्वाद का अभ्यास होनेसे आगे सारस्वत ब्राह्मणों को वही जिह्वालौल्य का अभ्यास रखने की वृद्धि हो गई । इस से ब्राह्मणों में सारस्वत ब्राह्मणही मछलि खाते हैं, अन्य ब्राह्मण नहीं खाते । यदि यह सारस्वतों का इतिहास सत्य है तो मानना पडता है कि प्राचीन ऋषिकाल में येभी शाकाभोजी थे परंतु जीवनकलह में पड जानेके कारण इनको मांसभोजन स्वीकारना पडा । इससे हमारा पूर्व लिखा मतही पुष्ट हुआ कि वैदिक काल के आदि आर्य शाकाहारी ही थे, पश्चात् उनमेंसे कई जातियां बहुत समय व्यतीत होनेपर मांसभोजी बनी । इसी कारण इस समय में भी कई आर्य जातियां शुद्ध निरामिष भोजी हैं और कई आमिष भोजी हैं। थोडीसी ब्राह्मण जातियां सारस्वतों के समान अंशतः मांसाहारी हुई, कुछ क्षत्रिय जातियां युद्धादि कारणसे मांस खाने लगीं; परंतु बहुत सी ब्राह्मण जातियां और पूर्ण रीतिसे वैश्य जातियां इस समय तक निरामिष भोजी ही हैं। और सब जातियां शाक-भोज को पवित्र भोजन मानती हैं ।

इस रीतिसे सामान्यतया मांसभोजनका विचार करनेसे पता चलता है कि आदिकाल में अर्थात् वैदिक काल में रहनेवाले ऋषिलोग फलभोजी थे, उसके पश्चात् धान्यभोज शुरू हुआ; पश्चात् अकालादि तथा युद्धादि आपत्तियों के वारंवार आनेके कारण कई आर्य जातियां जो ऐसी आपत्तियों में फंसी, मांसाहारी बन गई । अर्थात् वैदिक कालमें मांसभोजन की शिष्टसंमत प्रथा नहीं थी, फिर गोमांस भक्षण की प्रथा तो दूर की बात है ।

(९) वेदका महासिद्धांत ।

वेद का महासिद्धांत संपूर्ण भूतों को मित्र दृष्टिसे देखना है, इस लिये हम कह सकते हैं कि जो संपूर्ण प्राणियोंको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखते हैं वे अपने पेटके लिये उनका घात कैसा कर सकते हैं? मित्रकी प्रेमदृष्टि तो अपना प्राण दूसरोंके लिये अर्पण करायेगी, कभी ऐसा नहीं हो सकता है कि जिसपर प्रेम करना है उसीको अपने पेटके लिये काटा जाय । देखिये वेद का महासिद्धांत-

(१) मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
(२) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
(३) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

वा. यजु. ३६ । १८

(४) मित्रस्य वच्चक्षुषा समीक्षध्वम् ।

य. मैत्रायणी सं० ४।९।२७

"(१) मित्रकी दृष्टिसे मुझे सब प्राणि देखें,
(२) मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखता हूं,
(३) हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टीसे देखेंगे,
(४) मित्रकी समान दृष्टिसे सब को देखो ।"

यह वेदाज्ञा है । यहां केवल मनुष्योंको ही मित्र दृष्टीसे देखने का उपदेश नहीं है प्रत्युत संपूर्ण प्राणि-मात्रको मित्र दृष्टीसे देखनेका उपदेश है । तो क्या अपने मित्र कोही अपने पेटके लिये मारना है? यदि मारना है तो मित्र दृष्टी किस काम की? अर्थात् इस वैदिक महासिद्धांत को माननेवाले वैदिक लोग सबभूतों सब प्राणियोंको मित्र दृष्टिसे देखेंगे और उनको काटकर खानेकी बात को स्वीकारेंगे नहीं । इसलिये मानना पडेगा कि किसी बाह्य कारणसे आर्यवंशजोंमें मांसभोजन घुसा है । आर्योंका स्वाभाविक अन्न शाकाहार ही है ।

(१०) यज्ञकी ग्वाही ।

यज्ञमें मांस प्रयोग होना चाहिये या नहीं यह बात भिन्न है । हमारा मत है कि यज्ञ निर्मांस ही होते थे, परंतु कुछ समय के लिये प्रचलित समांस यज्ञों का ही विचार किया जाय तो पता लगेगा कि आज कलकी यज्ञकी वेदी के दो भेद हैं—

१ पूर्व वेदी और
२ उत्तर वेदी,

पूर्व वेदी में कई वेदियां हैं जिनमें केवल धान्यका ही हवन होता है और कभी मांस का संबंध नहीं आता। केवल इस " उत्तर वेदी "में मांसका हवन होता है। यदि ये वेदी शब्द के विशेषण रूप " पूर्व और उत्तर " ये दो शब्द " पूर्वकाल और उत्तर काल " के वाचक मान लिये जांय, तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व (कालकी) वेदी में केवल धान्य-हवन ही किया जाता था, और उत्तर (कालकी) वेदी में आगे मांस हवन होने लगा।

जिसमें आजकल मांसका हवन किया जाता है उस वेदीका नाम " उत्तर वेदी " ही है। उत्तर वेदी का अर्थ स्पष्ट रूपसे यही है कि " उत्तर समय में प्रचलित हुई वेदी " अर्थात् पूर्वकालमें यज्ञमें यह वेदी ही नहीं थी। जो वेदियां पूर्वकालमें थी वह " पूर्व वेदीयां " इस समयमें भी हैं। पूर्ववेदियोंमें शुद्ध धान्यका ही हवन होता है और उत्तर वेदीपर मांसका हवन होता है। इतनाही नहीं परंतु पहिले वेदियोंका धान्यहवन पूर्णतासे समाप्त करनेके पश्चात् ही इस मांसवेदीके कार्य को प्रारंभ होता है। यज्ञ के पहिले दोचार दिनों में कभी मांस हवन नहीं होता, केवल धान्य हवन होता है, यज्ञके पश्चात्के दिनों में उत्तर वेदीमें ही मांसहवन करते हैं।

इससे स्पष्ट सिद्धहोता है कि अति प्राचीन कालका यज्ञ पूर्व वेदियोंसे बताया जाता है जिसमें धान्य हवन ही है। और पश्चात् के समयका हवन उत्तर वेदीके मांस हवनसे बताया जाता है। यदि ब्राह्मण ग्रंथोंके समय ये समांस यज्ञ प्रचलित थे, ऐसा किसी को मानना हो, तो उसको यह बात अवश्य माननी पडेगी कि इससे पूर्वकाल में वह प्रथा न थी और उस समय निर्मांस यज्ञ ही प्रचलित थे।

पाठक ऋषिपंचमी के दिनका पूर्वोक्त भोजन और इस यज्ञ के पूर्व (समय में प्रचलित)वेदीपर होनेवाला धान्यहवन इन दोनों बातोंकी संगति लगा कर देखें, तो उनको वैदिक कालमें निर्मांस भोजन होनेका निःसंदेह निश्चय हो जायगा।

११ मधुपर्क।

कइयों का कथन है कि मधुपर्क विधि वैदिक है और उसमें ' मांस''आवश्यक है। परंतु ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें " मधुपर्क " शब्द ही नहीं है, ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी यह शब्द नहीं है। केवल अथर्ववेद संहितामें एकवार मधुपर्क शब्द आगया है। वह मंत्र यह है—

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः।

अथर्व. १०।३।२१

" जैसा यश सोमपानमें और जैसा मधुपर्कमें है वैसा मुझे प्राप्त हो। " वेदकी चारों संहिताओंमें मधुपर्क विषयक इतनाही उल्लेख है, इसलिये मधुपर्क में वैदिक रीतिसे क्या होना चाहिये और क्या नहीं इसका पता नहीं लग सकता। परंतु इतना सत्य है कि मधुपर्क में मांस अवश्य है ऐसा जिनका पक्ष होगा उनके मतकी सिद्धि वैदिक मंत्रोंसे नहीं हो सकती। ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथोंतक किसी भी ग्रंथमें मधुपर्कका इससे अधिक उल्लेख नहीं है। अतः " वेदके मधुपर्क में मांसकी आवश्यकता है " यह बात वैदिक प्रमाणोंसे सिद्ध होना असंभव है।

यद्यपि वेदोंमें अन्यत्र मधुपर्क शब्दही नहीं है तथापि " मधुपेय ' शब्द है, यह भी इसके समानार्थक माना जा सकता है। यह एक उत्तम मधुर अर्थात् " मीठा पेय " है ऐसा निम्नलिखित मंत्र से प्रतीत होता है-

वृषाऽसि देवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिंधूनां
वृषभस्तियानाम्। वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय
स्वादू रसो मधुपेयो वराय॥

ऋग्वेद ६।४४।२१

इस मंत्रके अंतिम भागमें " स्वादूरसो मधुपेयः " ऐसे शब्द हैं इनका अर्थ " मीठा रस मधुपेय " है। परंतु यह कोई स्वतंत्र पेय नहीं है, यह सोमरस ही है जिसका सूचक " इन्दु " शब्द इसी मंत्र में है। इस मंत्रमें " वृषा, वृषभ " ये बैलवाचक शब्द हैं।

इनके देखनेसे कईयोंने मधुपेयमें बैल के मांसकी कल्पना की होगी। परंतु यह मंत्र " इंद्र " देवता की प्रशंसापर है और इसका शब्दार्थ " हे इन्द्र

देव ! तू पृथिवी, द्युलोक, नदियां, स्थावर जंगम पदार्थ आदिको बल देनेवाला है, इसलिये इस मधु-पानके समय यहां आओ " यह है । यद्यपि आंग्रेजी भाषांतर में मि. ग्रिफिथने ' Thou art the Bull of earth, the Bull of heavan " ऐसे शब्द लिखे हैं तथापि यहांका तात्पर्य बैल नहीं है परंतु " शक्ति देनेवाला " है यह अंग्रेजी शब्दोंके बीचका भाव समझनेवालों को पुनः कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि कोई मनुष्य इस मंत्रमें " वृषा और मधुपेय " ये दो शब्द आगये हैं, इसलिये मधुपेय में बैलके मांस की आवश्यकता है । " ऐसा कहेगा तो वह कथन ऐसा है कि उसकी उपेक्षा ही की जाय। क्यों कि जो बात मंत्रमें नहीं है वह मंत्रके सिर पर मढ देना कोई विद्याकी बात नहीं हो सकती।

इतने विवरणसे यह बात सिद्ध हुई कि वेदोंमें मधुपर्क शब्द केवल एक वार अथर्व वेद में आया है और उस मंत्रसे मधुपर्क में मांस की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। मधुपेयमें भी मांसकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि मधुपेय यह सोमवल्लीके रससे बनाया हुआ मधुर पेय ही है। और उसमें गाय का, बैलका या किसी अन्य जानवर का मांस डाल-नेका विधान किसी स्थानपर भी नहीं है। यज्ञोंमें जो सोमरस आजकल तयार करते हैं उसमें भी मांस या मांसरस या रक्त कभी नहीं डाला जाता । इस से सिद्ध है कि " मधुपेय" में मांसकी आवश्यकता नहीं। तथापि क्षणभर हम " दुर्जन-तोष-न्याय " से मधुपर्क में मांस होनेकी संभावना मानकर क्या आपत्ति आती है यह पाठकों के सन्मुख रख देते हैं-

(१२) अतिथिसत्कारमें मधुपर्क।

प्रायः जहां कहां आधुनिक ग्रंथों में मधुपर्कका उल्लेख है वह अतिथिसत्कार के प्रसंगमें आया है। घरके दैनंदिनीय खाद्यपेय में किसीने मधुपर्क किया, दिया या खाया ऐसा प्रसंग किसी भी ग्रंथ में नहीं है ।

" कोई ऋषि महर्षि किसी राजा के घर आया, द्वारमें ही राजाने उसका आतिथ्य किया, आसनपर बिठलाया, पूजा की, पूजाके बीचमें मधुपर्क के लिये गाय लायी गई, मधुपर्क किया और पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तर होते ही ऋषि वापस चले गये ।"

' दूसरा प्रसंग विवाह के समय होता है, वर विवाह मंडपमें आता है, उसकी पूजा की जाती है और उस समय मधुपर्क दिया जाता है। " यदि यह प्रथा ठीक है तो इसमें मांस भोजन के लिये स्थान ही नहीं है, क्यों कि इस में जो विधि होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

१ अतिथि (या वर का) द्वारपर आना,
२ यजमान (राजा या वरके श्वशुर) का द्वार पर जाना और द्वार पर सत्कार करना,
३ सत्कार के पश्चात् उसका अंदर प्रवेश,
४ आसनपर बिठलाना,
५ पांव धोना, चंदन, इतर, तथा पुष्पमाला आदिका समर्पण करना,
६ गौ लाकर उसका समर्पण करना,
७ मधुपर्क देना, उसने मधुपर्क खाना और हाथ मुख आदि धोना, पश्चात्—
८ पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्नादि करना या आगे का जो कार्य हो वह प्रारंभ करना।

पाठक क्षणभरके लिये मानलें की यहां गोवध करके उसके मांसके साथ मधुपर्क देना अभीष्ट हो तो पशुके देहसे मांस निकाल कर उसको पकाकर खाने योग्य बनाने के लिये आधे या पौने घंटेकी अवधि की कम से कम आवश्यकता होगी, घरमें पहिले बनाया हुआ तो अर्पण करना नहीं है, इस लिये कमसे कम आध घंटेका समय इस विधिमें नहीं है, क्यों कि यह सब विधि एक दूसरेके पीछे ही करने की है, इस कारण मानना पडता है कि दो चार मिनटों में गौ से मधुपर्क बनानेकी कोई विधि अवश्य होगी ।

आतिथ्यपूजा में गौ समर्पण आवश्यक है इसमें संदेह नहीं, परंतु वह काटकर खानेके लिये नहीं है, प्रत्युत ताजा ताजा दूध दुह कर उस अतिथिको देनेके लिये ही है। यदि पाठक पूर्वोक्त मधुपर्क विधिका विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा

के पूजामें ही गौ लाकर उसका दूध निकाल कर गर्म गर्म ही अतिथिको पिलाना पांच मिनिटों में भी संभवनीय है । वैदिक काल में " वशा गौ " प्रसिद्ध थीं । ये गौवें दिनमें जितनीवार चाहे दूध देती थीं, और जो चाहे उनका दूध निकाल सकता था । इसीलिये इनको " माता " कहा जाता था । जिस प्रकार बच्चा माताके पास जाता है उसी प्रकार लोग " वशा गौ " के पास जाते थे। यहां यह वैदिक समय की रीति ध्यानसे देखनी चाहिये ।

अब मधुपर्कके विषयमें देखिये पूजाके बीचमें गौ लाई जाती है, वहां का वहां उससे दूध निकाला जाता है । गर्म गर्म अतिथिके सन्मुख प्रेमसे रखा जाता है, साथ साथ दही, घी, मधु, मिश्री ये चार पदार्थ भी दिये जाते हैं-मधुपर्क के लिये इन पांच पदार्थों की आवश्यकता है दूध, दही, घी, मधु (शहद), मिश्री इन पांच पदार्थोंका मिलकर नाम मधुपर्क है । दही-घी-मधु-मिश्री ये चार पदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही हैं, (आजकल के बीसवी सदीके यूरोपीय सभ्यतासे रंगे हुए, घरमें चा रखनेवाले पाठक क्षमा करें, उनके घरोंमें ये ही चीजें दुष्प्राप्य होंगी यह हमें पता है) वैदिक कालमें उक्तपदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही थे। अतिथि आतेही ताजा दूध दोहकर साथ उसके उक्त पदार्थ एक कटोरीमें- सुवर्ण की कटोरी में-मिलाकर रखे जाते थे। अतिथि सुवर्ण चमस से या अपनी अंगुलियों से उक्त मधुपर्क खाता था और उसपर ताजा दूध पीता था । आजकल इस वैदिक मधुपर्क के स्थानपर चा आ बैठा है वह भारतियों को दूध पीनेकी आज्ञा देता नहीं है !!! अस्तु ।

दधिसर्पिः पयः क्षौद्रं सिता चैतैश्च पंचभिः
प्रोच्यते मधुपर्कः।

" दही, घी, दूध, मध (शहद), मिश्री इन पांचों का मधुपर्क होता है । " दूध के स्थानपर दूधके अभावमें पानी भी आजकल बर्ता जाता है! पाठक विचार करें कि ऐसे पवित्र मधुपर्क में मांस की संभावना कैसी हो सकती है ।

(१३) और आपत्ति ।

हमें स्वयं इस बात का पूरा पता नहीं है क्यों कि हमारे घराने में किसीने भी कभी मांसका स्वाद लिया नहीं है, केवल शाक भोज ही हम करते हैं। तथापि हमने अपने मांसाहारी परिचितों से मालूम किया जिससे हमें पता लगा कि मांसका कोई पदार्थ मधु (शहद) या मिश्रीसे बनता नहीं । जो भी पदार्थ मांससे बनते हैं सबके सब नमकीन तथा मिरच वाले बनते हैं । यदि यह सत्य बात है तो मधुपर्क मांसके साथ कैसे बन सकता है ? क्यों कि यह " मधु-पर्क " है अर्थात् " (मधु) शहदसे (पर्क) मिश्रित मीठा खाद्य है । " शहद या मिश्रीसे मिश्रित करके मांसका कोई पदार्थ बनता नहीं है, मांसका मिश्रण नमकीन मिरच मसालों के साथ बनता है ।

पाठक विचार कर सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि मधुर मीठा पेय-जिसमें मधु और मिश्री मिलाई हो-मांससे बन सकते हैं वा नहीं । इस विषय में यह हमारा कथन भी यदि असत्य सिद्ध हुआ तथापि हमारी कोई हानि नहीं है, क्यों कि मधुपर्क में गोमांस या साधारण मांसका होना वेद मंत्रोंसे सिद्ध नहीं होता, यह हमने इससे पूर्व बताया ही है। इस लिये यह बात सिद्ध होने या न होने पर हमारे सिद्धांतकी स्थिति या अस्थिति निर्भर नहीं है । परंतु इस बातका बोझ उनपर है कि जो कहते हैं कि मधुपर्कमें मांस आवश्यक है । अपना मत वेदमंत्रोंसे सिद्ध करें अन्यथा निर्मांस मधुपर्क वैदिक समयमें होनेका स्वीकार करें ।

कइयोंका कथन है कि चूं कि उत्तर रामचरित नाटकमें आतिथ्य सत्कारमें वसिष्ठके गोमांस खानेका उल्लेख है इसलिये आतिथ्य के समय किये जानेवाले मधुपर्कमें गोमांस अवश्य पडता था । उत्तरराम चरित्रका उल्लेख हम भी जानते हैं, उत्तररामचरित नाटक का काल अति आधुनिक है, उस समयके नाटक लेखकोंका ख्याल होगा कि मधुपर्क में गोमांस आवश्यक है, परंतु क्या नाटक के उल्लेख केलिये

वैदिक समय को जिम्मे वार लिया जा सकता है? नाटक का काल और वैदिक समयमें कितना बडा अंतर है ? क्या यह अंतर कभी भूला जा सकता है ? और नाटक की बातें वेदपर मढनेका प्रयत्न यदि विद्वान लोग करने लगे तो वैसा और दूसरा अनर्थ कौनसा हो सकता है। ऐसे भयंकर अनुमान करने वालोंसे वेदकी रक्षा परमात्माही करे। हमारे ख्यालमें यहां बडा भारी कालविपर्ययदोष (anachronism) है और बडे विद्वानों को ऐसे दोषयुक्त मत प्रकाशित करनेसे पूर्व बडा विचार करना चाहिये। सारांश यह है कि नाटक का वचन वैदिक पद्धतिके सिद्ध करने के लिये प्रमाण मानना अशक्य है।

नाऽमांसो मधुपर्को भवति।

ऐसे सूत्रग्रंथोंके वचन भी तत्कालीन आचारपद्धतिके द्योतक हैं। जिस समय ये सूत्रग्रंथ लिखे गये और ये नाटक रचे गये उस समय मांसका प्रचार होनेसे, या उससे पूर्व कालमें मांसका प्रयोग होनेसे, इन ग्रंथोंमें ऐसे वचन आते हैं। इन वचनोंसे अधिक से अधिक यह सिद्ध हो सकता है कि इन ग्रंथोंके समय या इनके पूर्व कालमें इस प्रकार की प्रथा थी। परंतु इससे वह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि अति अति प्राचीन वैदिक कालमें भी मांसमय मधुपर्क की प्रथा थी अथवा गोमांस भक्षण भी प्रचलित था। यह बात सिद्ध करनेके लिये वेदके छंदोबद्ध मंत्र भागसे ही प्रमाण वचन मिलने चाहिये। किसी दूसरे प्रकारसे यह बात कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

(१४) कलिवर्ज्य प्रकरण।

इनका कथन है कि "कलिवर्ज्य प्रकरण" में "अश्वमेध, गोमेध" आदिका निषेध किया है इसलिये इस निषेध के पूर्व अश्वमेध और गोमेध होता था। और अश्वमेधमें घोडे का मांस और गोमेधमें गायका मांस खाया जाता था।

यहां प्रश्न होता है कि यह कलिवर्ज्य प्रकरण किसने लिखा? और किस ग्रंथमें लिखा है? क्या माननीय प्रमाण ग्रंथमें इस वचन का अस्तित्व है? जो माननीय प्रमाणभूत स्मृतिग्रंथ हैं उनमें यह वचन नहीं है, इसलिये ऐसे कपोलकल्पित प्रकरणसे कोई विशेष प्रबल अनुमान नहीं हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण का समय निश्चित हो जानेसे सब बात स्पष्ट हो जाती है। हमारे विचार से कलिवर्ज्य प्रकरण सात आठसौ वर्ष के अंदर अंदर का है। इसलिये इसके बलसे उसके पूर्वके संपूर्ण भूतकालका नियमन नहीं हो सकता है। यहां भी पूर्वकथित कालविपर्यय दोष आसकता है

इसके अतिरिक्त यदि माना भी जाय कि कलिवर्ज्य प्रकरण में अश्वमेध और गोमेध का निषेध है, इससे अश्वमेध या गोमेध की वैदिक रीतिका पता नहीं लग सकता है। इससे इतना ही सिद्ध हो सकता है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण के लिखे जानेके पूर्व ये यज्ञ प्रचलित थे।

हमने इसी लेख के पूर्व भाग में यज्ञकी गवाही देते हुए बताया ही है कि यज्ञोंमें वेदमंत्रों के समय के यज्ञोंकी अपेक्षा ब्राह्मण और सूत्रग्रंथोंके यज्ञोंमें बहुत गडबड हुआ है। जो बातें मंत्रसंहिताओंके यज्ञोंमें न थी वह बातें उन में आके घुस गई हैं, यह कारण है कि पूर्व वेदी के हवनमें मांस नहीं बर्ता जाता और उत्तर वेदीके हवनमें अर्थात् पीछे घुसे हुए यज्ञ कर्ममें मांस का हवन किया जाता है। यह आज कल की या यज्ञप्रयोग के पुस्तक जिस समय लिखे गये उस समयकी प्रथा है। वैदिक प्रथा तो वह ही है कि जो छंदोबद्ध मंत्र भागमें बताई है। इसलिये हम यहां प्रश्न पूछते हैं कि कौनसे वेदमंत्र से यह बात सिद्ध होती है की वैदिक गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी ? यदि वेदका एकभी मंत्र हो तो उसे सामने करें। प्रमाण के विना माननेके दिन अब गुजर चुके हैं। हमें पता है कि बहुतसे विद्वान इस समय मानते हैं कि गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी। परंतु यहां विद्वान मानते हैं, या अविद्वान मानते हैं, यह प्रश्न नहीं है। वेद मंत्रों में किस बातको प्रमाण वचन मिलते हैं और किस बात को प्रमाण वचन नहीं मिलते। यही प्रश्न यहां है और इसीका विचार हमें करना है।

(१५) बृहदारण्यक का वचन।

बृहदारण्यक में सुप्रजा जनन के प्रकरण में निम्नलिखित वचन है, कहा जाता है कि इसमें बैल या गौके मांस खानेका उल्लेख है। हम पाठकों के विचारार्थ वह वचन यहां धर देते हैं--

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननु ब्रुवीत सर्वमायुरीयादिती माँसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेण वा॥

श-ब्रा १४।७।५।१८; बृ-उ. ६।४।१८

" जिसकी इच्छा हो कि अपना पुत्र बडा पंडित, सभामें जाने वाला, बडा उत्तम वक्ता, सब वेदोंका प्रवचन करनेवाला पूर्णायु हो, तो वह मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें, उक्षा के वा ऋषभ के मांस के साथ पकावें॥ "

यहां " मांसौदन " शब्द है और इसके अंतमें, उक्षा और ऋषभ " ये बैलवाचक शब्द भी हैं। इससे ये लोग अनुमान करते हैं कि गाय या बैलके मांस खाने वाले को चार वेदोंका वक्ता पुत्र उत्पन्न हो सकता है।

यदि यह बात सत्य होती तो सब युरोप में वेदवेत्ता ही लोग निर्माण होते। परंतु वैसा दिखाई नहीं देता; इसलिये इस के अर्थ का विचार करना चाहिये। अर्थका विचार प्रकरणसे ही हो सकता है, इस लिये यह प्रकरण देखिये--

य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १४॥ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिंगलो जायेत द्वौ वेदावनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति दध्यौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्०॥ १५॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १६ ॥ अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १७ ॥

श. ब्रा. १४।७।५।१४-१७; बृ. उ. ६।४।१४-१७

इसका अर्थ यह है-(१) गौर वर्ण पूर्णायु एक वेद जाननेवाले पुत्र की इच्छा हो तो दूध चावल पका कर घी के साथ खावें० ॥ (२) भूरे वर्ण वाले दो वेदोंके जाननेवाले पूर्णायु पुत्र की इच्छा हो तो दही चावल पका कर घी के साथ खावें० ॥ (३) काले वर्ण वाले, लाल नेत्रवाले तीन वेद जानने वाले पुत्र की इच्छा हो तो पानी में पतले चावल पका कर घी के साथ खावें ॥ (४) पुत्री पंडिता और पूर्ण आयुवाली होने की इच्छा हो तो तिल चावलोंकी खिचडी बना कर घीके साथ खावें ॥

इसके बाद का वचन वह है जिसमें मांसका उल्लेख है, यदि चार वेद जाननेवाला, पंडित, वक्ता, दीर्घायु पुत्र होनेकी इच्छा हो तो मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें. मांस बैलका हो। अस्तु। इसका फलित यह है—

एकवेद के ज्ञानी	पुत्रके लिये	दूधचावल	घीसे खावें
दो ,,	,,	दही ,,	,,
तीन ,,	,,	पानी ,,	,,
पंडिता पुत्री	,,	तिल चावल	,,
चार वेद ज्ञानी	,,	गो मांस चावल	,,

एक वेदके लिये दूध चावल बस हैं, दो वेदों के लिये दही चावल पर्याप्त हैं, तीन वेदोंके लिये पतले चावल पानी में पके बस हैं, फिर चार वेदों के लिये एकदम " गोमांस में पके चावल" क्यों आवश्यक हैं ?

यदि बलिष्ठ भोजन की सीढी यहां अभीष्ट होती तो भेड बकरी आदि पशुओंका उल्लेख इस से पूर्व आना आवश्यक था। वह नहीं है इस लिये यहां कुछ पूर्व के अनुकूल ही शाकाहारका पदार्थ

आवश्यक है ऐसा स्पष्ट पता लगता है। यदि भेड बकरी कमसे कम तीसरे स्थानपर गिनी होती तो मांसवालों का पक्ष अटूट होता; परंतु यहां पूर्वापर संबंध शाकाहार का प्रतीत होता है और चौथी सीठीपर एकदम गोमांसपर लेखक कूदपडा है। जहां ब्राह्मणग्रंथों में यज्ञीय पशुओंका उल्लेख है वहां मनुष्य, घोडा, गाय, बकरी, भेड यह क्रम है, भेड बकरी के बाद यज्ञिय पदार्थ धान्य गिना है। इसी क्रमसे यदि इस बृहदारण्यक वचनमें क्रम होता तो शाकभोजी लोगोंका मुंह बंद हो जाता। परंतु यहां तीन वेद तक शाकाहार पर्याप्त माना है और चतुर्थ वेदके लिये एकदम गोमांस आवश्यक माना है, यह बहुत दूर की छलांग है।

जो युरोप के लोग प्रत्येक वेदके "उत्पत्ति का समय अलग अलग मानते हैं उनके लिये यहां एक बडी ही आपत्ति आ जाती है। एक, दो और तीन वेद का तात्पर्य यदि हम ऋग्वेद, ऋग्यजुर्वेद और ऋग्यजुःसामवेद लें, तो इन तीन वेदोंके ज्ञानके समय मांस का कोई नाम तक नहीं, और केवल चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्व वेद के लिये ही गोमांसकी आवश्यकता उक्त वाक्य में बताई है। युरोपीयनों के मतसे ऋग्वेद सबसे पुराना और अथर्व सबसे नवीन है। अर्थात् उनकी हो युक्तिसे वेदत्रयी के लिये दूध चावल या दही चावल बस हैं और नवीन अथर्व वेद के लिये गोमांस आया है। इस से यदि कोई कहे कि वैदिक कालमें भी प्राचीन अर्वाचीन भेद किया जाय, तो प्राचीन वैदिक समयमें मांस न था अर्वाचीन समय में मांस प्रचलित हुआ। युरोपीयनोंकी युक्तियां इस प्रकार उनके ही विरुद्ध होती हैं। हम तो मानते ही हैं कि किसी भी वैदिक कालमें मांस भोजन की प्रथा शिष्ट संमत नहीं थी। परंतु यहां युरोपीयनोंकी मानी हुई बातें मानकर ही उक्त शतपथ के वचन का आशय देखा जाय, तो वह उनके मत के विरुद्ध जाता है और आदि वैदिक काल में मांसभोजन नहीं था यह सिद्ध होता है। परंतु इस विषयको बढाने की हमें आवश्यकता नहीं है; क्यों कि हमें पूर्वापर संबंधसे गोमांसकी आवश्यकता यहां है वा नहीं, यही देखना है। प्रसंग देखनेसे पता लगता है कि यहां मांस की आवश्यकता नहीं है, इसका हेतु यह है—

पूर्वोक्त बृहदारण्यक उपनिषद् के वचन में "औक्षेण वार्षभेण वा" ऐसा अंतिम वचन है। इस वचन में "उक्षा और ऋषभ" ये दो शब्द हैं। संस्कृत में इन दोनों शब्दों का एक ही "बैल" ऐसा अर्थ है। यदि दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है तो बीचके "वा" शब्दकी आवश्यकता क्या है? उपनिषत्कारको "उक्षा" शब्दसे भिन्न पदार्थ बताना है और "ऋषभ" शब्द से भिन्न पदार्थ बताना है। यह भिन्नता वैद्यशास्त्रग्रंथ देखनेसे स्पष्ट हो जाती है—

१ उक्षा = सोम औषधि
२ ऋषभ = ऋषभक"

ये वैद्यक के अर्थ लेने पर ही यहां के "वा" शब्दकी ठीक संगति लग सकती है। ये दोनों औषधियां बलवर्धक, वीर्यउत्पादक और प्रजानिर्माण शक्ति की वृद्धि करनेवाली हैं, वाजीकरण की औषधियों में इनका प्रमुख स्थान है। ऋषभक का वर्णन यह है -

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृंगवत्।
जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ।
भाव प्र० १

"हिमालयपर ऋषभक वनस्पति होती है। यह बैल के सींग के समान आकारवाली होती है, यह बल बढानेवाली और वीर्य बढानेवाली है।" जितने बैल वाचक शब्द हैं उतने सब इस वनस्पतिके वाचक हैं। उक्षा का अर्थ सोम है यह बात हरएक कोशमें प्रसिद्ध है। ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न हैं, वीर्यवर्धक हैं, वाजीकरण प्रयोगमें प्रयुक्त होती हैं, इनका स्वतंत्र प्रयोग भी वाजीकरण में किया जाता है।

अब पाठक यहां देखें की तीन वेदों के जानकार पुत्र पैदा करने के लिये, दूधचावल, दहीचावल, पतलेचावल और घी खानेको कहा,

और चार वेद जाननेवाला सभामें विजयी पुत्र पैदा करनेके लिये ऋषभक औषधीके स्वरस के अथवा सोम औषधिके स्वरस के साथ चावल पका कर घीके साथ खानेका उपदेश किया, यह अर्थ प्रकरण के साथ सजता है और मांस में इतनी बडी छलांग मारनेका दोषभी नहीं आता।

मांस शब्द संस्कृत में जिस प्रकार शरीरके मांस का वाचक है, उसी प्रकार फलों के गूदे का वाचक और वनस्पतियोंके घन स्वरस का भी वाचक प्रसिद्ध है। श्री. म. आपटे के कोशमें (The Fleshy part of a fruit) अर्थात् फलका गूदा यह मांस शब्दका अर्थ दिया है । यह अर्थ सब कोशकारों को संमत है । ऋषभक वनस्पति वाजीकरण की औषधि है और वीर्यवर्धक भी है, इसलिये पुत्रोत्पत्ति प्रकरण के साथ यह अर्थ विशेष ही संगत होता है। जिस प्रकार इन औषधियोंका प्रयोग वाजीकरण वीर्यवर्धन आदिमें होता है उस प्रकार मांस या गोमांस का प्रयोग होने की बात आर्यवैद्यक में तो नहीं है ।

इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् अध्यात्म विद्या का ग्रंथ है, इस ग्रंथ द्वारा सर्वात्मभाव, सर्व भूतमें समदृष्टि, सर्वत्र आत्मवद्भाव होने के पश्चात् वह आत्मज्ञानी पुरुष सुप्रजानिर्माण के लिये गौको काटकर उसका मांस स्वयं खायेगा यह असंभव बात है। अध्यात्म ज्ञान होनेके पश्चात् सुप्रजानिर्माण करना तो वैदिकतत्त्वज्ञान की दृष्टिसे अत्यंत महत्त्व की बात है, जन्मसे सुसंस्कारसंपन्न संतान उत्पन्न करनेकी यही रीति है। इसलिये मांसभक्षण जैसे क्रूर व्यवहारकी संभावनाही अध्यात्मज्ञानीके विषय में असंभव प्रतीत होती है। अतः पूर्व स्थल में बताया हुआ वनस्पति विषयक अर्थ ही यहां लेना युक्तियुक्त है ऐसा हमारा विचार है ।

यदि वेदमें गोमांस खानेकी आज्ञा होती तो और बात बन जाती । परंतु वेदमें गौ को इतना पवित्र माना है कि उसको अवध्य ही समझा है । इसलिये गोमांस भक्षण की कल्पना ही वैदिक सिद्धांत के प्रतिकूल सिद्ध हो जाती है । इसलिये इस उपनिषद्वचन का वैदिक धर्मके अनुकूल अर्थ करना हो तो वनस्पति विषयक ही अर्थ करना चाहिये, अन्यथा वह विरुद्धार्थ बन जायगा ।

(१६) गोमेध का विचार ।

बहुत से लोगोंका यह ख्याल है कि वैदिक समय के गोमेध में गायकी हिंसा अवश्य होती थी। कलियुगमें गोमेध करने का कलिवर्ज्य प्रकरणमें कहा प्रतिबंध इसकी सिद्धता के लिये बताते हैं । परंतु ये लोग एक बात बिलकुल भूल जाते हैं कि पार्सी लोगों के जेंदावेस्ता नामक धर्म पुस्तक में जो "गोमेज यज्ञ " वैदिक गोमेध के सदृश है, उसमें गौकी हिंसा बिलकुल नहीं और उनके सोम याग में भी हिंसा नहीं होती, केवल सोमवल्ली के रसका उपयोग किया जाता है। युरोपीयन लोग तुलनात्मक विचार करते हैं, परंतु जिस समय तुलनात्मक विचारसे अहिंसा सिद्ध होती है उस समय उस विचार को वे छोड देते हैं । यदि पार्सियोंका गोमेज गो वध के विना बन सकता है तो वैदिक आर्योंका गोमेध क्यों नहीं बन सकता ?

" मेध " केलिये किसीका घातपात करनेकी आवश्यता बिलकुल नहीं है, उदाहरण के लिये हम " गृहमेध, पितृमेध " शब्द पेश कर सकते हैं। पितृमेधमें जैसा पिताका सत्कार अभीष्ट है और पिताके मांसके हवन की आवश्यकता नहीं होती; गृहमेधमें जिस प्रकार घरके आरोग्यरक्षण की बातों का विचार प्रधान होता है, उसीप्रकार " गोमेध में गौका सत्कार करना और उसके आरोग्यादिका विचार होना स्वाभाविक ही है। मनुभी कहते हैं-

> अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
> होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।
>
> मनुस्मृति

" विद्या पढाना ब्रह्मयज्ञ है, मातापिताओंको संतुष्ट रखना पितृमेध है, होमहवन देव यज्ञ है, कृमि कीटकों के लिये अन्नका समर्पण करना भूतयज्ञ है और नरमेध अतिथिसत्कार है ।

पितृमेध, गृहमेध ये शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार नरमेध,अश्वमेध और गोमेध हैं इतनी प्रसिद्ध बात होनेपर भी म० वैद्य जैसे विद्वान लोग मानते हैं कि गोमेधमें गायका बलि दिया जाता था। इसलिये इस बातका विचार विस्तारसे करना चाहिये—

(१७) यज्ञवाचक नाम।

यज्ञवाचक नामों में "अध्वर" शब्द है इसका अर्थ ही "अ-हिंसा" है, " ध्वर " शब्द हिंसावाचक है उसका निषेध अध्वर शब्दने किया है। यज्ञके नामों में अहिंसा वाचक अध्वर शब्दका होना सिद्ध कर रहा है कि यज्ञ मेध आदिमें किसी भी प्रकार हिंसा होना उचित नहीं है। "मेध" शब्दके तीन अर्थ हैं, "बुद्धिवर्धन, संगति करण और हिंसन" मेध शब्दमें हिंसा की बू है, परंतु " वर्धन और मिलाना " भी है। अर्थात् "गो-मेध" का शब्दार्थ होगा = (१) गोसंवर्धन,(२)गौसंगतिकरण और (३) गोहिंसन। पाठक ही विचार करें कि तीन अर्थों में से गोमेधमें कौन सा अर्थ लिया जा सकता है। अहिंसा वाचक "अध्वर" शब्दके साहचर्यसे गोहिंसन अर्थ एकतर्फ करना ही पडता है और शेष दो अर्थ स्थानपर रह जाते हैं। गौकी पालना, गौओंको बढाना और गौसे अच्छे बच्चे पैदा करना " Cow Breading " का तात्पर्य यहां गोसंगतिकरणसे है। गोमेधमें ये सब बातें आती हैं और गोवध नहीं आता; यह यज्ञके नामों का विचार करनेसे ही सिद्ध हो सकता है। तथापि विचारकी पूर्णताके लिये यहां गौके नामों का भी विचार करते हैं-

(१८) गौके वैदिक नाम।

वैदिक कोश निघण्टु में गाय के नौ नाम दिये हैं उनमें निम्न लिखित तीन नाम अहिंसार्थक हैं-

१अघ्न्या (अ-घ्न्या) =हनन करने अयोग्य। अहंतव्या
२ अही (अ-ही) = " " " "
३ अदिति(अ-दिति) = टुकडे ,, ,,(अखंडनीया)

ये तीनों नाम गौ की हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात स्पष्ट रीतिसे बता रहे हैं। पहिले यज्ञ के नामों में अहिंसा बताई, अब गौके नामों में भी वही अहिंसा है। गौके नाम स्वयं अपने निज अर्थसे बता रहे हैं कि गौ पवित्र है इसलिये उसकी कभी हिंसा नहीं होनी चाहिये। यही अर्थ प्रमाण मान कर महाभारतमें निम्न श्लोक लिखा है-

> अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
> महच्चकाराऽकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत्तु यः।
> म. भा शांति. अ. २६३

" भाई ! गौओंका नाम ही अघ्न्या है अर्थात् गौ हिंसा करने योग्य नहीं है, फिर इन गौओंको कौन मार सकता है। जो लोग गौको या बैल को मारते हैं वे बडा अयोग्य कर्म करते हैं।

(१९) चरक की साक्षी।

गोमेधके विषयमें वैद्यक ग्रंथ की चरक संहितामें निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं -

> आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालंभनीया बभूवुः नारंभाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्षयज्ञ-प्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां मरिष्यन्नाभाकेक्ष्वा-कुकुविडचर्यादीनां च क्रतुषु पशूनामेवाभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमापुः। अतश्च प्रत्यवर-कालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनाम-लाभाद्गवामालम्भः प्रावर्तितः। तं दृष्ट्वा प्र-व्यथिता भूतगणाः। तेषां चोपयोगादुपकृता-नां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यादशस्तोपयो-गाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारः पूर्व-मुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे॥ चरक चिकित्सा. अ. १९

"आदिकालमें सचमुच गौ आदि पशुओंको यज्ञों में सुशोभित किया जाता था, उनका वध नहीं होता था। पश्चात् दक्षयज्ञके नंतर मरिष्यन्, नाभाक, इक्ष्वाकु, तथा कुविडचर्य आदि मनुके पुत्रोंके यज्ञोंमें पशुओंका प्रोक्षण होने लगा। इसके बाद बहुत समय व्यतीत होनेपर राजापृषध्रने जब दीर्घ सत्र शुरू किया और अन्य पशु न मिलने लगे तब अन्य पशुओंके अभाव में गौओंका आलंभन शुरू किया। गौओंकी यह दशा देखकर सब प्राणिमात्र को बडा कष्ट हुआ। गौओंका मांस भारी, उष्ण और अस्वाभाविक होनेके कारण उस समय लोगों की अग्नि और बुद्धि शक्ति भी मन्द हो गई और अग्नि मंद होनेके कारण इसी पृषध्रके यज्ञसे गोवध से अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।'

पाठक इस चरकाचार्यके कथनका खूब मनन करें। इसमें यज्ञकी तीन अवस्थाएं बताई हैं- (१)पहिले समय में यज्ञोंमें पशुवध नहीं होता था. प्रत्युत गौ आदि पशुओंको यज्ञोंमें सुशोभित करके सत्कारसे रखा जाता था; (२) दूसरे समयमें अर्थात् उसके बादके समयमें मनुके पुत्रोंने पशुओंको यज्ञ में प्रोक्षण करने की रीति चलाई; (३) पश्चात् तीसरे समयमें पृषध्रने सबसे प्रथम यज्ञमें गौका वध किया, परंतु इसका सबने निषेध किया। जिन्होंने इस यज्ञमें गोमांस खाया उनको अतिसार रोग हुआ; और तबसे अतिसार सब लोगोंको सताता रहा है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अति प्राचीन वैदिक कालमें निर्मांस यज्ञ होते थे, मध्य कालमें समांस यज्ञ शुरू हुए परंतु इस कालमें भी गौ मारी नहीं जाती थी, पश्चात् बहुत आधुनिक कालमें यज्ञमें गोवध शुरू किया परंतु इसके विरुद्ध सब जनता हुई और गोवध जहां हुआ वहांसे अतिसार रोग शुरू हुआ। हमारा यह ख्याल है कि यज्ञमें गोवध बहुत दिन तक चला न होगा, पृषध्रके समय शुरू हुआ, लोगोंको भी यह पसंद न हुआ और रोगभी फैला; इस लिये फिर किसीने यह दुष्कर्म किया ही न होगा। तात्पर्य प्राचीन कालके यज्ञोंमें न पशुवध होता था और ना ही गोवध होता था। जिसने किया उसने बहुत अच्छी प्रकार उसका फल भोगा और उससे शुरू हुआ अतिसार रोग अबभी जनता को कष्ट दे रहा है। एक वार ऐसा भयानक अनुभव देखनेके पश्चात् ऐसा कुकर्म कौन भद्र पुरुष फिर करेगा?

चरकाचार्य के बताये तीन काल के हवनके तीन प्रकार और हमने इसी लेखमें इससे पूर्व ऋषि-पंचमी और यज्ञकी साक्षीके प्रकरणोंमें बताये विभाग, इनकी परस्पर तुलना पाठक करें और अतिप्राचीन आदि वैदिक कालमें निर्मांस अन्नकी प्रथा होनेका अनुभव देखें। सब बातें भिन्न भिन्न प्रमाणोंका विचार करने के बाद यदि एक ही रूपसे दिखाई देने लगीं, तो वही निश्चित सत्य है, ऐसा मानना योग्य है।

(८०) एक संदेह स्थान।

वेदमंत्रोंमें कई ऐसे मंत्र हैं कि जहां शब्दार्थसे कुछ तात्पर्य और प्रतीत होता है उदाहरण के लिये देखिये -

गोभिः श्रीणीत मत्सरम्।

ऋ. ९।४६।४

इसका शब्दार्थ यह है - " (गोभिः) गौओंके साथ (मत्सरं) सोम (श्रीणीत) पकाओ। " ऐसे मंत्र देखकर लोग भ्रममें पडते हैं कि यह गोमांस के साथ सोम पकानेकी आज्ञा है। परंतु यह व्याकरण के अज्ञान के कारण भ्रम उत्पन्न होता है। व्याकरण के तद्धित प्रत्यय के साथ अच्छा परिचय हुवा तो यह भ्रम नहीं हो सकता, इस विषयमें श्री० यास्काचार्य का कथन देखिये-

अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति " गोभिः श्रीणीत मत्सरमिति" पयसः।

निरुक्त. २।५

" तद्धित प्रत्यय होनेके समान अंशके लिये संपूर्णका प्रयोग किया जाता है, उदाहरण ' गोभिः श्रीणीत मत्सरं ' इसमें ' गौ ' शब्दका अर्थ ' दूध ' है। ' इसी विषयमें यास्काचार्यका और कथन सुनने लायक है—

" अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि" इत्यधिषवण-चर्मणः। अथापि चर्म च श्लेष्मा च " गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व " इति रथस्तुतौ। अथापि स्नाव च श्लेष्मा च " गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता " इतीषुस्तुतौ ॥ १॥५॥ ज्याऽपि गौरुच्यते। गव्या चेत्ताद्धितम्, अथ चेन्न गव्या गमयतीषून् इति। " वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद्गौस्ततो वयः प्रपतान् पूरुषादः। "

निरुक्त. २।५

इस वचन में वेदके तीन मंत्र देकर श्री० यास्काचार्यजीने बताया है कि " चर्म, सरेस, तांत तथा धनुषकी डोरी " इतने अर्थ गो शब्दके हैं. अर्थात् यहां अंशके लिये संपूर्ण का प्रयोग किया है।

आंख देखता है ऐसा कहनेके स्थान पर मनुष्य देखता है ऐसा सब बोलते ही हैं, इसी प्रकार गौसे उत्पन्न होने वाले दूध, दही, घी, चर्म, सरेश, तांत और तांतकी बनी डोरी आदि सब पदार्थों के लिये वेदमें एकही " गौ " शब्दका प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रसंगोंमें पूर्वापर संबंधसे ही अर्थ करना चाहिये। पाठकों की सुविधाके लिये यहां हम इनके एक एक उदाहरण देते हैं--

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि।

ऋ० १०। ९४। ९

" (अंशुं)सोमका रस (दुहन्तः) दोहन करते हुए (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं। " यज्ञका विधि जिन्होंने देखा है उनको पता है कि चर्मपर सोम रखा जाता है और पश्चात् रस निचोडा जाता है। इसलिये यहां " गवि " शब्दका अर्थ "चर्मपर" ऐसा है, "गायमें" ऐसा अर्थ नहीं। और देखिये-

वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि॥

ऋ. ६। ४७। २६

" हे (वनस्पते) वृक्षसे बने हुए रथ! तू (वीड्वंगः) दृढ अवयवोंवाला हमारा सहायक (प्रतरणः) पार ले जानेवाला और सुवीरोंसे युक्त हो। तू (गोभिः सन्नद्धः) चर्मकी रस्सियोंसे बांधा हुआ (वीळयस्व) वीरता दिखा, (ते आस्थाता) तेरे अंदर बैठनेवाला (जेत्वानि जयतु) जीतने योग्य शत्रुको जीते। "

इस मंत्रमें अंशके लिये पूर्णका प्रयोग करनेके दो उदाहरण हैं - (१) " गौ " शब्द चमडेकी डोरी का वाचक है, और (२) " वनस्पति " (वृक्ष) शब्द वृक्षसे बने हुए रथ का वाचक है। जिस प्रकार वृक्षसे लकडी और लकडीसे रथ बनता है; उसी प्रकार गौसे चमडा और चमडेसे डोरी बनती है। इसी प्रकार गौसे दूध, दूधसे दही, दहीसे मक्खन और मक्खनसे घी बनता है, और उक्त कारणही इन सब पदार्थोंके लिये " गो " शब्द प्रयुक्त होता है। अब और दूसरा उदाहरण देखिये--

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता॥

ऋ. ६। ७५। ११

" यह बाण (सु-पर्ण) उत्तम परोंसे (वस्ते) युक्त है, इसका (दन्तः मृगः) नोक मृगकी हड्डीका बना है और यह (गोभिः सन्नद्धा) गोचर्मके बने बारीक धागों से अच्छी प्रकार बांधा है यह (प्रसूता) धनुष्यसे छूटा हुआ शत्रुपर (पतति) गिरता है। "

इस मंत्रमें भी अंशके लिये पूर्णका प्रयोग होनेके दो उदाहरण हैं। एक " मृग " शब्द मृगकी अर्थात् हरण की हड्डीका वाचक है। मृगकी हड्डी कहनेके स्थानपर केवल " मृग " ही कहा है। इसी प्रकार आगे जाकर चर्मसे बनी डोरियोंका वाचक शब्द " गोभिः " है। यह शब्दभी गोचर्मकी डोरीके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार निम्न मंत्रमें देखिये—

वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद्गौस्ततो वयः
प्रपतान्पूरुषादः॥

ऋ. १०। २७। २२

(वृक्षे वृक्षे) लकडीसे बने प्रत्येक धनुष्यपर (नियता गौ) तनी हुई गोचर्मकी डोरी- ज्या- (अमीमयत्) शब्द करती है (ततः) उससे (पुरुषादः) मनुष्यों को खाने वाले (वयः) पक्षियोंके पर लगे हुए बाण (प्रपतात्) शत्रुपर गिर जाते हैं।

इस मंत्रमें दो या तीन शब्द अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग होनेके हैं। (१) " वृक्ष " शब्द वृक्ष या लकडीसे बने हुए धनुष्य का वाचक है,(२)"गौ" शब्द गो चर्मसे बने धनुष्यकी डोरी का वाचक है और (३) " वयः " (पक्षी) शब्द उनके पंख लगे बाणों का वाचक है।

पाठक इतने उदाहरणों से समझ गये होंगे कि वेदकी यह शैली ही है कि अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग हो। यह प्रयोग यदि केवल गौके लिये ही

होता तो कोई कह सकते थे कि यह खींचातानी की बात है, परंतु यहां तो अन्य बातों के लिये भी ऐसे ही प्रयोग हैं और ढाई सहस्र वर्षोंके पूर्व ये उदाहरण देकर यही बात श्री० यास्काचार्य-जीने बताई है। उक्त उदाहरणोंका समीकरण यह है-

१ वनस्पति शब्द उसकी लकडीसे बने रथ के लिये
२ वृक्ष ,, ,, ,, ,, धनुष्य ,,
३ गौ शब्द उससे बने दूध घी, आदिके ,,
४ ,, ,, ,, ,, चर्म, चर्मपदार्थ ,,
५ ,, ,, उसके चर्मसे बने हुए डोरी, बैग ,,
६ मृग उसकी हड्डीसे बने शस्त्रका द्योतक है
७ वयः शब्द उस पक्षीके परोंसे बने बाणों का वाचक है।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परंतु यहां हमने उतने ही दिये हैं कि जितने स्वयं श्री० यास्काचार्य ने अपने निरुक्त ग्रंथमें दिये हैं। इनको देखनेसे पाठकों का निश्चय होगया होगा कि यह वैदिक शैली ही है। यह बात यूरोपके विद्वानों के भी ध्यान में आगई है और उन्होंने इसका स्वीकार भी किया है और इस लिये म० मॅकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इन्डेक्स में लिखा है कि-"

" The term.(गो Go is often applied to express the products of the cow. It frequenty means the milk, but rarely the flesh of the animal. In many passages it designates leather used as the material of various oljects, as a bowstring or a sling or thongs to fasten part of the chariot, or reins, or the lash of a whip. (पृ. २३४)

अर्थात् "गो" शब्द गौसे बने हुए पदार्थ बताने के लिये प्रयुक्त हुआ है। वारंवार यह गौ शब्द दूध के लिये आता है, क्वचित् पशुके मांसके लिये आता है। कई मंत्रों में इस गौ शब्दका अर्थ चर्म है जिससे धनुष्यकी डोरी, रस्सी, चमडेकी पट्टी, गौफन लगामें, चाबूक आदि पदार्थ हैं।"

इसमें स्पष्ट लिखा है कि गो शब्दका अर्थ दूध, चर्म आदि पदार्थ वेद में हैं। उक्त महोदयोंका मत है कि क्वचित् मांस भी अर्थ गोशब्दका होता है, परंतु ऐसे प्रयोग बहुत अल्प हैं। मांस अर्थ भी हो सकता है क्योंकि वह भी गौका अंशही है, परंतु जब गौ " अवध्य (अ-घ्न्या) " कही गई है तो उसके वधसे प्राप्त होने वाले मांस की संभावना कैसी हो सकती है? एकवार गौ को अवध्य कहा, यज्ञों के नामों द्वारा अहिंसा (अ-ध्वर) कही, इसके पश्चात् गौके मांस की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः गौ शब्दके वेही अंग लेने होंगे कि जो गौका वध करने के विना प्राप्त हो सकते हैं, अर्थात् दूध, दही, मक्खन, घी, तथा चर्म तो मृत गौका भी मिल सकता है इस लिये उस चर्मके सब पदार्थ उसके अंतर्भूत हो जाते हैं, गौकी हड्डी भी इसी प्रकार गौ मरने पर प्राप्त हो सकती है। एक मांस ही ऐसी वस्तु है कि जो हिंसा किये विना नहीं प्राप्त हो सकती. अतः अवध्य गौका मांस वैदिक कालमें खाया जाता था इस विषयके कोई प्रमाण नहीं है।

२९ नामधातु "गोपाय"।

जब एक बात निर्विवाद रीतिसे बहु मान्य और सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है तब उसका शब्द मूलतः न होने पर भी भाषा में रूढ हो जाता है। उदाहरण के लिये " मेस्मर " यह अंग्रेजीका शब्द लीजिये। सन १७७८ में जर्मन डाक्तर मेस्मर ने प्रयोग द्वारा सिद्ध करके बताया कि एक मनुष्य अपनी मानस-शक्ति द्वारा दूसरे मनुष्यपर विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। यह बात इतनी लोकप्रिय हो गई कि इस क्रियाका वाचक धातु इस के ही नामसे बनाया गया देखिये-

Mesmer " मेस्मर " = जर्मन डाक्टर का नाम जिसने मानस शास्त्र का उक्त सिद्धांत प्रकाशित किया।

Mesmerize " मेस्मराइझ् " = उक्त क्रियाके

प्रयोग करना (धातु)

Mesmerism "मेस्मेरिज्म" = उक्त मानस क्रिया।

Mesmerizer "मेस्मरायझर" = उक्त मानस प्रयोग करनेवाला मनुष्य

इस प्रकार अनेक शब्द आंग्रेजी भाषामें बने हैं और आंग्रेजी कोशों में भी छपे हैं। ये शब्द सन १७७८ के पूर्व थे ही नहीं। इस प्रकार कई शब्द मनुष्योंके नामोंसे धातु बनकर उस धातुसे पुनः शब्द बने हैं। यह तब होता है कि जब वह बात बहुमान्य हो जाय।

इसी प्रकार "गोपायति" क्रिया और "गोपाय" धातु "गोप" शब्द से संस्कृतमें तथा वेदमें बना है। "गोपायति" का अर्थ "रक्षण करता है" यह है। वास्तविक इसका अर्थ "(गोप इव आचरति) गोपालक के समान आचरण करता है।" यह है। गोपालन की क्रिया सर्व मान्य और सर्व संमत होनेके विना ऐसे नाम धातु प्रचारमें आना असंभव है।

"गवालियेके समान आचरण" का आर्थ "संरणक्ष" होने का तात्पर्य यही है कि "गौका संरक्षण" एक सर्वमान्य और निःसंदेह बात है, उसमें शंका नहीं हो सकती, किसीका इस विषयमें मतभेद नहीं हो सकता। "गुप्" धातु संरक्षण करनेके अर्थमें संस्कृतमें प्रयुक्त होता है और उसके रूप पूर्वोक्त नाम धातु के समान "गोपायति" ही होते हैं। गौके संरक्षण का विलक्षण प्रभाव जैसा सर्व साधारण पर हुआ इस शब्दद्वारा दिखता है, जिसका धातुके बनने और उसके रूप बनने पर भी असर पडे, ऐसा कोई अन्य धातु या शब्द संस्कृतमें या वेदमें भी नहीं है। एक ही यह प्रयोग यदि सूक्ष्म विचार की दृष्टिसे देखा जाय तो स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि गौओंका संरक्षण, पालन और संवर्धन आर्योंमें और वैदिक धर्म में एक विशेष महत्त्व की बात है कि जिसपर शंकाही नहीं हो सकती। वेदने इस शब्द प्रयोग द्वारा ही सिद्ध कर दिया है कि "गौ अवध्य है" और उसका पालन तो निर्विवाद रीतिसे होना चाहिये। वेदमें इसके प्रयोग देखिये—

ये गोपायन्ति सूर्यम्। ऋ. १०। १५४। ५

"जो सूर्य की रक्षा करते हैं," यह इसका तात्पर्य है, परंतु इसका भाव यह है कि 'गोपालनके कर्मके समान कर्म सूर्य के साथ करते हैं।' अर्थात् सूर्य की पालना करते हैं। गोपालन के विषयमें और इससे अधिक कहना ही क्या चाहिये। वैदिक धर्ममें तो इस प्रकारके शब्द प्रयोगों से अंतिम आज्ञाही कही जाती है, जिसका उलट पुलट होना असंभव है।

इस नामधातु और धातु के प्रयोग वेदमें बहुत हैं, उन सबके उदाहरण यहां दिखाने की आवश्यकता नहीं, परंतु इनकी उत्पत्ति यहां देखने योग्य है—

गौ = गाय
गोप (गो-प) = गायका पालक
गोपाय् = गोपालके समान आचरण करना अर्थात् रक्षा करना
गोपायति = रक्षा करता है।
गापायनं = संरक्षण
गुप् (ग्+प्) = (धातु) रक्षा करना

देखिये और विचारिये कि यदि गोपालन का महत्त्व निःसंदेह वैदिक धर्म में न होता तो ऐसे प्रयोग वेदमें कैसे आजाते। फिर इतना गोपालन का महत्त्व सिद्ध होनेपर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी। यदि गोमांसभक्षण की प्रथा होती तो गोरक्षा का इतना महत्त्व कैसे दर्शाया जाता?

(२२) विवाहमें गोमांस

विवाह संस्कारमें गोमांस खाया जाता था ऐसा युरोपीयन पंडित म. मैकडोनेल और कीथने अपने वैदिक इंडेक्स में पृ. १४५ पर लिखा है— "The marriage ceremoney was accompanied by the slaying of oxen, clearly for food." विवाह संस्कार में गाय बैलोंका वध अन्नके लिये ही किया जाता था। इस विषय का प्रमाण उन्होंने जो दिया है उसका विचार अब करना चाहिये—

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥
ऋ. १०। ८५। १३

यह मंत्र एक आलंकारिक वर्णनमें आगया है इसका पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्र का अर्थ स्वयं खुल जायगा। इसलिये इसके पूर्व के कुछ मंत्र देखिये-

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥१॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छंद ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥९॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
"अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३ ॥"
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्मण ऋतुथा विदुः
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥
ऋ. १०। ८५। १-१६

इन मंत्रोंका अर्थ देखनेके समय पाठक यह बात ध्यान में रखें की यह विवाहका आलंकारिक वर्णन है जिसमें सूर्य की पुत्री सूर्या का विवाह चंद्रमासे होनेका वर्णन है, देखिये अब इस का अर्थ-

" सत्यसे भूमिका धारण हुआ है, सूर्यने द्युलोक का धारण किया है, सच्चाईसे आदित्य ठहरे हैं, द्युलोकमें सोम रहा है॥१॥ विचारशक्ति का तकिया बनाया है, दृष्टिका अंजन आंखमें रखा है. भूमिसे द्युलोक तकके सब पदार्थ खजाना था जिस समय सूर्या वधु अपने पतिके पास गई ॥७॥ रथ बनाने में मंत्रों के दंडे लगाये गये, कुरीर नामक छंदों से उसकी चमक बढाई गई। दोनों अश्विनीकुमार वधुपक्षके साथ थे और अग्नि सबके आगे था॥८॥ सोम वधू चाहनेवाला वर था और अश्विदेव वधुके साथ रहे। सूर्य देवने मनसे पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्यावधूको पतिके हाथमें अर्पण किया ॥ ९ ॥ इसका रथ मन ही था, द्युलोक उस रथका ऊपर का भाग था, दो श्वेत बैल रथको जोडे थे जिस समय सूर्या अपने पतिके घर पहुंची ॥ १० ॥ ऋक् और साम मंत्रोंसे वे दोनों बैल अपने स्थानमें रखे गये थे। यहां दो कान ही रथके दो चक्र थे, द्युलोक में उसका स्थावर जंगम मार्ग है॥ ११ ॥ तुम्हारे जानेके दोनों चक्र शुद्ध हैं, व्यान नामक प्राण रथका (अक्षः) मध्यदंड है, ऐसे (मनस्मयं अनः) मन रूपी रथपर सूर्या देवी बैठ कर अपने पतिके पास जाती है ॥ १२ ॥ सविता देवने सूर्या देवी की दहेज धमधडाके के साथ भेजी जो आगे चली, इस समय [(अघासु हन्यन्ते गावः) युरोपीयनों का अर्थ=मघा नक्षत्रमें गौवें मारीं जाती हैं !!!] मघा नक्षत्रमें दहेजमें गौवें भेजी जाती हैं अर्थात् सूर्यकी किरणें चंद्रमातक पहुंचायीं जाती हैं और (अर्जुन्योः पर्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें सूर्या के साथ सोम का विवाह किया जाता है ॥१३॥ हे अश्विदेवो ! जब आप अपने तीन चक्रवाले रथ में बैठ कर सूर्यादेवी के बरात में स्वयं आये, तब आपके रथका एक चक्र कहां था, और आप आज्ञापालन के लिये कहां ठहरे थे ॥१५॥ हे सूर्या देवी! तुम्हारे दो चक्र ब्राह्मण ऋतुओं के अनुसार जानते हैं और जो एक चक्र (गुहा) गुप्त है, (या हृदयकी गुहामें अदृश्य है,) उसको वेही जानते हैं कि जो अटल सत्य तत्वको जानते हैं ॥ १६ ॥

पाठक ये मंत्र देखें और उनका यह अर्थ भी देखें। तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यहां गौओंका वध करनेका संबंध ही नहीं है। यदि " गायें मारी जाती हैं " ऐसा बीचमें पढा तो वह वहां सजता ही नहीं है "। ऊपरके अर्थमें यह यूरोपीयनों का अर्थ और वास्तविक अर्थ दोनों दिये हैं। पाठक खूब विचार करके देखें और स्वयं अनुभव करें कि युरोपीयनोंकी यह मंत्र समझनेमें कैसी बडी भारी भूल हुइ है।

डा. वुईल्सन ने (अघासु हन्यन्ते गावः) का अर्थ " मघा नक्षत्रमें गौवें (are whipped along) चलाई जाती हैं।" ऐसा किया है जो अधिक शुद्ध है, परंतु "गौवें काटी जाती है " यह अर्थ म. ग्रिफिथ, व्हिटने आदियोंने माना है, वह उनकी बडी भारी भूल है. यह पूर्वापर संबंध देखनेसे स्वयं स्पष्ट हुआ है। यह ऊपरके मंत्रोंका जो अर्थ हमने ऊपर दिया है वह सब युरोपीयन ऐसा ही मानते हैं, केवल "गौ काटने " वाला उनका अर्थ भिन्न है। वास्तवमें यहां अब इसका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तथापि पाठकों को यह अलंकार स्पष्ट समझमें आजाय इसलिये संक्षेपसे यह अलंकार खोलते हैं। विवाहकी बरातका रथ—

रथ	मन (मं. १०)
रथका छत्र	द्युलोक (,,)
रथचालक	दो बैल (,,)
लगामें	ऋक्साम मंत्र (मं.११)
मार्ग	स्थावर जंगम जगत् (११)
अक्ष (रथदंड)	व्यान प्राण. (मं. १२)
तकिया	विचार शक्ति (मं.७)
अंजन	दृश्य (मं. ७)
खजाना	सब पदार्थ (मं. ७)
रथके दंड	मंत्र (मं. ८)
रथकी चमक	मंत्रोंके छंद (मं. ८)
वधुके सथी	दो अश्विनीकुमार (मं. ९)
अग्रगामी	अग्नि (मं. ९)
दो रथ चक्र	दो कान (मं. ११)

मंत्रमें जिस प्रकार वर्णन है वह यहां दिया है, परंतु पाठक जानते ही हैं कि वेदका वर्णन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन विभागों में विभक्त होता है, उस विचार से संगति करण करके नीचे कोष्टक दिया जाता है जिससे यह रूपक खुल जायगा –

अधिभूत (लोकचारमें)	अधिदैवत (विश्वमें)	अध्यात्म (शरीरमें)
वधूका पिता	सूर्य	परमपिता
वधू	सूर्या(सूर्यप्रभा)	बुद्धिशक्ति
वर	सोम	षोड़शकला- युक्त आत्मा
वधूकेसाथी	दो अश्विनी	श्वास, उच्छ्वास
वरातमें- अग्रगामी	अग्नि	शब्द (वाणी)
....	....	....
आंखमें अंजन	दृश्य	दृष्टि
वधूका धन	सब पदार्थ	सब अवयव
....	....	....
गौवें	किरणें	इन्द्रियें
रथ	विद्युत्	मन
रथका छत	द्युलोक	मस्तिष्क
रथका मार्ग	स्थिरचर	जडचेतन
रथवाहक बैल(दो)	वायु	प्राणापान
लगामें	...	ऋक्साममंत्र
रथके दंड	...	मंत्र
रथकी चमक	...	छंद
अक्ष	...	व्यानवायु
रथके दो चक्र	दिशाएं	दो कान
रथमें तकिये	...	सुविचार

यह कोष्टक देखनेसे यह वैदिक अलंकार पाठकों के मनमें खुल गया होगा। इसलिये इसका विचार यहां अधिक फैलाने को आवश्यकता नहीं है। पाठक यह विवाह अपने अंदर भी देख सकते हैं और बाहर जगतमें भी देख सकते हैं। वेद मंत्रों में बाह्य जगत्में होने वाले सनातन विवाह का वर्णन किया है और बीच बीचमें व्यक्तिके शरीरमें होनेवाले विवाह की भी सूचनाएं 'मन, सुविचार' आदि शब्दों द्वारा दी हैं। सूर्यकी प्रभा चंद्रमामें जाकर वहां रमती है, इसपर रूपकालंकार से आध्यात्मिक तत्वका वर्णन इस सूक्त में किया है।

" गो " शब्द सूर्य किरणोंका वाचक प्रसिद्ध है, इसविषय में किसीको भी शंका नहीं है। "हन्यन्ते" इस क्रियामें " हन् " धातु है, " हन् हिंसागत्यो " ये व्याकरणाचार्य पाणिनी मुनिने इसके अर्थ दिये हैं अर्थात् " हिंसा और गति " ये इसके अर्थ धातु पाठमें है, कोशोंमें इस " हन् " धातुके अर्थ निम्न

प्रकार हैं- To kill (वध करना), To multiply (गुणाकरना), To go (जाना)। हरएक कोशमें पाठक ये देख सकते ।

यदि पाठक ये ' हन् " धातुके अर्थ देखेंगे तो उनको-

अघासु हन्यन्ते गावो र्जुन्योः पर्यूह्यते ॥

इस पूर्वोक्त मंत्रके वाक्य का अर्थ(पूर्वोक्त अलंकार छोड कर भी) स्पष्ट हो जायगा"(अघासु)मघा नक्षत्रके समय (गावः) गौवें (हन्यन्ते) चलाई जाती हैं, और (अर्जुन्योः) फल्गुनी नक्षत्रके समय (पर्युह्यते)विवाह किया जाता है।" डा. वुइल्सनने यही अर्थ स्वीकृत किया है। अलंकार का तात्पर्य छोडकर और केवल स्थूल दृष्टिसे देखकर भी सरल अर्थ यह होता है। क्यों कि यद्यपि हन् धात का वध करना अर्थ प्रसिद्ध है तथापि उसका दूसरा गतिवाचक अर्थ नष्ट नहीं हुआ है। यदि इसका (to multiply) गुणा करना यह अर्थ लिया जाय तो 'गावः हन्यन्ते' का अर्थ होगा 'गौओं की संख्या बढाई जाती है' गौवें दुगुणी चौगुणी की जाती हैं। जिस समय विवाह होता है उस समय बहुत आदमी इकट्ठे होते हैं, उनको दूध पिलानेके लिये स्थान स्थानसे गौवें इकट्ठी की जाती हैं, लाई जाती हैं और उनकी संख्या बढाई जाती है। विवाह प्रसंग के लिये यह अर्थ कितना सार्थ है और सरल है यह देखिये। " अघ्न्या " शब्दसे बताया हुआ गौका अवध्यत्व रख कर ही जो अर्थ पूर्वापर संबंध में ठीक बैठ जायगा वही ठीक अर्थ होगा।

इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त कोष्टक में देखिये तो पता लग जायगा कि जो आधिभूतमें " गौवें " हैं, वेही आधिदैवतमें " किरणें " और आध्यात्मिक भूमिका में "इंद्रियशक्तियां" हैं। जिस समय किसी बातके विषयमें संदेह उत्पन्न हो जाता है उस समय अन्य क्षेत्रोंका व्यवहार देखकर अर्थ का निश्चय करना चाहिये। अधिभूतपक्ष में अर्थात् लोक व्यवहार में गौवों का वध विवाह प्रसंगमें करना चाहिये या नहीं. इस मंत्र का अर्थ कैसा करना चाहिये, ' हन्" धातुके दो अर्थ हैं उनमें यहां कौनसा लिया जाय. इस शंकाकी उत्पत्ति होनेपर आधिदैवत में और अध्यात्ममें क्या होता है यह देखिये और उचित निश्चय कीजिये।

आधि दैवत पक्ष में सूर्यकी किरणें चंद्रमातक फैलाई जाती हैं, प्रकाश का विस्तार किया जाता है, यह अर्थ स्पष्ट है। सूर्यकी किरणें मारी नहीं जाती। यह देखने से हमें पता लगा कि " हन् " धात का अर्थ वध यहां अपेक्षित नहीं है, प्रत्युत फैलाव विस्तार या गति अर्थ ही अपेक्षित है। प्रतिबंध या वध अर्थ यहां लिया जाय तो सूर्यकी किरणें मारी जानेपर चंद्रमातक सूर्यकी प्रभा पहुंचेगी कैसी और सूर्यपुत्री प्रभा (सूर्या सावित्री) का सोम (चंद्र) के साथ विवाह कैसे होगा? और धूमधामके साथ बरात भी कैसी चलेगी? अर्थात् यहां " हन् " धातु का वध अर्थ अपेक्षित नहीं है।

आध्यात्मिक पक्षमें अपने अंदर देखिये कि क्या इंद्रिय शक्तियां मारी जानेसे आत्मा का सुख बढेगा या उन को सुनियमोंसे चलानेसे कल्याण होगा। इसके विवाह का रथ जगत् के मार्ग परसे ऋक्साम मंत्रोंके द्वारा नियत धर्ममार्गपर से ही चलना चाहिये इसलिये इसके रथके बैल सुशिक्षित होके मंत्रोंके लगामों द्वारा योग्य मार्ग पर से चलाने चाहिये। इत्यादि विचार से स्पष्ट पता लगता है कि यहां भी गोपालन ही अभीष्ट है।

इसी प्रकार विवाह यज्ञमें आनेवाले पारिवारिक सज्जनों के दुग्धपानके लिये गौवों को इकट्ठा करना, उनको योग्य मार्ग परसे चलाना, इधर उधर भागने न देना योग्य है। उनका वध करनेसे, उनकी कतल करने से क्या लाभ होगा ?

इस दृष्टिसे देखनेसे भी पता लग जाता है कि विवाह संस्कार में गौवोंकी संख्या (multiply) बढाना यहां अभीष्ट है या उनको योग्य मार्गसे चलाना अभीष्ट है। ऊपर " हन् " धातुका अर्थ 'गति' दिया है। इस गतिके अर्थ 'ज्ञान' गमन और प्राप्ति हैं !! ये अर्थ सब व्याकरणशास्त्रकार मानते हैं। ये अर्थ यदि गति शब्दसे यहां लिये जांय तो

" गावः हन्यन्ते " का अर्थ होगा— " गौओं का ज्ञान प्राप्त करना, गौओं को चलाना, अथवा गौओं को प्राप्त करना। "

" हन् " धातुका अर्थ " ताडन करना " भी है। इस समय मराठी भाषामें यह अर्थ प्रचलित है. (हनन = हाणणें) इस शब्दका अर्थ सोटीसे ताडन करना है अर्थात् गवालिये हाथ में सोटी लेकर गौवोंको जिस दिशामें लेजाना होता है उस दिशामें ले जाते हैं। यह " हनन " शब्दका अर्थ है। हन् धातुका यह अर्थ लिया जाय तो " हन्यन्ते गावः " का अर्थ होगा-" गौओं को गवालिये जिस मार्गसे ले जाना हो उस मार्गसे ले जाते हैं।" अर्थात् विवाह के प्रसंगमें गौओं को इकट्टा करते हैं और इष्ट स्थानपर ले जाते हैं।

कुछभी हो, यहां "गौवोंका वध " अभीष्ट नहीं है यह बात स्पष्ट है। श्री. सायणाचार्य जीने भी यहां वध अर्थ नहीं किया है - " मघानक्षत्रेषु गावः हन्यन्ते दण्डैः ताड्यन्ते प्रेरणार्थम्। " अर्थात् " मघा नक्षत्रके समय गौवें वहां पहुंचाने के लिये सोटियों से ताडित होकर प्रेरित की जाती हैं। " सूर्य के घरसे चली हुई गौवें सोमके घर पहुंचने के लिये मार्गमें ठीक मार्गसे चलायीं जाती हैं। यहां सायण भाष्यका भाव यह है कि " सूर्य देवने अपनी पुत्री के विवाह के समय दहेज, स्त्रीधन या (Dowry) के रूपमें दी हुई गौवें चंद्रमा के घर तक पहुंचाने का कार्य करनेके लिये सूर्य देवके गवालिये गौवें ले जाते हैं और ठीक मार्गसे उनको चलाने के लिये मार्गमें आवश्यक हुआ तो ताडन करते हैं, अंतमें वह गौवें सोमके घर पहुंचती हैं और फल्गुनी नक्षत्रके समय सूर्य पुत्री का चंद्रमाके साथ विवाह होता है। " यदि यहां " गौवों का वध " अर्थ लिया जाय तो दहेज का बीचमें ही नाश होनेसे पुत्रीका भावी पति रुष्ट हो जायगा और विवाह में आपत्ति आजायगी। इस कारण " वध " अर्थ यहां अभीष्ट नहीं है।

किसी भी प्रकार पाठक विचार कर के देखेंगे, तो उनको स्पष्टतासे पता लग जायगा कि यहां 'गोवध' अभीष्ट नहीं है। इतना होते हुए भी यूरोपीयन पंडितोंने इस मंत्रके आधार से ही लिखा है कि--

The marriage ceremony was accompanied by slaying of oxen, clearly for food " (विवाह संस्कार में खाने के लिये ही गाय बैल काटे जाते थे!) पूर्वापर संबंध न देखते हुए ही एकदम कैसे अनुमान लिख मारते हैं, इसका बडा आश्चर्य होता है। संभवतः म० वैद्यजी भी ऐसे लेखों को देख कर ही कहते होंगे कि " प्राचीन समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी।" युरोपके लोग जो चाहे सो अनुमान करें, परंतु हमारे लोगों को तो पूर्वापर संबंध देखकर अधिक विचार करके ही अपने अनुमान निकालना चाहिये। अन्यथा ऊपर वाले मंत्र में देखिये कि किसीभी रीतिसे गोका वध सजता ही नहीं, परंतु यही मंत्र गोमांसभक्षण का प्रमाण करके ये लोग पेश करते हैं। इस से और अधिक कोरी भूल कोई नहीं हो सकती।

नक्षत्रों में " मघा " नक्षत्र होते ही " पूर्वा और उत्तरा " ये दो फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। चन्द्रमाके तीन रात्री का प्रवास इनमें होता है। सोमवार के दिन मघा नक्षत्र हुआ तो प्रायः मंगल और बुध के दिनोंमें दोनों फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। इसीलिये दहेज मघानक्षत्र के समय भेज कर दूसरे या तीसरे दिन विवाह किया जाता है। इस मंत्रसे यदि कोई अनुमान निकालना है तो यही निकल सकेगा कि वेद के अनुसार दहेज में गौवें दी जाती हैं और दहेज वर के घर पहुंचने के पश्चात् विवाह होता है। परंतु गौवोंके वधका अनुमान तो कदापि निकल नहीं सकता। ऐसा अनुमान निकालना एक अज्ञान का विलक्षण प्रदर्शन करना ही है। यहां " हन् " धातु का अर्थ क्या है यह अवश्य देखना चाहिये-

१ हन् =(वधकरना To kill) यह अर्थ प्रसिद्ध है।

२ हन् =(जाना, चलाना, प्रेरणा देना To go, to remove यह अर्थ व्याकरणाचार्योंने माना है और यह धातु इस अर्थ में क्वचित् भाषामें भी प्रयुक्त होता है। वेद में यह अर्थ अधिक वार आता है और

भाषामें कम । वैदिक कोश ' निघण्टु ' के २ । १४ में यह ' गति ' अर्थ दिया है ।

३ हन् = (रक्षा करना) जैसा "हस्त - घ्न " में " घ्न " का अर्थ " रक्षा करना " है । ' हस्तघ्न ' का अर्थ (Hand guard) "हाथकी रक्षा करनेवाला " ऐसा होता है । यह प्रयोग वेदमें है ।(ऋ. ६ । ७५ । १४)

४ हन् = (गुणा करना To multiply) गणितमें यह प्रयोग है । " घात, हनन, हति, हत " आदि शब्द (Multiplication) बदोत्री, गुणा अर्थमें प्रयुक्त हैं ।

५ हन् = (उडाना, बढाना to raise) " तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुः " (शाकुंतल १ । ३२) (घोडेके पांव से हत अर्थात् उडाई हुई धूली) ऐसे वाक्यों में यह अर्थ होता है ।

६ हन् = (ताडन करना to beat) जैसा पशुओंको सोटीसे गवालिये समयपर ताडन करते हैं ।

७ हन् =(To ward off; avert रक्षा करना, दूर करना) यह अर्थ महाभारतमें भी हैं ।

८ हन् =(to touch, come in contact स्पर्श करना, संबंधमें आना) वराहमिहिर बृहत्संहितामें यह अर्थ ज्योतिषमें प्रयुक्त है।

९ हन् =(to give up, abandon छोड देना)

१० हन् = (to obstruct प्रतिबंध करना)

"हन्" धातु के इतने अर्थ कोशों हैं । इन अर्थों में से प्राचीन वेद मंत्रों में कौनसे अर्थ आये हैं इनका प्रकरण और पूर्वापर संगतिसे ही अर्थ करना चाहिये "हन् " धातु जहां जहां आजाय वहां वहां उसका " वध " ही अर्थ लिया जाय तो अर्थका अनर्थ होनेमें विलंब नहीं लगेगा ।

२३ अतिथिकेलिये गौ

वेद में गौ वाचक " अतिथिनी " शब्द आया है, इस शब्द के दो अर्थ हैं, (१) भ्रमण करनेवाली और (२)अतिथिके लिये योग्य। युरोपीयन भाषांतरकार तथा कोशकार " अतिथिनी " शब्द का अर्थ (wandering) घूमने फिरने वाली, भ्रमण करने वाली, चलनेवाली ऐसा ही करते हैं, परंतु म. मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इंडेक्स पृ. १४५ पर (Staying cows for guests) अतिथियोंके लिये गौके काटने उल्लेख करते हुए निम्न लिखित मंत्रका प्रमाण दिया है जिस में यह " अतिथिनी " शब्द है—

> साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः । बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥
>
> ऋग्वेद १० । ६८ । ३

इसका अर्थ म० ग्रिफिथ यह करते हैं = Brihaspati, having won them from the mountains, strewed down, like barley out of winnowing-baskets; the vigorous, WANDERING COWS who aid the pious, desired of all, of blameless form, well-- coloured.

पाठक देखें और विचारें कि इस मंत्रार्थमें अतिथिके लिये गौ काटनेका कहां संबंध है? इस मंत्रका शब्दार्थ यह है- " (साधु+अर्याः) कल्याण करनेवाली, (अतिथिनीः) खूब घूमने वाली, (इषिराः) इच्छा करने योग्य, (स्पार्हाः) स्पृहणीय, (सुवर्णाः) उत्तम रंगवाली, (अनवद्यरूपाः) उत्तम सुरूप ऐसी (गाः) गौवें बृहस्पतिने पर्वतोंसे लाई जिस प्रकार धान्य छजसे लाते हैं । "

क्या कभी कोई मनुष्य यह मंत्र " अतिथि के लिये गौ काटने " के विषयमें प्रमाण रूपमें दे सकते हैं? परंतु यह म. मैकडोनेल और कीथने अपने पुस्तक में पृ. १४५ पर दिया है । म. ब्लूमफील्डने इस मंत्रपर यही अनुमान " अमेरिकन जर्नल आफ फिलोसोफी " १७, ४२६ तथा " जर्नल आफ दी अमेरिकन ओरिएंटल सौसैटी " १६, १२४ में " अतिथिनी" शब्द से निकाला है जो म. मैकडोनेल ने दिया है । वास्तवमें इस मंत्रमें दोही शब्द हैं, जिनकी ऐसी खींचातानी की जा सकती है—

१ साध्वर्याः = (साधु+अर्याः) = साधुओंके पास जानेवाली, कल्याण करने वाली।

२ अतिथिनी = घूमने वाली, अतिथि के लिये योग्य.

पाठक विचार करें की इन शब्दोंसे ही यदि 'गौ काटकर अतिथिको खिलानेका भाव' निकालना युरोपीयनोंको मंजूर हो तो फिर वाद विवाद करने की कोई आवश्यकताही नहीं है। वे फिर लिखते हैं— The name ATITHIGVA probably means slaying cows for guests. अर्थात् 'अतिथिग्व' शब्द का बहुत करके अर्थ अतिथिके लिये गौ काटना है।

म० ब्लूमफील्डने अतिथिग्व शब्दका अर्थ— Presenting cows to guests ऐसा करके उससे अनुमान निकाला है कि यहां अतिथिके लिये गोवध दिखाई देता है।

सर मोनियर वुइलियम्स अपने सुप्रसिद्ध संस्कृत इंग्लिश कोशमें पृ. १४ पर 'अतिथिग्व' शब्दका अर्थ करते हैं—To whom guests should go अर्थात् 'जिसके पास अतिथि चले जांय।' यही इस शब्दका सत्य अर्थ है। और इस शब्दसे अतिथि के लिये गौ काटनेका कोई तात्पर्य नहीं निकल सकता।

हम जिस समय युरोपीयन पंडितोंके ऐसे अनुमान पढते हैं तब हमें आश्चर्य होता है कि इतने अल्प आधार से इतनी अनुमानों की बडी छलांगें ये लोग क्यों मारते हैं? क्या किसी न किसी प्रकार ऋषियोंके मथ्थेपर गौ काटकर खानेका दोष लगाना ही इन्हें मंजूर है वा अन्य कोई अंदर की बात है?

" अतिथि-ग्व " शब्दके तीन ही अर्थ संभवनीय हैं, एक 'अतिथिके पास जाना;' दूसरा "अतिथि जिसके पास जांय," और तीसरा " अतिथिके लिये जिसकी गौवें हैं ऐसा गृहस्थी मनुष्य।" यह तीसरा अर्थ इस समय तक किसीने भी स्वीकृत किया नहीं है। तथापि यह अर्थ माननेपरभी अतिथि के लिये गौ काटनेका भाव इससे किस प्रकार निकल सकेगा ? अतिथिसत्कार के लिये, दूध, घी आदि अतिथिको समर्पण करनेके लिये जिसने गौएं रखी हैं ऐसा गृहस्थ, इतना इसका अर्थ होना संभव है। इससे अधिक अनुमान निकालना बडा दोषपूर्ण है।

(२४) यज्ञमें मांसका अर्पण।

" यज्ञमें अन्य हवनके समान मांसका भी समर्पण होता था, देवताओं के उद्देश्यसे मांस दिया जाता था और यज्ञशेष मांस ऋत्विज लोग खाते थे " ऐसा कथन मांस शब्दके ऊपर लिखते हुए म०मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने किया है—

" The eating of flesh appears as something quite regular in Vedic texts, which show no trace of the doctrine of AHIMSA or abstaining from injury to animals. For example, the ritual offerings of flesh contemplate that the Gods will eat it, and again the Brahmins ate the offering, (Vedic Index Vol II. page 145.)

अर्थात्-"वैदिक सूक्त देखनेपर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी, उस समय अहिंसा का सिद्धांत प्रचलित नहीं हुआ था, इसका उदाहरण यह है कि यज्ञमें मांसकी आहुतियां देनेका मतलब यही हो सकता है कि देवता उसे खांय और ब्राह्मण तो यज्ञसे बचा हुआ खाते ही थे।"

इस विधान में निम्न लिखित बातें हैं-

(१) वैदिक सूक्तोंमें अहिंसा का सिद्धांत नहीं है,
(२) वैदिक समयमें मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी,
(३) यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थीं,
(४) मांसाहुति देनेका भाव देव उन मांस की आहुतियोंको खाते थे यही था,
(५) पश्चात् ऋत्विज् लोग ब्राह्मण उस मांसको खातेभी थे।

यह पांच विधान उक्त लेखमें हैं, इस लिये इनका विचार करना आवश्यक है। पहिले यज्ञमें जो मांस-

का हवन आजकल होता है वह उत्तर वेदी में होता है और वह वेदी पीछेसे यज्ञमें घुस गई है यह बात हमने इससे पूर्व ही बताई है। यदि वह बात मानी जाय तो ये पांचों के पांचों विधान स्वयं गिर जाते हैं, तथापि वह बात ध्यानमें रखते हुए इस बात की खोज हमें अधिक करनी चाहिये । प्रथम हम देखेंगे कि हवनमें मांस की आवश्यकता समझी जाती थी या नहीं, इस विषयमें निम्न लिखित वचन बडा बोधप्रद हो सकता है-

पुरुषं वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम । सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम स गां प्रविवेश। ते गामालभन्त । तस्यालब्धाया मेधोऽपचक्राम सोऽविं प्राविवेश । तेऽविमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम सोऽजं प्रविवेश। तेऽजमालभन्त तस्या लब्धस्य मेधोऽपचक्राम स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तं खनन्त इवान्वीषु तमन्वविन्दन् । तौ इमौ व्रीहियवौ । स यावद्व्रीर्यवद्ध वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति ।

शतपथ ब्राह्मण १ । २ । ३ । ६-९

पशुभ्य मेद उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजेयाताम् ॥ ऐतरेय ब्रा० २ । २ । २१

इन वचनोंका तात्पर्य यह है— 'पहिले देवोंने मनुष्य को काटा तब उनको पता लगा कि उसमेंसे यज्ञीय भाग भाग गया और घोडेमें छिप गया है, तब उन्होंनें घोडेको काट कर देखा, तो उनको विदित हुआ कि वहांसेभी यज्ञीय पदार्थ भाग गया और गायमें जाकर बैठ गया, तब उन्होंने गाय को काट डाला, तो भी उनको पता लगा कि वहांसे भी यज्ञका भाग भाग गया और मेंढेमें घुस गया, तो उन्होंनें उसको काटकर देखा तो वहांसे भी वह भाग गया और बकरेमें छिप गया, तो उन्होंनें बकरेको काटा, तो वह यज्ञीय पदार्थ भाग गया और भूमिमें घुस गया और जौ तथा चावल रूपसे ऊपर आगया । इस लिये चावल और जौ का हविही पूर्ण वीर्यवान् है क्यों कि यहां वह यज्ञका भाग स्थिर रहा । '

इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि पशुको काटनेपर उसके मृतदेहमें हवनके योग्य पदार्थ रहता नहीं है, धान्य में वह सदा स्थिर रहता है, इस लिये हवन धान्यका होना चाहिये ।

आजकल कई हिंदु वृष्टिके चार मास ' हविष्यान्न ' का भक्षण करते हैं, इसमें मांस नहीं होता है, चावल, जौ, गेहूं, मूंग आदि पदार्थ ही होते हैं। यदि मांस हविष्यमें पहिलेसे होता तो इस हविष्यान्नमें उसकी गिनती हो जाती । परंतु किसी भी स्थानपर हविष्यान्न में मांस नहीं लिया है ।

पूर्वोक्त ब्राह्मण ग्रंथके वचन में स्पष्ट बताया है कि प्राणियोंके शरीर काटते ही उनमेंसे हवनीय पदार्थ भाग जाता है उस मुर्दे शरीर में यज्ञीय पदार्थ मिलता नहीं है, यदि किसी स्थानपर हवनके योग्य पदार्थ मिलता है तो चावल, जौ आदि धान्य में ही मिलता है। यह वचन बडा बोधप्रद है। पाठक इसका खूब विचार करें ।

यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थी इसविषय में इतना कथन पर्याप्त है अब देव मांस खाते थे या नहीं इस विषयमें कुछ विचार करना आवश्यक है-

(२५) देवोंके नाम ।

देवोंके नामोंमें कई नाम ऐसे हैं कि जो निर्मांस भोजी ही देव थे ऐसा निश्चय कराते हैं, देखिये—

१ अ-मृतान्धसः = (अ-मृत-अन्धसः) मरा हुआ अन्न न खानेवाले। मृत शब्द मुर्देका वाचक है, इस लिये मुर्देका अन्न न खानेवाले यह इसका अर्थ होता है ।

२ आज्यपाः देवाः = घी पीनेवाले देव । यह वर्णन वा०यजुर्वेद अ. २१ मंत्र४०में देखने योग्य है ।

ये देवोंके नाम विचार करने योग्य हैं, ये देव निर्मांस भोजी थे यह बात स्पष्टरूपसे बताते हैं। देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है कि जो उनका मांसभोजी होना सिद्ध कर सके—

(३) हविर्भुजः=हविष्यान्न खानेवाले । हविष्यान्न का अर्थ म. मॉनियर वुइलियमने अपने कोश में यह दिया है-Food fit for an oblation (esp. rice or other kinds of grain)

clarified butter &c. चावल तथा अन्य धान्य, घी आदि।

ये देवोंके वैदिक नाम देखिये और वेदमें आये राक्षसों के नामोंकी भी तुलना इन नामोंके साथ कीजिये। तो पता लग जायगा कि कौन मांसभोजी हैं और कौन नहीं है-

(२६) राक्षसोंके नाम।

१ क्रव्याद = (क्रव्य + आद्) मांस खानेवाला,
२ पिशाच् = (पिशित + अश) रक्त पीनेवाला,
३ असुतृप् = (असु + तृप्) दूसरोंके प्राण लेनेसे तृप्त होनेवाला। किंवा प्राणोंकी तृप्ति करनेवाला।
४ गर्भाद = (गर्भ+ अद) गर्भ खानेवाला।
५ अण्डाद = (अण्ड+अद) अण्डे खानेवाला।
६ मांसाद = (मांस+अद) मांस खानेवाला।
७ कौणप = (कुणपं) प्रेत खानेवाला।
८ आशरः = हिंसा करनेवाला।
९ कर्बुरः = हिंसक।

ये नाम राक्षसोंका मांस भोजी होना स्पष्ट सिद्ध कर रहे हैं। देवों के नामों में ऐसी व्यक्त हिंसा, क्यों नहीं और राक्षसोंके नामों में स्पष्ट हिंसा क्यों है, इस का विचार करने से स्पष्ट पता लग जायगा कि देव मांस खानेवाले थे यह पक्ष सिद्ध होना कठिन है। हम जानते हैं कि कई आधुनिक कथाएं ऐसी हैं कि जिनमें देवों का मांसभक्षक होना बताया है,परंतु यदि देव सचमुच प्रारंभसे मांसभक्षक होते तो उनके नामों में मांसभक्षक एक तो नाम अवश्य आता, परंतु देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है जिससे देव मांसभक्षक होनेकी बात सिद्ध हो सके। और साथ साथ राक्षसों के नाम तो स्पष्ट उनका मांस-भक्षक होना सिद्ध कर रहे हैं।

यह देखने से पता लग जायगा कि देवों के उद्देश्यसे मांस की आहुतियां देनेकी संभावना सिद्ध होना कठिन है। अब अग्निके नाम देखिये।

१ क्रव्यात् = मांसभक्षक,
२ क्रव्यवाहनः = मांस लेजाने वाला,
३ विश्वाद् (विश्व + अद्) = सर्वभक्षक (ऋ० १० । १६ । ६)
४ उक्षान्नः (उक्षा + अन्नः) = उक्षा (बैल) खानेवाला,
५ वशान्नः (वशा + अन्नः) = गौ खानेवाला
६ घृतान्नः = घी खाने वाला,
७ सर्पिरन्नः = घी ,,

ये अग्निवाचक शब्द हैं। अन्य भी बहुतसे शब्द हैं, परंतु उन सबका विचार इस समय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इन सात शब्दों में पहिले दो शब्द राक्षस वाचक ही हैं। अर्थात् इन शब्दोंका जैसा राक्षस अर्थ होता है, वैसाही अग्नि भी अर्थ है। दोनों का शब्दार्थ 'मांसभक्षक' ही है इसीलिये ये शब्द अग्निपर भी लगते हैं। और राक्षसपर भी लगते हैं।'

यहां युरोपीयनों की युक्ति यह है कि "जिस कारण अग्निके नामोंमें (१) क्रव्याद्, (२) क्रव्यवाहन, (३) उक्षान्नः, (४) वशान्नः ये शब्द हैं, उस कारण यह बात सिद्ध है कि अग्निमें मांसकी आहुतियां डाली जाती थीं और हुतशेष मांस खाया जाता था।"

यह युरोपीयनोंकी युक्ति ठीक नहीं है क्योंकि अग्निके नामोंमें जो क्रव्याद्, क्रव्यवाहन आदि शब्द आगये हैं, वे यद्यपि अग्निमें मांस जलाने की बात बताते हैं तथापि वह यज्ञमें आहुति डाले हुए मांस के जलाने की नहीं है। क्रव्याद् अग्निके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है —

(२७) मांसभक्षक अग्नि।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ऋ. १० । १६ । ९

१ (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्रहिणोमि) = मांस-भक्षक अग्निको मैं दूर भेजता हूं।

२ (अयं इतरः जातवेदः देवेभ्यो हव्यं वहतु) = यह दूसरा जातवेद अग्नि है वह देवोंके लिये हवि लेजावे।

इस मंत्रमें दो अग्नि कहे हैं (१) एक क्रव्याद् अग्नि (२) और दूसरा जातवेद अग्नि जिसमें हवन किया जाता है। पहिला मांसभक्षक अग्नि दूर करना है और दूसरा धान्यभक्षक अग्नि पास रखना है। यह मंत्र विचार करने योग्य है। क्रव्याद् अर्थात् मांसभक्षक अग्नि वह है कि जिससे मुर्दे- प्रेत मृत शरीर-जलाये जाते हैं। यह मुर्दे जलाने वाला अग्नि मनुष्यके पास रहना नहीं चाहिये। परंतु मनुष्यों की बस्ती से बहुत दूर रखना चाहिये। अर्थात् मृत शरीर का दाह करनेका स्थान मनुष्य वस्तिसे दूर होना चाहिये।

दूसरा अग्नि जो देवोंके पास हव्य ले जाता है वह धान्यभक्षक अग्नि घर घरमें, ग्राम ग्राममें रहना चाहिये।

इन दो अग्नियोंका विचार करनेसे पता लगता है कि मुर्दे जलानेके कार्य में प्रयुक्त होनेके कारण ही अग्नि का नाम क्रव्याद् (मांसभक्षक) हुआ है। इससे मुर्दे जलाने की वैदिक प्रथा सिद्ध होती है। दूसरा अग्नि होम हवन के लिये प्रयुक्त होता है, इसमें मांस नहीं डाला जाता, परंतु (हव्यं वहतु) हव्य, हविर्द्रव्य, हवनीय पदार्थ-अर्थात् धान्यादि पदार्थ डाले जाते हैं। यदि इसमेंभी मांस डाला जाय तो दो अग्निमें भेद ही क्या होगा? इसलिये देवोंको हव्य देनेवाले अग्निमें मांस नहीं डाला जाता, इसका नाम जातवेद अग्नि है। यही निर्मांस भोजन करनेवाला अग्नि समझिये।

प्रेत जलानेवाला अग्नि मांस खानेवाला होता है यह बात स्पष्ट ही है। इसलिये यदि 'क्रव्यात् अग्नि' शब्द से मांसभोजन सिद्ध करना हो तो वह मुर्देका मांस होगा। वास्तव में देखा जाय तो मरे हुए मनुष्यके प्रेत जलानेवाले अग्नि का नाम क्रव्याद् होनेसे वह मांस मनुष्यके भक्षण के लिये समझना असंभव है।

(२८) अन्त्य यज्ञ।

वैदिक धर्मके अनुसार मनुष्यका सब आयुष्य मिलकर एक बडा भारी यज्ञ है अर्थात् अपने संपूर्ण जीवन का सब की भलाईके लिये यज्ञ करना है, इसमें मनुष्यके प्रेतकी अंतिम इष्टि होती है। यह अंतिम आहुति-अपने शरीरकी अंतिम आहुति डाल दी, तो जीवनभर चलनेवाले यज्ञकी पूर्णता हुई। यहां जीवन यज्ञमय करनेकी कितनी उच्च कल्पना है यह पाठक देखें। अर्थात् वैदिक धर्मकी दृष्टिसे मुर्दोंका जलाना केवल उसकी राख करना नहीं है, परंतु वह एक अंतिम यज्ञ है और इसमें पूर्णाहुति होनेके कारण बडा भारी यज्ञ है। प्रज्वलित अग्निमें अपने देहकी ही अंतिम आहुति डालनी होती है. इस दृष्टिसे देखा जाय तो अग्निमें मांस की-अपने संपूर्ण देहकी-आहुति डालना तो वैदिक धर्म के अनुकूल है ही परंतु क्या इसको समांस यज्ञ कहा जा सकता है? आजकल समांस यज्ञ का जो तात्पर्य है, घोडा गाय बैल के मांसकी आहुतियां वेदीपर चढाना माना जाता है। वह इस अंतिम इष्टीसे सर्वथा भिन्न है। इस अंतिम इष्टिमें मनुष्य-देहकी या किसी अन्य देहकी जो आहुति डाली जाती है वह खानेके लिये डाली नहीं जाती। परंतु मुर्दा घरमें रखना नहीं होता है, इसलिये उसको जलाया जाता है और यह अंतिम यज्ञ माना गया है। इसलिये यदि कोई कहे कि यज्ञमें मांस प्रयुक्त होता है तो वह सत्य है, परंतु जिस भावमें वह कहा और समझा जाता है वह सत्य भाव नहीं है। अतः हम कहते हैं कि अग्निका नाम 'क्रव्याद्' होनेपर भी उससे मनुष्यके मांस भक्षणके विषयमें पुष्टि नहीं मिल सकती।

वैदिक समयमें मुर्दे जलानेकी प्रथा होनेके कारण अग्निका नाम 'क्रव्याद्' हुआ है। सर्व साधारण रीतिसे मनुष्य मरते हैं, उनके मुर्दे जलाये जाते हैं, युद्धोंमें घोडे, बैल आदि अनेक पशुभी मनुष्योंके साथ मरते ही हैं, इन सबको वैदिक समयमें जलाया जाता था। यह प्रथा देखनेसे पाठक जान सकते हैं कि अग्नि का नाम क्रव्याद् होनेपर भी उससे मांसभक्षण सिद्ध नहीं हो सकता।

युरोपीयन पंडितों का ख्याल है कि मुर्दा जलाने के पूर्व गौके मांससे लपेटा जाता था, वे कहते हैं-- 'The ritual of the cremation of the dead

required the sloughter of a cow as an essencial part, the flesh being used to envelop the dead body " (Vedic index P. 147) अर्थात् ' अंत्येष्टि संस्कारके लिये गायकी कतल करना आवश्यक बात थी, क्योंकि गायके मांससे मुर्दा लपेटा जाता था। ' इसके प्रमाण के लिये उन्होंने निम्न लिखित मंत्र दिया है--

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व
पीवसा मेदसा च। नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो
दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥ ऋ. १० । १६ । ७

" (अग्नेः वर्म) अग्निकी ज्वालाएं (गोभिः) गौओंसे (परिव्ययस्व) बचाओ, (पीवसा मेदसा च) गाढी चरबीसे(सं प्रोर्णुष्व)ठीक प्रकार आच्छादित करो। ऐसा करनेसे (हरसा धृष्णुः) तेजसे घर्षण करनेवाला (जर्हृषाणः) आनंदित होनेवाला (दधृक् वि धक्ष्यन्) भस्म करनेवाला अग्नि (त्वा न इत् पर्यंखयाते) तुझे घेरकर नहीं जलावेगा। "

यहां " गोभिः " शब्द है इसलिये युरोपीयन लोग गौके मांस से मुर्देको लपेटनेका अनुमान करते हैं और ऐसे कार्य के लिये गौको काटना आवश्यक समझते हैं, भारतीय पंडितभी ऐसा ही मानते हैं !! परंतु यहां विचारणीय बात यह है कि इस मंत्रमें " गोभिः " शब्द बहुवचन में है, इसका अर्थ होता है " कमसे कम तीन गौओंसे " मनुष्यके एक मुर्देको मांस लपेटना हो तो क्या उस कार्य के लिये कमसेकम तीन गौवें आवश्यक होगीं? क्या यदि यह कर्म गोमांससे करना हो तो एक गौसे नहीं होगा? मनुष्यके शरीर के तीन चार गुणा गायका शरीर होता है, अतः मनुष्यके एक मुर्देको वेष्टन करनेके लिये कमसे कम तीन या अधिक गोओंकी आवश्यकता नहीं है।

इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि यहां कुच्छ बात ही और होगी। " गौ " शब्दसे दूध, दही, घी, चमडा आदि पदार्थ लिये जाते हैं इस विषयमें इस से पूर्व बताया जा चुका है और यह बात युरोपीयन भी मानते ही हैं। इसलिये देखना चाहिये कि कौनसी चीज के लिये तीन या तीनसे अधिक गौओंकी आवश्यकता अंत्येष्टि कर्म में पड सकती है और जो कार्य केवल एक ही गौसे निभ नहीं सकता।

मांस चर्म चर्बी आदि एक गौकी पर्याप्त होना संभव है, परंतु केवल घी ही एक ऐसा पदार्थ है कि जो तीनसे अधिक गौवोंसे लेना आवश्यक होगा। मृत शरीरको अग्नि देनेके पूर्व उसको घीसे लिपटा देना आवश्यक ही होता है। जो लोग हवन करते हैं उन को पता है कि अग्निमें डालनेवाले हविर्द्रव्य पर घी छोडा जाता है, समिधाओं को भी घी लगा कर अग्निमें छोडी जाती हैं, फिर इस 'अंत्य हवन' में इस शरीर रूपी अंतिम समिधाको डालनेके समय घीकी आवश्यकता क्यों नहीं होगी ? आजकल समिधाएं घीमें भिगोने के लिये जितना घी चाहिये उतना नहीं होता इस लिये समिधाओंपर दो चार बूंद छिडका देते हैं, परंतु शरीररूपी श्रेष्ठ समिधा अंत्य यज्ञमें डालनेके समय, वैदिक समयमें, कि जिस समय घीकी ऐसी न्यूनता नहीं थी, शरीर भर घी डाला जाता होगा इसमें क्या आश्चर्य है ? घीसे विष दूर होता है, शरीर जलनेके समय विषयुक्त वायु हवामें फैलते हैं, उनको शुद्ध करनेके लिये जितना घी डाला जाय उतना आवश्यक ही है इससे वायुशुद्धि भी होती है। शरीरके तोलके बराबर घी अंत्येष्टिमें बर्तना चाहिये ऐसी वैदिक प्रथा थी । आजकल यह कार्य दसपांच तोले घीसे हिंदू करते हैं, परंतु केवल आर्य समाजी ही अंत्येष्टि के लिये बहुत घी बर्तते हैं।

'गौ' शब्दसे गौसे उत्पन्न होनेवाला घी लियाही जाता है, यह कोई नयी बात नहीं है और इसको सब एकमतसे मानते हैं। ऐसा होते हुए भी उक्त मंत्र से गौ काटनेका अनुमान निकाला जाता है यह बडा आश्चर्य है। गौके बहुवचन की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ और इस कारण यहां के अर्थका अनर्थ हुआ यह स्पष्ट बात है। अस्तु।

इस मंत्रके देखनेसे भी गौ काटनेकी कल्पना वैदिक जमानेमें थी ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। एक

बात यहां ध्यानमें धरनी चाहिये, वह यह है कि, आज कल के समान वैदिक समयमें गौ सुपूजनीय मानी जाती थी; परंतु आज कल मृत गौके चर्म, हड्डी, चर्बी आदि पदार्थोंका कोई उपयोग नहीं करता, वैदिक समयमें मरे हुए गौके देहसे जितने उपयोगी पदार्थ हो सकते हैं बनाये जाते थे । आजकल हिंदुओंमें एक जाती है कि जो इस व्यवसायको कर सकती है. परंतु ठीक रीतिसे यह व्यवसाय आजकल नहीं किया जाता। अतः चमडा, हड्डी, चर्बी आदि पदार्थ व्यर्थ नाशमें जाते हैं ! पाठक विचार करें और इस रीतिसे गौके मृत शरीर से जो हो सकता है आर्थिक लाभ प्राप्त करने के व्यवहार से वंचित न रहें । इस प्रकारकी घनी चर्बीके गोले मृत शरीर पर रखे जाते थे यह बात पूर्वोक्त मंत्रों '(पीवसा मेदसा सं प्रोर्णुष्व) घनी चर्बीसे मुर्देको आच्छादित करो' इस भागमें स्पष्ट शब्दोंसे कही है । अर्थात् यह मंत्रभी गायका वध करनेकी आज्ञा नहीं दे रहा है। युरोपीयन लोग और उनके अनुयायी हमारे भारतीय भाई जिसको परिपुष्ट प्रमाण समझते हैं वह ऐसे ही कमजोर प्रमाण होते हैं !!!

२९ यज्ञमें पशु ।

यज्ञमें मनुष्य जो देवताओं के उद्देश्यमें देता है वह स्वयं खाता है, ऐसा मान कर युरोपीयन पंडित लिखते हैं-

'The usual food of the Vedic Indian, as far as flesh was concerned, can be gathered from the list of sacrificial victims: what man ate he presented to Gods--that is,the sheep, the goat, and the ox (Vedic Index Vol. II. P. 143)'

अर्थात्- 'वैदिक समयका हिंदी मनुष्य कौनसा मांस खाता था यह देखना हो तो यज्ञिय पशुओं की नामावली देखें; जो मनुष्य खाता है वह देवता को समर्पण करता है अर्थात् मेंढी, बकरी, बैल ।' इसका मतलब यह है कि ये पशु मार कर खाये जाते थे । ये युरोपियन लोग मानते हैं कि अश्वमेधमें घोडा मारा जाता था परंतु इनका कथन है कि वैदिक समयके आर्य अधिक तर घोडेका मांस नहीं खाते थे । यह युरोपीयनों की कृपा है कि उन्होंने घोडेके मांससे आर्योंको बचाया। नहीं तो जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा माननेपर और यज्ञ प्रक्रियामें घोडेको काटनेकी प्रथा थी ऐसा माननेपर युरोपीयनोंके सामनेसे आर्योंका बच जाना कठिन बात थी । परंतु 'वैदिक इन्डैक्स' पुस्तकमें घोडेका मांस खानेकी प्रथा नहीं थी ऐसा स्पष्ट लिखा है इस लिये हम उनके धन्यवाद गाते हैं । अब विचार करना है कि जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा तत्त्व माननेपर क्या क्या आपत्ति आती है । नरमेध में नरमांस और अश्वमेधमें अश्वमांस के विषयमें युरोपीयनों की संमति है कि इनका मांस नहीं खाया जाता था । यदि यह अपवाद मान लिया जाय तो मानना पडेगा कि देवताओं के उद्देश्यसे पशुसमर्पण करनेपर भी उसके मांस खानेका नियम नही है। तथापि क्षणभर के लिये मनुष्य और घोडेको हम एक ओर करते हैं; तो शेष रहे हुए यज्ञमें समर्पित होने वाले पशुआदिकों को निःसंदेह खाया जाता था ऐसा नही दिखाई देता । देखिये-

> वाचे प्लुषीन् । चक्षुषे मशकान् ।
> श्रोत्राय भृङ्गाः॥ यजु. २४ । २९

'वाणीके लिये दीमक, आंखके लिये मक्खियां और कानके लिये भ्रमरों का आलंभन करते हैं ।'

"जो देवता के उद्देश्यसे दिया जाता था वह वैदिक आर्योंका अन्न था" यदि यह म० मैकडोनेल और कीथ का सूत्र सच्चा माना जाय तो 'दीमक' मक्खियाँ और भ्रमर भी वैदिक आर्य खाते थे ऐसा मानना पडेगा !!! युरोपीयनों के अनुमान कितने भयंकर होते हैं इसका यह एक नमूना ही है । जो भारतीय भाई युरोपीयनोंके पीछे अपना कदम रखते हैं, उनको संभालकरही उनके पीछे जाना चाहिये । और देखिये—

> ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते, क्षत्राय राजन्यम्
> नृत्ताय सूतं, धर्माय सभाचरम् ॥ यजु, ३०।६

"ब्रह्मदेवता केलिये ब्राह्मण, क्षत्रदेवके लिये क्षत्रिय

धीर, नृत्य देव केलिये सूत, धर्म के लिये सभासद का आलंभन किया जाता है।"

यहां भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूत और धर्म सभाके सभासदों का बलि उक्त देवताओं के उद्देश्यसे करने का विधान माना जाय तो "ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूत और धर्मसभाके सदस्योंका मांस खानेकी प्रथा थी" ऐसा माननेमें क्या हर्ज होगा ?

देवताओं के उद्देश्यसे जो चढावा होता है वह उनका भक्ष्य अन्न था यह युरोपीयनोंका सूत्र माना जाय तो ब्राह्मण से लेकर दीमक तक कोई भी प्राणी बचेगा नहीं। यह बात देखकर भी ऐसे अनुमान निकालनेसे ये लोग हटते नहीं और हमारे लोग युरोपीयनोंके अनुमान अंधविश्वाससे मानते हैं ? "आलम्भन" क्रिया का अर्थ "देवताके उद्देश्यसे दी हुई भेंट, या वध" यह भाव वास्तविक नहीं है। उपनयनमें "हृदयालंभन" विधिमें हृदयका वध अर्थ नहीं है प्रत्युत हृदयस्पर्श, हृदयकी प्राप्ति ये अर्थ लिये जाते हैं। अथर्ववेद ७। १०९। ७ में "अक्षान् यद्बभ्रूनालभते" यह वाक्य है उसमें "भूरे रंगवाले पांसोंका वध" इष्ट नहीं है परंतु "स्वीकार" अर्थ इष्ट है। "लभ्" धातुका अर्थ "प्राप्ति" है। "आलभ्" का अर्थ "अत्यंत प्राप्ति" यही मुख्य अर्थ है। आगे इसका अर्थ वध हुआ। अब यह अर्थ लेकर पूर्वोक्त मंत्रोंका अर्थ देखिये-

१ ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते		= ज्ञानके लिये ज्ञानी को प्राप्त करता है।
२ क्षत्राय राजन्यं	,,	= शौर्य के लिये शूर को प्राप्त करता है।
३ नृत्ताय सूतं	,,	= नाचनेके लिये सूत को बुलाता है।
४ धर्माय सभाचरं	,,	= धर्मके ज्ञान के लिये धर्म सभा के सदस्यके पास जाता है।

इसके अर्थ युरोपीयन और ही समझते हैं जैसा देखिये-"For Brahman he binds Brahmana to the stake" अर्थात् "ब्रह्मदेवता के लिये वह ब्राह्मण को यूपके साथ बांध देता है।" पशु यूपके साथ बांधनेका तात्पर्य यही समझा जाता है कि आगे उसका वध करके उसके मांसका हवन हो। सरल अर्थ छोडकर तेढा मार्ग अवलंबन करनेसे कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है यह बात यहां स्पष्ट विदित हो रही है। तथा और देखिये-

> धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णा-न्वर्षाभ्यो अरुणान् शरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्शिशिराय॥
>
> यजु. २४। ११

"धूम्रवर्णवालोंका वसन्त ऋतु के लिये, श्वेत का ग्रीष्मके लिये, कालों का वर्षाके लिये, अरुण वर्ण वालों का शरदृतुके लिये, नानारंग युक्तों का हेमन्तके लिये और लालयुक्त कपिल वर्णवालोंका शिशिरऋतुके लिये आलंभन करता है।"

यहां पशुओंका वध उस ऋतुके निमित्त समझा जाता है। परंतु पाठक कृपया यहां एक सर्व साधारण नियम ही देखें कि "गर्मीके दिनों में सफेद रंगके कपडे सुख देते हैं और सर्दी के दिनों में काले या नसवारी कपडे सुख देते हैं।" यह हर एक मनुष्य जानता है और इसी प्रकार बर्तता भी है। इस वेद मंत्रमें किस ऋतुमें कौनसे वर्ण को महत्व देना चाहिये यह बात लिखी है। कपडे लेनेके समय भी इस मंत्रका उपदेश ध्यानमें रहेगा तोभी लाभ होगा। इस सामान्य नियम को कई पंडित पशुपरक लगाते हैं इसलिये उनकी बुद्धिकी किस रीतिसे प्रशंसा की जाय यह हमारे समझ में नहीं आता है। इस यज्ञ प्रकरण की पशुगिनती का तत्त्व समझाने के लिये पाठकों के सन्मुख कुछ मंत्र रख देते हैं-

> शार्दूलाय रोहित्। ऋषभाय गवयी।
>
> यजु. २४।३०

'व्याघ्रके लिये हिरन। बैलके लिये गाय।' पाठक थोडा विचार करें कि उसी पशु यज्ञके अध्यायमें ये मंत्र हैं। क्या यहां भाव है? व्याघ्र के लिये हिरन खानेके लिये देना है और बैलके लिये गाय प्रजा उत्पत्ति करनेके

लिये देना है। पाठक यहां 'आलंभ' शब्दका अर्थ अनुभव करें। पास पासके दो मंत्रोंमें भावार्थका इतना फर्क है। यदि यह अर्थभेद न देखा जाय तो अर्थ भी बन नहीं सकता। जिस बातके लिये शेर के सामने हरणी रखी जा सकती है उसी अर्थ के लिये बैलके सामने गाय रखी नहीं जा सकती। यदि इतना विचार पाठक करेंगे तो उनके सामने यह बात स्पष्ट हो जायगी कि जो समर्पित पशुओं-का वध ही एक अर्थ सर्वत्र लेना है वह भ्रम ही है।

यहां देखा जाय तो 'बैलके लिये गाय समर्पित' करना लिखा है, परंतु वृषभदेव (बैलदेव) तो मांस भक्षक ही नहीं है फिर उसके लिये गोमांस क्या कामका होगा? इसलिये अर्थ करनेवाले युरोपीयन पंडित और तदनुसार चलनेवाले भारतीय विद्वान थोडा बुद्धीसे काम लेंगे तो अच्छा होगा। और देखिये—

मनुष्यराजाय मर्कटः।

य. अ. २४। ३०

'मनुष्यों के राजाके लिये बंदर' लिखा है। खानेके लिये या खेलने के लिये या उपदेश लेनेके यह बात गुप्त है। राजा बंदर के समान न बने, मनन शील बने। बंदरकी हलचल जैसी व्यर्थ होती है वैसी राजाकी न हो। यह उपदेश लेने के लिये राजगृहमें बंदर रहे। यदि इससे कोई यह अर्थ निकाले की राजा केवल बंदर काही मांस खाये और किसी जानवरका न खाय या धान्य भी न खाय तो भी अर्थका अनर्थ ही होगा। इस विषयमें और देखिये-

शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे।

य. अ. २४। ३३

'व्याघ्र, भेडिया और सांप ये तेरे क्रोधके लिये अर्पण हैं।' क्या यहां क्रोध देवकी प्रीतिके लिये व्याघ्र, भेडिया और सांप (Tiger, wolf, viper) बलि दिये जाते थे और बलि देकर यज्ञशेष मांस खाया जाता था? वैदिक आर्य जो देवताओंके उद्देश्यसे समर्पित करते थे वही खाते थे यह युरोपीयनोंका अनुमान किस किस अनर्थमें पाठकोंको डालेगा, इसकी कोई हद नहीं है। क्रोधके लिये येही पशु क्यों हैं अन्य क्यों नहीं हैं? क्या इसका विचार नहीं होना चाहिये? वास्तव में वेदको इस मंत्र भाग के द्वारा यह उपदेश देना है कि जो कार्य क्रोध शरीरमें करता है वही देशमें शेर भेडीया और सांप करते हैं। जिनको अपने अंदर के क्रोधका नाशक धर्म समझमें नहीं आता वे इस उदाहरण से समझें कि व्याघ्र, भेडिया और सांप जिस प्रकार अन्य प्राणियों का घातपात करते हैं उस प्रकार ही शरीर में क्रोध जीवनतत्त्वका नाश करता है।

इतने मंत्रभाग पर्याप्त हैं। इतने उदाहरणोंका ही विचार पाठक करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि " आलभते " क्रियाका अर्थ सर्वत्र " वध " करना कितना अनर्थकारक है और यहां के इस पशुसमर्पण अध्यायके मंत्रोंका भाव कुछ और ही है। इस अध्यायसे वैदिक आर्योंके मांसभोजन की कल्पना होना असंभव है। यहां संपूर्ण अध्याय की संगति लगानेके लिये हमारे पास समय नहीं है, इसलिये नमूनेके तौरपर यहां थोडेसे मंत्र बताये हैं। इनके विचारसे कहनेवाली बात स्पष्ट हो जायगी और युरोपीयनोंका मत बडा भ्रामक है यह बात भी व्यक्त हो जायगी। इसलिये उनके मत मानकर उससे वैदिक आर्योंके मांसभक्षक होनेका अनुमान कोई न निकाले। वेदोंका अध्ययन हमें अपनी दृष्टि से करना चाहिये, वेदोंके तत्त्व अपने आंखसे देखनेका अभ्यास हमको अवश्य करना चाहिये। अन्यथा " अंधोंके पीछे चलनेवाले अंधोंकी अवस्था " हमारी बन जायगी, इसलिये यहां हम पाठकोंको सावधान करते हैं।

(३०) उक्षान्न और वशान्न।

अब यह बात रही है कि अग्निके नामोंमें जो 'उक्षान्न और वशान्न' शब्द आये हैं उनका तात्पर्य क्या है? युरोपीयन लोग मानते हैं कि " उक्षान्न " का तात्पर्य बैलका मांस और 'वशान्न' का अर्थ गोमांस है। जिस कारण ये नाम अग्निके

लिये वेदमें आये हैं उस कारण अग्निमें ये मांस डाले जाते थे और खाये भी जाते थे। यह युरोपीयनों का मत है। अग्निके नामोंसे यदि मनुष्यके भोजन की कल्पना की जाय तो अग्निका नाम "विश्वाद्' है उसका अर्थ "सर्व भक्षक" है। देखिये —

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥ ऋ. ८। ४४। २६

'मैं तरुण, जगत्पति, कवि, (विश्व +अदं) सर्व भक्षक, बहुत हलचल करनेवाले अग्निकी उत्तम विचारोंसे प्रशंसा करता हूं।' इस मंत्रमें 'विश्वादं' शब्द अग्निके लिये प्रयुक्त हुआ है। अग्नि (विश्व) सर्व(अद) भक्षक है, इससे मनुष्य सर्वभक्षक था, वैदिक कालके मनुष्य सर्व भक्षक थे ऐसे अनुमान निकालना अयोग्य है। अग्नि सर्वभक्षक है, उसमें जो डाला जाय वह भस्म करता है, परंतु इससे यह कैसा सिद्ध हो सकता है, कि उतनी चीजें मनुष्य अवश्य खाता था।

सप्त वृक्षों की समिधाएं अग्निमें डाली जाती हैं तो क्या इससे आम्र, खदिर, बिल्व, पलाश, वट, अर्क आदिकी लकडियां भी वैदिक आर्य खाते थे यह अनुमान हो सकता है? अनुमान निकालनेकी यह भयानक रीति होगी!! इस लिये 'उक्षान्न और वशान्न' शब्द अग्निवाचक वेदमें हैं इससे बैल और गाय का मांस वैदिक आर्य खाते थे ऐसा कहना अनुचित होगा।

पूर्व स्थानपर 'एकदेश के लिये संपूर्ण' का ग्रहण होता है यह बात बता दी है, उसी नियम के अनुसार "वशान्न" शब्दका अर्थ 'गौ से उत्पन्न होनेवाले दूध, घी आदि पदार्थ खाने वाला अग्नि' ऐसा होता है। इस विषयमें और उदाहरण देखिये --

ऋ. १। १३७। १ में निम्न लिखित शब्द हैं-- "गोश्रीताः, गवाशिरः' ये शब्द हैं। ये 'सोम' के विशेषण हैं। इनका शब्दार्थ है (गो) गायसे(श्रीता) मिश्रित। तथा (गो) गायसे (आशिरः) मिश्रित इन दोनों शब्दोंमें 'गो' शब्द है, परंतु यहां कोई भी गोमांस नहीं लेते, परंतु गायका दूध ही लेते हैं। म. ग्रिफिथने 'गवाशिरः' का अर्थ Bent with milk अर्थात् 'दूधसे मिश्रित' ऐसा किया है। सोम रसमें गाय का दूध मिलाकर बडा मधुर पेय बनाया जाता है यह बात सब जानते ही हैं।

श्री० सायणाचार्य जी भी 'गोश्रीताः, गवाशिरः' शब्दोंके विषयमें निम्न प्रकार भाष्य करते हैं -- "विकारे प्रकृतिशब्दः। पयोभिः मिश्रिताः। गोभिः क्षीरैः आशिरो मिश्रिताः संजाताः।" (ऋ.१।१३७। १-२) अर्थात् यहां गौ शब्दसे दूध लिया जाता है, उससे मिश्रित सोम यहां इन शब्दोंसे बताया जाता है।

सोम के साथ निम्न पदार्थोंका मिश्रण करनेकी सूचना वेदमंत्रों में दी है—

१ गवाशिरः = गो दुग्ध से मिश्रित सोम
(ऋ. १। १३७। १)
२ गोश्रिता = " " " "
३ दध्याशिरः = गौके दहीसे " " "
४ यवाशिरः = भूनेजौ के आटेसे मिश्रित सोम
(ऋ. १। १८७। ९)
५ त्र्याशिरः = दूध, दही और भूने हुए धान से मिश्रित सोम (ऋ. ५। २७। ५)
Mixed with milk, curds & parched grain (म. ग्रिफिथ)
६ रसाशिरः = रसोंसे मिश्रित सोम।
(ऋ. ३। ४८। १)

सोमके साथ कितने पदार्थ मिलाये जाते थे यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। सोम में मांस या रक्त मिलाने की बात कहीं भी नहीं है यह पाठक अवश्य ध्यानमें धारण करें।

सोम का नाम वेद में 'उक्षा' भी आता है उक्षा शब्दका धात्वर्थ (Sprinkling) सिंचन करनेवाला है। सोमसे रसकी बूंदें निकलती हैं इस कारण उस को उक्षा कहते हैं यह पूर्वस्थल में बताया भी है। पूर्व वेदीमें सोमरस का हवन होता है। इस लिये सोम अग्निका अन्न है यही भाव "उक्षान्न (सोमही

अन्न) " शब्द में है । बैल अर्थ यहां अपेक्षित नहीं है। क्यों कि बैलके मांस का हवन होता ही नहीं, फिर वह अग्निमें जाय कहांसे।

अब "वशान्न" शब्द रहा है । यहां वशा यह गौवाचक शब्द है और वह उस गौसे उत्पन्न होने वाले दूध अथवा घी आदि पदार्थोंका यहां वाचक है। अग्निमें घीका हवन होता ही है। "घृतपृष्ठ" शब्द अग्नि का वाचक है । इस का अर्थ 'घी है जिस के पीठ पर' यह शब्द अग्निमें घी का हवन होता है यह भाव स्पष्ट बता रहा है। यज्ञमें गाय का ही घी बर्ता जाता है, इस लिये अंशके लिये पूर्ण का प्रयोग अर्थात् घी के लिये गो शब्दका प्रयोग यहां हुआ है । यह 'वशान्न' शब्दका अर्थ है। यदि वेदको वशान्न शब्दसे गोमांस अर्थ अभीष्ट होता और मांसहवन इष्ट होता तो किसी न किसी स्थानपर जैसा 'घृत-पृष्ठ' शब्द वेदमें प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार 'मांस-पृष्ठ' शब्द वेदमें अग्निके लिये प्रयुक्त होता। परंतु वैसा एकभी शब्द प्रयुक्त नहीं है। इसलिये हम कह सकते हैं कि वेदको मांसहवन अभीष्ट नहीं है। वेद को जो मांसहवन अभीष्ट है वह केवल मुर्दा जलानेके समय अंत्येष्टी में प्रेतका ही अर्थात् मनुष्य देहका ही—हवन होता है। किसी अन्य पशुको काटना और उसके मांसका हवन करना वेदको संमत नहीं है। जो मांसवाहक या मांसभक्षक अर्थ वाले 'क्रव्याद, क्रव्यवाहन' शब्द अग्निके लिये वेदमें प्रयुक्त हुए हैं वे मृत शरीर जलानेके कारण प्रयुक्त हुए हैं यह बात इससे पूर्व बतलाई जा चुकी है।

यहां कई कहेंगे कि 'वशा' शब्दका अर्थ 'जन्मसे वंध्या गौ' ऐसा है इस लिये उससे दूध, घी, दही आदि निकलनेकी संभावना नहीं है, इस कारण वशान्न शब्दका अर्थ गोमांसभक्षक अग्नि ऐसा ही करना चाहिये। परंतु यह युक्ति ठीक नहीं है। 'वशा' शब्दके अर्थ म. आपटेके संस्कृत इंग्लिश के कोशमें निम्न लिखित प्रकार है— (A woman) स्त्री. (a wife) धर्मपत्नी, (A daughter) पुत्री, लडकी, (a husbands' Sister) पतिकी बहन, (a cow) गाय, (a barren woman) वंध्या स्त्री, (a barren cow) वंध्यागौ, (a female elephant) हाथीन।

वशा शब्दके इतने अर्थ होते हैं यह बात सब युरोपीयन भी मानते हैं, इसलिये इस विषयमें किसी को भी शंका करना उचित नहीं है। इन अर्थों को देखने से पता लग जायगा कि वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ है और उसका दूसरा अर्थ नहीं यह गलत बात है। वंध्या होनेपर वह गौ निकम्मी है इस कारण उसको काटकर खायी जाय, यह युरोपीयनों की युक्ति यहां उक्त अर्थके कारण सजती नहीं है। वशागौ के दूध का वर्णन अथर्व १०।१०।३१ में देखने योग्य है। अतः वशान्न शब्दका अर्थ गौसे उत्पन्न होनेवाले दूध, घी आदिका ही वाचक है इसमें संदेह नहीं।

इससे पूर्व 'उक्षान्न' शब्दका अर्थ 'सोम अन्न' बतायाही है। क्यों कि उक्षा शब्द सोमवाचक सब कोश कारोंने माना है। उक्षा शब्द जिस प्रकार बैल वाचक होता हुआ औषधिका वाचक होता है उसी प्रकार 'वृषभान्न' शब्द में 'वृषभ' शब्द बैलका वाचक होते हुए भी वनस्पतिका वाचक है। इस विषयमें इसी लेख में पहिले कहा जा चुका है। अब यहां इसका अर्थ श्री. सायणाचार्य कैसा करते हैं वह बताना है—

वृषभान्नाय बलवर्धकानि अन्नानि यस्य सः।

ऋ. सा. भाष्य २। १६। ५

'वृषभान्न शब्दका अर्थ बलवर्धक अन्न जो भक्षण करता है।' यह वृषभान्न शब्द ऋग्वेदमें इन्द्रका वाचक आया है, इस शब्दमें बैलके मांसकी बू किसी मांसपक्षी विद्वान को आजाय इसलिये यहां इस शब्दका सायण भाष्यमें दिया हुआ अर्थ बताया है। वृष, वृषभ, ऋषभ आदि शब्द बलवानके वाचक प्रसिद्ध हैं, इसलिये "ऋषभान्न, या वृषभान्न का अर्थ बलवर्धक अन्नका सेवन करने वाला" ऐसा होता है। वृष, वृषण, वृषभ ये सब शब्द वीर्यवान के वाचक हैं। उक्षा शब्द भी "सिंचन करनेवाला, वीर्य का

सिंचन करने में समर्थ " इस अर्थ में सब कोश कारोंने दिया है। सोम रस के समान वीर्यवर्धक, बलवर्धक तथा शक्तिवर्धक कोई अन्य वनस्पति नहीं है और मांस तो निश्चयसे ही नहीं है; इसीलिये उक्षा शब्द सोम का वाचक और ऋषभ, वृषभ, ऋषभक तथा वृषभक ये शब्द ऋषभक औषधिके नाम वेदमें हैं। इन शब्दों को केवल बैलके ही वाचक मानकर इन शब्दोंसे मांसभक्षण का मत सिद्ध करना पूर्वोक्त कारण से ही अयुक्त है।

युरोपीयन पंडितोंने तथा उनके अनुगामी भारत-वर्षीय विद्वानोंने वैदिक आर्योंके गोमांसभक्षक होनेके विषयमें जो भी वेद मंत्रों के प्रमाणवचन दिये थे, उन सबका यहां तक विचार हुआ। उनके प्रकाशित सब प्रमाणोंका उत्तर यहां तकके लेखमें दिया गया। उन्होंने ब्राह्मण ग्रंथोंके आधार से जो जो विधान वैदिक आर्योंके मांसभक्षक होनेके विषयमें किये हैं उनका विचार हम आगे करेंगे। क्यों कि वेदमंत्रों का विचार परिपूर्ण होनेके पश्चात् ही ब्राह्मणग्रंथोंपर किये गये आक्षेपोंका उत्तर देना योग्य है। वेदमंत्रों पर-छंदोबद्ध मंत्रभाग पर किये गये अनुमानों का विचार यहांतक किया और उनका एक भी विधान उत्तर दिये विना नहीं रखा है। इससे स्पष्टतापूर्वक सिद्ध हो चुका है कि, वेदमंत्रों के प्रमाणों से वैदिक समय के आर्यों का मांसभक्षक या गोमांसभक्षक होना सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हमें अपना पक्ष प्रदर्शित करना है। हमारा पक्ष यह है कि वैदिक मंत्रोंका उपदेश अहिंसा विषय में स्पष्ट है, यदि वैदिक मंत्रोंसे वैदिक धर्मी के लिये कोई योग्य भोजन सिद्ध हो सकता है, तो निर्मांस भोजनही है, विशेष कर गौको अवध्य कहने के कारण गोमांसका भोजन वेद मंत्रों से सिद्ध होना असंभव है।

वेदमें उपदेश देनेके तीन प्रकार होते हैं। जो कहना है वह वेद सबसे प्रथम नामों द्वारा कहता है, पश्चात् वही बात मंत्रभागों द्वारा बताता है, नंतर वही बात पूर्ण मंत्रों द्वारा कही जाती है। इस प्रकार तीन केंद्रों द्वारा जो बात कही जाय वह वेदका महासिद्धांत कर के समझी जा सकती है। अब हम अपने पक्ष की सिद्धता इसी रीतिसे कैसी होती है वह बतायेंगे-

(३१) नामोंमें गौकी अवध्यता।

गौके नाम " अघ्न्या, अही, अदिति " ये हैं और ये गौ अवध्य है यह बात स्वयं प्रकट कर रहे हैं, यह इससे पूर्व इसी लेखमें बताया है (इसी लेख का प्रकरण १८ वां देखिये)

यद्यपि " अ-घ्न्या " शब्द " गौका अ-वध्यत्व " बताता है और निःसंदेह बता रहा है तथापि सब यूरोपीयनों को यह भी अर्थ पसंद नहीं है। सेंट पिटर्स बर्ग के प्रसिद्ध कोशमें इस शब्दका " (Hard to overcome) काबूमें रखने के लिये कठिन " यह अर्थ अधिक योग्य माना है। म. वेबर महोदयने " अघ्न्या " शब्दके स्थानपर " अहन्या" शब्द मान कर उसका तात्पर्य " (Bright coloured like day) दिनके समान तेजस्वी रंगवाली " किया है। परंतु हम नहीं समझते कि अघ्न्या के स्थानपर अहन्या मानने के लिये क्या प्रमाण है? वा सेंट पिटर्सबर्ग कोश में पसंद किये अर्थके लिये भी प्रमाण क्या है?

वेदका अर्थ करनेके समय शब्दोंके मनमाने अर्थ नहीं किये जा सकते। यदि किसी शब्दके इस प्रकार अनेक अर्थ होने लगे और कौनसा अर्थ स्वीकार करने योग्य है और कौनसा नहीं इस विषयमें संदेह हुआ, तो अन्यत्र आधे या पूरे मंत्र भागोंमें क्या उपदेश दिया है यह देखकर ही सत्य अर्थका निर्णय करना चाहिये। अघ्न्या शब्द के तीन अर्थ इस समय हमारे सन्मुख आगये हैं—

१ अघ्न्या = (अहंतव्या) अवध्य (श्री. यास्काचार्यादि भारतीय विद्वान)
२ " = काबूमें रखनेके लिये कठिन (सेंट पिटर्सबर्ग कोश)
३ " = दिनके समान तेजस्वी (म. वेबर)

अब देखना है कि इन तीन अर्थोंमें से कौनसा अर्थ वैदिक है और कौनसा अवैदिक है। इसका निर्णय अन्य मंत्रभाग देखनेसे ही हो सकता है।

इस लिये गौविषयक अन्य आज्ञाएं अब हम देखते हैं--

३२ गोवधनिषेधक वेदवचन।

गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४२ ॥
घृतं दुहानामदितिं जनाय...मा हिंसीः ॥४९॥
यजु. १३

" तेजस्वी अवध्य गौ है इसलिये उसकी हिंसा न कर। अवध्य गौ है और वह जनोंके लिये घी देती है इसलिये गौकी हिंसा मत् कर। " इस प्रकार गायकी हिंसा करना मना किया है, यह हिंसा न करनेकी आज्ञा है, अब दूसरी रीतिसे भी यही उपदेश वेदमंत्रोंमें दिया है वे मंत्र देखिये--

आरे गो-हा नृहा वधो वो अस्तु......।
ऋ. ७। ५६। १६

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्......॥
ऋ. १। ११४। १०

" गौका वध तथा मनुष्यका वध करनेवाला दूर रहे। " यह दूसरी रीतिका निषेध है।

इन मंत्रों के देखनेसे पता लग जायगा कि गाय का वध न करना ही वेदका धर्म है, वेदका उद्देश्य गोवध न हो यही है, इसलिये " गोघ्न, गोहा " अर्थात् गोघातकों को दूर करनेका उपदेश है। गोघातक मनुष्य हो तो भी उसको दूर करना है अथवा जिस किसी अन्य रीतिसे गौका वध होता हो तो उस को भी दूर करना है। सब प्रकार से होनेवाला गोवध दूर करनेकी आज्ञा वेद देता है इसी लिये " अघ्न्या " शब्दके अन्य अर्थ वैदिक अर्थ नहीं हैं, परंतु " अवध्या " यही एक अर्थ वेदमें अभीष्ट है क्योंकि वेदमें गोवध सब प्रकारसे निषिद्ध माना है।

जो तो प्र०वेबर महोदयने अघ्न्या शब्दका अर्थ दिनके समान तेजस्वी करके करनेका प्रयत्न किया है वह अर्थ तो अन्य युरोपीयन भी पसंद नहीं करते हैं। इसलिये उसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि अ-घ्न्या, अ-ही, अ-दिति इन शब्दोंका अर्थ अवध्य गौ निश्चित ठहर गया, तो गौ काटने और गोमांस भक्षण करनेकी बात सिद्ध नहीं होगी, यह जिनको डर होता है वे ऐसे अर्थोंसे घबराते हैं। परंतु हमें वैसी घबराहटमें पडनेका कोई प्रयोजन नहीं है।

३३ वेदमें अहिंसा।

वेदमें केवल गौकी ही अहिंसा नहीं लिखी है परंतु सर्व साधारण द्विपाद चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है। सब भूतोंको मित्रदृष्टि से देखनेका वेदका महा सिद्धांत इससे पूर्व इस लेखके नवम प्रकरणमें बताया ही है। उसके साथ निम्न लिखित प्रमाणोंका विचार कीजिये--

अश्वं...मा हिंसीः... ॥ ४१ ॥
अविं...मा हिंसीः... ॥ ४३ ॥
इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् ॥ ४७ ॥
इमं मा हिंसीः...वाजिनम् ॥ ४८ ॥
इममूर्णायुं...मा हिंसीः ॥ ५० ॥ यजु. १३
मा हिंसीः पुरुषम्॥
यजु. १६। ३

" घोडा, बकरा, द्विपाद पशु, ऊन देनेवाला तथा पुरुष इनकी हिंसा न कर। " ये मंत्र मित्रदृष्टिवाले मंत्रों के साथ पढनेसे वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आजायगा। सर्व साधारण प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे देखो और इन प्राणियों की हिंसा तो कभी न करो, यह वेदका उपदेश मनुष्यों के लिये है। इतना होते हुए भी कई यूरोपीयन समझते हैं कि वेदमें अहिंसा का तत्त्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ गया है।

यह माना जा सकता है कि जैन बौद्धों ने जिस प्रकार आत्यंतिक और ऐकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेद में नहीं थी, परंतु अहिंसाका सिद्धांत ही वेद में नहीं था यह कहना अयुक्त है। वेद सर्व साधारण आचरण के लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है, परंतु प्रसंगविशेष में युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे रहनेकी आज्ञा भी नहीं देता, अर्थात् वेद में इसी प्रकार की अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महायुद्धमें आवश्यक वध की भी उसमें संभावना है। परंतु कोई कहे कि अपने पेटके

लिये दूसरों का वध किया जाय तो वैसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देता है। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये।

पूर्वोक्त " अ-घ्न्या, अ-दिति, अ-ही " इन शब्दोंका अर्थ इस सब विचार के प्रकाश में ही देखना चाहिये। इसलिये हम कहते हैं कि इनका अर्थ "अवध्य गौ" ऐसा ही है और दूसरा नहीं है। जिस समय ये शब्द गौ से भिन्न किसी दूसरे पदार्थ के लिये आ जांय उस समय बेशक इनका अर्थ दूसरा हो, परंतु इन गौ वाचक शब्दोंका अर्थ "अवध्य गौ" इतना ही है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदने अघ्न्या आदि शब्दोंने गौ का अवध्यत्व बताया है और मंत्र भागों द्वारा भी गौ का अवध्यत्व व्यक्त किया है, अब पूर्ण मंत्रों द्वारा गौ का अवध्यत्व वेद में बताया है वा नहीं यह देखना है —

(३४) अनुपमेय गौ ।

वेद का मत है कि अन्य सब पदार्थोंके लिये उपमा मिल सकती है, परंतु गाय के लिये कोई उपमा नहीं है, इतने गाय के उपकार मनुष्य जाती पर हैं, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥
यजुर्वेद. २३ । ४८

" ज्ञानतेज के लिये सूर्य की उपमा है, द्युलोक के लिये समुद्र की उपमा है, तथा पृथिवी बहुत बडी है तो भी उससे इन्द्र अधिक समर्थ है, परंतु गौ के साथ किसी की भी तुलना नहीं होती। "

देखिये वेदमें गौका कितना महत्त्व वर्णन किया है। यद्यपि पृथ्वी के लिये भी गौ शब्द आया है तथापि गाय वाचकही गौ शब्द इस मंत्र में है और यहां व्यक्त शब्दों द्वारा उसकी निरुपमेयता बतायी है। इस विषय में और देखिये—

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती महि विश्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि ।
यजु—८ । ४३

'इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुती ये नाम, हे(अघ्न्ये) अवध्य गौ! तेरे हैं।' इन नामोंका अर्थ देखिये-

१ इडा (Refreshing draught) उत्साह वर्धक पेय देनेवाली,
२ रन्ता (Delightful) आनंद बढानेवाली,
३ हव्या (Worshipful) पूजा करने योग्य, सत्कार करने योग्य
४ काम्या (Loveable) प्रेम करने योग्य
५ चन्द्रा (Splendid) सुंदर, तेजस्वी
६ ज्योती (Shining one) प्रकाशमान्
७ अदिति (Inviolable) जिसके साथ क्रूर व्यवहार करने योग्य नहीं, अखंडनीय
८ सरस्वती (Full of sap) रससे युक्त, अमृतरूपी रस देनेवाली
९ मही (The Mighty One) विशेष महत्त्व-वाली
१०विश्रुती (Most glorious) विशेष कीर्तियुक्त
११ अघ्न्या (Not to be killed) अवध्य।

ये ग्यारह नाम जो वेदमें गौका महत्त्व वर्णन कर रहे हैं वह आजभी हमारे अनुभवमें आ रहा है, इसलिये इसका विस्तार यहां अधिक करनेकी आवश्यकता नहीं है। ये अर्थ यूरोपीयनोंके स्वीकृतही अर्थ हैं हमने इनके गूढार्थ जान बूझकर ही दिये नहीं हैं। पाठकही विचार करें कि जिस गौका इतना महत्त्व वेदमें वर्णन किया है उसका वध कैसे हो सकता है! देखिये और-

३५ गौसे लाभ ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥　　ऋ. १ । १६४ । २७

" यह अवध्य गौ अश्विनी देवोंके लिये दूध देवे और वह हमारे बडे सौभाग्य के लिए बहुत बढे।" इस मंत्रमें (सा अघ्न्या वर्धताम्) यह अवध्य गौ बढे ऐसा कहा है: यह मंत्र विशेष मनन करने योग्य है। इसका अर्थ म. ग्रिफिथ करते है- and may she prosper to our high advantage अर्थात्

" हमारे लाभ के लिए गौकी वृद्धि हो । " जब इस मंत्र द्वारा यह बात सिद्ध हुई की गौकी वृद्धिसे ही हमारा सौभाग्य बढना है तो गौ काटनेकी संभावना ही कहांसे हो सकती है ? गौकी संख्या और गौके गुण इनकी वृद्धि होनेसे मनुष्यका अगणित लाभ हो सकता है यह बात वेद मुक्तकंठसे अनेक प्रकारसे कह रहा है । इतना वेदका महत्त्व वैदिक कालमें माना जाता था । इस लिए हम कह सकते हैं कि वैदिक कालमें गौकी उन्नति करने की ओर ही धार्मिक लोगों का प्रयत्न था । और देखिये--

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।
ऋ. १ । १६४ । ४०

" गौ उत्तम घास खा कर (भगवती) भाग्यवान बने और हम उस गौसे (भगवन्तः) भाग्यवान या धनवान हों । हे अवध्य गौ! तू सदा (तृणं अद्धि) घास ही खा और (आ - चरन्ती) वापस आते समय (शुद्धं उदकं पिब) शुद्ध जल पान कर । "

गौको क्या खिलाना चाहिये वह इस मंत्रमें सुंदर शब्दों द्वारा कहा है। गौ घास ही खावे,यदि गौ पालनी हो तो उत्तम घास उसे मिले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये । उत्तम घास और शुद्ध जल पीने वाली गौसे जो दूध आ सकता है वही मनुष्यके लिये आरोग्य-वर्धक हो सकता है । पक्का अन्न, धान्य, सडे पदार्थ तथा मनुष्यकी विष्ठा आदि गौको खिला कर जो दूध मिलता है वह उतना लाभदायक नहीं हो सकता। इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र अवश्य देखिये-

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावती नामजावयः । तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छ न्त्वाभृताः ॥
अथर्व. ८।७।२५

"जो जो औषधियां सदा अवध्य गौवें खाती हैं और जो भेड बकरियां खाती है वह सब औषधियां तेरा सुख बढावें । " इस मंत्रका अर्थ म० ग्रिफिथने किया हुआभी यहां देखिये-The multitude of herbs whereon The Cows, whom none may slaughter, feed, all that are food for goats & sheep, so many Plants, brought hitherwards, give shelter and defence to thee.

इसका अर्थ ऊपर दिया ही है । इसमें "अघ्न्या शब्द का अर्थ "whom none may slaughter अर्थात् जिनका कोई वध न करे " यह दिया है। यदि गौवाचक अघ्न्या शब्दका यह अर्थ है और उसका वध करना किसी को भी उचित नहीं तो फिर गोमांसभक्षण की प्रथा आर्यों में थी यह किस आधारसे यूरोपीयन विद्वान मानते हैं ?

(३६) अवध्य बैल ।

" अघ्न्या " शब्द जैसा गौ के लिये प्रयुक्त होता है वैसाही " अघ्न्य " शब्द बैलवाचक भी है। इस लिये गौ के समानही बैल भी रक्षणीय और वर्धनीय तथा अवध्य ही है देखिये—

सं गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्ति हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७॥
शतयाजं स यजते नैनं दुवन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमा जुहोति॥ १८
अथर्व० ९ । ४ ।

" जो गौवोंका पति (अघ्न्यः) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, वह आंखों से अकाल के दुर्भिक्ष्य का नाश करता है और अपने सींगोंसे राक्षसोंको दूर भगाता है॥ सौ यज्ञोंसे वह यजन करता है, (एनं) इस बैलको (अग्नयः न दुवन्ति) अग्नि जलाते नहीं हैं । सब देव उसे उन्नत करते हैं जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मण को (ऋषभं) बैल (आजुहोति)अर्पण करता है । " इसमें निम्न लिखित बातें देखने योग्य है--

१ बैल का नाम " अघ्न्य " है जिसका अर्थ " अवध्य " है ।

२ एक बैल ब्राह्मणको दान करना सौ यज्ञके बराबर है । (मंत्र १८) बैल का रक्षण करना, संवर्धन करना और दान करनेका इतना महत्त्व है ।

३ उसको अग्नि जलाते नहीं हैं, इतना बैलका महत्त्व है । (मं०- १८)

४ बैल कभी कानोंसे बुरे शब्द सुनता नहीं, क्यों कि सब उसकी प्रशंसा ही करते हैं। (मं०-१७)

५ बैल अपने आंखसे अकाल के दौर्भिक्ष्यको दूर करता है (अवर्तिं हन्ति चक्षुषा)॥ बैल खेती द्वारा अकाल को दूर हटाता है। (मं०-१७)

यह बैलका वर्णन पढनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि बैल ऐसा उपयोगी है, इसलिये कौन उसको अपने पेटकी पूर्ति के लिये काटेगा और अकाल से त्रस्त होने के लिये तैयार होगा। यदि बैल अकाल को दूर करता है तो उसे सुरक्षित रखना ही आवश्यक है।

उक्त मंत्र १८ के उत्तरार्ध का भाषांतर युरोपीयन लोग कैसा करते हैं वह यहां देखिये--

म० ग्रीफिथ—All Gods promote the Brahman who offers the Bull in sacrifice.

म० विटनी–All Gods quicken him, who makes offering of a bull to a Brahman

म. विटनीका अर्थ कुच्छ अंशमें ठीक है जो हमने अपने अर्थमें ऊपर दिया है। म. ग्रिफिथने बिलकुल उलटा अर्थ लिखा है। मंत्रमें "ब्राह्मणे आ जुहोति" है जिसका अर्थ "ब्राह्मणके लिये समर्पण करता है" ऐसा होता है, परंतु उन्होंने न समझते हुए ही मन माना अर्थ लिख कर अर्थका अनर्थ किया है। ब्राह्मणके लिये बैल समर्पण करनेकी बात इसी सूक्तमें अगले ही मंत्रमें कही है–

ब्राह्मणेभ्यो ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥

अथर्व० ९।४।१९

"ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना मन श्रेष्ठ बनाता है उसकी अपनी गोशाला में गौवें और बैल बढ गये हैं ऐसा वह शीघ्रही देखता है।' इस मंत्र से स्पष्ट पता लगता है कि ब्राह्मण को बैल दान देना एक वैदिक समय की प्रथा थी। ब्राह्मण को गौवें तो मिलती ही थी, परंतु गौवोंके पति के स्थान की पूर्ति करने के लिये उनको उत्तम बैल की आवश्यकता होना स्वाभाविक है, वह बैल उनको इस प्रकार दान से प्राप्त होते थे।

इस प्रकार वेदमें बैल का महत्त्व वर्णन करके उसको अवध्य कहा है। इस कारण हम कह सकते हैं कि बैल का वध भी वेद विहित नहीं है।

(३७) गोवध प्रतिबंध।

निम्न मंत्रमें गौका महत्त्व और उसका वध करने का प्रतिबंध स्पष्ट शब्दों में पाठक देख सकते हैं–

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाम-
मृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट।

ऋग्वेद. ८।१०१।१५

"गौ रुद्रोंकी माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत का केन्द्र है। जो समझ सकता है उस मनुष्यसे कहता हूं कि (अनागां) निष्पाप (अ-दितिं) अवध्य गौ है इस लिये इस (गां मा-वधिष्ट) गौका वध मत् कर।"

इस मंत्र में सब समझदार मनुष्योंको आज्ञा सुनाई है कि "गौ सदा के लिये निष्पाप और अवध्य है अतः उसका वध कोई भी न करे। पाठक इस दूसरे चरण का बहुत विचार करें। इसका म. ग्रिफिथका किया अर्थ देखिये–to folk who understand, will I proclaim it–injure not Aditi the cow, the sinless. 'समझनेको जिन मनुष्योंको अकल है उन सब मनुष्यों को वेदने यह आदेश सुनाया है कि गौ सदाके लिये निष्पाप और अवध्य है, अतः उसका वध कोई न करे।' जिन मनुष्यों को ज्ञान बिलकुल नहीं है, जो अपना हित अहित नहीं समझ सकते और जो धर्मोपदेश का महत्त्व जान नहीं सकते, वे ही गोवध करते होंगे। क्यों कि वेद की इतनी स्पष्ट आज्ञा गोवध निषेध के विषय में होने पर वैदिक धर्मी किस प्रकार गोवध कर सकते हैं? इस लिये हम पहिले से लिखते आये हैं, कि वेदका शिष्ट संमत धर्म गोवध को प्रतिबंध करता है।

(३८) गायका प्रयोजन।

गाय मनुष्यों के सुख के लिये ही रखनी है, वह सुख गायसे मिलनेवाले पदार्थों से प्राप्त होता है, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये–

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् । घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥ ऋ. ५ । ८३ । ८

" बडा बर्तन उठाओ, उसमें अमृतकी धाराएं चलती रहें; गौके घीसे द्युलोक और पृथिवी भर दो, गौओं से उत्तम पान प्राप्त हो । "

इस मंत्रमें गौरक्षाका प्रयोजन कह दिया है। गौसे बडे बर्तन भरने योग्य दूध मिलता रहे, उस से बहुत घी उत्पन्न हो, वह घी सबको खानेके लिये विपुल मिले । तथा गौओंका दूधभी उत्तम रीतिसे लोक अधिक प्रमाण में पीते जांय। गौका यह प्रयोजन है। गौओंकी उन्नति करके लोग यह बात सिद्ध करें।

(३९) मांसभक्षण निषेध ।

वेदमें मांसभक्षण निषेध स्पष्ट शब्दोंमें है। यह केवल मांसभक्षण का ही निषेध नहीं है प्रत्युत "मांस वर्ग " के सब पदार्थोंका निषेध है। मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार ये चार बातें मांसवर्गकी हैं, इन चारोंके सेवन का निषेध वेदमें किया है, वह मंत्र अब देखिये--

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः ॥ अ०६।७०।१

" जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जूआ है उसी प्रकार पुरुषका मन स्त्रीमें (निहन्यते) निःसंदेह मारा जाता है। " अर्थ जिन व्यवहारोंसे मनुष्यका मन गिर जाता है, मारा जाता है,या पतित हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं- मांसभक्षण. सुरापान, जूआ खेलना और व्यभिचार करना । इनसे मनुष्य पतित होता है इसकारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह " वर्ग का निषेध " होनेके कारण इनमेंसे किसी एक का पूर्ण निषेध करनेसे सब अन्योंका निषेध स्वयं हो जाता है, देखिये एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद.

" जूआ मत खेल, खेती कर " इस मंत्रमें जूआ मत् खेल यह पूर्ण निषेध है, यह जूआ पूर्वोक्त मांसवर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध होता है तो तत्सम अन्य जो जो उस वर्गमें परिगणित हों उन सब का निषेध स्वयं हो जाता है; इस पद्धतिसे पूर्वोक्त चारों का निषेध एकदम हो गया। यह बात युरोपीयनोंने भी स्वीकृत की है देखिये Its (of flesh) use, is disapproved, as in a passage of the Atharvaveda, (6-70-1) where meat is classed with Sura (सुरा) or intoxicating liquor, as a bad thing. अर्थात् " अथर्व वेदके कां-६-७०-१ मंत्रमें मांसभक्षणका निषेध किया है जहां मांस को मद्य के साथ लिख कर वह बुरा है करके जतलाया है । " इससे निःसंदेह सिद्ध हुआ कि मांसभक्षण, मद्यपान, जूआ खेलना और व्यभिचार करना ये चार बातें मनुष्यको गिरानेवाली हैं, इसलिये किसी को भी इसकेसाथ अपना संबंध रखना उचित नहीं है ।

अब पाठक विचार करें कि जिस समय कि बुरे आचरणकी एक वर्गमें परिगणना होती है, और उस वर्गको ही संबंध रखने अयोग्य कहा जाता है, तथा उस वर्गके प्रत्येक बुरे आचरणसे मनका अधःपात निःसंदेह होगा, ऐसी भयकी सूचना भी दी जाती है तब मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार की बातें उस धर्ममें किस प्रकार आनेकी संभावना भी हो सकती है ।

इस लिये हम कहते हैं कि वैदिक धर्म में उक्त चार दुराचारों की संभावना ही नहीं हो सकती। यहां कई लोग यह भी कहेंगे कि मांससे मद्य अधिक बुरा है, मद्यसे जूआ अधिक बुरा है और जूएसे व्यभिचार बहुत ही बुरा है, परंतु यह बुराई में तरतमभाव है। यह क्रम उलटा भी कहा जा सकता है, क्यों कि स्त्री के कारण जूआ खेलने की और उससे धन कमानेकी आवश्यकता होती है इ० । परंतु इस प्रकार बुराई में तरतम भाव देखनेकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है। बुराई यदि मनके अधःपातके लिये कारण होनी है तो सर्वथा ही त्याज्य है। इस लिये उस में बारीकी देखनेकी आवश्यकता नहीं है।

अतः वेदकी दृष्टिसे मांसभक्षण उतनाही अधःपातका हेतु है जितना व्यभिचार, अतः उस मार्ग से कोई न जाय। -(क्रमशः)

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

(१) स्वयंशिक्षक माला।

वेदका स्वयंशिक्षक। १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥)
" " २ द्वितीय भाग ... " १॥)

(२) योगसाधनमाला।

१ संध्योपासना। ... मूल्य १॥)
२ संध्याका अनुष्ठान। ... " ॥)
३ वैदिक प्राण विद्या। ... " १)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र)। ... " १।)
५ योगसाधनकी तैयारी। " १)
६ योगके आसन। (सचित्र) " २)
७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " ॥।)

(३) यजुर्वेद स्वाध्याय।

१ यजु. अ. ३०। नरमेध। मूल्य मूल्य १)
२ यजु. अ. ३२। एकेश्वर उपासना। " ॥)
३ यजु. अ. ३६। शांतिका उपाय। " ॥=)

(४) देवतापरिचय ग्रंथमाला।

१ रुद्र देवता परिचय। .. मूल्य॥)
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता। ... " ॥=)
३. ३३ देवताओंका विचार। " =)
४ देवताविचार। .... " =)
५ अग्निविद्या।... " १॥)

(५) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

१ बालकधर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। " =)
३वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक " ≡)

(६) उपनिषद् ग्रंथमाला।

१ केन उपनिषद् .... मूल्य १।)
२ ईश उपनिषद् " ॥।=)

(७) आगम-निबंध-माला

१ वैदिकराज्यपद्धति। ... मू. ।-)
२ मानवी आयुष्य। ... " ।)
३ वैदिकसभ्यता ... ... " ॥।)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ... " ॥)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा। " ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या। .... " ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। " ॥)
८ वेदमें चर्खा। .... " ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय। " ॥।)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता " ॥)
११ तर्कसे वेदका अर्थ। .... " ॥)
१२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र। " =)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न। .... " =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने। " ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या। " =)
१६ वैदिक जलविद्या। " =)
१७ आत्मशक्तिका विकास। " ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला " ॥)

(८) ब्राह्मण- बोध-माला।

१ शतपथ बोधामृत। " ।)

(९) अन्य पुस्तक।

१ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग " १)
२ " " द्वितीय " " १)
३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १)
४ " " द्वितीय " " ॥।)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

'केन' उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद का मनन. २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ "केन" शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांतियोंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ "यक्ष" कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्टी, २२ त्रिलोकी २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यक्ष, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है ।

मूल्य १।) डाकव्यय=) है ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

यज्ञकी पुस्तक

वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १) रु. डाकव्यय ।)

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १
२ " " " " २
३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)
५ अद्भुत कुमार-संभव " " "
६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार
(ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी)

७ यज्ञका महत्त्व (संपादकीय)
८ यज्ञका क्षेत्र "
९ यज्ञका गुढ तत्त्व "
१० औषधियों का महामख "
११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा
(ले.- श्री. पं. धर्मदेवजी)
१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है? (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी)

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।
मूल्य ॥) आठ आने । डाक व्यय-) एक आना ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

विषयसूची ।

गोमांसभक्षण की प्रथा । पृ. १२९-१६८

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

REGISTERED 1463

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक ९

क्रमांक ९३

भाद्रपद

संवत् १९८४

सितंबर

सन१९२७

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विषयसूची।

संस्कृत पाठ माला।

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है ।]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक. लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।

इस भागमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौवीसवें भागतकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्पपरिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अग्नि विद्या।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं।

१ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५ अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और क्षत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १५ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचाल, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिनें, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि, २३ यज्ञका झंडा, २४ गुहा निवासी अग्नि, २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर (चित्र), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या।

हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं। इस पुस्तकके पढने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है।

मूल्य १॥) रु. डाकव्यय =) है

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

महाभारत।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत

तैय्यार हैं।

१ आदिपर्व — पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७) रु.

२ सभापर्व — पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २) और वी. पी. से.) रु. २॥)

३ वनपर्व — पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८) रु. और वी. पी.से. ९) रु.

४ विराटपर्व — पृष्ठसंख्या ३०६ मू० म. आ. से १॥) और वी. पी. से २) रु.

५ उद्योगपर्व — पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५) रु. और वी. पी. से ६ रु.

६ महाभारत समालोचना—

१ प्रथम भाग। मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी. से ॥|=) आने।

२ द्वितीय भाग। मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी से ॥|=) आने।

महाभारतके ग्राहकोंके लये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

वर्ष ८
अंक ९
क्रमांक ९३

भाद्रपद
संवत् १९८४
सितंबर
सन १९२७

वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

आर्योंकी चार प्रतिज्ञाएँ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजिनेना जयेम॥

ऋग्वेद० १०। ४२। १०

हम सब (गोभिः) गौओंके द्वारा (दुरेवां अ-मतिं) अकालादि बुरी अवस्थाको (तरेम) तैरेंगे अर्थात् उस आपत्तिसे दूर होंगे, तथा हे (पुरुहूत) सबके द्वारा प्रशंसित! (विश्वां क्षुधं) सब प्रकारकी भूखको (यवेन) जौं से हटा देंगे। और (वयं प्रथमाः) हम सबसे पहिले बनकर (राजभिः धनानि) क्षत्रियोंके साथ राज्यैश्वर्यादि धनोंको प्राप्त करेंगे तथा (अस्माकेन वृजिनेन) अपने ही पुरुषार्थसे (जयेम) शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे।

(१) हम घरमें गौओंकी पालना करके अकाल को दूर करेंगे, (२) धान्य फल आदिके भोजनसे हम अपनी क्षुधा निवारण करेंगे, (३) हम सबसे आगे होकर अपने क्षात्रवीरोंको संग लेकर सब प्रकारके धन प्राप्त करेंगे तथा (४) हम अपने ही पुरुषार्थ के बलसे सर्वत्र विजयी बनेंगे।

यजुर्वेद का मुद्रण ।

यजुर्वेदका मुद्रण छत्तीस अध्याय तक हो चुका है अगले सप्ताहमें संपूर्ण यजुर्वेद का मुद्रण समाप्त होगा। तत्पश्चात् इसीमें काण्वशाखा की संहिताके पाठभेद मुद्रित किये जांयगे। इस से यह एक ही पुस्तक लेनेसे यजुर्वेद की " वाजसनेयी, माध्यंदिन और काण्व" शाखाकी संहिताएं पाठकों को मिलेंगी; काण्व शाखाकी संहिता अलग लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी। इस समय तक १६० पृष्ठ छप चुके हैं और आगे ४० पृष्ठ छप कर पाठकोंके पास २०० पृष्ठोंका पहला भाग रवाना हो जायगा। इस प्रथम भागमें संपूर्ण वाजसनेयी संहिता और काण्व शाखा संहिता के पाठ भेद दिये जांयगे और दूसरे भागमें ऋषिसूची, देवतासूची, मंत्रपादसूची आदि दी जायगी, यह दूसरा भाग भी करीब इतना ही बडा होगा।

वेदका पुस्तक सजिल्द ही पाठकों के पास भेजने का संकल्प हमने किया है। दोनों भाग सजिल्द ही भेजे जांयगे। यदि कोई ग्राहक मूल्यकी न्यूनता करने के लिये विना जिल्द चाहेंगे तो उनको विना जिल्द भेजा जायगा। जो ग्राहक वापसी डाक से वेदके पुस्तक मांग रहे हैं उनको यह ध्यानमें धारण करना चाहिये कि अभी करीब ४० पृष्ठ छपने हैं और उस कार्य के लिये कमसे कम एक मासकी आवश्यकता होगी, उसके बाद जिल्द बनेगी, और पश्चात् पुस्तक ग्राहकों के पास भेजा जायगा।

ग्राहक पेशगी मूल्य २) रु. मनी आर्डर से भेज रहे हैं। जो पेशगी मूल्य का लाभ उठाना चाहते हैं उनको शीघ्रही म. आ. से मूल्य भेजना चाहिये।

वी. पी. बंद

ग्राहक पुस्तकें वी. पी. से मंगवाते हैं और विना कारण लौटा देते हैं। इस लिये महाभारत, वेद आदि पुस्तकें वी. पी. द्वारा भेजना बंद किया है, क्योंकि इसके डाकव्यय के समेत वी. पी. पर यहां हमें बहुत व्यय करना पडता है और वी. पी. वापस होनेके कारण हमारा व्यर्थ नुकसान होता है। गत जनवरीसे इस समयतक हमारा इस प्रकार का नुकसान चार सौं रु. से भी अधिक होगया है। इस कारण उक्त पुस्तकें वी. पी. द्वारा भेजना बंद किया है।

सबसे आश्चर्य इस बात का है कि वारंवार पूछने पर भी वी. पी. वापस करनेका कारण लिखते नहीं, स्वयं मंगवाकर वी. पी. वापस करनेसे व्यर्थ नुकसान होता है, इस बातका भी इनको ख्याल नहीं है।

पोषक वर्ग ।

हमने लिखा था कि पोषक वर्गको हम सालभरमें १२) से १६) रु. तकके पुस्तक भेंट करेंगे, परंतु इस वर्ष प्रतिमास महाभारतके दो अंक मुद्रित करनेके कारण १२) महाभारत, ४) वैदिक धर्म तथा ५) रु. की अन्य पुस्तकें सब मिलकर इस वर्ष २१) रु. से भी अधिक पुस्तकें पोषक वर्गको मिलेंगी। यह देखकर कई लोग पोषक वर्ग में नाम दाखल करनेकी इच्छा प्रकट कर रहे हैं, यह निःसंदेह उत्साहकी बात है। परंतु जिस समय पोषक वर्ग में नाम दाखल करनेवाले सौ रु. चंदा देनेपर पिछले छपे सब पुस्तक मुफ्त मांगते हैं तब उनको क्या उत्तर देना यह हमारे समझमें नहीं आता। इस समय महाभारत ५० अंक मुद्रित हुए हैं जिनका मूल्य २५) रु. है, समालोचना और वेद मिलकर ३) रु. है, अन्य पुस्तकें करीब ३०) रु. से अधिक मूल्य की हैं। अर्थात सौ रु. पोषक वर्गका चंदा देनेपर यदि ग्राहकोंको पूर्व मुद्रित ६०) रु. के पुस्तक उपहार रूपमें चाहिये और फिर प्रतिवर्ष २०) रु. के पुस्तक तो मिलते ही रहेंगे, तो हम नहीं समझते कि इस प्रकार करने से स्वाध्याय मंडल की अवस्था कैसी बनेगी? इस लिये हम नम्रतापूर्वक इन सज्जनोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस संस्थाके सच्चे " पोषक " बनेंगे तो दोनोंके लिये अच्छा होगा। इस विषयमें इससे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

——०——

बडे भाई का हृदय!

अली बंधुओं का नाम भारत वर्षमें सब जानते ही हैं, उन में से बडे भाई साहब की अध्यक्षता में गत पक्षमें कलकत्ता में मुसलमानों की बडी सभा, "रंगीला रसूल" का निषेध करनेके लिये, हुई थी। जिस में बडे भाई साहबने तथा अन्यान्य मुसलमान वक्ताओं ने अपना हृदय खोल कर, जो कुछ हिंदुओं के विरुद्ध कहा जा सकता है, कह दिया है। उस कथन का सारांश यह है कि—" हिंदुओंने मुसलमानोंको मस्जिद् के सामने बाजे बजाने तथा गोवध करने आदिके अनेक प्रकरणोंमें बडा तंग किया, परंतु हमने वह सब सहन किया, अब वेही हिंदु हमारे पैगंबर की निंदा करके हमें चिडा रहे हैं! हिंदुओंकी अन्य बातें हमने सहन कीं, परंतु पैगंबर की निंदा हम कदापि नहीं सहन कर सकते। यदि हिंदु ऐसाही करते रहेंगे तो हमारा छुरा उनके गलोंपर चलेगा इ० इ० ।" पशु शक्तिका प्रदर्शन करते हुए जो कुछ कहा जा सकता है वह इनकी वक्तृतामें पाठक देख सकते हैं, उस विषपूर्ण वक्तृत्व को यहांअधिक दुहराना हम उचित नहीं समझते।

मस्जिद के सामने बाजा बजनेके विषयमें हिंदुओंने मुसलमानों को कोई कष्ट नहीं दिया है, परंतु जहां इस विषयका कभी सवालभी उठा नहीं था और जहां मुसलमान बादशहाओं के समयसे इस समय तक बराबर बाजा बजता रहा; वहांभी आजकल बाजे का नया सवाल खडा करना और हिंदुओं को अपने धर्मोत्सव आनंदसे मनानेमें भी नानाप्रकारकी रुकावटें खडी करना यह कार्य मौलाना साहेबके भाईबंधोंका ही आजकल चारों ओर हो रहा है, जिससे सब लोगोंका यह करीब निश्चयसा हो रहा है कि ये मस्जिदें सचमुच प्रार्थनामंदिरें नहीं हैं, परंतु लाठी, पत्थर, बोतलें आदि आज कलके निःशस्त्रोंके शस्त्र जमा करनेके तथा लडाईका प्रारंभिक विचार करने के स्थान हैं। आज कलके मुसलमानों के व्यवहार देखनेसे यदि कईयोंने ऐसा अनुमान किया तो वह अयोग्य न होगा।

हिंदुस्थानसे बाहरके संपूर्ण मुसलमानोंके देशोंमें मस्जिद के सामने बाजा बज सकता है, पारिस और लंदनके मस्जिदोंके अंदर तथा बाहर भी बाजा बज सकता है, परंतु भारतवर्षमें नहीं बज सकता। जहां मुसलमान भारतवर्षमें आनेके पूर्व समयसे बजता था वहां भी आज नहीं बज सकता, यह मुसलमानों की वृत्ति देखकर हर एक जान सकता है कि इन चार पांच वर्षोंके अंदर मुसलमानोंके दिलों में कुछ भिन्नही विचार कार्य कर रहा है, जिसके कारण किसी भी रीतिसे ये हिंदुओंसे मित्रताका व्यवहार करनेको तैयार नहीं होते हैं।

जिन्होंने महमूद गझनवीके समयसे लेकर इस समय तक हिंदुओं के मंदिर तोडने और देवताओं की मूर्तियां भंग करनेका ही काम किया है, जिस की ग्वाही सेकडों मंदिर और हजारहां मूर्तियां इस समय भी दे रही हैं, जिन्होंने अमूल्य ग्रंथसंग्रह जलाकर भस्म करनेमें हो परम पुरुषार्थ समझा उसी जातीके लोग खुली सभामें कहनेसे शरमाते नहीं कि " हमने हिंदुओं को इस बातकी क्षमा की। "

बडे भाई साहेब! क्षमा तो हिंदुओंने ही की है। श्री. छत्रपति शिवाजी महाराज ने मस्जिदोंकी रक्षा की, कुराण शरीफ की रक्षा की और मुसलमानों की स्त्रीयोंको भी रक्षा की। इसके विरुद्ध मुसलमानों ने मंदिरोंको तोडा, मूर्तियां फोड दीं स्त्रियों को भ्रष्ट किया। इसलिये हिंदुओं के उदार हृदयके साथ आपका मुकाबला ही कहां हो सकता है? इस समय तक यदि किसी जातीने क्षमा की होगी तो हिंदुओं ने

ही की है, आपकी जातीने नहीं। इतना होते हुए आप ऐसा बोलने का साहस कर रहे हैं इसका कारण इतनाही है कि आपके साथ यथायोग्य बर्ताव करनेका पाठ हिंदुओं ने अभीतक नहीं सीखा है।

आप " रंगीला रसूल " काही मामला लीजिये। जिसके लिये मुसलमान इतनी जबरदस्त हलचल मचा रहे हैं क्या दूसरों के धर्माचार्यों और देवताओं की निंदा करनेवाले किताब मुसलमानों ने इस समयतक नहीं लिखे हैं? मुहम्मद इस्माइल की " रद्दे हिंदु " नामक पुस्तक में हिंदु देवताओं के विषयमें जितना बुरा लिखा है उतना रंगीला रसूल के कलम में जहर नहीं है, यह पुस्तक सन१९१३ में लखनऊ के फखरुल मताबे प्रेससे छपी और प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी, पूर्ण पुरुष श्रीकृष्णचंद्रजी तथा धर्मात्मा पांडवोंको ऐसे शब्द लिखे हैं कि जो रंगीले रसूल का लेखक अपने पुस्तकमें लिख नहीं सका। " नाकिसुल अक्ल, बेगैरत, बेशरम, बद चाल, बदरस्म, बद आइन, खूनी, फिसादी, हरामके जने, व्यभिचारी आदि विशेषण उक्त महान् विभूतियोंके लिये मुसलमानोंने लिखे हैं। दूसरी किताब " तुहफतुल हिंदमय कथा सलोई " महम्मद अब्दुल्लाकी लिखी हुई है, इसमें ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि देवोंके विषयमें इतना बुरा लिखा है कि जितना रंगीला रसूल का लेखक भी लिख नहीं सकता। तीसरी पुस्तक " तेगे फकीर बगर्दने फकीर " है। इसके लेखक मौ० महम्मद हुसेन है, इन्होंने किसी भी हिंदु देवताको नहीं छोडा है। ये पुस्तकें तो रंगीला रसूल पुस्तक छपनेके कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। जो लोग रंगीले रसूल के लिये इतना आंदोलन कर रहे हैं वे इन पुस्तकों को कैसे सहन करते हैं ? इन पुस्तकों का उत्तर रंगीला रसूल के लेखक ने उनके समान भाषामें दिया है। अब मुसलमानों को वह इतना क्यों चुभता है? जितनी सभ्यता उक्त पुस्तकों के लेखकों में थी उतनी ही सभ्यता रंगीले रसूल के लेखक में है। ये दोनों गुन्हे यदि समान हैं तो पहिला गुन्हा अनेक मुसलमानों ने किया था, कई वर्ष हिंदु चुप रहे। परंतु अब एक हिंदुने उक्त पुस्तकों का उत्तर वैसी ही भाषामें देनेका यत्न किया।

हमें तो दोनों के लेख दिलसे पसंद नहीं हैं, परंतु जो मौलाना साहेब रंगीला रसूल के विरुद्ध इतनी आवाज उठा रहे हैं उनको उक्त पुस्तक वैसे ही तिरस्कार करने योग्य क्यों नहीं प्रतीत होते यही हमें आश्चर्य प्रतीत होता है !!!

अभी हालमें खाजा हसन निजामी के पेशवा पत्र में श्री छत्रपतिशिवाजी महाराज के विषयमें और उन की प्रातः स्मरणीय माता जिजाबाई जी के विषय में जो घृणित लेख छापा था, क्या यह लेख मौलाना बंधु जानते नहीं हैं? यदि आक्षेपणीय लेखोंकी संख्या और घृणितता के विषयमें देखा जाय तो जितना घृणित साहित्य मुसलमान लेखकोंने हिंदुओं को चिडानेके लिये गत तीस वर्षोंमें लिखा है उसका सौवा हिस्सा भी हिंदुओंने उसके उत्तर देनेके लिये लिखा नहीं है। श्री शिवाजी महाराज को व्यभिचार से उत्पन्न हुआ लिखने में खाजा साहेब को कोई शरम नहीं आई, परंतु वेही मुसलमान रंगीले रसूल से चिड रहे हैं। उनको रंगीले रसूल के लेखक तथा प्रकाशक के ऊपर अपना क्रोध प्रकट करनेके पूर्व अंग्रेज ग्रंथकारोंपर जो कुछ करना है करना चाहिये; क्योंकि म० गिबन (Gibbon) ने अपने "रोमन साम्राज्यका पतन" (Decline and fall of Roman empire) नामक पुस्तक में तथा म. वेल्स (Mr. H. G. Wells) ने " इतिहास की रूपरेषा " (Outline of History) नामक पुस्तक में महात्मा रसूल के विषय में जो कुछ लिखा है वह रंगीले रसूल पुस्तक के तात्पर्यसे कुछ कम नहीं है। यदि मौलाना साहेब में कुछ जोर लगाने की शक्ति है तो वे उक्त अंग्रेजोंपर अपनी शक्ति का प्रयोग करें और देखें कि उनका जोर वहां क्या कार्य कर सकता है।

मौलाना साहेब कतल, खून और छुरेकी धमकी बार बार देने लगे हैं। परंतु केवल शब्दों के गर्जाने के उपरान्त यदि वैसा आचरण करना है तो देर न लगाते हुए अपने दिलके माफक करना शुरू कर दें। हिंदु जातीपर ऐसी अवस्थाएं कईवार आचुकी हैं। आपका इतिहास कुल १३००वर्षों का ही है, परंतु

हिंदु जाती आज कमसे कम चालीस हजार वर्षों से जीवित है वह निःसंदेह आपकी दया पर जीवित नहीं है। आपका छुरा जगत् में आनेसे पूर्वकाल से वह जीवित है, उस जातीपर अनंत संकट आये तो भी वह जीवित रही है, वह आपको दयाकी याचना नहीं करती है, इस लिये आप खुले दिल से जो करना है शुरू कर दें।

हिंदुजाति शांतिप्रिय है, इस लिये क्रूर अत्याचार असह्य रूपमें होने तक वह अपनी शांति नहीं छोडती; परंतु उसकी शांति के लिये भी सीमा है और जब आप जैसे मौलाना साहब उस मर्यादा का अतिक्रमण करेंगे, उस समय हिंदुओं को भी आत्मरक्षा के लिये आवश्यकता हुई तो शांति छोडना पडेगा।

वास्तविक देखा जाय तो हिंदु और मुसलमा . ये भारत देशके पुत्र होनेके कारण परस्पर देशभाई हैं और इनको अपना भाईका नाता कभी भूलना नहीं चाहिये। यह नाता हिंदू कभी भी भूले नहीं हैं। दोनों आपस में भाई होनेके कारण दोनों के अंदर परस्पर के विषय में बंधुप्रेम रहना आवश्यक है, केवल हिंदुओं के अंदर बंधुभाव रहनेसे कार्य नहीं चल सकता।

हिंदुओं के अंदर मुसलमानों के विषयमें प्रेमभाव है इसके कई प्रमाण दिखाये जा सकते हैं। सबसे बडा प्रमाण यह है कि जहां मुसलमानों का अल्प प्रमाण है वहां हिंदुओं के बहुसंख्यामें रहते हुए भी अत्यल्प संख्या वाले मुसलमान सुरक्षित हैं और एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है कि बहुसंख्याक हिंदुओं ने अल्प संख्यावाले मुसलमानों पर थोडा भी अत्याचार किया हो। इसके विरुद्ध मुसलमानों का हृदय देखिये, निजाम हैदराबाद रियासत में रियासत मुसलमानों को होने के कारण जबसे वहां अलीगडके मुसलमानों का प्राबल्य हुआ है तबसे हिंदुओं पर एकसे एक बढ कर आपत्तियां आ रहीं है, किसी हिंदु रियासतमें हिंदुओं ने मुसलमानों को ऐसे कष्ट नहीं दिये जैसे निजाम की रियासतमें हिंदू भोग रहे हैं। दूसरा उदाहरण सीमा प्रांतका है जहां अल्प संख्याक हिंदुओं को घरदार छोडकर भागना ही पडा है। हिंदु हृदय और मुसलमानी हृदय का भेद यहां दीख पडता है।

हिंदुओं ने ऊर्दु, पर्शीयन, अरेबिक आदि पढकर मुसलमानी साहित्यमें प्रवीणता संपादन की है। साहित्यको अपनाना जातीय बंधुभाव का द्योतक है। तथा ताबूद आदिमें मुसलमानों की अपेक्षा हिंदुओं का शोर अधिक होता है, बुरा हो या भला हो—परंतु मुसलमानों के उत्सवों को अपनाने के विषयमें निःसंदेह यह हिंदुओं का प्रयत्न है। इससे हम कह सकते हैं कि हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ मित्रता करने के लिये अपना हाथ हद्दसे अधिक फैलाया है; परंतु इसके बदले मुसलमानों ने क्या किया है? कितने मुसलमान आर्यसाहित्य के तथा संस्कृत भाषाके अभ्यासी और प्रेमी हैं? कितने मुसलमान हिंदुओं के देवों के महोत्सवों में संमिलित होते हैं? परंतु उलटा कहा जा सकता है कि उत्सवों में रुकावटें डालना, मूर्तियों को तोडना आदि में इनका हाथ अधिक कार्य करता है। पाठक गत तीन चारसौ वर्षोंका इतिहास देखेंगे, तो उनको पता लग जायेगा कि हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ मित्रता करनेका जो जो प्रयत्न किया है वह निष्फल हुआ है इतना ही नहीं प्रत्युत उस कारण हिंदुओंको नुकसान उठाना पडा है। इससे पाठकों को पता लग जायगा कि कौन मनमें बंधुभाव रखता है और कौन द्वेषका जहर रखता है।

यहां प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है। दोनों एकदेश के पुत्र होते हुए मुसलमान हिंदओंके साथ इतना वैर भाव क्यों धारण करते हैं? इसका एक ही कारण है और वह यह है कि जितने उत्कट भाव से हिंदु भारत देश को अपनी मातृभूमि समझते हैं, वह भाव मुसलमानों में नहीं है।

हिंदु लोक अपने सहस्रों तीर्थों, क्षेत्रों, नगरों और पर्वतों को पवित्र मानते हैं, उनकी पवित्रतासे अपने आपको पवित्र होने की कल्पना करते हैं, सेकडों नदियोंके जलसे अपने पवित्र होने का भाव हिंदूओं में जागृत है अर्थात् भारत देश के विषय में हिंदुओं के मन में पूज्य मातृभाव तथा अत्यंत आदर है, इतनाही नहीं परंतु हिंदु संस्कृति के साथ भारत-देशका घनिष्ट संबंध होनेसे हिंदुओं के ऋषिमुनि

योगी तथा रामकृष्णादि देव देवता फलाने स्थानपर विराजमान थे इत्यादि भाव आज भी जाग्रत होने के कारण हिंदु के मनमें भारत देशके विषयमें अपने पनका भाव विशेष रूपमें है।

इसके विरुद्ध मुसलमानों का भाव देखिये, उनके मन में भारत के काशी रामेश्वर का आदर नहीं, हिमालयके शिखरों का प्रेम नहीं, भागिरथी का सन्मान नहीं, परंतु मक्का मदीना, इजिप्तके स्थान, तुर्कस्थान के देश, वहांका खलीफा आदि इनके प्रेमके स्थान भारत देशके बाहर हैं, इसलिये इनका जितना प्रेम उन विदेशोंसे है उतना इस देशसे नहीं है। यह भूमि तो उनकी भोगभूमि है। जैसी आज-कल अंग्रेजों की भोगभूमि भारतवर्ष है उसीप्रकार इनकी भोगभूमि यह है।

हिंदू यदि भारत भूमिको पूजनीय " मातृभूमि " समझते हैं तो ये इसको उपभोग्य स्त्री भूमि समझते है। इतना मनोवृत्तिमें भेद है इसी कारण ये लोग हिंदुओं पर हमला करनेकी बातें बोलते रहते हैं।

दूसरी कल्पना इनके मनमें " मुसलमानी जगत् " की घुसी है जो हिंदुओं से अपने आपको भिन्न मान-नेके लिये इनको उत्साहित करती है। तुर्कस्थान, इजिप्त, ईराण, अरबस्थान, अफगाणिस्थान, बलुचि-स्तान ये देश केवल मुसलमानों के हैं उनके साथ लगता हुआ भारतका उत्तर देश मुसलमानों के संख्याधिक्य से युक्त है, तुर्कस्थानसे बंगालतक का-एक मुसलमानी साम्राज्य करने की कल्पना सर-सय्यद अहमदखानके प्रयत्न से इनमें बढ गई है। यह कल्पना भारतके स्वतंत्र स्वराज्य की कल्पना से विरोधी होनेके कारण और हिंदुओं के साथ मिलजुल कर मिलनेवाला अंशरूप स्वराज्य की अपेक्षा, मुसलमानी जगत् के साथ मिलनेसे प्राप्त होनेवाला इस्लामी राज्य इन्हे अधिक प्रिय होनेके कारण ये हिंदुओं के साथ मित्रता करनेके लिये नहीं झुकते, और अपने ही घमंडमें कूदते हैं।

जबतक भारतके स्वतंत्र स्वराज्यसे अपना कल्याण है यह हिंदुओं के दिलकी भावना के समान भावना इनके मनमें खडी न हो जाय और मुसलमानी राज्य का शासन भारत पर करनेकी घातक कल्पनाका इनको विस्मरण न हो जाय, तब तक ये हिंदुओं के साथ ऐसाही क्रूरता का व्यवहार करेंगे।

हम जानते हैं कि इनके अंदर कई लोग ऐसे भी हैं कि जो हिंदुओं के समान भारतको मातृभूमि मानते हैंऔर भारतकास्वतंत्र स्वराज्य होनेकी शुभ भावना मनमें रखते हैं, परंतु इनकी इस जातिमें अल्पसंख्या है और फिसादके लिये गुंडोंको भडकानेवाले इन सज्जनोंकी पर्वा भी नहीं करते।

ऐसी अवस्था है इसलिये किसी भी स्थानपर समझौता होता नहीं और दिनों दिन झगडा बढताही जाता है।

हिंदुओं के लिये चारों ओर से बहुत बुरे दिन आये हैं। हिंदु स्वराज्य चाहते हैं इसलिये स्वभावतः भेदनीतिमें चतुर अंग्रेज सरकार हिंदु मुसलमानों में भेद रहना चाहते हैं इसलिये मुसलमानों को संतुष्ट रखते जाते हैं, सरकार की यह नीति होनेके कारण युरोपीयन ओहदेदार स्वभावतः मुसलमानों के पक्षमें रहते हैं, मुसलमान ओहदेदार अपनी जाती का पक्ष लेते हैं इस लिये हिंदुओं पर सख्ती करते हैं, हिंदु ओहदेदार आगये तो वे अपने आपको निः-पक्षपाती सिद्ध करनेकी इच्छासे हिंदुओं को दबाते हैं। रियासतों में जाओ तो मुसलमानी रियासतोंमें हिंदुओंपर खुले खुला अत्याचार होते हैं, इसके उदा-हरण हैदराबाद रियासतमें किसी भी समय पाठक देख सकते हैं, हिंदु रियासतों में जहां विरोधी मुसल-मान हो वहां अपने आपको निःपक्षपात सिद्ध करनेके लिये हिंदुओं पर सख्ती होती है इसके उदाह-रण बडोदा, अक्कलकोट आदिमें पाठक देख सकते हैं। बडोदा रियासतमें शिवाजी महोत्सव हुआ, उसमें सरकारी अधिकारियों के सामने मुसलमानोंने उत्सवपर हमला किया, मूर्ति पर भी धावा किया, वहां की वहां गीरफ्तारीयां हो गई, परंतु अब प्रायः सभी छोड दिये गये है और दो चार गुंडोंको नाममा-त्र दंड किया गया। यदि किसी मुसलमान रियासत में हिंदु इस प्रकार फिसाद करते, तो कितना अनर्थ हो जाता ?

इस प्रकार हिंदुओं का त्राता इस समय दूसरा कोई नहीं है। हिंदूओं के नेताओंमेंभी मुसलमान नेताओंके समान अपनी जातिके हित करने के विषयमें एकमत नहीं है, यह सबसे दुर्दैव की बात है। इसलिये इस समय हिंदुओं को अपना उद्धार स्वयं करनेका यत्न करना चाहिये। अपनी संघटना करनेका प्रयत्न सबसे प्रथम प्रथम होना चाहिये संघटना का बल और वैयक्तिक शक्ति हिंदुओंको जितनी बढ सकती है बढानी चाहिये। हम अन्योंकी मित्रताके विना भी जीवित रह सकते हैं, इतना सिद्ध होने योग्य अपना सामुदायिक और वैयक्तिक बल हिंदुओं को बढाना चाहिये और अपने आंतरिक उपजातियों का संघर्ष जितना न्यून हो सकता है न्यून करना चाहिये।

यदि हिंदु स्वभावतः फिसादी होते तो उनका झगडा इसाई, यहुदी, पार्सी आदि अल्प संख्या वालों से हो जाता, परंतु वह नहीं होता, इससे हिंदु स्वयं फिसादी नहीं है यह बात स्वयं सिद्ध है। मुसलमानों का झगडा जैसा हिंदुओं से है वैसा पार्सीयों से भी होता है इसलिये फिसाद की जड केवल मुसलमानों के मनोवृत्तिमें है। यह जड हटाने का उपाय हिंदुओं की उत्तम संघटना होनेके विना हो नहीं सकता, इसलिये अपनी संघटनाके करनेके कार्यमें हिंदुओं को विशेष दत्तचित्त होना चाहिये। साथ साथ अपनेमें से जो धर्मान्तरित हिंदु हैं, उनको पुनः अपने में मिलानेका कार्य भी विशेष प्रयत्न से करना चाहिये। शुद्धि और संघटना द्वारा तथा आत्मशुद्धि द्वारा यदि हिंदु अपना बल बढायेंगे तो ही इस समय उनका बचाव हो सकता है अन्यथा दिन बदिन दबनाही पडेगा। इसलिये हिंदुओं ! सावधान हो जाओ।

" नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। "

गोमांस भक्षणकी प्रथा !

(पूर्व अंकसे-)

४० भ्रम क्यों होता है।

वेदका अर्थ यदि इतना स्पष्ट है तो उसके अर्थके विषयमें भ्रम क्यों होता है ? ऐसा यहां प्रश्न पाठकों के मनमें खडा रह सकता है, इसका उत्तर देनेके लिये एक उदाहरण यहां देते हैं। इस उदाहरण का विचार यदि पाठक करेंगे तो उनको अर्थ विषयक भ्रम के कारण का पता लग जायगा। देखिये वह मंत्र

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥

ऋ० १। १६४। ४३ अथर्व० ९। १०। २५

इस मंत्रके विविध लोगोंके अर्थ यहां देते है-

(१) श्री. सायणाचार्य का अर्थ- (शकमयं) गोबरकी अग्निका (धूमं) धूवां (आरात् अपश्यं) समीपसे ही मैंने देखा। और (एना अवरेण) इस निकृष्ट (विषूवता) व्याप्तिमान धूम्रसे (परः) परे रहनेवाले अग्निको भी मैंने जाना। वहां (वीराः) वीर लोग (पृश्निं उक्षाणं) श्वेत सोम औषधिका (अपचन्त) पाक कर रहे हैं, ये धर्म उत्कृष्ट थे ॥

(२) श्री० स्वा० दयानंद सरस्वती- मैं (आरात्) समीपसे (शकमयं) शक्तिमय समर्थ (धूमं) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्निको (अपश्यं) देखता हूं। (एना अवरेण) इस नीचे इधर उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिवान् धूमसे (परः) पीछे (वीराः) विद्याओंमें व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्नि)

आकाश और (उक्षाणं) सींचनेवाले मेघ को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्नि होत्राग्नि तपते हैं, वे धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्य संज्ञक (आसन्) हुए हैं ॥

(३) म० ग्रिफिथ्— I saw from far away the smoke of fuel with spires that rose on high o'er that beneath it. The mighty men have dressed the spotted bullock. These were the customes in the days aforetime.

[नोट = (The smoke of fuel) = arizing from burning cow-dung. (The spotted bullock) = The Soma. The whole may, perhaps, be a figurative description of the gathering of the rain clouds.]

(४)म० विल्सन्— I behold near (me) the smoke of burning cow-dung; I by that all-pervading mean (effect), discovered the cause (fire): the priests have dressed the soma ox, for such are their first duties.

अर्थात् = " गोबर की अग्निसे उठा हुआ धूवां मैनें देखा जो ऊपर उठा था। वीरोंने विचित्र बैलको (अर्थात् सोम औषधिको) सजाया था, वे रीतियां पहिले समयकी थी। "

[यहां " उक्षा " शब्द सोम का वाचक है। और सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका वर्णन पर भी माना जा सकता है।]

(५) म० विटनी का अर्थ– The dung made smoke I saw from far, with the dividing one thus beyond the lower; the heroes cooked a spotted ox; those were the first ordinances.

अर्थात् = "गोबरसे बने धूमको मैंने दूरसे देखा, जो नीचे वालेके परे भिन्न होता था। वीरोंनें बैलको पकाया था, वे पहिलेके धर्मविधि थे। "

यहां पाच अर्थ दिये हैं, वे एक दूसरेसे भिन्न हैं, परंतु पहिले चार अर्थोंमें जो बैल पकानेकी स्पष्ट बात नहीं थी वह विटनेके पंचम अर्थमें आगई है। चार अर्थ लेखक जिस मंत्रमें बैल पकानेकी बात स्पष्टतासे देखते नहीं, उसी मंत्रमें चतुर्थ लेखक बैल पकाने की बू सूंघ रहा है। म०ग्रिफिथ अपने नोटमें लिखते ही हैं कि इस मंत्रका "उक्षा" शब्द सोमका वाचक है और यह सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका अर्थही संभवतः आलंकारिक वर्णन कर रहा होगा। यह म० ग्रिफिथ का कथन कुछ अंशमें पूर्वोक्त दोनों भाष्यकारों के साथ मिलता जुलता है। परंतु म० विटने की बात तो नवीन है।

उक्षा शब्दका अर्थ सोमभी है और बैल भी है, तथा पच धातुका अर्थ पकाना भी है और परिपक्क करना भी है। इस लिये हम यह नहीं कहते कि म० विटनीका अर्थ उन शब्दोंसे निकलही नहीं सकता। हमारा कथन इतनाही है कि इस मंत्रमें बैल पकाने का अर्थ पूर्वापर संबंध से अयुक्त है।

ऊपरके यूरोपीयन पंडितों के अर्थोंमें देखने लायख बात हम पाठकों के सन्मुख लाना चाहते हैं वह यह है– म० ग्रिफिथ का ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों का अर्थ प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद पाठ का अर्थ हमने ऊपर दिया है, परंतु येही महाशय अथर्व वेद के इसी मंत्रके अर्थ करनेके समय अपना ऋग्वेद का अर्थ भूल कर बैलवाला अर्थ घुसेड देते हैं, देखिये The heroes cooked and dressed the spotted bullock अर्थात् वीरोंनें बैलको पकाया और उसको ठीक किया। अर्थात् यह अर्थ म. विटनीके अर्थ के साथ मिलता जुलता है। यहां यह बात देखनी है कि इन्हीके इसी मंत्र के ऋग्वेदीय अर्थ में मांसकी स्पष्ट बू नहीं है, परंतु अथर्ववेद के अर्थ में मांस परक अर्थ है। एक ही मंत्रके अर्थ में एकही लेखक कैसा भ्रममें पड सकता है देखिये। वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिये था, परंतु प्रत्यक्ष हुआ है।

जिस कारण अथर्व वेद के मंत्रके अर्थके विषय में ये दोनों पंडित " बैल पकाने वाला अर्थ " करते हैं उस कारण हमें इन मंत्रों का पूर्वापर संबंध देखना चाहिये और इनका अर्थ सत्य है वा नहीं यह बात निश्चित करना चाहिये, इस लिये देखिये पूर्वापर मंत्र

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ १८ ॥ ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्। त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वितष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः॥१९॥ विराड् वाग्विराड्पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥ " शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥ " त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २७ ॥

अथर्व० ९। १०। मं० १८—२७

विस्तार न हो इसलिये बीचके कुछ मंत्र दिये नहीं है, परंतु इन मंत्रोंसे आक्षिप्त मंत्रका पूर्वापर संबंध ठीक प्रकार ज्ञात हो सकता है। इनका अब अर्थ देखिये—

(ऋचः अक्षरे) मंत्रोंके परम अक्षरोंमें (विश्वे देवाः) सब देव (अधिनिषेदुः) रहते हैं (यः तत् न वेद) जो मनुष्य वह बात नहीं जानता वह मंत्रसे क्या करेगा ? (ये तत् विदुः) जो वह बात जानते हैं वे (समासते) इकट्ठे होकर विचार करने के लिये बैठते हैं ॥१८॥ वे (ऋचः पदं) मंत्रोंके पादोंको मात्राओं के प्रमाणसे माप कर (अर्धर्चेन) आधे मंत्रसे उन्होंने (एजत् विश्वं) हिलने वाला सब विश्व बताया है। वह बहुत आकार वाला तीन पांवोंसे युक्त ब्रह्म सर्वत्र (वितष्ठे) फैला है जिससे सब दिशाएं जीवित हैं ॥ १९ ॥ विराट् ही वाणी, पृथिवी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु है वही साध्य देवोंका अधिराजा है, (तस्य वशे) उसी के आधीन भूत भविष्य वर्तमान सब रहता है, वह कृपा करे और मेरे आधीन मेरा भूत भविष्य वर्तमान करे ॥ २४ ॥ शक्तिमान् धूवां मैंने देखा है जो व्यापक होता हुआ इस कनिष्ठसे परे है। वीर लोग सिंचन करने वाली प्रकाशमय

शक्ति को पकाते थे वे मुख्य कर्तव्य थे ॥ २५ ॥ तीन (केशिनः) किरणों से युक्त तेजस्वी पदार्थ हैं, ऋतुओं के अनुसार वे प्रकाशते हैं। इनमें से एक वर्षमें बीज डालता है, दूसरा जगतको अपनी शक्तियों से चमकाता है, परंतु तीसरे का वेग ही अनुभवमें आता है, रूप नहीं ॥ २६ ॥ एकही सत्य वस्तुको ज्ञानी लोग विविध नामोंसे वर्णन करते हैं उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान, यम, मातरिश्वा कहा जाता है ॥ २७ ॥

इन पूर्वापर संबंध के मंत्रों को पाठक देखें और विचारें। तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यह अध्यात्मविषय का प्रकरण है और बैल पकानेका यहां कोई संबंध नहीं है। इस २५ वे मंत्रमें बैल पकानेवाला अर्थ माननेपर इस प्रकरण में सजने योग्य कोई अर्थ बन ही नहीं सकता है। इस मंत्रमें जिस शक्तिमान धूंवेका वर्णन है वह प्रकृति की अग्निका धूवां है। जो प्रकृतिकी अग्निसे चारों ओर फैलता है और मनुष्योंके आंखोंमें घुसकर उनको अंध बनादेता है। यह धूवां ही अधिक सताता है उतना मूल प्रकृतिका ताप नहीं है। इसलिये यह व्यापक भी है और उरे तथा परेभी है। जो धीर वीर लोग होते हैं वे इस धूवेंमें भी घुसते हैं परंतु धूवें को घबराते नहीं हैं। इस धूवेंके कष्टको शांत करने के लिये इसके परे रहनेवाली (उक्षाणं पृश्निं) सिंचक तेजस्वी शक्ति को अपने अंदर परिपक्व करते हैं अर्थात् अपनी आत्मिक शक्ति को अपरिपक्व रहने नहीं देते। सिंचक शक्तिका अर्थ जीवन देनेवाली तेजोमय आत्मशक्ति ही है। पृश्नि का अर्थ तेजका किरण, प्रकाशशक्ति आदि है, उक्षा का अर्थ सिंचन करनेवाला, भिगोनेवाला, जीवनका जल देनेवाला। ये अर्थ आत्मशक्ति को ही यहां बता रहे हैं। अपने अंदर इस को परिपक्व करना ही मनुष्यका प्रथम धर्म है, अर्थात् मुख्य कर्तव्य है। सताईसवे मंत्रमें कहा है कि एक ही आत्मा के इन्द्रादि अनेक नाम हैं, नामोंका भेद होनेसे मूल सत्य वस्तुमें कोई भेद नहीं होता है। यही एक आत्मतत्त्व पचीसवे मंत्रमें " पृश्नि उक्षा " नामसे वर्णित है। सोम भी

इसी आत्माका एक नाम प्रसिद्ध ही है।

छब्बीसवे मंत्रमें चमकदार तीन पदार्थ हैं ऐसा कहा है। ये तीन पदार्थ दैवी प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा येही तीन हैं, इनमें प्रकृतिका अनुभव जगत में आता है, जीवात्मा का अनुमान हरएक प्राणिमात्रमें होता है, परंतु तीसरे सर्वव्यापक परमात्मा का अनुमान तर्कसे होता है, क्यों कि उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता जैसा दूसरोंका होता है।

इत्यादि वर्णन से ये मंत्र खुल जांयगे। अब पाठक देख सकते हैं कि क्या इसमें बैल पकाने का संबंध है? और बैल पकानेवाला अर्थ यहां सजता भी कहां है? इससे पाठकों के ध्यान में बात आगई होगी कि जो लोग प्रकरणानुकूल अर्थ नहीं देखते वे " उक्षाणं अपचन्त " शब्द देख कर बैल पकानेकी बात समझते हैं और अर्थ का अनर्थ करते हैं।

वेदमें दो सुपर्ण अर्थात् दो पक्षी इस रूपक से भी जीवात्मा परमात्मा का वर्णन है। यह मंत्र (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया० । ऋ १।१६४।२० तथा अथर्व ९।९ (१४)।२०) इन पूर्वोक्त मंत्रों के थोडा पीछे ही है। यह ऋग्वेदमें और अथर्व वेदमें एक ही प्रकरणमें है। यदि पाठक यह अध्यात्मपरक मंत्र देखेंगे तो उनका निश्चय ही हो जायगा कि यह बैल पकानेवाला मंत्र वास्तवमें अध्यात्मविषयका मंत्र है, और उसमें बैल पकानेका वास्तविक कोई संबंध नहीं है।

प्रकरणानुकूल मंत्र देखनेका इतना महत्त्व है। श्री० यास्काचार्य जीने भी इसी लिये निरुक्तके प्रारंभमें ही कहा है (प्रकरणशः एव निर्वक्तव्याः) मंत्रोंकी व्याख्या प्रकरण के अनुसार ही करनी चाहिये। इस से सिद्ध हुआ कि युरोपीयन लोगोंका अर्थ अत्यंत अशुद्ध है और वह विचार करनेभी योग्य नहीं है। यहां हमने बताया कि भ्रम होने का कारण मंत्रोंका अर्थ प्रकरण के अनुकूल न करना ही है। कोई भी विद्वान यदि मांसपरक अर्थ इस प्रकरण में सजा कर बता सकेगा तो फिर और विचार किया जायगा। परंतु हमारा निश्चय है कि कोई भी विद्वान इस अध्यात्म प्रकरणमें मांसका अर्थ प्रकरणानुकूल बताही नहीं सकेगा। पाठक भी अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे इस प्रकरणमें इस मंत्रको रख कर खूब विचार करें। कोई पक्षपात करने की यहां आवश्यकता नहीं है क्यों कि हमारा पक्ष इतना साफ है कि उसकी सिद्धता करनेके लिये हमें कोई कठिनता ही नहीं है। एक सत्य परमात्म तत्त्वके इन्द्र अग्नि सोम आदि अनेक नाम होते हैं यह बात सताइसवें मंत्रमें कही है, इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि नामों का भेद होनेपर भी मुख्य वस्तुमें भेद नहीं होता यह उपदेश करनेके पूर्व जो मंत्र लिखे हैं वे श्रोताओंकी मनकी तैयारी करने के लिये लिखे गये हैं। एक ईश्वरवाद का ग्रहण करने योग्य श्रोताओंकी तैयारी करनेके मंत्रोंमें बैल पकानेवाला अर्थ किस प्रकार सज सकता है? यह पाठक ही देखें? तात्पर्य भ्रमका कारण प्रकरणकी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य करना ही एक मात्र है।

[४१] पकानेका तात्पर्य।

इस मंत्रमें " अपचन्त " शब्द है। यह शब्द पाठकों को भ्रममें डाल सकता है क्यों कि इसका अर्थ " पकाया " है। पकानेका स्पष्ट अर्थ चूलेपर हंडी रखकर उसमें पकाना सब जानते हैं, परंतु यदि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह व्यक्त अर्थ रहते हुए भी इसका सूक्ष्म अर्थ और ही है देखिये--

" तप " शब्द भी तपाने के अर्थमें प्रयोग होता परंतु " तप " शब्दके का अध्यात्म शास्त्रमें कितना व्यापक अर्थ हुआ है, यह पाठक जानते हैं। वह "तप " करता है, इसका तात्पर्य "वह आगपर कोई चीज तपाता है " यह नहीं लिया जाता, परंतु वह अपनी आत्म उन्नति करनेके लिये विशेष धर्मनियमोंका आचरण करता है, यह "तप" शब्दका अर्थ सब लेते हैं। वास्तविक मूल अर्थ " आगपर रखकर सेक देना " इतना ही तप शब्दमें है, परंतु वेद और उपनिषद में इस शब्दका "आत्मोन्नतिके नियम पालन करना " यह अर्थ रूढ हुआ है, पाठक शब्दके इस अर्थका ख्याल मनमें रखेंगे, तो उनको " पच् " धातुके अर्थका भी पता लग जायगा।

जीवात्मा शरीरमें है उसको ब्रह्मचर्य पालनादि सुनियमोंकी अग्निपर तपाकर विशेष शक्तिसे युक्त किया जाता है--

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते ॥ ऋ० ९। ८३। १

" जिसके शरीरसे तपाचरण नहीं हुआ, वह उस आत्मिक सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।" यह वेदका उपदेश तपाचरण के महत्त्वका वर्णन कर रहा है। मूल मंत्रके शब्दों का केवल शब्दार्थही देखा जाय तो ऐसा है- " जिसका शरीर तपा नहीं वह उस सुख को खा नहीं सकता।" यह शब्दार्थ ही लेकर कई लोग शरीर को सूर्य प्रकाशमें तपाते हैं और कई दूसरे धातुकी मुद्राएं तपाकर शरीर पर धारण करते हैं। परंतु यह मंत्रका आशय नहीं है। मंत्रका " तप्त " शब्द ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंके आचरण का भाव बताता है, इससे भिन्न अन्य अर्थ अशुद्ध हैं। इसी प्रकार यहां " पच् " धातुका अर्थ केवल चूले पर हंडी रखकर पकाना नहीं है परंतु यहां आध्यात्मिक शक्तिको परिपक्व करना है।

शरीररूपी हंडीमें जीवात्मा रूपी स्वादु रस (सोम-उक्षा) रखा है, यह हंडी सत्वरजतम रूपी जगत्के पत्थरोंपर रखी है और नीचे से परमात्माग्नि की उष्णता दी गई है। इस प्रकार यहां बहुत मीठा पाक हो रहा है। यह आध्यात्मिक पकाना यहां है। पूर्वोक्त मंत्रमें पाठक यह अर्थ देखें-

" मैंने धूवाँ देखा और उससे अग्निका अनुमान किया जिस पर वीर सोम को पका रहे थे, वे पहिले कर्तव्य थे।"

धूवेंसे जैसा अग्निका अनुमान होता है उसी प्रकार जगत् के कार्य देख कर परमात्माग्निका अनुमान किया जाता है। उसी अग्निपर आत्मा को परिपक्व करनेका अनुष्ठान धीर लोग करते हैं, येही मुख्य कर्तव्य हैं। पाठक इस स्थानपर उक्त अलंकार देखें और वेदका आध्यात्मिक उपदेश ग्रहण करें। यहां यह आश्चर्य प्रतीत होता है कि इतना उत्तम अर्थ होते हुए उसको यूरोपीयन लोगोंने कितना बिघाडा है? इससे अर्थका अनर्थ तो और कितना हो सकता है? अस्तु अब " पच् " धातुका प्रयोग देखिये-

१ सस्यमिव मर्त्यः पच्यते ॥ कठ उ० १। ६
२ यश्च स्वभावं पचति। श्वे० उ. ५। ५
३ अन्नेनाभिषिक्ताः पचन्तीमे प्राणाः ॥
मैत्री उ. ६।१२
४ कालः पचति भूतानि ...महात्मनि
" मैत्री६।१५

" (१) फलके समान मर्त्य मनुष्य पकाया जाता है, (२) जो स्वभाव पकाता है, (३) अन्नके द्वारा अभिषिक्त हुए ये प्राण पकाते हैं, (४) काल पकाता है भूतों को.. परमात्मामें।"

ये " पच् " धातुके उपनिषदों में प्रयोग देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि पच धातु का आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें भी तात्पर्य है। इस पच् धातुका अर्थ कोशों में यह दिया है-to cook, to ripen, to develop (पकाना, पक्व करना, बढाना या उन्नत करना) अर्थात् पकानेके सिवाय दूसरे भी अर्थ कोशों में हैं और वे दूसरे अर्थ आत्मोन्नतिमें भी लग सकते हैं।

इस से स्पष्ट हुआ कि " पच् " धातु का प्रयोग होनेपर भी केवल पकानेका ही भाव लेनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार " तप् " धातुका अर्थ तपाना होता हुआ भी उसका तात्पर्य अध्यात्म में सुनियमों का पालन आदि लिया जाता है, उसी प्रकार " पच् " धातुका अर्थ पकाना होता हुआ भी इस का आध्यात्मिक तात्पर्य आत्मशक्ति की उन्नति करना, आत्मशक्ति का विकास करना, आत्मशक्तिको (develop) बढाना आदि प्रकार होता है। इस शब्द के प्रयोग भी देखिये-

१ अन्न पक्व हुआ, २ फल पक्व हुआ, ३ कर्म परिपक्व हुआ, ४ बुद्धि परिपक्व हुई, ५ आत्मा परिपक्व हुआ, इत्यादि वाक्योंमें एक ही " पच् " धातु के प्रयोग हैं, परंतु भौतिक और अभौतिक प्रसंगों के अनुसार उनके अर्थ भिन्न हैं। इतना पच् धातुके अर्थ के विषयमें लिखना पर्याप्त है। इस से पूर्व उपनिषदों के वचन भी दिये हैं जिनमें पच्

धातुका प्रयोग अध्यात्म उन्नति दर्शाने के लिये किया गया है। ये सब प्रयोग देखनेसे इसके अध्यात्मिक अर्थ के विषयमें किसी को शंका नहीं हो सकती।

अब " उक्षा " शब्द का विचार करना चाहिये। उक्षा शब्द का अर्थ सोम श्री० सायणाचार्य करते हैं और कई युरोपीयनों ने भी यह अर्थ माना है। उक्षा और सोम ये पर्याय शब्द हैं इसमें किसीकोभी संदेह नहीं हो सकता। पूर्वोक्त मंत्रों में उक्षा, सोम, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, गरुड, सुपर्ण आदि सब नाम उसी एक अद्वितीय सद्वस्तुके हैं यह बताया ही है। जितने भी देवतावाचक विशेष नाम वेद में आये हैं वे सब उसी आत्मतत्त्वके वाचक होने में संदेह ही नहीं है, आत्मा के आत्मा और परमात्मा ये भेद हैं परंतु दोनों में आत्मा शब्द समान ही है इसी प्रकार अन्य भी प्रयोग हैं —

आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
"	ज्येष्ठ "
"	श्रेष्ठ "
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

इस प्रकार प्रयोग छोटे आत्मा और बडे आत्माके वाचक हैं, परंतु छोटा और बडापन विचार में न लाया तो दोनों स्थानपर एकही शब्द लगता है। इसलिये सद्वस्तुके वाचक जितने भी शब्द हैं वे जैसे अन्य पदार्थों के वाचक होते हैं उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के भी वाचक हैं। जीवात्मा छोटी शक्तिवाला और परमात्मा बडी शक्तिवाला है, परंतु शक्तियां बडी हों या छोटी हों दोनों स्थानोंमें समान हैं।

सोम शब्द सोमवल्ली, चंद्र, वनस्पति आदिका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इन्द्र शब्द विद्युत का वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक, अग्नि शब्द आगका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इसी प्रकार उक्षा अथवा वृषभ या ऋषभ ये शब्द बैल तथा वनस्पति के वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्मा के वाचक हैं। अर्थात् इस प्रकार के देवतावाचक सब शब्द उनके व्यक्त अर्थोंके वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्माके वाचक हैं। यह वेद की परिभाषा जिनके मनमें ठीक प्रकार नहीं आती उनको अर्थका भ्रम होता है। ये अर्थके भ्रम होनेके कारण हैं। पाठक इन कारणोंका खूब विचार करें। अब " उक्षाणं अपचन्त " (बैल पकाया) इस मंत्र भाग का अथर्व वेदका प्रकरण देखिये—

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ २० ॥

२ यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधिविश्वे। तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥ २१ ॥

३ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिः स्वरन्ति। एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

अथर्व. ९।९।१४

४ अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥

५ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त अमी समासते ॥ १८ ॥

६ विराड् वाग्विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

७ शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनाऽवरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

८ त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमन्योऽभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥ २६ ॥

९ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा

ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७ ॥

१० इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

अथर्व० ९।१०।१५

अब इनका क्रमपूर्वक अर्थ देखिये—

(१) (सयुजा सखाया) समान मैत्री धारण करनेवाले (द्वा सुपर्णा) दोन गरुड पक्षी अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) एक ही वृक्षपर अर्थात् प्रकृतिके संसार वृक्षपर बैठे हैं (तयोः अन्यः स्वादु पिप्पलं अत्ति) उनमेंसे एक अर्थात् जीवात्मा इस वृक्षका मधुर फल खाता है, परंतु (अन्यः) दूसरा अर्थात् परमात्मा (अनश्नन् अभिचाकशीति) कुछ भी न खाता हुआ केवल प्रकाशता है या देखता रहता है। [यह मंत्र उपनिषदों में भी लिया है श्वेताश्व० ४।६, मुंडक० ३।१।१ इस कारण इसके अध्यात्म विषयक होने में शंका ही नहीं है ॥ २० ॥

(२) (यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः निविशन्ते) जिस प्रकृतिके संसार वृक्षपर मीठा फल खाने वाले उत्तम पंखवाले पक्षी अर्थात् जीवात्मा निवास करते हैं और (विश्वे अधि सुवते) सब प्रजा भी उत्पन्न करते हैं, (यत् तस्य अग्रे स्वादु पिप्पलं आहुः) जो उस संसार वृक्षके अंतिम भागमें मीठा फल है ऐसा कहा जाता है (तत् न उन्नशत्) वह फल उसके लिये नहीं प्राप्त होता है, कि (यः पितरं न वेद) जो परमपिता परमात्माको नहीं जानता॥ २१

((३) (यत्र) जिस संसार वृक्षपर बैठे हुए (सुपर्णाः) अनंत पक्षी अर्थात् अनंत जीवात्मा गण (विदथा) परस्पर विचार करके (अ-निमेषं) बीचमें समय न छोडते हुए (अमृतस्य भक्षं अभि स्वरन्ति) अमृतके अन्नके भोग के लिये आवाज उठाते हैं, अर्थात् उसकी प्राप्तिके लिये ही शब्द करते हैं, (विश्वस्य भुवनस्य एना स धीरः गोपाः) सब भुवनों का वह ज्ञानी सबका पालक परमात्मा (अत्र मा पाकं आविवेश) यहां मुझ परिपक्व होनेवालेके जीवात्मा में प्रविष्ट होकर रहा है ॥ २२ ॥

[इस मंत्रमें (मां पाकं) ये शब्द बडे महत्त्व पूर्ण है "मां" शब्द "मैं जीवात्मा" इस अर्थका द्योतक है और "पाकं" शब्द "पकने वाला, परिपक्व होने वाला, जिसको पकाकर परिपक्व बनाना है, अथवा जो पकाया जा रहा है, जो अपरिपक्व है, परंतु पकाकर परिपक्व होनेवाला है।" "इस अर्थमें आया है। पाठक यह शब्द स्मरण रखें, क्यों कि इसीका पाक होनेवाला है, इसी को आगे पकाया जायगा, इसी जीवात्मा को पकानेके बर्तन में रख कर आगे पकाया जायगा।]

(४) (पस्त्यानां मध्ये) प्राणियों के शरीरों के मध्यमें (अनत्) प्राण धारण करनेवाला, (तुरगातु) चलनवलन करनेवाला, (जीवं) जीवनशक्तिसे युक्त, (एजत्) हलचल करनेवाला परंतु (ध्रुवं) अचल स्थिर, इन गुणोंसे युक्त आत्मा (आशये) रहा है। यह जीवात्मा (मर्त्येन सयोनिः) मर्त्य शरीरके साथ समान योनिमें उत्पन्न होने पर भी (अ-मर्त्यः) मरण धर्म से रहित है, यह (मृतस्य जीवः स्वधाभिः चरति) मृत प्राणीका जीव मृत्यु के पश्चात् अपनी धारकशक्ति के साथ आकाश में भ्रमण करता है ॥ ८ ॥

[यहां जीवात्मा का वर्णन पाठक देखें, यह संसार में जन्ममरण के चक्रमें घूमनेवाले जीवात्मा का वर्णन स्पष्ट है।]

(५) (यस्मिन् ऋचः परमे अक्षरे व्योमन्) जिन मंत्रोंके श्रेष्ठ अक्षरों के अंदर (विश्वे देवाः अधि निषेदुः) सब देव निवास करते हैं, (यः तत् न वेद) जो यह गुह्य बात नहीं जानता वह अज्ञानी मनुष्य (ऋचा किं करिष्यति) मंत्र लेकर क्या करेगा ? (ये इत् तत् विदुः) जो निश्चय से उस बातको जानते हैं (अमी ते समासते) वे इकट्ठे होकर रह सकते हैं ॥ १८ ॥

इस में मंत्र के गुह्य ज्ञान के जाननेका महत्त्व वर्णन किया है इस ज्ञानसे ही मनुष्य की शक्ति विकसित हो सकती है।]

(६) वाक्, पृथ्वी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु साध्य देवोंका अधिराज विराट् ही है, उसके (वशे) आधीन भूत भविष्य वर्तमान है, उसकी कृपासे (मे

वशे) मेरे आधीन अपना भूत भविष्य वर्तमान होवे॥ २४ ॥

[व्यक्तिके अंदर विराट् (आत्मिक तेज) की शक्ति वाक् रूपसे है और वही शक्ति ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उस शक्तिके आधीन सब कुछ है, इसलिये मेरी शक्ति धर्मानुष्ठानसे बढे और मेरा अधिकार भी जितना हो सकता है उतना विस्तृत होवे। अर्थात् मैं मनुष्य जो इस समय अपरिपक्व अवस्था में हूं वह परिपक्व बनकर अधिक समर्थ होऊं। मैं अल्पज्ञ मनुष्य जो दैव के बलसे इधर उधर घुमाया जाता हूं वह मैं अपनी शक्तिसे चलफिर सकूं। यह इच्छा इस मंत्रमें की है। इसमें अपरिपक्त अवस्था से परिपक्व दशामें पहुंचनेकी उत्कट इच्छा दीखती है। इसकी परिपक्वता जिस प्रकारके पकाने से होगी वह पकानेकी रीति आगेके मंत्रमें देखिये-]

(७) (आरात् शकमयं धूमं अपश्यं) दूरसे मैंने शक्तिमान् धूवेंको देखा (एना विषूवता अवरेण) इस व्यापक साधारण चिन्हके देखनेसे मैंने (परः) श्रेष्ठ आग्नेय शक्तिको जान लिया। इस श्रेष्ठ अग्निपर (वीराः उक्षाणं पृश्नि अपचन्त) वीर लोग शक्तिवाले बैल अर्थात् शक्ति देनेवाले आत्माको परिपक्व बनाते हैं, या पकाते हैं (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) येही धर्मविधि मुख्य हैं ॥ २५ ॥

[धूम देखनेसे उस धूमके मूलमें अग्नि निःसंदेह है यह कल्पना दूरसे भी हो जाती है। इसी प्रकार प्रकृतिसे जगत्रूपी यह विशाल और व्यापक धूवां निकल रहा है जो हमारे आंखोंमें जाकर हमें अंध बना रहा है। जो ज्ञानी लोग हैं ये दूरसे ही इस धूवेंको देख कर इसकी जडमें एक शक्तिमान अग्नि अर्थात् परम आत्मा निःसंदेह है ऐसा अनुमान निश्चित करते हैं। यद्यपि परमात्मा नहीं दिखाई देता, तथापि जगत् के कार्य को देखकर उसके मूल कारण के स्थानपर एक अद्भुत शक्तिवाली चेतनशक्ति अवश्य चाहियेऐसा निश्चय हो जाता है। यही परमात्मा है। इसी परमात्माकी आगपर वीर लोग इस जीवात्मरूपी पकाने योग्य, परिपक्व करने योग्य पदार्थ को पकाते हैं। मनुष्यकी उन्नति के लिये जो योग्य और प्रधान धर्म हैं वे येही हैं अर्थात् मनुष्य को इन ही धर्मोंका पालन करना अत्यंत आवश्यक है]

(८) (केशिनः त्रयः ऋतुथा विचक्षते) तेजस्वी किरणोंवाले तीन पदार्थ हैं जो ऋतुओंके अनुसार चमकते हैं (एषां एकः) इन तीनोंमेंसे एक (संवत्सरे वपते) यज्ञमें बीज डालता है, (अन्यः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) दूसरा अपनी शक्तियोंसे विश्वको देखता है, परंतु (एकस्य ध्राजिः ददृशे, रूपं न) एक की केवल गति ही दिखाई देती है उसका रूप नहीं दिखाई देता ॥ २६ ॥

[चमक वाले तीन पदार्थ हैं एक दैवी तेजस्विनी प्रकृति, दूसरा बढनेकी शक्तिसे युक्त तेजस्वी जीवात्मा और तीसरा महाशक्ति शाली तेजस्वी परमात्मा। प्रकृतीकी चमक दमक सृष्टिमें चारों ओर सबको दिखाई देती है, हरएक इसका अनुभव कर सकता है। कई ज्ञानी लोग जीवात्माको अनुभव करते हैं, क्योंकि "मैं हूं" इस अनुभव से हरएक को इसका अनुभव होता है। यह देखनेवाला स्वयंही है। परंतु इस प्रकार परमात्माका रूप नहीं दिखाई देता, उसकी केवल गतिसे यह चल रहा है इसका अनुभव होता है, परंतु उसका रूप कैसा है यह समझना अति कठिन है ।]

(९) (वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणी चार पदोंसे परिमित है (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः ते तानि विदुः) जो ज्ञानी मननशील विद्वान हैं वेही उन चार पदोंको जानते हैं। इन चार पदोंमेंसे (त्रीणि गुहा निहिता न इंगयन्ति) तीन पदा हृदयमें गुप्त रखे हैं वे प्रकट नहीं हैं परंतु (मनुष्याः तुरीयं वाचः वदन्ति) मनुष्य चतुर्थ अवस्था की वाणीको ही बोलते हैं ॥ २७ ॥

[इस मंत्रमें आत्माकी शक्ति वाणीमें परिणत होती है इसलिये वाणीका मूल आत्मामें देखना चाहिये यह उपदेश किया है। वाणीके चार रूप होते हैं, नाभि, हृदय, कंठ और मुख इन चार स्थानों में वाणी प्रकट होती है। पहिले तीन स्थानों में होने वाला नाद ब्रह्मज्ञानी समझ सकते हैं, परंतु मुखसे उच्चारा शब्द सब लोग समझ सकते हैं। यद्यपि पहिले तीन स्थान का शब्द सब लोग नहीं समझ

सकते तथापि वह है क्यों कि वह ज्ञानी मनुष्योंके अनुभवमें आता है। इस प्रकार वाणीमें आत्माका स्फुरण देखनेसे वाणीके द्वारा आत्माकी शक्ति प्रकट हो रही है इस बातका अनुभव होगा और मैं आत्मस्वरूप हूं इस बातका पता लग जायगा।]

(१०) एकही सत्य आत्माको ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं॥ २८॥

[इस मंत्रमें न कहे हुए शब्द भी आत्माके वाचक हैं यह आशय यहां है, सोम, चंद्र, रुद्र, वृषभ, उक्षा, ऋषभ आदि अनेक शब्द हैं कि जो उसी अद्वितीय आत्माके वाचक वेद में आये हैं।]

पाठक यहां देखें कि " उक्षाणं अपचन्त " का अर्थ प्रकरणके अनुकूल किस प्रकार होता है। परंतु युरोपीयनोंका किया हुआ अर्थ यदि यहां लिया जाय तो वह इस आत्मोन्नतिके प्रकरणमें बैठता ही नहीं है। भारतीय भाष्यकारोंमेंसे किसीनेभी युरोपीयनोंके अर्थोंकी पुष्टि नहीं की है। बैलवाचक जहां शब्द आजाय वहां युरोपीयनोंको दूसरा तीसरा कुछ भी सूझताही नहीं है एक मांस काटना पकाना और खाना, यही कल्पना युरोपीयनों के सन्मुख खडी हो जाती है। अर्थ करनेके समय प्रकरणानुकूल अर्थ करना भी आवश्यक है, यह सर्वमान्य बात भी जब ये लोग मन घडंत अर्थ करनेके समय भूल जाते हैं तब आश्चर्य ही होता है। इसलिये युरोपीयनोंके अर्थों को स्वीकार करने वाले भारतीय विद्वानोंको ये अर्थ के अनर्थ देख कर बडा सावधान होना चाहिये। अब कई पाठकों को " वृषभ " शब्द के अर्थके विषयमें शंका हो सकती है इसलिये इस शब्द के वेद में अर्थ किस प्रकार होते हैं यह यहां देखना आवश्यक है, इस कारण इस शब्दका अर्थ बताते हैं-

[४२] " वृषभ " का अर्थ।

संस्कृत भाषामें " वृषभ " शब्द का अर्थ बैल है यह बात सब जानते ही हैं, परंतु वेद में केवल यही एक अर्थ नहीं है। वृषभ, ऋषभ आदि शब्द वेद में विलक्षण अर्थ से प्रयुक्त होता है. यह विषय अत्यंत महत्व का होने के कारण यहां इसका थोडासा विस्तार करनेकी आवश्यकता है, पहिले कई उदाहरण देखिये -

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आ विवेश॥

ऋ० ४। ५८। ३

"चार सींगवाला, तीन पांव वाला, दो सीरवाला तथा सात हाथों से युक्त महादेव वृषभ तीन स्थानों में बंधा हुआ शब्द करता है वह मर्त्यों में प्रविष्ट होवे।"

यहां वृषभ शब्द का अर्थ बैल नहीं है परंतु "शब्द " है यह सब भाष्यकार मानते हैं। यहां बैल अर्थ लेनेसे कुछ तात्पर्य निकलेगा ही नहीं क्यों कि चार सींगवाला बैल होता ही नहीं। यहां के चार सींग व्याकरणके शब्द के चार विभाग-' नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ' हैं तथा सात हाथ ' शब्दकी सात विभक्तियां हैं।' अन्य सब अलंकार यहां खोलनेकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि वैसा करने से विषय बढ जायगा। अब और मंत्र देखिये—

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते।

ऋ० १०। ११२। ७

हे इन्द्र! हे (वृषभ) बलवान्! सब लोग हितके लिये कार्य करते हुए तेरी ही (त्वां वि ह्वयन्ते) प्रार्थना करते हैं।

इस मंत्रमें वृषभ शब्द इन्द्र देवताके लिये प्रयुक्त हुआ है, इसी प्रकार अग्नि, सोम आदि देवताओं के लिये भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऐसे प्रसंगों में इसका अर्थ ' बल बढानेवाला ' है न की बैल। सोम के लिये वृषभ शब्दका प्रयोग देखिये--

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता विधावसि। स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे॥

ऋ. ९। ८६। ३८

हे सोम! हे (पवमान वृषभ) शुद्ध करनेवाले पवित्र वृषभ अर्थात् शक्तिदायक सोम ! तुझे सब प्रकार से लोग चाहते हैं । वह तू धन और सुवर्ण के साथ हमें पवित्र करो । हम जगत् में दीर्घायु हों ।

इस मंत्र में वृषभ शब्द सोम के अर्थ में प्रयुक्त है, यहां भी इसका अर्थ " बलवर्धक " ही है । निम्न लिखित मंत्र में वृषभ शब्दका अर्थ "तरुण बलवान पति " है देखिये ।

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुं
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥
ऋ. १० । १० । १०

" हे बहन ! तू अपना (बाहुं) हाथ किसी दूसरे (वृषभाय) बलवान तरुणपति के लिये (उप बर्बृहि) सिरोने के लिये आगेकर । हे (सुभगे) स्त्री! मुझसे भिन्न किसी अन्य पति की इच्छा कर॥" इसका अर्थ म० ग्रिफिथ ऐसा अर्थ करते हैं- Not me, O fair one, seek another husband and make thine arm a pillow for thy consort. इस मंत्रमें " वृषभ " का अर्थ पति ही ये लोग भी करते हैं, यहां यदि ये लोग बैल अर्थ करेंगे तो " प्राचीन मानव स्त्रियां बैल के साथ शादी करती थी, " यह अनुमान किया जा सकेगा, परंतु यह इन्होंने किया नहीं है यह हमारे ऊपर इनकी बडी कृपा है । दोनों मंत्रभाग यहां देखिये—

(१) उक्षाणं अपचन्त (ऋ. १।१६४।४३)= बैल पकाया, (आत्माको परिपक्व बनानेका अनुष्ठान किया)।

(२)सुभगे! वृषभाय बाहुं उपबर्बृहि ऋ. १०।१०।१०= हे सुदंर स्त्री ! तू अपने हाथका बैल के लिये सिरोना कर,। (हे स्त्री ! तूशक्तिमान तरुण पुरुषके लिये अपने हाथ का सिरोना कर।)

ये दो मंत्र देखने से पाठकों को पता लग सकता है कि बैलवाचक वैदिक शब्दों का केवल बैल ही अर्थ किया जाय तो कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है। इस विवाह प्रकरण में पतिको हि यह बैलवाचक वृषभ शब्द लगाया है । यदि प्रकरणानुकूल अर्थ न देखा जाय, तो अनर्थ होने का कोई ठिकाना नहीं रहेगा । प्रकरणानुकूल शब्दार्थ करनेकी आवश्यकता सिद्ध करनेके लिये इससे अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार वृषभ शब्द का अर्थ देखनेके पश्चात् अब हम "उक्षा " शब्द का अर्थ देखते हैं-

[४३] उक्षा शब्दका अर्थ ।

संस्कृत भाषामें उक्षा शब्दका भी बैल अर्थ है, परंतु वेदमें यह शब्द अनेक विलक्षण अर्थोंमें आता है, उनमें से कुछ अर्थ नमूनेके तौर पर देखिये—

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति
भुवनानि वाजयुः ॥ ऋ० ९ । ८३ । ३

(अग्रियः पृश्निः उक्षा) पहिला तेजस्वी बैल (उषसः अरूरुचत्) उषाओं को चमकाता रहा । यह (उक्षा वाजयुः भुवनानि बिभर्ति) बैल बल देता हुआ सब भुवनों को धारण करता है ।

इसमें " उक्षा (बैल) " शब्द सूर्य तथा परमात्मा का वाचक है तथा और देखिये —

नैतावदेना परो अन्यदस्ति
उक्षास द्यावापृथिवी बिभर्ति ॥ ऋ० १० । ३१ । ८

(एना एतावत् न) यह इतनाही नहीं है (अन्यत् परः अस्ति) दूसरा परे बहुत है । (उक्षासः द्यावा पृथिवी बिभर्ति) बैल द्युलोक और पृथिका धारण करता है ।

इस मंत्रका भी " उक्षा (बैल " शब्द सूर्य तथा परमात्माका वाचक है । मंत्रके प्रारंभ में जो " दिखाई देनेवाला उतनाही विश्व नहीं है, परंतु उससे परे अदृश्य बहुत ही विश्व है " ऐसा कहा है वह विशेष विचार करने योग्य है । इन मंत्रों को देखने से कई अल्पज्ञ मनुष्य कहते हैं कि वैदिक सिद्धांत के अनुसार " बैलके सींगपर सब जगत् ठहरा है, " परंतु यह वे इस लिये कहते हैं कि उक्षा शब्दके सूर्य तथा परमात्मा ये अर्थ होते हैं यह बात उनको मालूम नहीं है । अतः उनके अज्ञानका ही यह प्रभाव है । ऊपरके मंत्रमें " उक्षाने उषाका प्रकाश किया " यह जो कथन है, वह निःसंदेह

सूर्य का सूचक है जो यह नहीं समझेंगे उनके लिये अनर्थ करनेकी खुली आज्ञा है। और देखिये —

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।

ऋ. १। १०५। १०

"जो ये पांच उक्षा (बैल) महान् द्युलोक के मध्यमें ठहरे हैं।" यहां भी उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं है, क्यों कि कोई बैल द्युलोक के मध्यमें ठहर नहीं सकता। यहां उक्षा शब्द नक्षत्र वाचक है जो पांच तारे एक स्थानपर आकाशमें दिखाई देते हैं उनकावाचक यह शब्द यहां है। क्या इससे ऐसा अनुमान हो सकता है कि वैदिक समयमें बैल आकाशमें उडते थे? यदि नही तो यहां उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं है, परंतु कोई पदार्थ जो कि आकाशमें दिखाई देता है। उक्षा शब्द का अर्थ वायु तथा प्राण भी है देखिये—

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी

ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः॥ऋ०१।१३५।९

हे वायो! जो तेरे (उक्षणः) बैल अर्थात् प्राण तथा वायुके वेग (अन्तः नदी) तेरे प्रवाह के अंदर (सुपतयन्ति) गिरते हैं या बहते हैं और ये (उक्षाणः) बैल अर्थात् प्राण (महि व्राधन्तः) बडे शक्तिशाली होते हैं।

इस मंत्रका उक्षा शब्द बैल वाचक नहीं है, परंतु वायुके प्रवाह तथा प्राण के प्रवाह का वाचक है। म०ग्रिफिथ भी यहां The Bulls=Blasts of wind अर्थात् यहां का बैल वाचक उक्षा शब्द वायुके वेगों का वाचक है ऐसा कहते हैं। और वह ठीक ही है। तथा और देखिये- ऋ०३।७।६

उक्षा हि यत्र परिधानमक्तोरनुस्वं धाम जरितुर्ववक्ष॥

"उक्षा जहां (अक्तोः परिधानं स्वं धाम) अंधकारका नाशक अपना प्रकाशमयस्थान (जरितु ववक्ष) उपासक के पास करता है।"

यहां अंधकार का नाश करनेवाला उक्षा सूर्य समझिये अथवा अज्ञानान्धकार का नाशक परमात्मा समझिये परंतु यहां उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं हो सकता, इतनी बात सत्य है। इस उक्षा शब्दके विषयमें म. ग्रिफिथ क्या कहते हैं देखिये- "उक्षा" Bull, the strong God who protects his worshiper अर्थात् "यहां का बैलवाचक उक्षा शब्द

उपासक की रक्षा करनेवाला सर्व शक्तिमान परमेश्वर का वाचक है।" उक्षा सोम आदि शब्द परमात्माके वाचक हैं यह बात इससे पूर्व हमने बतादी है, तथा यह भी बताया है कि जो नाम परमेश्वरके वाचक हैं वे जीवात्माके भी वाचक हैं। इससे उक्षा शब्द के जीवात्मा परमात्माके वाचक होने में किसीको शंका नहीं हो सकती।

यदि "उक्षा, वृषभ, ऋषभ" आदि बैलवाचक शब्दोंके ऐसे आध्यात्मिक अर्थ होते हैं यह बात सर्वमान्य है तो फिर किसी के सामने "उक्षाणं अपचन्त" शब्द आये तो पूर्वापर संबंध न देखकर ही बैल पकानेका भाव निकालनेका किसको कैसा अधिकार पहुंच सकता है? परमात्मा परिपूर्ण है और उसकी उपासना करने द्वारा जीवात्मा पूर्ण होने की तैयारीमें है, इसलिये इस जीवात्माकी पूर्णता करनेके उपाय विविध अलंकारोंसे वेद में बताये हैं, उसमें "देहरूपी हंडीमें इस जीवात्माको पका कर परिपक्व बनानेकी" भी एक आलंकारिक उपमा है। यह उपमा इतनी अर्थपूर्ण है कि जिस समय यह मनके सन्मुख ठीक प्रकार खडी हो जाती उस समय मन आश्चर्यचकित हो जाता है। वेद में केवल यही एक उपमा नहीं है, सैंकडों अन्य उपमायें हैं और कईयोंमें स्पष्ट बातका उल्लेख है और कईयोंमें इसी प्रकार गुप्त उपदेश है।

अब पाठक पूछेंगे कि ऐसी उपमाएं और ऐसे अलंकार वेद में क्यों आये हैं? उत्तरमें निवेदन है कि यह कोई अस्वाभाविक अलंकार नहीं है। वेद में शब्दोंके यौगिक अर्थ प्रधान होते हैं इसलिये केवल रूढ अर्थ को लेकर वेद पढने वाले ही इस प्रकार भ्रममें पडते हैं, परंतु जो लोग यौगिक अर्थ लेते हैं वे सुगमता से वेदका अर्थ समझ सकते हैं। अब अपने प्रचलित उक्षा शब्द का अर्थ ही देखिये--

"उक्ष् सेचने" धातुसे "उक्षन्" शब्द बना है, इसलिये "सिंचन करने वाला" यह अर्थ इसका मूल यौगिक है। यह मूल अर्थ इंग्लिश कोशोंमें (Sprinkling) सिंचन करनेवाला, ऐसा दिया है। यही इस शब्द का अर्थ मुख्य है, अन्य सब इसी के भाव हैं। अब इनके अर्थ देखिये---

मेघ जलका सिंचन करता है, जलसे पृथ्वीको भिगोता है इस लिये मेघका नाम "उक्षा" है। इन्द्र वृष्टिसे जगत्को भिगोता है इसलिये इन्द्र का नाम उक्षा है। परमात्मा संपूर्ण स्थिरचर जगत् को जीवन के अमृतसे भिगा देता है इस लिये परमात्माका नाम उक्षा है। कर्मफलोंको देनेके कारण भी उस को उक्षा कहते हैं। जीवात्मा अपने शरीरको अपनी प्राणशक्तिसे भिगा देता है इसलिये उसको उक्षा कहते हैं। इस प्रकार विविध महान शक्तियोंका नाम उक्षा है। न इस में कोई अत्युक्ति है और ना ही खींचा तानी है, यह तो शब्दका वास्तविक अर्थ है। जो मनुष्य शब्द के वास्तविक अर्थ को समझ नहीं सकता उसने अपने अज्ञान के कारण यदि किसी वेद मंत्रके अर्थ का अनर्थ किया, तो वह उस अज्ञानीका दोष है उसमें वेदके वर्णनमें दोष किस प्रकार आसकता है? इसलिये आवश्यक है कि जो वेदका अध्ययन करना चाहते हैं वे वेदके मूल संज्ञाको जानें, वैदिक शब्दोंके अर्थ देखें और वेदके वर्णनशैलीसे परिचित हों और पश्चात् वेद पढें। ऐसा करनेसे अर्थका अनर्थ नहीं होगा अन्यथा इसी प्रकार अर्थके अनर्थ बनेंगे। यह तो अज्ञानका चमत्कार है।

उक्षा शब्दका मुख्य यौगिक अर्थ सिंचन करने वाला है, जो सिंचन करता है उसमें शक्ति की अधिकता होती है। जिस प्रकार उक्षा शब्द सिंचन करनेवाला है उसी प्रकार वृषभ, वृषा ये शब्द वृष्टि करनेवाले के द्योतक हैं। इसलिये जो उक्षा शब्द के वाचक हैं वे ही वृषभ और वृषा शब्दके भी वाचक हैं। अतः इन्द्र, परमात्मा, सूर्य, मेघ आदि अर्थ इस शब्दके भी हैं। पूर्वोक्त प्रमाण वचनों में एक मंत्रमें "पति" के लिये वृषभ शब्द आगया है वहां "वीर्य-प्रदान करनेमें समर्थ" यह अर्थ है। जैसा मेघ जल प्रदान करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार पति वीर्य प्रदान करनेमें समर्थ होना चाहिये। पाठक इस वर्णन से जान सकते हैं कि एकही उक्षा या वृषभ शब्द ऐसे विभिन्न अर्थोंका वाचक कैसा बन सकता है। अब पाठकोंके सन्मुख इन शब्दोंके कुछ उदाहरण रखते हैं जिनके विचार से पाठक जान सकते हैं कि इन शब्दोंके अर्थ कैसे विलक्षण होते हैं और इनका अर्थ केवल बैल ही नहीं है— अथर्व०९।१।९

वृषभा ये स्वराजः। ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति०॥

'जो(स्व राजः)अपने तेजसे युक्त(वृषभाः)मेघ हैं वे (वर्षन्ति) वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं।' यहां वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है, मेघका वाचक है क्यों कि इसमें वृष्टिका संबंध है। और देखिये।

पर्वतस्य वृषभस्याधिपृष्ठे नवाश्चरन्ति
सरितः पुराणीः॥ अथर्व० १२।२।४१

"(वृषभस्य पर्वतस्य पृष्ठे) जिसपर वृष्टि होती है ऐसे पर्वतपर से(पुराणी सरितः नवाः चरन्ति)पुराणी नदियां नई बनकर बहती हैं।" यहांका वृषभ शब्द बैलका वाचक नहीं है परंतु(Raining mountains) वृष्टि होनेवाले तथा बादलोंसे घिरे पर्वतशिखरोंका वाचक है। यह शब्द निःसंदेह सिद्ध करता है कि वृषभ शब्द वेदमें सर्वत्र बैल वाचक नहीं है। और एक अद्भुत मंत्र देखिये— अथर्व० २०।११३।२

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षुः

इसका अर्थ म० ग्रिफिथ यह करते हैं—For him, strong indepedent Ruler, Heaven and Earth have fashioned forth for power and might. अर्थात् (तं वृषभं स्वराजं) उस बल-शाली स्वतंत्र राजाको द्युलोक और पृथ्वी लोकोंने शक्ति (ओजसे) और बल के लिये बनाया है। इस मंत्रका वृषभ शब्द स्वतंत्र साम्राज्य के चालक सम्राट् के लिये आया है। आजकल यदि कोई मनुष्य किसी सम्राट् को " वृषभ " (बैल) करके पुकारेगा तो वह जेलका हकदार होगा, परंतु वैदिक जमानेमें " वृषभ " का बैल अर्थ विशेष करके नहीं था, परंतु " शक्ति शाली, बलवान आदि अर्थ" प्रचलित थे, इसलिये यह शब्द सम्राट् के लिये वेदमें प्रयुक्त किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वृषभ आदि बैलवाचक शब्द वैदिक समयमें प्रशंसावाचक माने जाते थे और उनका उपयोग सम्राट् की प्रशंसा करनेमें भी किया जाता था। और एक मंत्र देखिये—

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं
व्यानट्। अथर्व० २०।९१।७

बृहस्पतिने (घर्म स्वेदेभिः) जिसमें पसीनेकी बूंदें आती हैं ऐसे (वृषभिः वर+अहैः) शक्ति शाली दिनोंके द्वारा (द्रविणं व्यानट्) धन प्राप्त किया। अर्थात् जिन दिनों में ऐसे बडे प्रयत्न किये जाते थे उन दिनोंके प्रयत्नोंसे उसको धन प्राप्त होता है । इस मंत्रका " वृषा " शब्द बैल वाचक नहीं है प्रत्युत शक्तिके कर्म बताता है । तथा " वराह " शब्द भी सूवरका वाचक नहीं है प्रत्युत वह " वर+अह " अर्थात् उत्तम शुभ दिनोंका वाचक है । यदि ये सत्य अर्थ न लिये जांय तो कोई वेदका अनभिज्ञ ऐसे अनुमान कर सकेगा कि " बृहस्पतिने बैल और सूवर बेचकर गर्मीके दिनोंमें बहुत धन कमाया!! " यह मंत्र इस लिये यहां बताया है कि वास्तविक अर्थका अनर्थ अज्ञानके कारण कैसा हो सकता है इसका ठीक अनुमान पाठकोंको हो जाय। सूवर-वाचक वराह शब्द " उत्तम दिन " का वाचक वेद मंत्रमें मिलता है । अब पाठक देख सकते हैं कि इतना अर्थ का सूक्ष्म विचार करना आवश्यक होता है, अन्यथा जो अनुमान होंगे वे अनर्थकारकही होंगे। परमात्मा के लिये वृषभ शब्द उसके अगाध बलके दर्शाने के लिये वेदमें प्रयुक्त होता है, देखिये—

वृषाऽसि दिवो वृषभः पृथिव्याः वृषा सिंधूनां
वृषभस्तियानाम् ॥ ऋ० ६ । ४४ । २१

" तू द्युलोक, पृथिवी, समुद्र तथा स्थिरजलोंका वृषभ अर्थात् शक्ति दाता हो । " बलकी वृष्टि करने वाला इस अर्थमें यह शब्द यहां आया है ।

इतने उदाहरण देखनेके पश्चात् किसीको संदेह नहीं हो सकता कि वेद में वृषभ, उक्षा आदि बैल-वाचक शब्द किस किस अर्थमें प्रयुक्त हैं। जो केवल बैल ही उनका अर्थ करते हैं वे कैसे गलतीपर हैं यह भी यहां स्पष्ट होगया है । अब प्रसंगसे प्राप्त एक बातको यहां विशेष रूपमें बताना है पाठक उसका भी विशेष विचार करें, क्यों कि संपूर्ण वैदिक यज्ञ क्रिया के साथ उसका संबंध है । देखिये

४४ एक और अनेक -

गोमेध आदि यज्ञोंमें गायका बली दिया जाता था और यज्ञशेष मांस खाया जाता था ऐसा कथन मांसपक्षी लोग करते हैं । इस लिये संक्षेपसे यज्ञका तत्त्व यहां अब देखना है । यह यज्ञका तत्त्व देखनेके लिये वेद में एक और अनेकों का संबंध जिस ढंगसे वर्णन किया है वह ढंग समझ लेनेकी बडी आवश्यकता है । यह संबंध बडा महत्त्वका है और पूर्ण रीतिसे बताना हो तो बडे लंबे लेख की आवश्यकता होगी, परंतु इतना स्थान यहां नहीं है, अतः अति संक्षेपसे इसके मूलभूत सिद्धांत को ही यहां बताते हैं। वेदमें देवतावाचक नामोंमें एकही देवता एक वचन और अनेक वचनमें आती है जैसा-

१ एक एव रुद्रः । तै. सं. १ । ८ । ६ । १

२ असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः अधिभूम्याम् ॥
य० अ. १६ । ५४

(१) एकही रुद्र है। (२) असंख्यात हजारों ये रुद्र भूमिपर हैं ।

वेदमें रुद्र एक है ऐसा भी कहा है और रुद्र अनेक हैं ऐसा भी कहा है। यह एक रुद्र कहां है और अनेक रुद्र कहां है इसका विचार करनेके समय हमें निम्न लिखित मंत्र सहायता दे सकते हैं—

१ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ऋ० १० । ६४ । ८।

२ शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः ॥ ऋ० ७ । ३५ । ६।

३ रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मुळयाति नः ॥ ऋ० १० । ६६ । ३।

४ रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम् ॥ ऋ० ७ । १० । ४।

(१) (रुद्रेषु रुद्रं) अनेक रुद्रोंमें रहने वाले एक रुद्र की हम प्रार्थना करते हैं । (२) अनेक रुद्रोंके साथ रहनेवाला एक रुद्र हमें शांति देनेवाला हो । (३) अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाला एक रुद्र हमें सुखी करे । (४) अनेक रुद्रोंके साथ एक बडे रुद्र की पूजा करो ।

इत्यादि अनेक मंत्रोंमें अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाले एक महान् रुद्रका वर्णन पाठक देखें। इस का आगे संबंध आनेवाला है इस लिये इस एक और अनेक देवोंका स्मरण रखें। इसी प्रकार अग्निका भी वर्णन देखिये—

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो । ऋ० १ । २६ । १०

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः ।
यज्ञेषु ये उ चायवः ॥ ऋ० ३ । २४ । ४ ·

इन दोनों मंत्रोंमें (विश्वेभिः अग्निभिः अग्निः) अन्य अनेक अग्नियोंके साथ रहनेवाले एक अग्नि का वर्णन देखने योग्य है। पाठक इस मंत्रमें कही बात और पूर्वोक्त रुद्रमंत्र में कही बात तुलना करके देखें तो उसमें उनको अपूर्व साम्य नजर आवेगा। यहां दोनों देवता ओंके वर्णनमें " एक देव अनेक देवोंके साथ है " यह बात पाठक देखें। अब निम्न मंत्र भाग भी पूर्वोक्त मंत्रोंके साथ देखें—

१ देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत् ॥ ऋ० २। १२। १
२ देवो देवान् परिभूॠतेन ॥ ऋ० १०। १२। २
३ देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥ऋ० २। ३। १
४ देवो देवान् यजसि जातवेदः ॥ ऋ०१०।११०।१
५ देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ॥ ऋ०९।९७।१२

(१) एक देव अनेक देवोंको ऋतुसे भूषित करता है, (२) एक देव अनेक देवोंको ऋतसे घेरता है,(३) एक योग्य देव अग्नि अनेक देवोंका सत्कार करे,(४) एक जातवेद देव अनेक देवोंका सत्कार करे (५) एक देव अनेक देवोंको अपने रससे तृप्त करता है।

पूर्वोक्त मंत्रोंपर ये मंत्र बहुत ही प्रकाश डालते हैं। एक देव मुख्य है और उसके आश्रयसे अनेक देव रहते हैं। " एक परमात्माके आश्रयसे अनेक जीवात्मा रहते हैं " यह तात्पर्य ध्यानमें धर कर यदि पूर्वोक्त मंत्र देखे जाय तो उनका अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायगा। यहां यही विषय प्रतिपादन करना नहीं है, अन्यथा इस विषयके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, परंतु यहां जो बात बतानी है वह इतने प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जायगी, इसलिये इस विषयको अधिक लंबा करनेकी इच्छा नहीं है। जितने मंत्र यहां दिये हैं उनके ही मननसे अध्यात्मविषयकी एक महत्त्वपूर्ण बात कि "एक परमात्माके आधारसे अनेक जीवात्मा रहते हैं' यह बात वेदमें किस ढंगसे लिखी है यह बात पाठकों को स्पष्ट हो जायगी।

४५ यज्ञका तत्त्व।

उक्त बातमें एक महत्त्वपूर्ण यज्ञका तत्त्व है। परमात्मा अपनी शक्तिका यज्ञ अनंत जीवोंके उद्धार के लिये करता है, संपूर्ण ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रायः यज्ञका वर्णन करते हुए पहिले समय में यह यज्ञ परमात्मा-ने इसप्रकार किया ऐसा लिखा होता है। इसका उद्देश यह ही है कि अनंत जीवात्मा भी उसी प्रकार परोपकार करने और दूसरोंका उद्धार करने के लिये उक्त यज्ञ करें। परमात्मा का जो सब का उद्धार करने का महायज्ञ चल रहा है उसमें संपूर्ण जीवात्माएं अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर समर्पित हों। जिस प्रकार राष्ट्रोद्धार के महायुद्ध में राजा अपनी संपूर्ण शक्ति लगाता है, उस समय सब सैनिकोंको तथा सब प्रजाजनोंको भी अपनी सब शक्ति लगाकर संमिलित होना चाहिये; उसी प्रकार परमात्मा अपनी शक्ति लगाकर जो सबके उद्धार के यज्ञ कर रहा है उन यज्ञोंमें जीवोंको भी आत्मसमर्पण करना चाहिये।यहां यज्ञ यही है कि " एक अनेकों के लिये समर्पित हो रहा है, अतः अनेक भी एकके लिये समर्पित हों। "

अपने शरीरमें भी देखिये कि यह एक जीवात्मा अपनी सब शक्ति शरीरके संपूर्ण अनेक अवयवों, अनेक अंगों और अनेक इंद्रियों में डालता है और इस जडको जीवनपूर्ण करता है, इसलिये इन अनेक इंद्रियों को संयमादि द्वारा जीवात्माके उद्धारके तपादिके कर्मके लिये अपने आपको समर्पित होना चाहिये। यह यज्ञ शरीरमें चल रहा है।

जो यज्ञ परमात्माकी शक्तिसे जगत् में हो रहा है वही अल्प क्षेत्रमें जीवात्माकी शक्ति से शरीरमें बन रहा है और वही मनुष्यों को जगत् में करना चाहिये। यहां भी एक अनेकोंके लिये समर्पित हो रहा है और अनेक एक के लिये समर्पित हो रहे हैं। यह " एक और अनेक" का संबंध पाठक ध्यानमें धारण करें।

वेद में जीवात्मापरमात्माके एक ही नाम होते हैं यह बात इससे पूर्व बतायी ही है, इसी लिये एक रुद्र और अनंत रुद्र के वर्णनमें एकही रुद्र शब्दसे, तथा एक ही अग्नि शब्दसे जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन होता है। इसी प्रकार इन्द्र, सोम, वृषभ आदि शब्दों के विषयमें जानना चाहिये। इतनी बात जानने के पश्चात् निम्न लिखित दो मंत्र देखिये—

४६ एक वृषभके साथ अनेकवृषभ।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ॥१॥ ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र

ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः। तां आतिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥ ऋ० १।१७७।१-२

" (जनानां वृषभः) लोगोंका बैल जैसा बलवान (कृष्टीनां राजा) प्रजाओंका राजा इन्द्र है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो तेरे (वृषणः वृषभासः) बलवान अनेक वृषभ (ब्रह्मयुजः) ज्ञानसे युक्त हैं उनके साथ यहां (आयाहि) आओ।"

इन मंत्रों में एक वृषभ (इन्द्र) के साथ अनेक वृषभ (वृषभासः = इन्द्राः) रहनेका वर्णन है। जो भाव अनेक रुद्रोंके साथ एकरुद्रका है,तथा जो भाव अनेक अग्नियोंके साथ रहने वाले एक अग्निका है, वही भाव एक वृषभ या इन्द्र के साथ रहनेवाले अनेक वृषभ या इन्द्रमें निःसंदेह है। एक परमात्मा के साथ अनेक जीवात्माओंका होना इस प्रकार वेद में वर्णन किया है। और इनका यज्ञ पूर्वोक्त लेखमें बतायी रीतिके अनुसार हो रहा है।

एक परमात्माके नाम इन्द्र, अग्नि, रुद्र, सोम, वृषभ आदि हैं और ये ही नाम अनेक वचनमें आगये तो जीवात्मा के वाचक होते हैं। इन नामोंके साथ ही निम्न लिखित नामभी देखने योग्य हैं—

" अज " शब्द बकरे का वाचक होता हुआ भी " अ+ज " अर्थात् अ-जन्मा ईश्वर का वाचक है और साथ साथ "अ-जन्मा जीवात्मा" का भी वाचक है। "अज" शरीरमें रहनेवाले जीवात्मा का, जगत् में व्यापने वाले परमात्माका तथा बकरेका वाचक है।

" वृषभ " शब्द बैलका वाचक होता हुआ भी यौगिक अर्थके बलसे शक्ति शाली होनेका भाव बतानेके कारण परमात्माका तथा शरीरमें जीवात्मा का वाचक है। पीछे इन्द्र शब्द का वाचक वृषभ शब्द अनेक वार दिया है और इन्द्र शब्द जीवात्मा परमात्माके लिये प्रसिद्ध है। इसी प्रकार " ऋषभ- और उक्षा " शब्दके भी दोनों अर्थ हैं।

" अश्व " शब्द घोडेका वाचक होता हुआ भी पूर्वोक्त प्रकार जीवात्मा परमात्मा का वाचक है, परमात्मा का वाचक होते हुए इसका अर्थ (अश्नुते व्याप्नोति) सर्वत्र व्यापक है और जीवात्मा वाचक होने के प्रसंगमें (अश्नाति) फल भोग करता है या फल खाता है यह अर्थ होता है। अर्थात् एक ही अश्व शब्दका अर्थ जीवात्मा और परमात्मा होता है।

ये सब शब्द इन अर्थोंके साथ ध्यानमें धरनेसे किसी मंत्रमें " अज " शब्द आया, किसीमें "अश्व" आगया अथवा किसी में " वृषभ " शब्द आया या, इसी प्रकार का कोई अन्य शब्द आया तो आगे पीछे का विचार न करते हुए एकदम मांस भक्षण परके ही अर्थ निकालनेकी आवश्यकता नहीं है, यह बात इतने विवरण से पाठकोंके सन्मुख हो जायगी।

मनुष्य मात्र या प्राणिमात्र के अंदर जो जीवात्मा है वह जन्ममरण रहित होने से ' अ-ज " अर्थात् अजन्मा है, वह युवा शरीरमें रहता हुआ वीर्यसिंचन करने द्वारा प्रजाकी उत्पत्ति करता है, इस लिये इस को " वृषा, वृषभ, उक्षा, " आदि नाम होते हैं, यह कर्मफल भोग करता है इसलिये इसको " अश्व " कहते हैं, यह अपने इंद्रिय गणोंको अपने वशमें रख सकता है इसलिये इसीको " वशा " कहते हैं। अर्थात् ये नाम इसकी विशेष उन्नतिकी अवस्था बताते हैं। इस प्रकार का जीवात्मा अपने आपकी शक्ति सर्वस्वको परम भक्तिके साथ परमात्मार्पण करता है, यह इसका महायज्ञ है, इतना विवरण मननपूर्वक देखने के पश्चात् निम्न मंत्र देखिये—

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे। यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मसंमितः स नो मुञ्चत्वंहसः॥ अथर्व० ४। २४। ४

"जिसके लिये वशा, ऋषभ, उक्षा आदि हैं, जिस तेजस्वी के लिये यज्ञ किये जाते हैं (ब्रह्मसंमितःशुक्रः) ज्ञानसे पूर्ण पवित्र सोम भी जिसके लिये है वह (नः अंहसः मुञ्चत्) हम सबको पाप से छुडावे।"

ऐसे मंत्रोंमें मांसपक्षी लोग समझते हैं कि (वशा)गौवें,(ऋषभ)बैल,(उक्षा)बैल आदि प्राणी यज्ञमें बली चढाये जाते थे और उनका मांस यज्ञशेष मांस खाया जाता था। परंतु कल्पना करनेके लिये इस इतनी मंत्रमें कोई शब्द नहीं है। परमात्म देव के लिये वशा ऋषभ उक्षा आदि हैं, इन्द्रके लिये ये हैं, इतना कहने मात्रसे उनकी हिंसा करके आहुति डालनेका विधान कहां और कैसे होता है? यदि स्थूल हवन

ही यहां अभीष्ट लिया जाय, और इससे पूर्व लिखा आध्यात्मिक यज्ञ न लिया जाय, तो भी वशा शब्दसे गौका दुग्ध लिया जा सकता है। इस विषयमें पहिले प्रमाण बताये जा चुके हैं। वृषभादि अन्य पशुओं की आवश्यकता यज्ञमें अन्य रीतिसे भी होती है। यज्ञमें गाडी खींचने, वीरोंको ले आने और ले जाने आदिके लिये बैल और घोडों की आवश्यकता होती ही है, इसलिये यज्ञमें जहां जहां पशुओंका उल्लेख आजाय वहां वहां हवनके लिये ही है ऐसा मानना अनुचित ही होगा। वेदमें--

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। ऋ० १।१६४।४३

" जो उस आत्मतत्त्वको नहीं जानता वह वेदके मंत्र लेकर क्या करेगा " ऐसा जो कहा है वह निःसंदेह बता रहा है कि वेदका मुख्य तात्पर्य अध्यात्मज्ञान देना ही है। वेद प्रतिपादित यज्ञयाग आदि सब इसीलिये हैं। यह अध्यात्मदृष्टि रखकर " अज, अश्व, वृषभ " आदि शब्दोंके जो भाव अध्यात्मविद्यामें समझे जाते हैं, और उनके यज्ञसे जो भाव अध्यात्म में लेना है वह ऊपर लिखा है। परंतु संभव है कि कई कारणोंसे किसी विद्वानको यह भाव लेना पसंद न हो और केवल स्थूल भाव लेनाही पसंद हो तो,यद्यपि वैसा स्थूल अर्थ लेना इस मंत्रके भावसे सर्वथा विपरीत है, तथापि हम इस पर अधिक बल न देते हुए, इतनाही कहते हैं कि स्थूल दृष्टिसे भी यज्ञमें पशुसमर्पित करने और उसका मांस अंतमें भक्षण करनेके लिये जो मंत्र ऊपर बताये गये हैं वे उनका पक्ष सिद्ध नहीं करते हैं। "इन्द्रके लिये वशा, वृषभ, ऋषभ हैं" इतना कहने मात्रसे यह बात किसी भी रीतिसे सिद्ध नहीं हो सकती कि इन पशुओंके मांसका समर्पण, हवन और भक्षण किया जाय। अपने मनकी बात वेदपर लगाना नहीं चाहिये। देखिये यदि पूर्वोक्त मंत्रके " वशा, ऋषभ, उक्षा " ये शब्द गाय और बैलके वाचक मानने हैं तो उसीके पूर्व के मंत्रमें " वृषभ " शब्द आया है उसका अर्थ देखिये—

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्। यस्याध्वरः सप्त होता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः॥ अथर्व० ४।२४।३

इसका म० ग्रिफिथ का ही अर्थ देखिये—
Ruler of men, finder of light, the hero: the pressing stones declare his valour, master of sweetest sacrifice with seven Hotars. May he deliver us from greef and trouble.

इसमें "वृषभ" शब्दका अर्थ 'वीर' (hero) किया है, यह देखने योग्य है, इसी के आगेके मंत्रमें ही वशा, ऋषभ, उक्षा ये शब्द पडे हैं। यदि पूर्व मंत्रके " वृषभ " शब्दका अर्थ वीर होता है तो उसके अगले ही मंत्रमें वृषभ जातीके ही " वशा, ऋषभ, और उक्षा " शब्दके अर्थ " वीरा, वीर, नायक " माने जानेमें क्या हानी होगी? इस तीसरे मंत्रमें वृषभ शब्दका अर्थ बैल किसी भी प्रकार किया ही नहीं जा सकता, यह देखकर यदि इसी प्रकरण के इसके अगले ही मंत्रमें वीर (hero) ही अर्थ किये जांय तो कितना उत्तम सजता है। यह उत्तम अर्थ छोड कर ये ही म० ग्रिफिथ आगेके मंत्रका अर्थ

यस्य वशास ऋषभास उक्षणः। अथर्व० ४।२४।४

" The lord of barren cows and bulls and oxen. " ऐसा किया है। यहां वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ किया है, परंतु इसी अथर्व वेदमें वशा गौका दूध पीनेका उल्लेख है। यदि वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ अथर्व वेदमें होता तो उसके दूध की संभावना न होती। संस्कृत भाषामें वशा का अर्थ वंध्या गौ हो, परंतु वेदमें यह अर्थ नहीं है। अब पूर्वोक्त मंत्रका अर्थ देखिये—

" (यः) जो (चर्षणि—प्रा) जनताका पालन करनेवाला, (स्वः- विद्) आत्मज्ञानके तेजसे युक्त (वृषभः) वीर पुरुष है (यस्मै) जिसके (नृम्णं) शौर्यकी (ग्रावाणः) पत्थर दिलवाले मनुष्य भी (प्रवदन्ति) प्रशंसा करते हैं तथा जो सप्त होता यज्ञका स्वामी है वह हमें पापसे बचावे।"

यहां " एक और अनेक " का पहिले बताया हुआ संबंध भी देखने योग्य है - (मं० ३ में) एक वृषभ का वर्णन है और (मंत्र०४ में) अनेक वशासः ऋषभासः, उक्षणः अर्थात् अनेकों का वर्णन है। इसलिये भी जो पहिले मंत्रमें वृषभसे अर्थ लिया

जाय वही अगले मंत्रमें लेना उचित है।

४७ आलंकारिक गौ और बैल।

वेद में आलंकारिक भाषामें गौ बैलोंका वर्णन आया है वह भी यहां देखना आवश्यक है। इस विषयको संक्षेपसे बतानेके लिये यहां कुछ मंत्र उद्धृत करते हैं-

सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्॥ अ०४।५।१
सहस्रशृंगो वृषभो जातवेदाः। अथर्व० १३।१।१२

"हजार सींग वाला वृषभ समुद्रसे ऊपर आया। हजार सींगवाला वृषभ जिससे वेद बने हैं।" इनमंत्रोंमें निःसंदेह वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है तथा-

यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः। ऋ० १।१५४।६

"जहां बहुत सींगवाली गौवें हैं।" इस मंत्रमें भी बहुत सींग वाली गौवोंका वर्णन किया है, जिस जातिके बैल ऊपर वाले मंत्रमें हैं उसी जातिकी गौवें इस मंत्रमें वर्णन की हैं। निःसंदेह ये गौवें और ये बैल आलंकारिक हैं। हमें यहां इन मंत्रोंका विशेष अर्थ बताने की आवश्यकता नहीं है, केवल इतना ही बताना है कि बैलवाचक शब्द वेदमें केवल बैल वाचक नहीं हैं। यह बात वास्तविक रीतिसे स्पष्ट है, परंतु मांस पक्ष के लोग विना कारण अर्थका अनर्थ करते हैं, इसलिये हरएक विषयके संबंधमें इतना लिखना आवश्यक होता है। अब इस विषयमें एक और मंत्र देखिए—

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्। घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति॥ अथर्व० १३।१।३३

"(मतीनां वृषभः) बुद्धियोंका वृषभ यह (विराजः वत्सः) विराट् का वत्स है। वह (शुक्रपृष्ठः) तेजस्वी पृष्ठवाला अंतरिक्षमें चढा है। घीसे (अर्कं वत्सं) पूजनीय वत्सकी (अभ्यर्चन्ति) पूजा करते हैं। (ब्रह्म सन्तं) स्वयंब्रह्महोते हुए (ब्रह्मणा-वर्धयन्ति) ब्रह्मसे बढाते हैं।" यह मंत्र वृषभ शब्दका आध्यात्मिक महत्त्व अच्छी प्रकार सूचित करता है।

इस मंत्र में जिस वृषभ का वर्णन है वह विराट् (विराजः वत्सः) पुरुष परमात्माका बच्चा है। विराट् पुरुष या परमात्माका बच्चा जीवात्मा है इस विषय में किसीको कोई शंका नहीं हो सकती। तथा यह (मतीनां वृषभः) बुद्धियोंकी वर्षा करने वाला है, बुद्धि देने वाला है, यहां वृषभ शब्दका अर्थ वृष्टि करनेवाला है। आत्मा और परमात्मा बुद्धियोंको देते हैं या बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं यहबात गायत्रीमंत्रमें (धियो यो नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है इस मंत्र भागसे व्यक्त हो गई है। जीवात्मा परमात्माका पुत्र होने से परमात्माके गुणधर्म अंशरूपसे जीवात्मामें हैं। परमात्मा स्वयं ब्रह्म है इसी प्रकार उसका पुत्र जीवात्मा भी उसके ब्रह्मगुण से अंशतः युक्त है। यही भाव व्यक्त करनेके उद्देश से (ब्रह्मसन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति) जीवात्मा स्वयंब्रह्महोते हुए भी ज्ञानी ब्रह्मकी उपासनासे उसको बढाते हैं। अर्थात् उसकी शक्तिका विकास करते है।

यदि यह मंत्र विशेष रीतिसे देखा जाय तो पाठकों का इस विषय में निश्चय होगा कि यहां का वृषभ शब्द जीवात्मा का वाचक ही है, क्यों कि इसकी सूचक तीन बातें इसमें लिखी हैं - (१) यह विराट् पुरुष परमात्माका पुत्र है, (२) यह बुद्धियोंका प्रेरक है और (३) इसकी उन्नति ब्रह्म की उपासनासे होती है। ये तीनों बातें स्पष्ट हैं और ये तीनों बातें यहां के वृषभ शब्दका अर्थ जीवात्मा है यह स्पष्ट बता रही हैं। यह हृदय रूपी अंतरिक्षमें रहता है इस लिये इसको अंतरक्षमें रहा है ऐसा इस मंत्रमें कहा है। वृषभ शब्द इस प्रकार यहां जीवात्म वाचक होने के पश्चात् यदि पाठक यही बात हमारे पूर्व स्थानमें बताये यज्ञ विषयक लेख के साथ तुलना करके देखेंगे, तो निःसंदेह उनके ध्यानमें जीवात्माओंका परमात्माके लिये समर्पितहोना, अनेक देवोंका एक देवके लिये समर्पित होना ही यज्ञ का मुख्तयात्पर्य है यह हमने पूर्वस्थान में बताई बात ही स्पष्टता पूर्वक आजायगी। जो बात सत्य होती है वह अनेक प्रकारसे स्वयं खुल जाती है इसमें कोई संदेह नहीं है। इसी विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये-

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्॥ अपां न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः॥ अथर्व. १९।४२।४

(अंहोमुचं) पापसे छुडाने वाले (अध्वराणां

प्रथमं विराजन्तं) यज्ञोंमें प्रथम स्थानमें विराजमान (यज्ञियानां वृषभं) यज्ञियों में मुख्य (अपां न पातं) जीवन जलको न गिराने वालेकी(धियःहुवे)बुद्धिकी प्राप्ति के लिये हम प्रार्थना करते हैं। (ते इंद्रियेण) तेरी इंद्रशक्तिके द्वारा (इंद्रियं ओजः) इन्द्रकी दर्शन स्पर्शन आदि कर्म रूप शक्ति हमें प्राप्त हो।

यह मंत्रभी पूर्वोक्त बातही स्पष्ट कर देता हैऔर वृषभ शब्दका जीवात्मपरमात्मपरक होना बताता है।

४८ गौमाता को खा जाना।

वेद में माता को खाजाना और गौमाता को भी खाजाना लिखा है,इसविषयमें अब थोडासा लिखना आवश्यकहै। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र बडा विचार करने योग्य है-

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजिना। क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम्॥ ऋ० १०।१७६।१

(सूनवः) पुत्र (ऋभूणां वृजिना) ऋभुओंके पराक्रम बडे वर्णन करते हैं (ये विश्वधायसः) जो सबका धारण करनेवाले हैं वे (क्षामा धेनुं मातरं न अश्नन्) भूमि, गौ को माताके समान ही खा जाते हैं, भोग करते हैं।

यहां माता, गौ और भूमिको खा जानेका वर्णन है। पाठक पहिले देखें कि माता को किस प्रकार लडके खाते हैं, पाठक समझ ही गये होंगे कि लडके माताका दूध पीते हैं यही माताको खा जाना है। इस ढंगसे हरएक मनुष्य अपनी माताको तथा अपनी धाई कोई खाजाता है तथापि मातृवधका दोषी नहीं होता है। अर्थात् वेदको गौमाताको खा जाना भी ऐसा मंजूर है कि जिसमें गोवध न हो, गौका हवन भी ऐसा स्वीकार है कि जिसमें गौकि हिंसा न हो। जिस प्रकार लडका माताका दूध पीता है उसी प्रकार गौमाता का भी दूध पीये। भूमिका दूध भी धान्य और फल है वह खाये। तीनों माता ओंको खा जानेका यही वैदिक विधि है,इसमें माताकी हिंसा नहीं होती परंतु माताका अमृत रस ही पीया जाता है। पाठक सोचें तो सही कि यह कितनी अद्भुत कल्पना है। वेद कहता है कि--

इह पुष्टिरिह रसः॥ अथर्व ३।२८।४

यहां माता के स्तनोंमें-भूमि माता, गौमाता और सच्ची मातामें पुष्टि देनेवाला अमृत रस है। वह धान्य, फल, दूध रूपसे हमें प्राप्त होता है इस लिये उसको लेना चाहिये। गौवें अनेक हैं--

पृथिवी धेनुः॥ २॥ अंतरिक्षं धेनुः॥ ४॥
द्यौर्धेनुः॥६॥ दिशो धेनवः॥८॥ अथर्व० ४।३९

" पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ और दिशा ये सब गौवें हैं।" इनके जो विविध रस हैं वे खाने ही चाहिये और इस प्रकार माता का भक्षण करना चाहिये। पृथ्वीका रस अन्न, अंतरिक्षका रस जल, द्युलोकका रस प्रकाश, इस प्रकार इन धेनुओंके रस हैं, इनके खाने से ही मनुष्य आरोग्य संपन्न होकर जीवित रहता है। इसलिये कहा है—

४९ एक साधारण नियम

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्। पयः पशूनां रस ओषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्॥ अथर्व० १९।३१।५

पयो धेनूनां रस ओषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ
अथर्व ४।२७।३

(अहं पशूनां पुष्टिं परिजग्रभ)मैं द्विपाद चतुष्पादपशुओं से पुष्टि लेता हूं,और धान्य भी लेता हूं।(पशूनांपयः) पशुओंसे दूध लेता हूं,(ओषधीनां रसः)औषधियोंसे रस लेता हूं, यह (सविता मे नियच्छात्) सविता देवने मुझे दिया है। (धेनूनांपयः) गौओंसे दूध, (ओषधीनां रसः) औषधियों से रस, (अर्वतां जवं) घोडोंसे वेग कवि लोग प्राप्त करते हैं।

इसमें सर्व साधारण नियम बताया है कि जहां पशु लेनेका वेदमें कथन हो वहां उस पशुका दूध (पशूनां पयः) लिया जावे, जहां औषधि लेनेका वेदमें कथन हो वहां (औषधीनां रसः) औषधीयों का रस लिया जावे। वेद में सोम शब्द से सोम वल्लीका रस लेना चाहिये, और गौ आदि शब्दोंसे उनका दूध लेना चाहिये। यह वेद की संज्ञा वेदने ही इन मंत्रों द्वारा स्पष्ट की है, इतना स्पष्ट कर देनेपर भी जब कोई गौ आदि शब्द देखकर उसके मांसकी कल्पना करे तो उसमें वेदका दोष क्या हो सकता है? पाठक ही विचार करें किसीको संदेह न हो इसलिये वेदने स्वयं अपना संकेत स्पष्ट शब्दों में बताया है। पाठक इस को देखें और विचारें।

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

आयुष्य-वर्धन-सूक्त।

(३०)

(ऋषिः— अथर्वा आयुष्कामः। देवता—विश्वे देवाः)

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः॥ १॥
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम्।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ॥ २॥
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून्॥ ३॥
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान्वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि॥४॥

अर्थ— हे (विश्वे देवाः) सब देवो! हे (वसवः) वसुदेवो! (इमं रक्षत) इसकी रक्षा करो। (उत) और हे (आदित्याः) आदित्य देवो! (यूयं अस्मिन् जागृत) तुम इसमें जागते रहो। (इमं) इस पुरुषको (स-नाभिः) अपने बंधुका (उत वा अन्य-नाभिः) अथवा किसी दूसरेका (वधः मा प्रापत्) वधकारक शस्त्र न प्राप्त करे, न प्रहार करे तथा (यः पौरुषेयः वधः) जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला घातपात है वह भी (इमं मा प्रापत्) इस को प्राप्त न करे॥ १॥ हे (देवाः) देवो! (ये वः पितरः) जो आपके पिता हैं तथा (च ये पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब (स-चेतसः) सावधान होकर (मे इदं उक्तं शृणुत) मेरा यह कथन श्रवण करें। (सर्वेभ्यो वः एतं परिददामि) सब आपकी निग्राणीमें इसको मैं देता हूं (एनं जरसे स्वस्ति वहाथ) इसको वृद्ध आयुतक सुखपूर्वक पहुंचा ओ॥ २॥

(ये देवाः दिवि स्थ) जो देव द्युलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं, और जो (ओषधिषु पशुषु अप्सु अन्तः) औषधि, पशु और जलोंके अंदर हैं (ते अस्मै जरसं आयुः कृणुत) वे इसके लिये वृद्धावस्थावाली दीर्घ आयु करें। यह पुरुष (शतं अन्यान् मृत्यून् परिवृणक्तु) सेंकडों अन्य अपमृत्यु को हटादेवे ॥ ३ ॥ (येषां) जिन तुम्हारे अंदर (प्रयाजाः) विशेष यजन करनेवाले, (उत वा अनुयाजाः) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा (हुत-भागाः अहुतादः च देवाः) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, (येषां वः पञ्च प्रदिशः विभक्ताः) जिन आपकी ही पांच दिशायें विभक्त की गई हैं, (तान् वः) उन तुमको (अस्मै) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये (सत्र-सदः कृणोमि) सदस्य करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब देवो, हे वसु देवो! मनुष्यकी रक्षा करो! हे आदित्य देवो! तुम मनुष्यमें जाग्रत रहो। मनुष्यका उसीके बंधुसे अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे वध न हो ॥ १ ॥ हे देवो! जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें! मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयु तक ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः तुम मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव द्युलोक, अंतरिक्षलोक, भूलोक, औषधि, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें। तुम्हारी सहायतासे मनुष्य सेंकडों अपमृत्युसे बचे ॥ ३ ॥ विशेष याजन करनेवाले, अनुकूल याजन करनेवाले, हवन का भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएं विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक सभाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ बनाने में सहायता करें ॥ ४ ॥

आयुका संवर्धन।

मनुष्य का आयुष्य न केवल पूर्ण होना चाहिये प्रत्युत अतिदीर्घ होना चाहिये। पूर्ण आयुष्यकी मर्यादा तो १२० वर्षोंकी है, इससे कम १०८ वर्षकी और इससे कम १०० सौ वर्षकी है। सौ वर्षकी मर्यादा तो हरएक को प्राप्त होनी ही चाहिये, परंतु उसका

प्रयत्न इससे अधिक आयुष्य प्राप्त करनेकी ओर होने चाहिये इसका सूचक मंत्र यह है-

भूयश्च शरदः शतात्। यजुर्वेद ३६।२४

सौ वर्षोंसे भी अधिक आयु प्राप्त हो। १२० वर्षोंसे अधिक आयु जितनी भी होगी वह दीर्घ या अतिदीर्घ संज्ञाको प्राप्त होगी। अर्थात् अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका पुरुषार्थ करना वैदिक धर्मके अनुकूल है। इस दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति की वैदिक रीति इस सूक्तमें दर्शाई है, इसलिये पाठक इस सूक्तका विचार करें तथा जो जो सूक्त इस विषयके साथ संबंध रखनेवाले हैं उनकाभी मनन इसके विचारके साथ करें।

सामाजिक निर्भयता।

दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति के लिये समाजमें सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिमें, तथा धार्मिक और अन्यान्य दृष्टियोंसे निर्भयता रहना अत्यंत आवश्यक है। निर्भयता सुरक्षितता न रहेगी तो मनुष्य दीर्घायु हो नहीं सकते। समाजमें कोई एक दूसरे पर हमला करनेवाला न हो, इस प्रकार का समाज बनना चाहिये। राजनैतिक कारण से हो, धर्म के नामपर हो, अथवा किसी दूसरे निमित्तसे हो, कानून अपने हाथ में लेकर एक दूसरे पर हमला करना किसीको भी उचित नहीं है, यह दर्शाने के लिये प्रथम मंत्रका उत्तरार्ध है, इसका आशय यह है—

"इस मनुष्यका वध कोई सजातीय, अन्य जातीय या कोई अन्य मनुष्य किसी साधनसे न करे॥" (मंत्र १)

यह वेदका उपदेश मनुष्य मात्र के लिये है, हरएक मनुष्य यह ध्यानमें रखे और अपने आचरणमें ढालनेका प्रयत्न करे। "मैं किसी का वध न करूंगा, किसी दूसरेकी हिंसा मैं नहीं करूंगा। मैं अहिंसा वृत्तिसे आचरण करूंगा।" यह प्रतिज्ञा हरएक मनुष्य करे और तदनूकूल आचरण करे।

इस मंत्रमें जो शांति वर्णन की है वह मनुष्य मात्रमें स्थिर रहनी चाहिये, यह बुनियाद है और इसी अहिंसा वृत्तिपर दीर्घायुका मंदिर खडा होना है। जबतक मनुष्यमें हिंसक वृत्ति रहेगी तब तक वह दीर्घायु बन नहीं सकता। घातपात करनेकी वृत्ति, क्रोध की लहर, दूसरे का खून करनेकी वासना, दूसरे को दबा कर अपनी धनसंपात्ति बढानेकी अभिलाषा जबतक रहेगी तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी। इस लिये वध करनेकी वृत्ति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करें।

*

देवोंके आधीन आयुष्य !

मनुष्यका समाज जितना अहिंसावृत्तिवाला होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होसकती है । यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके आगे का मार्ग आक्रमण करना चाहिये । आगेका मार्ग यह है कि– "अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं" यह भाव मनमें धारण करना । इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वार्धने दी है, उसका आशय यह है–

"हे सब वसु देवो ! मनुष्यकी रक्षा करो । हे सब आदित्यो ! मनुष्यमें जागते रहो ।" (मंत्र १)

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं । पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंको मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है । ये दोनों बातें दीर्घ आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं । अब इनका संबंध देखिये–

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आधीनतामें सूर्यादि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं । मैं परमात्माका अमृत पुत्र हूं इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा । परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वेभी उस परमात्माके पुत्रकी रक्षा अवश्य करेंगे ही ।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं निर्भय हूं यह विचार मनमें दृढ करके मनके अंदर जो जो चिंताके विचार आयेंगे उनको हटाना चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी दृढ अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें चिंताका विचार ही न उठे और चिंतारहितनिर्भय होनेका भाव आनंद वृत्तिके साथ मनमें रहे । दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मापर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तिपर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव है ।

कई पाठक शंका करेंगे कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं? इस विषयमें इससे पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है । तथापि संक्षेपसे यहांभी इसका विचार करते हैं । पाठक जानते ही हैं कि प्रथम मंत्रमें "वसु" देवोंका उल्लेख है, ये सब जगत के निवासक देव होनेके कारण ही इनको "वसु" कहते हैं । सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे ।

सब वसुओं का भी परम वसु परमात्मा है क्यों कि वह जैसा सब जगत् को वसाता है इसी प्रकार जगत् के संरक्षक सब देवोंको भी वसाता है। उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य आदि के साथ हमारे क्षणक्षण के आयुष्यका संबंध है, इनमें से एक का भी संबंध हमसे टूट गया तो हमारा नाश होगा। इतना महत्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षण में सदा मनुष्य रहता है ऐसा उपरवाले मंत्रमें कहा है। इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निःपक्षपातसे हो रही है। ये देव कभी किसी का पक्षपात नहीं करते हैं। सूर्य सब पर एकसा प्रकाशता है, वायु सबके लिये एकसा बह रहा है, जल सबके लिये आकाशसे गिरता है, पृथ्वी सबको समान तया आधार दे रही है। इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निःपक्षपात का भी बर्ताव कर रहे हैं।

हमारे जीवन के साथ इनका संबंध इतना घनिष्ठ है कि इनके विना हमारा जीवन ही अशक्य है। वायुके विना प्राण धारणा कैसी होगी? सूर्य के विना जीवनही असंभव होगा, इत्यादि प्रकार पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं।

हम क्या करते हैं?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षा में रहनेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्न में हैं? इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। देखिये, परमात्माकी और देवोंकी रक्षासे हम कैसे बाहर जाते हैं— परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षा से बाहर हो जाते हैं। दयामय परमात्मा तोभी उनकी रक्षा करता ही रहता है यह उनकी ही अपार दया है, परंतु ये अविश्वासी लोग उसकी अपार दयासे लाभ नहीं उठाते। अविश्वासके कारण जितनी हानि है किसी अन्य कारणसे नहीं हो सकती। दीर्घ आयुकी प्राप्ति के लिये इसी कारण मनमें परमात्मविषयक दृढ विश्वास चाहिये।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाश से सबको जीवनामृत देनेद्वारा सब की रक्षा करही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी संरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इनके लिये भगवान् सहस्ररश्मी सूर्यदेव क्या कर सकते हैं?

इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषय में समझना उचित है । ये देव तो सबकी रक्षा करही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उत्तम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और जहांतक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपने आपको अधिक रखें ।

पाठक यहां समझही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्र की किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षामें किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना नुकसान किस प्रकार कर रहे हैं ।

आदित्य देवोंकी जाग्रती ।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्धक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है- " हे आदित्यदेवो ! इस मनुष्यमें जाग्रत रहो । " मनुष्यके अंदर आदित्य से ही सब जीवन शक्ति आरही है । यह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है । इसी शक्तिसे सब जगत् चल रहा है । परंतु यहां मनुष्य का ही हमें विचार करना है । मनुष्य में यह आदित्य शक्ति मस्तिष्कमें रहती है, नेत्र में रहती है और पेट में रही है । मस्तिष्क में मज्जाकेंद्र चलाती है, पेटमें पाचक केंद्र को चेतना देती है और नेत्रमें देखनेका व्यापार कराती है । इनमें से कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जाता है ! मस्तिष्क का मज्जाकेंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है,पेटका वाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं । इतना महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है । इसलिये वेदमें कहा है कि —

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्वेद. १।११५।१

" यह आदित्य सूर्य ही स्थावर जंगम जगत् का आत्मा है । " पाठक इस मंत्रका आशय ध्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति सदा जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें । सूर्यभेदन व्यायाम और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेठके स्थान में रहनेवाली आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मस्तिष्क की आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा त्राटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्र की आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है । इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बल-

युक्त करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इस उपदेशका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। "समाजमें निर्भयता, परमेश्वरपर दृढनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबंध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना" यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका थोडासा स्पष्टीकरण आगेके मन्त्रोंमें है, वह अब देखिये--

देवोंके पिता और पुत्र।

इस आयुष्यवर्धक सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है कि "हे देवो! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें! मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, तुम इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ।" (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें "देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्यको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं" ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्व वेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत् ॥ ३ ॥
प्राणापानौ चक्षुःश्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताऽजायत ॥ ८ ॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

अथर्व ११।८(१०)

(पुरा)सबसे प्रथम (देवेभ्यः दश देवाः)देवोंसे दस देव (साकं अजायन्त) साथ साथ उत्पन्न हुए । जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा,(सः अद्य महत् वदेत्)वह बडे ब्रह्मके विषयमें बोलेगा । वही ब्रह्मका ज्ञान कहेगा ॥ ३ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अ-क्षितिः) अविनाशी बुद्धि, और (क्षितिः)नाशवान चित्त,व्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे (आकूतिं आवहन्) संकल्पको उठाते हैं ॥ ४ ॥कहांसे इन्द्र, सोम, और अग्नि होगये? कहांसे त्वष्टा हुआ, और धाताभी कहांसे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता हुआ है ॥ ९ ॥ (ये पुरा देवेभ्यःदश देवाः)जो पहिले देवोंसे दस देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा)पुत्रोंको स्थान देकर वे स्वयं (कस्मिन् लोके आसते) किस लोक में बैठे हैं ? ॥ १० ॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र कौनसे हैं इसका वर्णन है। प्राण अपानादि दस देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुत्र रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवों-के पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है- प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, यह जगत्में संचार करनेवाले वायु-का पुत्र है, और इस वायुकाभी पिता -- वायुका भी वायु -- परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार चक्षुरूपी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव द्युलोकमें है, और सूर्यका पिता -- सूर्यका भी सूर्य -- परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके विषयमें जानना योग्य है । यह विषय इससे पूर्व आचुका है, इसलिये यहां अधिक विव-रण की आवश्यकता नहीं है ।

सबका सारांश यह है कि पुत्र रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीर में रहते हैं । इनके पितादेव भू-भुवः-स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं ।

हमारा आंख सूर्यके विना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्माकी सौर महाशक्तिके विना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है । इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है । इन सबके आधीन मनुष्यका दीर्घायु बनना है।

इस लिये जो दीर्घ आयुष्यके इच्छुक हैं वे भक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे दृढ करें । यह परम पिता परमात्मा सूर्यका भी सूर्य, वायुका भी वायु प्राण का भी प्राण, अर्थात् देवोंका भी देव है और वही हम सबका पिता है । इसकी भक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ हो गई तो मनकी समता स्थिर रह सकती है और उससे

दीर्घ आयु प्राप्त होती है। इस प्रकार देवोंके पितासे मनुष्यका संबंध होता है और यह संबंध अत्यंत लाभ कारी है।

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यान के प्रसंगमें वर्णन किया ही है, इस लिये उसको दुहरानेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

प्राण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं। योगादि साधनोंसे इनका बल बढ सकता है। इस लिये इनके व्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर नीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्य के साथ देवों, देवों के पितरों और देवों के पुत्रों का संबंध है। यह जान कर योग्य अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें।

परमपिता परमात्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, रुद्र आदि अनेक देवताओं की विविध शक्तियों से युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओं का सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है वह उचितही है। इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उत्तम और स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है। पाठक इसका विशेष विचार करें।

देवोंके स्थान

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान कहे हैं। यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है— "द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, औषधि, पशु, जल, इन स्थानोंमें देव रहते हैं, वे मनुष्य के लिये दीर्घ आयु करते हैं और जिनकी सहायतासे सेंकडों अपमृत्यु दूर हो जाते हैं।" (मंत्र ३) यह मंत्र बडा विचार करने योग्य है।

द्युलोकमें सूर्यादि देव, अंतरिक्षमें वायु, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, औषधियोंमें रसात्मक सोमदेव, पशुओंमें दुग्धादिरूपसे अमृत देव, जलमें वरुण आदि देव निवास करते हैं। ये सब देव मनुष्यकी आयु बढानेके कार्यमें सहायक होते हैं। सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है; इन्द्र और चन्द्र क्रमशः सुषुप्ति और जाग्रतिके व्यापक और अव्यापक मनके सञ्चालक देव हैं, रुद्र स्वयं प्राणोंका चालक है, अग्नि वाणीसे संबंध रखता है, औषधिवनस्पतियोंसे अन्न तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती हैं, पशुओंसे दुग्ध रूपी अमृत मिलता है, जल देवसे वीर्य बनता है, इस प्रकार अन्यान्य देव मनुष्यके सहायक हैं। परंतु प्रयत्न द्वारा मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे यथायोग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आयुष्य बढ सकता है। इन देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनी हैं, द्युलोक के देवोंसे सौरचिकित्सा, वर्णचिकित्सा, प्रकाशकिरण-चिकित्सा; अंतरिक्ष स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा अथवा चांद्रचिकित्सा; पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा, खनिजपदार्थोंसे रसचिकित्सा, शस्त्रचिकित्सा, औषधियोंसे तथा वनस्पतियोंसे भैषज्यचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा अर्थात् पशुओंको विविध औषधियां खिलाकर तथा विविध रंगोंकी गौओंके दूध का उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादिके उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल-चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीति से इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना। प्राचीन कालके ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं। आजकल भी इस दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं। इन देवताओंमें विविध और अनंत शक्तियां हैं, उनकी समाप्ति नहीं होगी, इसलिये मनुष्योंको विविध रीतिसे यत्न करके इन देवताओंसे विशेष लाभ उठानेकेलिये यत्न करना चाहिये। इतने प्राचीन कालमें ऋषिलोक यह उद्योग करते थे और लाभ उठाते थे और दीर्घजीवी भी बने थे। यह सिल सिला टूट गया है, तथापि आजकल प्रयत्न करनेपर उसी मार्गसे बहुत खोज होना संभव है। जो पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति करें तथा यशके भागी बनें। अस्तु। इस प्रकार इन देवताओं की शक्ति अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है।

साधारणसे साधारण प्रयत्नसे भी बडा लाभ हो सकता है। जैसा सूर्य किरणों में अपना नंगा शरीर तपानेसे, वायु में नंगे शरीर घूमनेसे, जलमें तैरनेसे, उत्तम औषधि-योंका रस पीनेसे और गोदुग्ध आदिके सेवनसे साधारण परिस्थितिमें रहने वाला मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं। फिर जो विविध यंत्र निर्माण द्वारा इन दैवी शक्ति-योंसे अधिक लाभ उठानेका पुरुषार्थ करेंगे उनके विषयमें क्या कहना है। इस प्रकार ये देवताएं गौके समान हैं, इनसे जितना दूध दोहना चाहो आप उतना दुह सकते हैं। इनमें अखंड अमृत रस भरा है। जो जितना पुरुषार्थ करेगा उसको उतना अमृत मिलेगा और वह उतना अमर होगा।

देवताओंके चार वर्ग ।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंसे अमृतरस प्राप्त करने द्वारा अमरत्व प्राप्त करने अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठान का स्वरूप बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गोंका वर्णन किया है और इन देवताओंको अपने सहकारी सदस्य बनानेका उपदेश किया है । इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

" देवोंमें प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग और अहुताद ये चार वर्गके देव हैं। इन देवोंसे ये पांचों दिशाएं विभक्त हुई हैं । ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें। "(मंत्र४)

इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके वाचक शब्दोंसे ही व्यक्त होते हैं । ये लक्षण देखिये-

१ प्रयाजाः = विशेष यजन करने वाले, २ अनुयाजा=अनुकूल यजन करने वाले, ३ हुतभागाः=हवन का भाग लेने वाले, ४ अहुतादः=हवनका भाग न खानेवाले ।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें-- (१) जिनपर इच्छा शक्तिका परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवयव अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवों का नाम प्रयाज है, जैसे हृदय आदि अवयव । (२) जो अवयव अपनी इच्छाशक्ति से अनुकूल कार्य में लगाये जा सकते हैं उनको अनुयाज कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, आंख आदि । (३) हुत भाग वह इंन्द्रिय हैं जो भोग की इच्छुक हैं और कार्य करने से थकती हैं और विश्रामसे तथा अन्नरस मिलनेसे पुष्ट होती हैं । (४) शरीरमें अहुताद केवल ग्यारह प्राणही हैं, क्योंकि ये प्राण शरीर में सदा कार्य करते हैं और स्वयं कुछभी भोग नहीं लेते, जन्मसे लेकर मरनेतक बराबर कार्य करते रहते हैं ।

इस प्राणका वर्णन तथा अन्य इंद्रियोंका वर्णन इसी प्रकार उपनिषदोंमें किया है । प्राणाग्निहोत्र उपनिषदमें शारीर यज्ञके प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शारीरयज्ञस्य .... के प्रयाजाः केऽनुयाजाः ॥

महाभूतानि प्रयाजाः ॥ भूतान्यनुयाजाः ॥ प्राणाग्निहोत्र० ॥ ३-४

शरीरमें चले हुए यज्ञके प्रयाज और अनुयाज कौन हैं ? महाभूत प्रयाज और भूत अनुयाज हैं । इसीप्रकार हुतभाग और अहुताद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा ब्राह्मणों में लिखा है जिसका तात्पर्य ऊपर दियाही है ।

इसी आभ्यंतर यज्ञका नकशा बाह्य यज्ञमें किया जाता है, उसका वर्णन यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है । अनुयाजों से प्रयाज अधिक महत्त्व के हैं तथा हुतभागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं। जो शरीर शास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार

करनेकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिकी नियंत्रणासे चलनेवाले हस्तपादादि अवयवोंकी अपेक्षा अनिच्छासे कार्य करनेवाले हृदयादि अंतरवयव अधिक महत्त्वके हैं। तथा अहुताद अर्थात् कुछभी भोग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अविश्रांत कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक श्रेष्ठ हैं और नेत्र कर्ण आदि अवयव जो श्रमसे थकते हैं, विश्राम करते हैं और भोगभी भोगते हैं ये उनसे गौण हैं।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इंद्रिय शक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अन्यों को भी बलवान करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवोंकी क्षीणता न होने दें। उदाहरण के लिये पहिलवानोंके व्यायामही लीजिये। पहिलवान लोग अपने शरीर के पुट्ठोंको बलवान बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवों का ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका स्थूल शरीर बडा बलशाली होता है, परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं। इसका परिणाम अल्पायुमें उनकी मृत्यु हो जाती है।

यदि ये लोग साथ साथ हृदयको भी बलवान बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा। इस लिये यहां कहना यह है कि अपने अंदर जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न बढे इसका विशेष विचार करना चाहिये। इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है। श्वाससंस्थान, मज्जासंस्थान, और हृदयसंस्थान आदि महत्त्व पूर्ण संस्थानोंका बल बढना चाहियें और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहने योग्य शक्ति शाली बनने चाहिये।

मंत्रका प्रयाज शब्द मुख्य का भाव और अनुयाज शब्द गौण का भाव बताता है। ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थान को विभक्त किया है। ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले शतसांवत्सरिक सत्र के भागी बनें, अर्थात् ये इस सौवर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करने में समर्थ हों, अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे करें और निर्विघ्नातासे यह शतसांवत्सरिक यज्ञ चलाने में हमारे सहकारी बनें।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं। यदि पाठक इस ढंगसे अनुष्ठान करेंगे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है। यह " आयुष्य गण " का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तों के साथ इसका विचार करें।

आशा-पालक-सूक्त ।

(३२)

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—आशापालाः, वास्तोष्पतिः)

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥ २ ॥
अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥ ३ ॥
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ — (भूतस्य अध्यक्षेभ्यः) जगत् के अध्यक्ष (अमृतेभ्यः) अमर (आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः) दिशाओंके चार दिशापालकोंके लिये (वयं) हम सब (हविषा इदं विधेम) हविर्द्रव्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो ! (ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्थन) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो (ते नः) वे तुम हम सबको (निर्ऋत्याः पाशेभ्यः) अवनति के पाशोंसे तथा (अंहसः अंहसः) हरएक पापसे (मुञ्चतां) छुडाओ ॥ २ ॥ (अ-स्रामः) न थका हुआ मैं (हविषा त्वा यजामि) हविर्द्रव्यसे तेरा यजन करता हूं। (अ-श्लोणः त्वा घृतेन जुहोमि) लंगडा न होता हुआ तुझको घीसे अर्पण करता हूं। यह (आशानां आशापालः तुरीयः देवः) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है (सः नः सुभूतं इह आवक्षत्) वह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पंहुचावे ॥३॥ (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हम सबकी माता के लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे। तथा (गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति) गौवोंके लिये, चलने फिरनेवालों के लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे। (नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम

ज्ञान हो और हम (सूर्यं ज्योक् एव दृशेम) सूर्य को बहुत काल तक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुषी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस बने हुए जगतके अध्यक्ष हैं। उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ ३ ॥ मैं न थकता हुआ उनका सत्कार करता हूं, लंगडा लूला न बन कर मैं उनको घी देता हूं, जो इन चार दिक्पालोंमें चतुर्थ देव है वह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्था तक पहुंचावे ॥ ५ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अन्य इष्टमित्र, हमारे गाय घोडे आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों। हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढे तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

दिक्पाल ।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर ये चार दिशाएं हैं। उनकी रक्षा करनेवाले चार दिक्पाल हैं, वे अपनी अपनी दिशाका संरक्षण कर रहे हैं। ये विश्वके रक्षक इतने दक्ष हैं कि इनको न समझते हुए कोई मनुष्य किसी भी प्रकार बुरा कार्य कर नहीं सकता। हरएक मनुष्यको उचित है कि वह उक्त बात मनमें धारण करे और इन दैवी लोक-पालोंके दण्ड के योग्य कोई आचरण न करे।

राजा अपने राज्यकी व्यवस्था और राज्यका सुशासन करनेके लिये अपने राज्यमें चार विभाग करके उनपर एक एक मुख्य शासक अधिकारी नियत करे, वह अधि-कारी दक्षतासे अपने विभागका योग्य शासन करे। दुष्टोंको दंड दे और सुष्टोंका प्रति-पालन करे। और कहांभी अनाचार होने न दें। यह राष्ट्रनीति का पाठ इस सूक्तसे हमें मिलता है।

विश्व के अंदर राष्ट्र, और राष्ट्र के अंदर व्यक्तिका देह है। और इन तीनों स्थानों में नियम एक जैसा ही है। इस लिये राष्ट्र शासन का विचार होने के पश्चात् जिन व्यक्तियोंका राष्ट्र बनता है उन व्यक्तियोंके अंदर चार दिशाओंके चार दिक्पाल किस रूपमें हैं और उनका शासन इस अध्यात्मभूमिकामें कैसा चल रहा है और उससे हमें वैयक्तिक सदाचार के विषय में कौनसा बोध लेना है, इस का विचार अब करना चाहिये।

देहमें चार दिक्पाल।

देहमें मुख को " पूर्व द्वार " कहते हैं, और गुदाको " पश्चिम द्वार " कहते हैं। ये द्वार एक दूसरेके साथ संबंधित भी हैं। पूर्व द्वारसे अर्थात् मुखसे अन्न पान शरीरके अंदर घुसता है, वहां का कार्य करता है और शरीर के मलादिके रूपमें परिवर्तित होकर पश्चिम द्वारसे अर्थात् गुदासे बाहर हो जाता है। अर्थात् पोषक अन्नका प्रवेश पूर्व द्वारसे इस शरीरमें होता है और मल को दूर करनेका कार्य पश्चिम द्वारसे होता है। दोनों कार्य शरीरके स्वास्थ्य के लिये अत्यंत आवश्यक ही हैं। परंतु यह तो स्थूल शरीरके स्वास्य के साथ का संबंध है, इससे और दो द्वार हैं जिनका संबंध मनुष्यकी उन्नति या अधोगति के साथ अधिक है; ये दो द्वार मनुष्यके शरीरमें ही हैं, जिनको " उत्तर द्वार " तथा " दक्षिण द्वार " कहते हैं।

" उत्तर द्वार " मस्तकमें है जिसका नाम " विदृति द्वार " उपनिषदोंमें कहा है, इस द्वारसे शरीरमें जीवात्माका प्रवेश होता है और इसी द्वारसे अपने प्रयत्नसे जिस समय यह बाहर जाता है उस समय से यह जन्ममरण के दुःखसे छूटता है और पुनः शरीरके बंधनमें पडता नहीं। बालक के मस्तकमें छोटेपन में इस स्थानपर हड्डी होती नहीं। इसका नाम उत्तर द्वार है क्यों कि इस द्वार से जानेसे उच्चतर अवस्था प्राप्त होती है।

यह मज्जा केन्द्रके साथ संबंधित है। इसी मज्जा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिश्न है जिससे वीर्यका पात होता है। इसके योग्य नियम पालनसे सुयोग्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलानेसे मनुष्य की अधोगति होती है। ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं। ब्रह्मचर्य पालन द्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनिषदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गको सूचित करता है, इसीका नाम " उत्तरायण (उत्तर+अयन) " अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है। इसके विरुद्ध " दक्षिणायन " अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थ धर्म पालन पूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता। ये दो मार्ग मज्जातंतुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ये शरीर में अन्ननलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार ये दो मार्ग मज्जा तंतुओंके साथ संबंध रखते हैं। ये चार द्वारों के चार संरक्षक देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमले के अंदर दबने नहीं चाहिये।

आशा और दिशा।

इस सूक्तमें दिशा वाचक " आशा " शब्द है और, उसके पालक का नाम "आशा-पाल " मंत्रोमें आया है। " आशा " शब्दके दो अर्थ हैं। एक " दिशा " और दूसरा " आशा, महत्त्वाकांक्षा, उमीद "। मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा और उम्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती होती है। मनुष्य जिस समय आशाहीन होजाता है , निराश होता है, हताश होता हैं, उस समय वह इस जगत्से हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है। यह विचार यदि पाठकोंके मन में जम जायगा, तो उन को पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्य के साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखता है।

जिस समय " आशा " शब्दका अर्थ " आशा, आकांक्षा, " आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयका मार्ग बताता है। तथा जिस समय इसी " आशा " शब्दका अर्थ " दिशा " किया जाता है, उस समय यही सूक्त बाह्य जगत् तथा राष्ट्र के प्रबंध का भाव बताता है। सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को वेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वरूप बता रही है।

सूक्त का मनुष्यवाचक भावार्थ !

मनुष्य की चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं। इन भूताध्यक्षोंकी हवनसे हम पूजा करते हैं॥ १॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें॥ २॥ मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हविसे तथा घृतसे इनको तृप्त करता हूं। इन चार आशाओंके पालकोंमें से चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायकारी होवे॥ ३॥ इनकी सहायतासे हमारे माता, पिता, इष्ट मित्र, गाय घोडे आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दीर्घायु बनें।

केवल एक " आशा " शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आनेसे व्यक्ति विषयक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहां देखें। यह उपदेश इतना महत्त्व पूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐहिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निश्रेयस प्राप्त कर सकता है। इस सूक्त पर बहुत लिखा जा सकता है परंतु यहां संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे —

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

(१) स्वयंशिक्षक माला।

वेदका स्वयंशिक्षक। १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥)
" " २ द्वितीय भाग ... " १॥)

(२) योगसाधनमाला।

१ संध्योपासना। ... मूल्य १॥)
२ संध्याका अनुष्ठान। ... " ॥)
३ वैदिक प्राण विद्या। ... " १)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र)। ... " १।)
५ योगसाधनकी तैयारी। " १)
६ योगके आसन। (सचित्र) " २)
७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " ॥)

(३) यजुर्वेद स्वाध्याय।

१ यजु. अ. ३०। नरमेध। मूल्य मूल्य १)
२ यजु. अ. ३२। एकेश्वर उपासना। " ॥)
३ यजु. अ. ३६। शांतिका उपाय। " ॥=)

(४) देवतापरिचय ग्रंथमाला।

१ रुद्र देवता परिचय। .. मूल्य ॥)
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता। ... " ॥=)
३. ३३ देवताओंका विचार। " =)
४ देवताविचार। .... " =)
५ अग्निविद्या।... " १॥)

(५) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

१ बालकधर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। " =)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक " =)

(६) उपनिषद् ग्रंथमाला।

१ केन उपनिषद् .... मूल्य १।)
२ ईश उपनिषद् " ॥=)

(७) आगम-निबंध-माला

१ वैदिकराज्यपद्धति। ... मू. ।-)
२ मानवी आयुष्य। ... " ।)
३ वैदिकसभ्यता ... ... " ॥)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ... " ॥)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा। " ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या। .... " ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। " ॥)
८ वेदमें चर्खा। .... " ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय। " ॥)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता " ॥)
११ तर्कसे वेदका अर्थ। .... " ॥)
१२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र। " =)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न। .... " =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने। " ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या। " =)
१६ वैदिक जलविद्या। " =)
१७ आत्मशक्तिका विकास। " ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला " ॥)

(८) ब्राह्मण-बोध-माला।

१ शतपथ बोधामृत। " ।)

(९) अन्य पुस्तक।

१ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग " १)
२ " " द्वितीय " " १)
३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १)
४ " " द्वितीय " " ॥)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

'केन' उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ " केन " शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांतियोंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ " यक्ष " कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्ठी, २२ त्रिलोकी २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यज्ञ, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिसे उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है ।

मूल्य १।) डाकव्यय=) है ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

यज्ञकी पुस्तक

वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १) रु. डाकव्यय ।)

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १
२ " " " " २
३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)
५ अद्भुत कुमार-संभव " " "
६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार
(ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी)

७ यज्ञका महत्त्व (संपादकीय)
८ यज्ञका क्षेत्र "
९ यज्ञका गुढ तत्त्व "
१० औषधियों का महामख "
११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा
(ले.-- श्री. पं. धर्मदेवजी)
१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है? (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी)

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी । मूल्य ॥) आठ आने । डाक व्यय-) एक आना ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ!! अत्यन्त उपयोगी!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग। (मू. १)

द्वितीय भाग। (मू. ॥)

अतिशीघ्र मंगवाइये।

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED. No. 1463

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक १०

क्रमांक ९४

आश्विन

संवत् १९८४

अक्तूबर

सन १९२७

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४।।) विदेशके लिये ५)

विषय सूची ।

संस्कृत पाठ माला।

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है।]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और व्ही. पी. से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है।

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक. लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

५ एकादश भाग।

इस भागमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासों का विचार किया है॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके६ भाग।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष ८
अंक १०
क्रमांक ९४

आश्विन
संवत् १९८४
अक्तूबर
सन १९२७

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

गौका सबको आधार।

—:o:—

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥

अथर्व० १०। १०। ३४

(देवाः) सब देव (वशां उपजीवन्ति) गौपर जीवित रहते हैं, मनुष्य (उत) भी गौपर ही जीवित रहते हैं। (वशा) गौ (इदं सर्वं) यह सब (अभवत्) बनी है (यावत्) जहां तक सूर्य देखता है।

सब देव गौके दूधपर तथा घीपर जीवित रहते हैं, मनुष्य भी दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि गौसे प्राप्त करके जीवित रहते हैं। ऐसा भी कहो कि गौसे ही यह संपूर्ण जगत् बन चुका है जितना सूर्यप्रकाशसे प्रकाशित होता है, इतना गौका महत्त्व है।

—o—

सरल स्वभाव ।

संस्कृत भाषामें " सरल स्वभाव " का नाम " आर्जव " है। आर्जवका अर्थ है ऋजुता, सरलता, जिसमें तेढापन नहीं । इस सरलताके विषयमें भगवद्गीता में कहा है--

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥
भ. गी. १८।४२

" ब्राह्मण का स्वभावजन्य कर्म शम, दम, तप, पवित्रता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य बुद्धि है । " यद्यपि ब्राह्मण का स्वाभाविक गुणधर्म " सरलता " है, तथापि इतर वर्णोंके लिये यह सरलता कोई दोष सिद्ध नहीं होगा । अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषादोंमें यदि सरल स्वभाव हुआ, तो जगत् में हानिकी संभावना नहीं होगी। स्वभावकी सरलता यह उच्चतम गुण है, इस लिये उसकी आवश्यकता हरएक मनुष्यकी उन्नतिके लिये निःसंदेह है । स्वभाव की सरलता, न्यायप्रियता, समता, विमलता, अकुटिलता, शुचिता, पवित्रता हरएक मनुष्यकी उन्नति कर सकती है । जो मनुष्य स्वभावसे ढोंगी, तेढा, अन्यायी, मलीन, कुटिल, अपवित्र होता है, उससे समाज में उपद्रव होते हैं, परंतु जो मनुष्य सरल स्वभावका होता है, उससे जनता में शांतिकी स्थापना हो सकती है । इस लिये स्पष्ट है कि हरएक मनुष्य के लिये सरल स्वभावकी आवश्यकता है । फिर प्रश्न होता है कि, श्रीमद्भग-वद्गीतामें सरल स्वभाव ब्राह्मण का ही लक्षण क्यों बताया और अन्योंका क्यों नहीं कहा ? इसके उत्तर में निवेदन है कि वर्ण धर्म की सामान्यता और विशेषता होती है । ब्राह्मण में ब्राह्मधर्म, क्षत्रियमें क्षात्रधर्म यद्यपि विशेष होता है, तथापि क्षत्रियमें थोडासा ब्राह्मधर्म और ब्राह्मणमें थोडासा क्षात्रधर्म अवश्य ही चाहिये, अन्यथा मनुष्यत्व की भी सिद्धता नहीं हो सकती । शौर्य, तेजस्विता, धैर्य, दाक्षिण्य, युद्धसे न भागना, दान और ईश्वरभाव ये गुण क्षत्रियके स्वभाव धर्म भगवद्गीतामें कहे हैं, परंतु क्या ये गुण ब्राह्मण में नहीं होने चाहिये ? धर्म ग्रंथका यह आशय कदापि नहीं है । प्रत्येक मनुष्यमें सामान्यतः चातुर्वर्ण्य है, परंतु विशिष्ट वर्णमें विशिष्ट गुणधर्मका अत्यंत उत्कर्ष होनेसे वहां विशिष्ट वर्ण के अस्तित्वकी कल्पना की जाति है । तात्पर्य ज्ञान, शौर्य, धनोपार्जन, और कारीगरी ये गुण प्रत्येक मनुष्य में थोडे थोडे होनेही चाहिये, इसी प्रकार " सरल स्वभाव " यह गुण यद्यपि ब्राह्मणमें विशेष चाहिये, तथापि अन्यों में भी अत्यावश्यक ही है; क्यों कि यह एक प्रकारका तप है।

देवद्विजगुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥
भ. गी. १७ । १४

" देव, द्विज, गुरु, ज्ञानी का पूजन, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शारीरका तप है । " यह तप हरएक को अवश्य करना चाहिये । इस तपमें " स्वभाव की सरलता " की भी गणना की है । क्यों कि यही दैवी गुण है--

स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ भ० गी. १६ । १

" स्वाध्याय करना, तप करना और सरल स्व-भाव का व्यवहार करना यह दैवी संपत्तिका लक्षण है । इसके आगेही कहा है " ढोंग, घमंड, क्रोध, कठोरता " आदि राक्षस पनके लक्षण हैं । धर्म वह है कि जिसमें आसुर भाव दूर करके दैवी गुणोंको पास करना होता है । इस दैवीभाव का विकास करनेवाला " आर्जव " अर्थात् " सरल स्वभाव" है, इसलिये इसका विकास प्रत्येक मनुष्यमें होना आवश्यक है। मनुष्यको पुरुषार्थ की सिद्धि प्राप्त होने के लिये सरल स्वभाव की अत्यंत आवश्यकता है ।

वेदमें " अ-ध्वर " शब्द है उसका अर्थ "अ-कुटिलता " है। कुटिलतारहित व्यवहार करनेका नाम ही सरल अथवा सीधा व्यवहार है। पाठकों को पता है कि " यज्ञ " का नाम " अ-ध्वर " है, तात्पर्य " सरल व्यवहार " का नाम ही यज्ञ है। तेढे चाल चलन का नाम यज्ञ नहीं हो सकता।

सरल व्यवहार क्यों करना चाहिये ?

पाठक पूछेंगे कि, सरल व्यवहार क्यों करें ? क्यों तेढा आचरण न करें ? इसके उत्तर में धार्मिक प्रवृत्तिके मनुष्योंको कहा जा सकता है कि वेद " अ-ध्वर " अर्थात् अ-कुटिल कर्मोंका उपदेश करता है, और वेदमें सच्चा मनुष्यधर्म कहा है, इसलिये तेढा आचरण करना उचित नहीं है और सीधा सरल व्यवहार करना योग्य है। जो वेदके श्रद्धालु हैं उनके लिये यह उत्तर पर्याप्त है, परंतु कई तार्किक इसके बाद भी शंका कर सकते हैं, उनकी शंका दूर करनेके लिये धर्मके तत्त्वका यहां थोडासा विचार करना चाहिये।

" मैं " और "मेरे से भिन्न जगत् " ये दो पदार्थ यहां हैं। यदि अकेला ही मैं होता, तो जैसा चाहिये वैसा आचरण किया जाता तो भी कोई पर्वाह न थी; परंतु मेरेसे भिन्न जगत् है, इस कारण विशेष प्रकारसे आचरण करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके साथ संबंधित है, पशुपक्षीके साथ और वृक्षादि शेष पदार्थोंके साथ भी उसका संबंध है। यह " अटूट संबंध " है। कोई मनुष्य जबतक इस शरीरमें जागृत है. तबतक यह संबंध निन्य है। इसलिये इस संबंधको ध्यानमें धर कर ही अपना आचरण मनुष्यको करना उचित है। इस संबंध का ध्यान कर योग्य कर्तव्यपालन करने का नाम धर्म है और कर्तव्य न करने का नाम अधर्म है।

एक मनुष्यका समाजके साथ संबंध नित्य है, इसलिये इस अटूट संबंधके अनुकूल कार्य करना मनुष्यके लिये अत्यावश्यक है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करेगा वह पतित हो जायगा। जिस प्रकार कपासके धागे सूत्रमें होते हैं, सूत्रपटमें होते है, ईंटें दिवारमें होतीं हैं, उसी प्रकार मनुष्य समाजमें हैं। एक सूत्र अपने स्थानसे हिलनेसे वस्त्र बिगड जाता है, एक पत्थर दिवारसे उखड जानेसे दिवार टूट जाती है, इसी प्रकार एक मनुष्य समाजके संगठन से विरुद्ध होनेसे समाजकी शक्ति कम हो जाती है। यदि मनुष्य विचार करेगा तो उसको इस अटूट संबंधका पता लगेगा। यह बात बतानेके लिये ही वेदने कहा है कि--

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
> स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ १ ॥
> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ॥
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत॥ १२ ॥
>
> ऋ. १०।९०

"एक पुरुष है जिसको सहस्रों मुख, सहस्रों आंख, और सहस्रों पांव हैं। वह भूमिके चारों ओर व्याप्त हो कर दशांगुल अवशिष्ट रहा है। इसका मुख ब्राह्मण है, क्षत्रिय इसके बाहू किये हैं, जंघायें वह हैं कि जो वैश्य है और पावों के लिये शूद्र हुआ है। "

यह समाजका वर्णन है। समाज यह एक मनुष्य (पुरुष) है जिसको सहस्रों मुख, आंख, हाथ, पांव आदि अवयव हैं। इस प्रकारका यह सहस्रबाहु-वाला समाजरूपी पुरुष इस पृथ्वीपर चारों ओर है। इस समाज रूपी पुरुष का मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, जांघें वैश्य हैं और पांव शूद्र हैं। यद्यपि ब्राह्मणक्षत्रियादिके शरीर परस्पर एक दूसरेसे अलग हैं,तथापि वे सब एक शरीरके अवयव होनेसे वैसे ही एक हैं कि जैसे मुख, बाहु, पेट,जांघें और पांव भिन्न अवयव होनेपर भी शरीरके भावसे एकही होते हैं। विभिन्न वर्णोंमें इतनी एकता वेदको अभीष्ट है और वास्तवमें देखा जाय तो जिस समाजमें इस प्रकार का अभेद संबंध जीता जागता होगा, वही समाज जीवित रहेगा और वही उन्नति करेगा। आपसमें लडनेवाला क्या उन्नति कर सकता है ?

यदि घडेसे मिट्टीके अणु अलग किये जांयगे तो स्थानपर घडा रहेगा ही नहीं, यदि समुद्रसे जल बिंदु अलग किये जांयगे तो स्थानपर समुद्र रहेगा नहीं, इसी प्रकार यदि समाजसे हरएक मनुष्य अलग होगा

तो समाज रहेगा ही नहीं। और जिस समय समाज नष्ट होगा उसी समय व्यक्तिका भी अस्तित्व हट जायगा क्यों कि " सबके आधार पर ही एक अंश रहा है।" सूर्य न रहा तो उसका एक किरण भी रह नहीं सकता।

प्रिय पाठको! आप अपने प्रत्येक हलचल का विचार कीजिये तो आपको पता लग जायगा कि एक व्यक्तिका समष्टिके साथ कितना अटूट संबंध है। यदि आप अपने समाजके साथ अपने अटूट संबंधका विचार न करेंगे, तो सामाजिक धर्म का पालन आपसे किस प्रकार हो सकेगा? आप बोलते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, कार्य करते हैं तथा अन्य हलचल कर रहे हैं, इस सब व्यवहारमें आपका अन्योंके साथ संबंध आ रहा है। बाल्यमें आप विद्या पढते है, तारुण्यमें गृहस्थी बनकर विचरते हैं, पश्चात् वानप्रस्थी बनकर आश्रमवासी होते हैं, तदनंतर संन्यास धारण करके संपूर्ण जगत् को अपना परिवार समझते हैं, इस सब व्यवहार में आपका अन्यों से संबंध आ रहा है। आप विचार कीजिये तो आपको पता लग जायगा कि आपका समाजके साथ नित्य संबंध है। इसको आप दूर नहीं कर सकते।

यह संबंध नित्य सिद्ध होनेपर प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें? इसका उत्तर यही है कि " आप दूसरोंसे वैसाही व्यवहार कीजिये कि जैसा अन्योंका व्यवहार आपके साथ होनेकी आपकी अपेक्षा है।" कोई नहीं चाहता कि दूसरा अपने साथ तेढा और खोटा व्यवहार करे। इसीलिये आपको भी चाहिये कि आप दूसरों के साथ तेढा और खोटा व्यवहार न कीजिये। आप चाहते हैं कि सब लोग आपसे सीधा व्यवहार करें इसलिये आपको उचित है कि आप भी दूसरों के साथ सीधा और सच्चा व्यवहार करें। यही बात निम्न मंत्र में बताई है-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्॥
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

यजु० ३६। १८

(१) सब प्राणी मित्रकी दृष्टिसे मेरी ओर देखें,
(२) मैं सबकी ओर मित्र दृष्टिसे देखूंगा,
(३) हम सब परस्पर मित्र दृष्टिसे देखें।

यह मंत्र यद्यपि "मित्र दृष्टि" का वर्णन कर रहा है तथापि व्यवहारके सब आदर्श इसमें बीज रूपसे हैं और इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रकृत " सरल स्वभाव " के विषयमें उक्त मंत्रका रूपांतर निम्न प्रकार हो सकता है-(१) सब मनुष्य सरलता से मेरे साथ व्यवहार करें, (२) मैं सब के साथ सरल व्यवहार करूंगा, (३) हम सब परस्पर एक दूसरे के साथ सरल व्यवहार करें।

सब ही मनुष्य चाहते हैं कि अपने साथ लोग सरल सीधा और सच्चा व्यवहार करें। कोई यह नहीं चाहता कि सब लोग अपने साथ तेढा व्यवहार करें। परंतु वे नहीं समझते कि तबतक जनता आपके साथ सीधा व्यवहार नहीं करेगी कि, जबतक आप स्वयं उनके साथ सरल व्यवहार न करेंगे। तात्पर्य यह कि " सरलता का स्रोत सबसे प्रथम अपने हृदयसे चलना चाहिये।" इस लिये मंत्रमें दूसरी ही प्रतिज्ञा है कि मैं अन्योंके साथ बिलकुल सीधा व्यवहार करूंगा। परंतु यहां भी वही कठिनता है कि यदि एक व्यक्ति ही सरल व्यवहार करती रही परंतु दूसरे तेढी चाल चलने वाले हुए तो उस एक व्यक्तिका नाश होगा। इस लिये मंत्रका तीसरा आशय यह है कि हमारा परस्पर एक दूसरेके साथ सरल व्यवहार हो। जिस समाजमें व्यक्तियोंका परस्पर व्यवहार अत्यंत सरल है, वही समाज अभ्युदय और निश्रेयसके मार्ग में अखंड उन्नति कर सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सरल व्यवहार का मार्ग निम्नप्रकार वेदने बताया है —

देहि मे, ददामि ते, नि मे धेहि, नि ते दधे॥
निहारं, च हरासि मे, निराहन्, नि हराणि ते॥

यजु० ३। ५०

(१) मुझे दो, मैं तुझे देता हूं। (२) मेरे लिये धारण करो, मैं तेरे लिये धारण करता हूं। (३) मैं तेरे लिये लाता हूं, तूं मेरे लिये ले आओ, (४) तू मेरे लिये लायेगा, तो मैं भी तेरे लिये लाऊंगा॥

यह संकेत मंत्र है। परस्पर व्यवहार यथान्याय्य और योग्य होना चाहिये यह इस का तात्पर्य है। जैसा दूसरा मेरे साथ व्यवहार करेगा वैसा ही मैं दूसरे के साथ व्यवहार करूंगा, अथवा जैसा मैं दूसरों के साथ व्यवहार करूंगा उसके अनुकूल ही दूसरोंसे मेरे साथ व्यवहार होगा। यह नियम है इस लिये सबको उचित है कि वे आपसमें परस्पर सीधा, सरल और न्याय्य व्यवहार करें।

साधारण मनुष्य कहते ही रहते हैं कि, लोग मेरे साथ सीधा व्यवहार नहीं करते, परंतु ऐसा कहने वाले मनुष्य अपना आचरण देखते ही नहीं। इसलिये हरएक को विचार करके देखना चाहिये कि अपने अंदर सरलस्वभाव है वा नहीं और अपना व्यवहार सरल है या तेढा है। यदि आप चाहते हैं कि जनता आपसे सरल व्यवहार करे, तो आप सबसे प्रथम अपना व्यवहार सीधा कीजिये। जब आप सीधे हो जांयगे तब सब जगत् आपके साथ सीधाही हो जायगा। यह नित्य स्मरण रखिये कि आपकाही प्रतिबिंब जगत् में पड रहा है। इसलिये आप अपने मेंसे तेढेपनका भाव पूर्णतया दूर कीजिये और दूसरोंसे किसी की अपेक्षा न करते हुए आप काया वाचा मन में सीधे और सरलस्वभाव युक्त बन जाइये। मनमें सरल भाव धारण कीजिये, मुखसे सरल शब्द सीधे भावसे कहिये और शरीरसे सीधे कर्म करते रहिये। इस प्रकार आपके अंदर मूर्तिमती सरलता रही, तो सब ठीक होता जायगा। परंतु जबतक दूसरोंसे सरल आचरण होनेकी प्रतीक्षा करते रहेंगे तबतक आपका सुधार होना नहीं है। इस कारण आपको अपना ही परीक्षण करके सबसे प्रथम अपना सरल स्वभाव बनाना चाहिये।

जनताकी ओर देखने और व्यवहार करनेका जैसा आपका दृष्टिकोण होगा, उसी प्रकार जनता आपकी ओर देखेगी और आपके साथ व्यवहार करेगी। यह त्रिकालाबाधित सत्य नियम है। इस को अपना मार्गदर्शक समझकर यदि आप अपना व्यवहार उच्च और श्रेष्ठ करेंगे तो वेही गुण जनता के व्यवहारमें प्रकट होंगे। आप अपना प्रेम जनता को अर्पण कीजिये, जनता भी प्रेमसेही आपकी पूजा करेगी। यही यज्ञ है, यदि आप वैदिक धर्मके यज्ञका तत्त्व समझनेका यत्न करेंगे तोही वैदिक धर्मके सार्वभौमिक श्रेष्ठताका तत्त्व आपके ध्यानमें आजायगा।

यहां आप कहेंगे कि कई लोगोंमें यह भाव है कि हम थोडा देकर बहुत लेनेकी इच्छाकरना। बाजारोंमें जहां अनाडी लोग व्यवहार करते रहते हैं, वहां यही होता है। एक आनेकी चीज का मूल्य प्रारंभ में मूर्ख लोग एक रुपया कह देते हैं, परंतु मांगने वाला भी एक पाईको वह चीज मांगता है। इस प्रकार दोनों ओर का झगडा होते होते, बडा समय व्यतीत करनेपर दोनों लेने और देनेवाले, असली मूल्यपर आते हैं। अपने देशमें ऐसे लोग हैं, इसमें संदेह नहीं। परंतु यह अनाडियों की बात है, इसका सुधार होना चाहिये। जो उद्यमी मनुष्य होगें, उनके पास इतना समय नहीं है कि एक आनेकी जीच खरीदनेमें भावका निश्चय करनेके लिये ही घंटा आधा घंटा व्यर्थ गमावें। इसलिये उक्त बातमें अवश्य सुधार करना चाहिये। यदि इस बातमें लेनेदेनेवाले सरल व्यवहार करेंगे, तो उन दोनोंका कितना समय बच सकता है, जो अच्छेसे अच्छे कार्य में लगाया जा सकता है। इस प्रकार सरल और सीधे व्यवहारसेही हित है। जिस समाज में इस प्रकारके सरल स्वभाव वाले लोग अधिक होंगे और सरल व्यवहार करनेवाले अधिक होंगे, वही समाज अन्योंसे आगे जा सकता है।

सरल स्वभाव और सरल व्यवहार छोडकर अधिक लाभकी आशा से जितना आप तेढे स्वभाव और कुटिल व्यवहार के मार्गसे जांयगे, उतना पतन अधिक होगा। सब जगत् में सबसे सीधा उन्नतिका मार्ग यदि कोई है तो सरल और सीधा व्यवहार ही है। सब मनुष्य दिलसे यही चाहते हैं, परंतु भ्रमसे व्यवहार करने के समय मायाजाल में फस जाते हैं। और गिरते जाते हैं।

कई वैदुलोग ऐसे दुष्ट होते हैं कि बीमारको धोखा देकर मिट्टी की गोली हो हेमगर्भ मात्राके मूल्यसे उसको बेच देते हैं और पैसेका माल पच्चीस रुपयों को बेचते हैं। परंतु इन वैदुओंका कौन मान

करता है ये दारोंदार घूमते फिरते हैं, इस लिये इनके शब्द को मूल्य भी कहां रहा है ? परंतु जो राज वैद्य होता है वह अपनी गद्दीपर बैठता है, अपना बीमार श्रीमान हो या दरिद्री हो, छोटा हो या बडा हो, मूढ हो या समझदार हो. उसके आरोग्य की ओर ध्यान देकर सरल स्वभाव से जो उसके हितके लिये योग्य वही कहता है, इस लिये उसीका सन्मान सर्वत्र होता है। यही बात संपूर्ण व्यवहारों में हैं, यह ध्यानमें रखिये।

पूर्व यजुर्वेद के मंत्रमें कहा ही है कि " जितना हम लेते हैं, उतना ही देते हैं।" यह देवोंका व्यवहार है। इंद्र कहता है कि—

देहि मे ददामि ते ॥ य० ३।५०

" मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूं। " अर्थात् हे भक्त ! तूं जितना मुझे अर्पण करता है, उसी प्रमाणसे मैं तेरा हित करता हूं। यदि यही व्यवहार की सरलता और न्यायता ईश्वरमें है और यदि वह मनुष्य के कर्मके अनुसार ही उसको फल देता है, तो हमें भी उसीका अनुकरण करना योग्य है। हम लोगों से जितना लेंगे, उसी प्रमाणसे उनको वापस करना आवश्यक है, हम लोगोंसे जितना काम लेगें उसी प्रमाणसे उनको वेतनादि देना योग्य होगा। कम देनेसे उनके हम ऋणी होंगे और अधिक देनेसे उनको सुस्त बनाने का दोष हमारे ऊपर आजायगा इसलिये जिस प्रमाणसे लेना उसी प्रमाणसे देना योग्य है, यही भाव गीतामें भी कहा है-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
भ. गी० ४।११

" जो मुझे जिस प्रकार से भजते हैं, उन्हें मैं उसी प्रकार के फल देता हूं। " यही न्याय्य और सरल व्यवहार है और सरल व्यवहार ही सबका हित करनेवाला है। मनुष्य अपनी पराकाष्ठा करके जगत्में परम पुरुषार्थ करता है। इस का योग्य फल उसको उस समय मिल सकता है कि जब सब अन्य लोग सरल स्वभाव वाले हों। साधु पुरुषों को कष्ट इसी कारण होते हैं कि उनको कुटिल लोगों में ही व्यवहार करना पडता है। परंतु साधु पुरुषोंका पुरुषार्थ परमेश्वरके पास मंजूर होता है और इसी कारण उनकी ही पूजा पश्चात् सर्वत्र होने लगती है। तात्पर्य सरल व्यवहार किसीन किसी रूपमें लाभ अवश्य ही देता है। व्यवहार में भी सरल स्वभाव वाले ही अंतमें अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, यदि उनके पास दक्षता, दीर्घोद्योग, तत्परता आदि विजयप्राप्तिकारक गुण होंगे। इस प्रकार सरल स्वभाव काही विजय होता है।

जगत् में झगडे, फिसाद, युद्ध आदि अनर्थ " तेढी चाल " के कारण ही उत्पन्न होते हैं । सब झगडोंका इतिहास विचारपूर्वक देखने से पता लगेगा कि उनके मूलमें " कुटिलता " का निवास अवश्य है। देवासुर संग्राम क्यों होता था अथवा होता रहा है ? देव सीधा और सरल बर्ताव करते हैं और राक्षस मायाजाल का उपयोग करते हैं। यही युद्ध का मूल कारण है। यदि दोनोंका सरल स्वभाव हुआ तो झगडेका बीजही दूर होगा। तात्पर्य देवासुर संग्रामके विचार सेभी सरल स्वभाव का महत्त्व ज्ञात हो सकता है।

आज कल अपने देशमें धनी लोग, सेठ साहुकार, सरदार और ओहदेदार, राजे और महाराजे गरीबों को " बेगार " समझकर विविध प्रकारसे उनके कार्यसे अयोग्य और अन्याय्य रीतिसे अपना लाभ करते हैं। इसके विरुद्ध मजूर अथवा कार्य करनेवाले लोग मालिक नहीं देखता है यह देखकर काम करना छोडते हैं। अर्थात् धनी एक रीतिसे वंचना करता है और ऋणी दूसरी रीतिसे अपराध करता है। दोनों का स्वभाव सरल नहीं है। यदि दोनों का व्यवहार सीधा होगा तो कितना आनंद फैलेगा उस का विचार कीजिये और वह आनंदपूर्ण अवस्था लानेके लिये अपनी ओरसे प्रयत्न कीजिये।

सरल स्वभाव यह अकेला ही सद्गुण नहीं है, इसके साथी कई और हैं। न्यायप्रियता यह एक सद्गुण इसका साथी है। यह कोई कल्पना नहीं कर सकता अन्यायी मनुष्य कभी सरल स्वभाव से युक्त होगा। इसलिये यदि आपको अपना स्वभाव सरल बनाना है, तो न्यायप्रियता आपको अपने अंदर

एकता का सरल उपाय।

मनुष्य का स्वभाव ही है कि वह संघ बनाकर रहे। स्वार्थ की दृष्टि से भी मनुष्य को अत्यन्त आवश्यक है कि वह समाज में एकता कर अपना बल बढावे। पशु, पक्षी आदि मनुष्येतर जीव संघ-शक्ति की अभावावस्था में सम्भवतः जी सकते हैं किन्तु मनुष्य प्राणी यदि संघ न बनावे तो उसका निस्संदेह नाश हो जावेगा।

प्राचीन कालमें मनुष्य छोटे छोटे संघ बनाता था। आगे चलकर जब जीवनसंग्राम बढ गया, तब ये छोटे छोटे संघ मिलकर एक बडा संघ बन जात और तब वह जीवित रहने के योग्य बनता।

मनुष्य के संघों की वृद्धि का इतिहास बहुतही रोचक है। किन्तु उस सम्पूर्ण इतिहास को बतलाने की आवश्यकता हमे प्रतीत नहीं होती। यहाँ हम केवल इतना ही बतलाना आवश्यक समझते हैं कि यह संघशक्ति मनुष्यने स्वतः को जीवित रखने ही के लिए बढाई है। जब उसने देखा कि एक बडा गिरोह छोटे गिरोह को नष्ट कर देता है, तब उसने अनेक छोटे छोटे संघों को इकट्ठा कर एक प्रचंड गिरोह बनाया। इस प्रचण्ड गिरोह के बनने ही से उसे जीवित रहना सम्भव हुआ। आज दिनतक मनुष्य इसी लिए जीवित रह सका कि उसने संघ-शक्ति को बढाया। यदि वह आगे चलकर अपनी संघशक्ति बढावेगा तभी जीवित रह सकेगा। यदि ऐसा न होगा तो उसे किसी अन्य बडे संघ में मिलकर विलीन हो जाना पडेगा।

उपास्य देवता के कारण, पंथ के अभिमान के कारण, वंश के अभिमान के कारण आदि अनेक कारणों से आज तक मनुष्यों में अनेकानेक संघ हुए। वर्तमान समय में वह परिस्थिति उपस्थित हुई है जब कि उपरोक्त कारणों में से किसी भी कारण से बना हुआ संघ उपयोगी सिद्ध न होगा।

इन्द्र, वरुण आदि प्राचीन वैदिक उपास्य देवता-ओं को छोड दें तब भी वर्तमान समय की कोई भी देवता ऐसी नहीं है जो भारतवर्ष के लोगों में एकता उत्पन्न करे। यही हाल धर्म के पंथों का तथा वंश के अभिमान का है। उपास्य देवता, धर्मपंथ तथा वंशाभिमान अनावश्यक नहीं हैं। वस्तुतः येही एकता के सच्चे साधन हैं। किन्तु वर्तमान समय में ये बातें ही झगडों की जड बन गई हैं। इसी लिए यह देखना आवश्यक हो गया है कि क्या अन्य कोई साधनों से भारतवर्ष के विभिन्न समाजों में एकता बनाई जा सकती है?

वर्तमान समय में हमारा भारतवर्ष ऐसी युद्ध-भूमि में खडा है जहाँ विजय-प्राप्ति के लिए उसे अपने सब अंग, उपांगों में पूर्ण एकता रखना आव-श्यक है। जब तक इस प्रकार की एकता न होगी तब तक वर्तमान युद्धमें विजयप्राप्ति नहीं हो सकती।

भारतवर्ष में प्रथम केवल चार वर्ण थे। इन चार वर्णों में एकता हो जाने से उस समय के भारतीयों का उद्देश सिद्ध होता था। हमारे भारतवर्ष का मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, मध्यभाग वैश्य तथा पैर शूद्र है। इस प्रकार यह देश चातुर्वर्ण्यमय राष्ट्रपुरुष है। मनुष्यों के मन में यह बात जमजाने के कारण उस समय एकता होना सम्भव था। किन्तु वर्तमान समय में अनेक धर्मपंथ उत्पन्न हुए हैं। इन सब पंथों में उपरोक्त विचार के आधार पर एकता होना असम्भव है।

हिन्दू, पारसी, ज्यू, ईसाई, मुसलमान और अन्य अनेक मतांतरों के लोगों में जब तक एकता नहीं होती तब तक हमारे देश की उन्नति नहीं हो सकती। इन विभिन्न धर्मानुयायियों में 'चातुर्वर्ण्य राष्ट्रपुरुष' के विचार के आधार पर एकता होने का सम्भव नहीं है।

आपसमें मित्रता का भाव उत्पन्न होने ही से एकता होती है। मित्रता के अभाव में एकता होना असम्भव है। मित्रता के भावों की दृष्टि उत्पन्न होने के विषयपर शुक्ल-यजुर्वेद में एक मन्त्र है। वह मन्त्र अत्यन्त बोधप्रद है। इस मन्त्र को नजर के सामने रखने से तथा उस पर विचार करने से हमे एकता का उपाय सूझ सकता है। इसीलिए उस श्लोक को हम यहाँ लिखते हैं।—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्॥
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

शु० यजुर्वेद ३६।१८

इस मन्त्र में तीन वाक्य हैं- (१) सब प्राणी मुझे मित्रता की दृष्टि से देखें। (२) मैं सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखूं। (३) हम आपस में एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

प्रत्येक प्राणि की वा प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा होती है कि अन्य सब मनुष्य हम पर प्रेम करें। हमे कोई भी दुख न दे। इतनाही नहीं किन्तु अन्य सब लोग मेरे लिए स्वार्थत्याग करें और मुझे सुख देवें।

यद्यपि हरएक मनुष्य यही चाहता है तब भी यह सम्भव कैसे हो सकता है? दूसरा हमसे अमुक प्रकार का बर्ताव करे यह न कह कर यदि हर एक मनुष्य खुद ही दूसरोंके साथ वैसा आचरण करे तो दूसरों में से कुछ अवश्य ही उस पर प्रेम करेंगे। जिस प्रकार का बर्ताव हम दूसरों से चाहते हैं, उस प्रकार आचरण करना हमही आरम्भ कर दें। यही बात उपरोक्त मन्त्र के अन्तिम भाग में बतलाई गई है।

उपरोक्त मन्त्र के प्रथम भाग में कहा है, (१) 'अन्य सब लोग हम पर प्रेम करें।' सब लोगों की यही इच्छा रहती है। परन्तु यह अतीव कठिन बात है। इससे जो कुछ हो सकता है उसे खुद ही शुरु कर देना सरल है। यह बात लोगों के मनमें जमजावे इसीलिए दूसरा वाक्य कहा है। (२) 'मैं खुद दूसरों पर प्रेम करता हूं।' हर एक मनुष्य खुद का मालिक है। वह जिस प्रकार चलना चाहेगा, चल सकता है। इसी लिए यह निश्चय करलेना कि मैं सब मनुष्यों से मित्रता का भाव रखूं। उसके लिए सम्भव है तथा यह भी कि मैं उस निश्चय के अनुसार बर्ताव करूं। यदि एक भी मनुष्य इस प्रकार का आचरण करे तो आधा संसार सुधरजाने के बराबर है। इन दो वाक्यों से हमारे सामने दो मार्ग आजाते हैं।

(१) 'मुझपर सब लोग प्रेम करें। मैं दूसरों पर प्रेम करूं।' यह साधारण मार्ग है।

(२) 'दूसरे लोग मुझसे कैसा भी बर्ताव क्यों न करें, मैं अपना कर्तव्य समझकर उन पर प्रेम करता हूं।' यह श्रेष्ठ मार्ग है।

इस सर्वोत्तम मार्ग से संसार में एक बृहत् क्रान्ति हो सकती है। किन्तु इन दोनों मार्गों में एक भारी रुकवट है। वह इस प्रकार है-

पहले मार्ग के अनुसार यदि मुझपर सब लोग प्रेम करें और मैं उन पर न करूं, तो उसका बहुत ही घातक परिणाम होगा। यदि मैं दूसरोंपर बहुत प्रेम करूं किंतु वे जैसा प्रेम करना चाहिए वैसा न करें, तब भी सबका कल्याण नहीं हो सकेगा। ऐसी दशा में हमें क्या करना चाहिए सो तीसरे वाक्य में बतलाया है—

(३) 'हमे आपस में एक दूसरे के प्रति मित्रता रखनी चाहिए।'

जब यह दशा आजावेगी तभी सब में एकता होगी। इसीलिए एकता के लिए अत्यन्त आवश्यक बात है, आपस में एकदूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न होना।

गरीबों की भलाई के लिए।

मनुष्य जब चर्खे में स्थित अद्भुत एवं सुप्त शक्ति का विचार करता हैं, तब उसे आश्चर्य होता है कि चर्खे का सादा संदेश अभी तक सार्वत्रिक क्यों नहीं हुआ। 'नासतो विद्यते भावः' अर्थात् असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि इस वचन के केवल शब्दों को ही देखें तो मालूम होता है कि चरखा सिद्ध करता है कि इस वचनमें ग्रथित सिद्धान्त गलत है। क्यों कि वह किसी भी उपयोगी वस्तु का नाश करना नहीं चाहता। और प्रयत्न करता है राष्ट्र की जो साधन-सामग्री बेकाम पडे सड रही है उसका और राष्ट्र की फुरसत के समय का उपयोग होवे।

आज दिन राष्ट्र के प्रत्यक्ष प्राण भक्षण करनेवाली यदि कोई वस्तु है, तो वह है आलस। फिर चाहे आप इस आलस को जबरदस्ती का समझिए अथवा खुशी का सौदा मानिए। मैं गांवों में और खेडों में फिरता हूं। मैं देहात में जितना ही अधिक फिरता हूं उतनी ही अधिक ग्रामिणों की प्राणहीनता देखता हूं। इस प्राणहीनता को देख मेरी आंतों में भारी बल पडता है, मेरा हृदय गहरी चोट खाता है। लोगों के लिए केवल ऐसा ही काम बचा है कि वे बैलों की तरह जुते रहें। अतएव मैं प्रायः लोगों को बैलों की तरह जुते हुए मजदूरी करते पाता हूं। करोडों लोग ऐसे हैं जो हाथ का हाथ के समान उपयोग करना नहीं जानते। यह भारी शोक की बात है। विदित होता है कि निसर्ग यह देखकर कि मनुष्य को दी हुई हस्त-रूप अनमोल देनगी का वे कुछ भी उपयोग नहीं करते और वह पडे पडे सड रही है, मानो बदला भंजा रहा हो। हम लोग इस देनगी से लाभ उठानेसे इन्कार करते हैं। परंतु जिन थोडी बातों के कारण हम लोग पशु से भिन्न हैं इन्हीं में हाथ हैं। करोडों मनुष्य आज इन हाथों का उपयोग केवल पैर के सदृश कर रहे हैं। अतएव वे शरीर और मन से कमजोर बन रहे हैं।

लापरवाही से होनेवाली यह हानि केवल चर्खे से रुक सकती है। इस हानि को रोकने का एक मात्र साधन चर्खा है जिसमें न तो अधिक पैसा ही लगेगा और न अधिक बुद्धि ही खर्च करनी होगी। इस फजूल खर्ची के कारण हम लोग प्रायः प्राणहीन बन गए हैं। यदि इस प्राण को पुनः उत्पन्न करना है तो प्रत्येक घर सूत कातने का कारखाना बनना चाहिए और हरएक गांव सूत बुनने का पुतली घर बनना चाहिए। जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन प्राचीन समय की सूत कातने की कला का उद्धार होगा। जिस राष्ट्र के लोग पेटभर के खाना नहीं पाते उस राष्ट्र में धर्म, कला या संघटन का होना असंभव है।

चरखे के विपक्षी एक ही दोष को रटते हैं। वह दोष यही कि चरखा से आमदनी बहुत कम होती है। हमारा कथन यह है कि चरखे से यदि प्रतिदिन एक भी पैसा मिल सके तो भी वह आजकी हरएक मनुष्य की प्रतिदिन की छः पैसेकी औसत आमदनी से अवश्य ही अधिक अच्छा होगा। अमेरिका के प्रत्येक मनुष्य की औसत आमदानी चौदह रुपये है और प्रत्येक अंग्रेज की औसत आमदनी छः रुपये है। जरा इससे हिंदुस्थानी की आमदनी की तुलना तो कीजिए। चरखा चलाकर राष्ट्र के साठ करोड रुपये भी यदि हम बचा सके-जो कि बहुत आसान है--तो हम देश की

आमदनी साठ करोड से बढा देंगे। और इस प्रयत्न में हमारे ग्रामोंका संगठन सहजही में होगा। इतना ही नहीं यह प्रयत्न सम्पत्ति का न्याय्य और साधारणतः सामान्य बँटवारा करने का उपाय हो जावेगा। कारण स्पष्ट ही है कि ये साठ करोड रुपये हमे उन्ही को बांटने होंगे जो की अत्यंत गरीब हैं। इसके सिवा एक बात का विचार और भी करना होगा। वह बात यह है कि सम्पत्ति का इस प्रकार समान बंटवारा करने में नैतिक दृष्टि से देश की उन्नति होगी। इन बातों से चरखे का पक्ष अजेय सिद्ध होता है।

स्वदेशी का व्रत।

'स्वदेशी' का व्रत धार्मिक एवं आर्थिक व्रत है। 'स्वदेशी' ऐसा आंदोलन है जिसमें हिन्दुस्थान में जन्म लेनेवाले प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह गरीब हो या धनवान्, चाहे वह हिन्दु, मुसलमान, पारसी, ईसाई, कोई भी क्यों न हो, हाथ बंटाना सहज है।

किसी के घर में आटा, पानी, अग्नि आदि साधन मौजूद हैं। जिसपर भी वह रोटियां बाहर से बनवा लाता हो, तो मैं उसे मूर्ख ही कहूंगा। बस यही हाल हिन्दुस्थान का है। यहां कपास की पैदायश काफी मात्रा में होती है साथ ही सूत कातने तथा कपडा बुनने के लिए आवश्यकता से अधिक लोग हैं। तब भी हिन्दुस्थान कपडा मांगता है बाहर से; तब वह मूर्ख नहीं है तो और क्या है? चपाती बनाने में जो समय लगता है, उस समय को चपाती बनाने से अधिक उपयोगी काम में जो लगावेगा वह मनुष्य मूर्ख नहीं चतुर ही कहलावेगा। ठीक है। पर आज हिन्दुस्थान की हालत ऐसी नहीं है। डेड सौ वर्ष पूर्व सूत और कपडा दोनो यहीं बनते थे। मुलायम कपडा भी बनता था। और वह इतना बनता था कि वह हिन्दुस्थान के निवासियों को केवल पूजता ही न था, बल्कि बचता भी था। अतएव वह बाहर भी भेजा जाता था। पर अब क्या होता है? प्रतिवर्ष साठ करोड रुपये का कपडा हम बाहर से मंगाते हैं और प्रतिवर्ष इतने रुपये मिट्टी में झोंक दिए जाते हैं। हिन्दुस्थान के तीस करोड लोगोंमें से अठाईस करोड किसान हैं। इन स्त्रीपुरुषों को छः महीने खेती का काम रहता है;और शेष छः महीने काम न होने से भूखों मरना पडता है! ये लोग आलसी नहीं हैं। काम न होने से काम ढूंढने शहरों में जाया करते हैं। इससे निश्चय होगा कि अठाईस करोड किसान छः महीने खाली रहकर देश में कपास के होते भी भूखों मरते हैं।

बडोदा रियासत के बीजापुर गांव में श्री गंगाबाई के प्रयत्न से चार सौ मुसलमान स्त्रियों की जान बची। ये स्त्रियां परदे के कारण भूखों मर रहीं थीं। उन्हे सूत कातने के लिए कपास दिया गया। उसका बना सूत मोल लिया गया और इस प्रकार उनके प्राण बचे। अब वे स्त्रियां श्री० गंगाबाई की दुवा मनाती हैं।

इसी प्रकार चरखे का आंदोलन आर्थिक दृष्टिसे भूखोंमरना रोक कर साठ करोड रुपये की बचत करावेगा। यूरोपीय महायुद्ध के समय जब अनाज की कमी हुई तब लोगों ने अपने आंगन में ही आलू बोए! इससे चरखा चलाना निश्चय से बहुत ही आसन है।

अब धर्म की दृष्टि से विचार करिए 'दया। धरम का मूल है'। भूखों मरनेवाले पास के मनुष्य को छोड कर दूर के मनुष्य की ओर दौडना न तो दया ही है और न धर्म ही। पूने में मिलनेवाला माल बम्बई से न मंगाना चाहिए और बम्बई में मिलनेवाला बाहरसे न मंगाना चाहिए। हिंदुस्थान में कपडा मिल सकता है तिसपर भी उसे बाहर से मंगाना और अठाईस करोड मनुष्यों को भूखों मारना न तो दया का ही काम है और न धर्म का। अन्य किसी भी व्यवसाय में बाधा न डालते हुए हिन्दुस्थान को जितनी आवश्यकता है उतने कपडे के बुनने का काम और उसे आवश्यक सूत कातने का काम हिन्दुस्थान ही में हो सकता है। पूना यदि अपनी आवश्यकता पूरी कर लेगा और देशके अन्य शहर भी अपनी अपनी आवश्यकताएं पूरी कर लेंगे, तो स्वदेशी-व्रत सहज ही में यशस्वी होगा। आर्थिक तथा धार्मिक दोनों दृष्टिसे स्वदेशी

व्रत का पालन अतीव आवश्यक है। विशुद्ध व्रत यही है कि हिन्दुस्थान में हाथ से काते हुए सूत का कपडा पहनने की शपथ लेना। हिन्दुस्थानमें हजारों पुतली घर क्यों न खुलें पर उनसे छः महीने भूखों मरनेवाले किसानो की रक्षा कैसे होगी? इसी लिए प्रत्येक हिन्दुस्थानी का कर्तव्य है कि वह स्वदेशी का आंदोलन करे और खादी तैयार करे॥

प्रतिज्ञा।

(१) ईश्वर के समक्ष मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आजसे मैं ऐसे कपडे का उपयोग कदापि न करूंगा जिसकी कपास, रेशम वा ऊन हिन्दुस्थान में उत्पन्न हुई नहीं है, जिसका सूत हिंदुस्थान में काता हुआ नहीं है, या जो हिंदुस्थानी बुननेवालोंने बुना नहींहै।

(२) मिश्र स्वदेशी व्रत—

ईश्वर के समक्ष मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आजसे मैं वैसे कपडे का उपयोग कदापि न करूंगा जो हिन्दुस्थान में बुना हुआ न हो।

शुद्ध स्वदेशी वही है जिसमें हाथ से काता हुआ सूत और उससे केवल हिंदुस्थानियों द्वारा हातमाग पर बुने हुए कपडे का उपयोग हो।
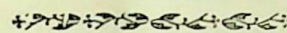
विद्यार्थि का वस्त्र-परिधान।

(ले०-श्री० व्यं० ग० जावडेकर, धूलिया।)

शास्त्रकारों ने जैसे यह बतलाया है कि ब्रह्मचारी को क्या खाना चाहिए, क्या पीना चाहिए; वैसे ही उन्होने यह भी बतला दिया है कि वे शरीर पर कितने कपडे पहनने चाहिए। आजकल के किसी भी विद्यार्थी को आप देखिए वह तो 'up to date gentleman' मालूम होगा। विद्यार्थि तो 'जंटलमन्' नहीं है। विद्यार्थिदशा एक पवित्र आश्रम है। आगामी आयु की संपूर्ण तैयारी इसी अवस्थामें करनी पडती है शर्ट, जाकिट, वास्किट, लांग कोट, मफलर, नेकटाय, कालर, बूट, पँट आदि सब ठाठ सच्चे विद्यार्थि के लिए नहीं है।वह सब जंटलमन के लिए है। यदि किसी को अधिक कपडे लगते हों तो जितने अधिक कपडे उसे लगें उतनाही अधिक नादान और दुर्बल उसे समझना चाहिए। स्थविर अवस्था में, जब कि गात्र शिथिल रहते हैं, शीत नीवारण के हेतु जितने कपडों की आवश्यकता होती है उतने कपडे यदि पौगंड या यौवन अवस्थामें लगने लगें, तो उस अवस्था को यौवनावस्था कैसे कह सकते हैं! क्या वह जवानी में आया हुआ बुढापा नहीं है? जिसे उतरती आयुमें बडे बडे साहस के और बहादुरी के कार्य करने होते हैं, उसे ब्रह्मचर्य आश्रम में, ठण्ड उष्णता,हवा, पानी, भूख, प्यास आदि सब कुछ सहने की तैयारी चाहिए। जो छुटपन से अपने को नखशिखांत कपडे में लिपटे रखता है वह आगे चलकर इन बातों को कैसे सह सकेगा? यह आपत्ति टालने के लिए ही मानो बतलाया गया है-

" नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्"

इसका अर्थ यह है कि कटिवस्त्र जो कुछ भी होगा, उतना ही रहने दें, ऊर्ध्वांग पर केवल एक उत्तरीय को छोड अन्य कोई वस्त्र न हो। वह दाहिने हाथ के नीचे से लेकर बांए कंधेपर गठन लगाई जाय। ऐसा करने से दाहिना हाथ सदोदित खुला रह सकेगा।

शरीर को खुली हवा और सूर्यप्रकाश प्रत्यक्ष मिलने चाहिए। उसका महत्त्व अब पाश्चिमात्यों के

भी ध्यान में आने लगा है। सन १९२५ में इंग्लैण्ड में डॉक्टरों की एक सभा हुई थी। उसमें डॉ० हिल्ने कहा था 'हमें लोगों को बतलाना चाहिए कि वे कम कपडे पहने, कॉलर और लंबे पैजामें फेंक दें और शरीर के चमडे में सूर्यप्रकाश दिखाना सीखें।'

हम हिन्दुस्थानियों में कपडों का महत्व अत्यधिक बढने का कारण अंग्रेजों का सहवास है। फैशन की शान बढी सो भी उनकी देखासीखी। पर अब तो उन्हीं की आंखें खुलने लगीं हैं। अतः अंदाज किया जाता है कि अब हम लोगों कीं भी आंखें खुलेंगीं। क्यों कि ज्ञान का गोमुख हैं अंग्रेज। भगवान् मनु थोडे ही हैं! शास्त्रकार तो निरे पागल हैं! पाश्चात्य लोग भर बडे बुद्धिमान्! ऐसा होते हुए भी अब तो मौका ऐसा आया है कि पागल प्राचीन आर्यों कीं बहुत सी बातें सच सिद्ध होगीं!

पश्चिम के कुछ देशों में तो अब Nudity clubs (नग्नमूर्ति-मंडल) स्थापन हुए हैं। सप्ताह में एक दिन प्रत्येक सदस्य को कुछ घण्टों तक दिगंबर अवस्थामें रहकर धूप खानी पडती है। अपने देश के लोगों का काम चालीस वर्ष के पूर्व गरमी में एक सूती बंडी पहननेसे और ठण्ड में एक दूसरी बण्डी या एक ऊनी बंडीसे निकलता था। अब जिस किसीके शरीर के कपडे देखिए प्रायः हरएकके पास एक गधेका बोझ मिलेगा। परंतु अब कम कपडे पहिनने की ज्ञान-गंगा तो पश्चिम से ही बह कर आना आरंभ हुआ है। तो शायद अब हमारे देशवासी उसे पीने लगेंगे।

मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि वेदकाल के अनुसार बिलकुल तंतोतंत आज भी ब्रह्मचारी वस्त्र परिधान करें। मेरा कहना इतना ही है कि आठ महिने एक कुडतेसे और सिरपर गांधी टोपी से काम निकलना चाहिए। ये दो चीजें पूर्ण पोषाख के लिए धोती के साथ पर्याप्त समझनी चाहिए। शीतकाल में कुडते के भीतर से या ऊपर से अन्य कोई कपडा न पहिन कर एक कोट पहनसे काम निकलना चाहिए। ऐसा करने से शरीर में हवा और सूर्यप्रकाश काफी मिलेगा और कपडों का फजूल खर्च बच जावेगा।
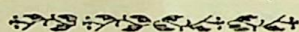
आर्य-समाज और स्वदेशी आन्दोलन।

(लेखक — श्री आचार्य रामदेवजी, गुरुकुल कांगडी)

कुछ समय पूर्व " आर्य भाईयों से अनुरोध " इस शीर्षक से मैं ने एक निवेदन भारतवर्ष भर की अधिकांश आर्यसमाजों की सेवामें भेजा था। मेरा यह लेख अनेक समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हुआ था। और उस पर खासी बहस उठ खडी हुई थी। मेरे उस लेख से जो महानुभाव असहमत थे, उनमें से बडी संख्या का विश्वास था कि मैं ने आर्य-समाज को शराबके विरोध में पिकेटिंग आदि करने की सलाह देकर प्रत्यक्ष रूपसे उसे राजनीतिके क्षेत्र में कूद पडने की सलाह दी है। और इस तरह आर्यसमाज को एक बडे खतरे में डालने का प्रयत्न किया है। परन्तु " वैदिक धर्म " के पिछले अंकमें मेरे उस लेख के सम्बन्ध में इस उपर्युक्त धारणा से बिलकुल विपरीत परिणाम निकाला गया है। 'आर्य भाईयोंसे अनुरोध' लेखके बाद मेरा एक और लेख " आर्य समाज और पालिटिक्स " शीर्षक से लाहौर के 'आर्य' में प्रकाशित हुआ था। इस लेखमें मैं ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि 'आर्यसमाज को राजनीति में भाग लेना नहीं चाहिए। क्योंकि आर्यसमाज एक सार्वभौम संस्था है। यह एक-देशीय नाहीं, सर्वदेशीय है। किसी देशविशेष की राजनीतिसे व्यावहारिक रूप में सम्बन्ध जोड लेने से यह सार्वभौम संस्था संकुचित करदी जावेगी। इसलिए भारतवर्ष की व्यावहारिक

राजनीतिमें आर्यसमाज को भाग नहीं लेना चाहिए। मेरी इस स्थापना का एक मुख्याधार यह भी था कि यदि आर्यसमाज को व्यावहारिक राजनीति में सामूहिक रूपसे डाल दिया जावे, तो इस से उसके मानवीयता की दृष्टि से आवश्यक अन्य कार्यों को अवश्य हानि पहुंचेगी। क्योंकि व्यावहारिक राजनीति में अनेक मार्गों का अवलम्ब किया जा सकता है। उस क्षेत्र में सशस्त्र क्रान्तिवादी, अहिंसात्मक असहयोगवादी, कांग्रेसी, नरम, गरम, उदार, वैध आन्दोलक-अनेक विभिन्न तरह के लोग हैं। यदि आर्य समाज सामूहिक रूपसे व्यावहारिक राजनीति में कूद पडना चाहे उस के सामने यह समस्या रहेगी कि वह राजनीति के उपर्युक्त अनेकों मार्गों में से किस मार्ग का अनुसरण करे। उस दशा में यदि आर्य समाज अपने बहुमत के आधार पर किसी एक मार्ग का अनुसरण करेगा, तो इसी बात को लेकर उस में अनेक धडे बन्दियां हो जावेंगी। इन दो तथा अनेक अन्य आधारों पर उस लेख में मैंने आर्य समाजों को सामूहिक रूप से डाल देने के सम्बन्ध की विचारधारा का विरोध किया था। हां! मेरी राय में व्यक्तिगत रूपसे इस समय प्रत्येक आर्य समाजीका कर्तव्य है कि वह मातृभूमिके स्वाधीनता के इस पवित्र यज्ञ में जी जान से कूद पडे। आर्य समाज का सन्देश स्वाधीनता का सन्देश है। वेद पराधीनता को असह्य स्थिति बताते हैं। इसलिए प्रत्येक भारतवासी का चाहे वह हिन्दु हो, मुसलमान हो, आर्य हो, ईसाई या सिख हो अथवा किसी और मत का अनुयायी हो, यह पहला कर्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि को पराधीन न रहने दे। परन्तु आर्य समाज इस उद्देश्य से नहीं खोला गया।

अपने उसी लेखमें मैं ने आर्य समाज को शराब सत्याग्रह में सामूहिक रूप से कूद पडने की सलाह देते हुए लिखा था कि आज कल प्रत्येक भारतवासी को अपने देश में बनी खद्दर धारण करना चाहिये परन्तु यह होते हुए भी आर्य समाज को यह नियम नहीं बनाना चाहिए कि प्रत्येक आर्य समाजी समाज के अधिवेशनों में हिन्दोस्तान में बना खद्दर पहन कर ही जाय क्योंकि आर्यसमाज के सदस्य तो लार्ड इरविन महोदय भी हो सकते हैं।

मेरी इस बात का 'वैदिक धर्म' ने जो अभिप्राय लिया है, वह मुझे कदापि अभीष्ट नहीं था। "वैदिक धर्म"का कथन है कि यदि आर्यसमाज शराब के विरोध में सामूहिक रूप से भाग ले सकता है तो वह उसी प्रकार खद्दर के प्रचार के लिए सामूहिक प्रयत्न क्यों नहीं कर सकता। परन्तु "वैदिक धर्म" के माननीय सम्पादक महोदय यदि मेरे उपर्युक्त वाक्य से अगलाही वाक्य पढ जाते तो उन्हें यह सन्देह न रह जाता। मैंने लिखा था "हां, आर्य समाजी मात्र को बडी बडी मिलोंका कपडा न पहन कर खद्दर ही धारण करना चाहिए क्योंकि वेद का सन्देश कपडे के व्यवसायमें बहुमात्रोत्पत्ति के खिलाफ है।"

"वैदिक धर्म" के सम्पादक महोदयने भी शायद खद्दरके पक्ष में वेद के उसी मन्त्र का हवाला देना चाहा है, जिस का कि जिकर मैंने अपने इस ऊपर के वाक्य में किया है। परन्तु इस वेदमन्त्र का यह मतलब लेना तो मेरी राय में सरासर अन्यायही होगा कि वेद संसार भर को भारतवर्ष में बना कपडा पहनने का आदेश देता है। जिस तरह भारतवासियों को भारतवर्ष में बना कपडा पहनना चाहिए उसी तरह अन्य देशों के निवासी यदि चाहें तो अपने देश में बना कपडा पहिन सकते हैं। लार्ड इरविन यदि आर्य समाजी बनकर यदि अपने देश का कपडा पहिनें तो उन्हें भारतवर्ष में बना खद्दर पहिन कर ही आर्य समाज मन्दिर में जाने की आज्ञा देना तो अनुचित होगा। दूसरी ओर शराब का मामला तो पहले धार्मिक है और फिर राजनीतिक। शराब सब पापों की जड है किसी भी देश में शराब पीने को पाप ही माना जायगा। अतः इस धार्मिक कार्य में यदि आर्यसमाज धार्मिक दृष्टि से ही अपनी शक्ति लगा दे तो लाभ ही है। आर्यसमाज शराब का इस लिए विरोध नहीं करेगा कि वह विदेशी है। आर्य समाज की दृष्टि में शराब शराब है। वह चाहे बाहर से आये, चाहे इस देश में बने- उसका पीना अपराध है।

साथ ही सम्पादक जी ने अदालतों तथा सरकारी शिक्षणालयों के बहिष्कार में आर्य समाज को सामूहिक रूपसे कार्य करने की सलाह दी है। मैं इस बात से सहमत हूं, इसलिये कि इसे मैं राजनैतिक कार्य न समझ कर भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए आवश्यक कार्य समझता हूं। मुझे विश्वास है कि आर्य समाज कांग्रेस से पहले ही वह काम कर रहा है। स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाजियों को अपने झगडे आपस में निपटालेने की जो सलाह दी है वह इसी बात का प्रमाण है। राष्ट्रीय शिक्षा का कार्य भी गुरुकुलों की स्थापना के रूप में ३६ वर्षों से हो रहा है। इन दोनों कार्यों को बढाने की अवश्य आवश्यकता है।

आशा है मेरी उपर्युक्त स्थापनाओं से 'वैदिक धर्म' के सम्पादक महोदय को असहमति न होगी।

'धरना और धर्मसभा'

श्रीयुत मान्यवर महानुभाव श्री० संपादकजी 'वैदिक धर्म' नमस्ते !

कृपा करके इस लेखको अपने अमूल्य तथा आर्य जाति हितकारी पत्रमें स्थान देकर उपकृतकरें।

पाताल देश निवासी योगीराज श्री० डेविस जी के महावाक्य हैंकि Be instructed by the past
Be thankful for the present,
Be hopeful for the future
Harm to none and good some "

(अर्थ) "भूतकालके कार्योंसे शिक्षा ग्रहण करो।
वर्तमानकालके लिये धन्यवाद करो।
आगामी कालके लिये आशावान बनो।
हिंसा वा हानी किसी एक की भी न करो
और भला थोडे मनुष्यों का कर सको।"

Teacher, preacher and plysician अर्थात् गुरु, उपदेशक और वैद्य को वह पातालनिवासी योगिराज एक कोटिमें रखते हैं।

सुश्रुत ग्रन्थ के पूज्य कर्त्ता महर्षीने उक्त ग्रन्थमें एक स्थल पर लिखा है कि संसार में तीन प्रकारके वैद्य जब समान योग्यता के देखने में आवें तो उस समय किस वैद्यको ब्राह्मण और किसको अन्य वर्णस्थ समझा जावे तो इस प्रश्नका वह वैद्य महर्षि यह उत्तर देते हैं की जो वैद्य सर्वहित वा पूर्णहित की दृष्टिसे अपना धंदा करता है वह वैद्य ब्राह्मण, जो यश संपादन के मनोभावसे धंदा करता हैं वह क्षत्रिय, जो धन बटोरने के मनोभाव से धंदा करता है वह आर्य वैद्य वैश्य है।

महर्षि दयानन्दजीने तीन सभाएं बनाने का जो वेदमूलक तथा उत्तम उपदेश दिया उसकी भारी जरुरत आजकल आर्यजनता अनुभव कर रही है।

आर्यसमाज जैसा कि उसके १० नियम दर्शाते हैं तथा महर्षि दयानन्दजी की अन्तिम इच्छा जो "स्वीकारपत्र" में छपी हुई हैं वह भी आर्यसमाज को धर्मसभा ही सिद्ध करती हैं।

इस समय मेरी तुच्छ मतिमें प्रत्येक आर्यसमाज तो वैदिक आर्यधर्मसभा है और प्रत्येक आर्यप्रतिनिधी सभा आर्यविद्यासभा है कारण कि यह गुरुकुलें चलाती है।

लाहौर में पं० श्रीरामगोपालजी आदि अनेक आर्यकर्मवीरों नें जो गत ७ वर्ष से एक उत्तम कोटिकी

आर्य स्वराज्य सभा

बना रखी है वह आर्यराज्यसभा मेरे नम्र मतमें पूर्ण रूपसे है ।

The Modern Review for July 1930 पर निम्न महत्त्वपूर्ण शब्द हैं उनपर आर्य मात्र को विचार करना होगा—

"A complete seperation of the church and the state was effected in Turkey."

(भाव) टरकी देशमें धर्मसभा और राज्यसभा को एक दूसरे से पृथक् किया गया।

सब जानते हैं कि वर्तमान टरकी की सच्ची उन्नति तब ही हो सकी जब उक्त दो प्रकार की संस्थाओं को एक दूसरेसे वहां पृथक् किया गया।

शराब की दुकानों पर जो युवक आर्यवीर धरना देना चाहें वह जरूर देवें पर यदि वह सामूहिक रूपसे चाहते हैं तो हजारों की संख्यामें अति शीघ्र लाहौर की आर्यस्वराज्य सभाके सभासद बन जावें और वह आर्य राज्य सभा सामूहिक रूप से धरना देने को तत्पर हो सकती है । आर्यसमाज जो सौभाग्य वा दुर्भाग्य से आजतक धर्मसमाज बन रहा है उसको सज्जन धर्मसभा समझें और राज्य का काम न दिया जावे ।

प्रत्येक आर्यसमाज के सभासद तथा सहायक का परम धर्म है कि वह स्वदेशीय वस्तु खादी आदि स्वयं धारण धर्म दृष्टिसे करे बहिष्कार की दृष्टिसे नहीं । उसके घर की देवियां स्वयं खादी बुनें कातें इत्यादि जैसा कि वेद भगवान का आदेश है। धर्मसभा का महा वाक्य "Harm to none and good to some" "किसीको दुःख न पंहुंचाना परंतु भला करना ' ही रहेगा । अतः धर्मसभा बहिष्कार दृष्टिसे नहीं किन्तु परमधर्मपालन दृष्टिसे प्रत्येक स्वदेशीय वस्तु का ग्रहण तथा प्रचार करे।

कोई कहेगा कि खादी को धर्म दृष्टिसे धारण करने से भी बात वही हो जावेगी जो बहिष्कार दृष्टिसे धारण करनेवाले करते हैं। इसके उत्तर-संबंधी पूज्य महर्षि सुश्रुतकार के लेख का भाव ऊपर दिया है । जो धर्म दृष्टिसे धंदा करता है वह तो ब्राह्मण है, जो यश दृष्टिसे वह क्षत्रिय इत्यादि । इस लिये आर्य समाज जो धर्मसभा है वह शिक्षण, कथा, लेख आदेश, प्रचार द्वारा वही करे शराब रोकने का कर सकता है पर धरना देकर वा धरना वा बहिष्कार दृष्टिसे नहीं जो कि क्षत्रिय जनों वा राज्यसभा के सभ्यों का काम है ।

बडोदा　　　　सेवक
ता० १२-७-३०　　　　आत्माराम प्रभृतसरी

सार्वभौम धर्मसंस्था ।

ऊपर श्री० आचार्य रामदेवजी का एक पत्र और राजरत्न श्री आत्मारामजीका एक पत्र पाठकों के सन्मुख रखा है। ये दो विद्वान आर्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता हैं, इसलिये वे आर्य समाज की नीति जो चाहे सो निश्चित करें ।

आचार्यजी (१) शराब के विरोध में सामूहिक रूपसे प्रयत्न करने के लिये आर्य समाज को प्रेरित करना चाहते हैं । इसी प्रकार (२) अदालतोंका बहिष्कार और (३) सरकारी विद्यालयोंका बहिष्कार करनेके विषयमें भी संमति देते हैं । अर्थात् आचार्यजीके मतसे आर्य समाज सामूहिक रूपसे ये तीन कार्य करें। इससे हमारा कोई विरोध नहीं है ।

इस विषयमें हमारा कथन इतनाही है कि, इस समय अदालतोंमें कार्य करनेवाले जज और वकील, विद्यालयों में कार्य करनेवाले अध्यापक और

विद्यार्थी, तथा अन्य सरकारी कार्यालयों में कार्य करनेवाले छोटेमोटे ओहदेदार बहुतसे आर्य समाजी हैं। हमारा जहां तक ख्याल है वहां तक कमसे कम सौमें पचास आर्य समाजी उक्त संस्थाओंसे संबंध रखते हैं। कई कालेज आर्य समाज चलाती है और उनमें कई हजार छात्र पढ रहे हैं। यह सब आर्य समाजियोंकी लीला हमारे मतसे श्री० महर्षि स्वामि दयानंदजी के उपदेशके विरुद्ध है। यदि किसी मनुष्यने स्वामिजीका थोडासा विरोध किया, तो जो आर्य समाजी उसका सिर तोडनेके लिये और स्वामिजीके यशवर्धन के कार्य में अपना बलिदान करनेके लिये भी तैयार रहते हैं, वे उक्त संस्थाओंमें अपने आपको बेच डालते हैं और स्वयं स्वामिजीके विरुद्ध आचरण करते हैं, इसका विचार कोई नहीं करता है। वस्तुतः उक्त संस्थाओंसे आजीविका पानेवाले आर्य समाज के सदस्य नहीं रह सकते, वे चाहे सहायक रह सकेंगे।

श्री० महर्षिजीके जीवन चरित्र में एक कथा है कि किसी स्थानपर स्वामिजीने देखा कि 'एक ब्राह्मण किसी युरोपीयन के ऊपर पंखा खींच रहा है।' यह देखकर श्री० स्वामिजीके दोनों आंखोंसे अश्रुधाराएं चलीं। त्रैवर्णिक सेवावृत्ति न करें, विशेष कर विदेशियोंकी सेवा न करें, यह तो स्वामिजीके उपदेश का सार है। यहां प्रश्न होता है कि, उक्त संस्थाओंसे आजीविका पानेवाले आर्यसमाजी त्रैवर्णिक हैं या चतुर्थ वर्ण में उनकी गिनती है ? यदि आर्यसमाज धर्मसंस्था है तो वह इस का निर्णय करे और आर्य समाज के ओहदेदार त्रैवर्णिक ही रहें।

खद्दरके विषयमें हमारा निश्चित मत यह है कि, जो आर्यसमाजी भारतवर्षको अपनी मातृभूमि कहते हैं उनको खद्दर पहनना आवश्यक है। वेद के अनुसार त्रैवर्णिकों को सूत कातना और अपना कपडा स्वयं बनाना आवश्यक है। कमसे कम यज्ञोपवीत स्वयं काते सूत का होना चाहिये। यह प्रथा अर्थात् यज्ञोपवीत अपने काते सूत का बनाने की रीति भारत वर्षके द्विजोंमें बहुत प्राचीन समयसे थी और इस समय दक्षिण भारत के ब्राह्मणोंमें कुछ अंशमें है। आर्य समाजमें यदि कोई द्विज होंगे, तो वे कदापि सूत कातनेसे दूर नहीं भागेंगे। वैदिक कालके कवि स्वयं सूत कातते और कपडा बुनते थे। यही यजुर्वेद में कहा आदर्श हमारा इस समय का आदर्श हो सकता है।

जो आर्य समाजी भारतवर्षको अपनी मातृभूमि नहीं समझते वे चाहे खद्दर न पहने। उनके लिये यह नियम नहीं है। वे अपनी मातृभूमी का कपडा पहने। श्री० आचार्य रामदेवजी को लार्ड आर्यविन के आर्य समाज में प्रविष्ट होने के स्वप्न इस पत्रमें भी आरहे हैं !! यदि ऐसे स्वप्नों से उनको हर्ष होता है, तो उसके विरोधमें हमें कुछ कथन करने की आवश्यकता नहीं है।

श्री० आचार्यजी के पत्रमें एक विधान है जो हमारे मस्तिष्क में शल्यके समान चुभ रहा है। वह यह है कि, "आर्य समाज सार्वभौम संस्था है इसलिये भारतवर्षीय आर्यसमाज को भारतीय स्वराज्यके संग्राममें भाग नहीं लेना चाहिये।"

पं० गुरुदत्तजीके विषयमें एक कथन हमने सुना है कि वे विदेशी वस्त्र पहनते थे और पूछनेपर कहते थे कि "हम आर्य समाजी सार्वभौम धर्मके अनुयायी हैं, इसलिये हमें पुरुषार्थी लोकोंके व्यापार को उत्तेजना देना चाहिये। युरोपीयन लोग पुरुषार्थी हैं और भारतवासी पुरुषार्थशून्य हैं, अतः हम युरोपीयनों का बना कपडा पहनते हैं।" इ०

यह पं० गुरुदत्तजी का गुणवर्णन प्रो० बालकृष्णजी द्वारा कांगडी गुरुकुल में किसी व्याख्यानमें हुआ था, जो हमने अपने कानोंसें सुना था। अर्थात् इसकी सचाईके विषयमें श्री० प्रोफैसरजी (आजके प्रिन्सीपल, राजाराम कालेज, कोल्हापूर) जिम्मेवार हैं।

सार्वभौमधर्मी होनेके मदसे स्वदेशी व्रतका त्याग करने का आर्थिक सिद्धान्त इस समय पांच वर्षका बालक भी माननेको तैयार नहीं है, इतनी आत्मशुद्धि इस समय भारतवर्ष की हो चुकी है। इसी प्रकार श्री० आचार्यदेवजीका सार्वभौम धर्म का सिद्धान्त भ्रमसे बना हुआ है।

जो सच्चा मानव धर्म होता है वह सार्वभौम अर्थात् सब मनुष्यों के लिये समान होता है। वैदिक धर्म, सनातन धर्म, आर्ष धर्म अथवा आर्य धर्म शुद्ध मानव धर्म है इसलिये वह सार्वभौम धर्म है इसमें संदेह नहीं है और इस धर्मका प्रचार करनेवाली संस्था सार्वभौम है इसमें संदेह नहीं है।

सार्वभौम संस्था होनेपर भी वह संस्था जिस देशमें होगी उस देशसंबंधी कर्तव्य करनेसे वह दूर नहीं भाग सकती तथा यदि उस सार्वभौम संस्थाके सदस्य उस देशके पुत्र हुए तो मातृभक्ति के धर्मसे वे कदापि दूर नहीं हो सकते। सब संन्यासी सार्वभौम धर्म के प्रचारक ही होते हैं, तथापि वे अपनी माताके सामने सिर झुकाते ही हैं और यदि वे अपना सिर माताकी सेवा के लिये नम्र न करेंगे तो वे अपने धर्मसे गिर जांयगे। जिस प्रकार माताकी सेवा संन्यासी होनेपर भी नहीं छूटसकती, उसी प्रकार मातृभूमि की सेवा भी नहीं छूटसकती। यदि कोई सार्वभौम धर्मप्रचारक होनेके मिषसे अपनी मातृभूमिकी सेवासे दूर होंगे तो वे अपने कर्तव्यसे गिर जांयगे। भारतवर्षमें जो आर्यसमाज संस्था है, वह सार्वभौम मानव धर्म की प्रचारक है, तथापि वह संस्था भारतवर्षमें है इसलिये वह मातृभूमिकी सेवा से दूर नहीं रह सकती।

आर्यसमाज एक सार्वभौम धर्म प्रचारकी संस्था है, जिस मकानम में वह संस्था कार्य करती है, उस मकानको आग लग जानेपर उन सदस्यों का पहिला कार्य आग बुझानेका ही होना चाहिये। जिस ग्राममें यह सार्वभौमधर्मकी प्रचारक संस्था रहेगी, उस ग्रामको चारों ओरसे आग लगजाय तो इस संस्थाको वह आग बुझानेके कार्य में पहिले लगना चाहिये। इसी प्रकार भारतवर्षको कई वर्षोंसे आग लग गई है, इस आगमें भारत का हृदय जलने लगा है। श्री महर्षिजी चाहते थे कि आर्यसमाज इस आगको बुझा देवे, परंतु श्री० पूज्यपाद आचार्य जी जैसे धर्ममूर्ति और त्यागमूर्तियोंको भी अपने सार्वभौमिक धर्मके मोहसे मातृभौमिक धर्म का त्याग करनेका भ्रम हुआ है। यह भारतवर्षका और उस ऋषिका दुर्दैव है। और जिस सार्वभौमिक धर्मके ये अपने आपको प्रचारक समझते हैं उस ऋषिप्रणीत धर्मका भी दुर्दैव है। क्यों कि जो धर्मसभा अपने आपको निज मातृभूमिकी सेवासे दूर रखनेके नये नये ढंग सोचती रहती है,उस धर्मसभा का उपदेश सुननेके लिये भी इस समय जगत में कोई तैयार नहीं है।

इस समय भारतवर्ष की स्वाधीनताके संग्राममें भाग लेना सार्वभौम वैदिक धर्मका आचार से प्रचार करना है। इस समय भारत की स्वाधीनता पर संपूर्ण जगत् की शान्ति निर्भर है, अतः सार्वभौमिक शान्तिस्थापनका प्रयत्न सार्वभौमिक धर्म के आचार का भाग है। कोई युक्ति नहीं है जो इस कर्तव्यसे आर्यसमाजियोंको दूर कर सके।

विचारक इसका विचार करें। "संपादक"

वैदिक प्रार्थना।

(श्री० कवि श्री० लोचनप्रसादजी पाण्डेय, रायगढ)

(१)

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च
यजु० १६। ४२

शमदमस्वामी अहो शम्भु भगवान !
नमस्कार है तुमको ज्ञाननिधान !
अहो मयोभव सर्वसुखालय ईश !
भक्तिसहित हैं तुम्हें झुकाते शीश ॥
हे शङ्कर ! हे विश्वनाथ, शुभधाम !
तव पदकमलोंमें है विपुल प्रणाम ॥
देव मयस्कर प्राणमनेन्द्रियनाथ !
नमस्कार है, कीजै हमें सनाथ ॥
मङ्गलमय शिवभव कल्याणनिवास
प्रणति ग्रहण कर, हरिए पातकत्रास ॥
हे शिवतर ! हे शुभतर ! हे जगदीश !
नमस्कार हैं अमित तुम्हें योगीश ॥

(२)

प्रार्थना ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव-
संकल्पमस्तु ॥ यजु० ३४ । १

विचरत जाग्रत दशा माहिँ मन दूर दूर जो नितहीं
सुप्त अवस्था हूं महँ जो मन भ्रमत रहत अविरतही ।
ज्योति पुंजकी ज्योति अपूरब, दूरगमन गुनधारी
निकट तथा दूरस्थ विषयको संतत चिन्तकारी ॥
अति चंचल जो है स्वभावसों, सो मन प्रभु तुअ चेरो
शिवसंकल्प विधानन में हरि! ताकी गति नित फेरो॥

(३)

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् । आराष्ट्रे राजन्यः
शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वो-
ढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः । सभेयो
युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे नः
पर्जन्यो वर्षतु । फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजुर्वेद २२।२२

भावार्थ ।

हे जगदीश दयाल ब्रह्मप्रभु ! सुनिए विनय हमारी ।
हो ब्राह्मण उत्पन्न देशमें धर्मकर्म-व्रतधारी ॥
क्षत्रिय हों रणधीर महारथ धनुर्वेद-अधिकारी ।
धेनु दूधवाली हो सुकर, वृषभ तुङ्ग बलधारी ॥
हो तुङ्ग गति चपल, अङ्गना हों स्वरूप गुणवाली ।
विजयी रथी पुत्र जनपदके रत्न तेजबलशाली ॥
जबही जब जग करे कामना जलधर जल बरसावें

फलें पकें सुखद वनस्पति योगक्षेम सब पावें ॥

(४)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा ।
दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥

अथर्व० १२। ५। ५। १-२-३

हे परमेश्वर, करुणासागर, विश्वनाथ, यह वर दीजै ।
आजीवन हम पुरुषार्थी हों तपबलयुक्त हमें कीजै ।
ज्ञान तथा धनके विषयों में वेदाज्ञाके पालक हों ।
तेजस्वी हों, वीर धीर हों, देश कार्यसंचालक हों ।
सत्यावृत, श्रीप्रावृत, यशसे परिवृत हम सब हों स्वामी !
स्वीय उपार्जित धनपर हम सन्तुष्ट रहें, अन्तर्यामी !
दीक्षासे रक्षित, श्रद्धायुत हों स्वदेशके हितकारी
रहें प्रतिष्ठित परहित व्रतमें नित हम सब हे असुरारी !

(५)

स्तुति ।

अग्निमीळे पुरो हितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥　　ऋग्वेद १-१-१-१

अग्निरूप है परम पुरोहित हितकारक जो स्वयंप्रकाश
स्तुति मैं उस विभुकी करता हूं जो है शुभ्र ज्ञान आवास॥
यज्ञदेवता ऋत्विज होता वह सर्वेश जगत् आधार ।
सूर्य आदि लोकोंका धारक है जो दिव्य रत्नभण्डार ॥

(६)

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत्॥　　ऋग्वेद १ । १ । १ । ५

अग्नि प्रकाशक अखिल लोकके हे होता! फलदायक देव!
कवि सर्वज्ञ,जगत् कर्ता क्रतु सत्य अचल सुख-सद्म सदैव!!
चित्रश्रवस्तम सुकीर्तिकर देव दिव्यगुण परमात्मा ।
दिव्य गुणोंके सहित हृदयमें प्रकट हूजिए विश्वात्मा ॥

(७)

स्तुति ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥　　यजु० ४० । ८

आकाशसा व्याप्त चराचरोंमें
हे शुक्रतेजोमय सृष्टिकर्ता

अकाय है ब्रह्म अछेद्य सूक्ष्म
विशुद्ध है पापविहीन नित्य ।
+ कविर्मनीषी परि भू स्वयंभू
+ सर्वज्ञ, विज्ञानज पूर्ण आदि
अनादि संवत्सरसे वही है
प्रजागणोंको उपदेश देता
सत्यार्थका वेद महान ज्ञानका
अज्ञान रूपी तमको मिटाने ॥

(+ सर्वज्ञ, साक्षीमनका, प्रपूर्ण)

(८)

स्तुति ।

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।

ऋग्वेद० १।७।३।२

जो सत्य सुन्दर है सनातन कव्यता कविता-निधान ।
इस प्रकृतिका इस दृश्य भवनिधिका प्रकाशक रवि महान॥
गुणयुक्त परमात्मा स्वभू जो अखिल लोकाधार है ।
खग मृग लता वल्ली मनुज सुर रचयिता अविकार है ॥
जो सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त है सुखशान्तिधाम ।
पृथ्वी प्रजा ग्रह व्योम तारे यश कहैं जिसके ललाम ॥
उस ज्ञान अग्नि समान बाच्छा कल्पतरु जगदीशको ।
विद्वान् देव समूह धारण करैं नित्य श्रुतीशको ॥

(९)

प्रार्थना ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ऋग्वेद० १।१।६।१०

हमारी वाणी हो पावन ।
सरस्वतिका हो आराधन ॥
करैं हम नित गुरुजन सेवन ।
कहैं धन, स्वास्थ्य, दीर्घजीवन ॥
बुद्धि हो हम सबकी शुभतर ।
तजें हम छल विरोध मत्सर ।।
देशको नवबल दें प्रभुवर !
प्रजा हो ताकि सुखी सत्वर ॥
यज्ञ हम करें देशहितकर ।
सत्यका करें सदा आदर ॥
प्रार्थना है इतनी ईश्वर !
न औरों पर हम हों निर्भर ॥

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

चार द्वारों की चार आशाएँ ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व कियाही है। इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएं मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं। जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है; उसी प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्म देवकी आशाएं इस घरके द्वारोंसे जगत्में गमन करके वहांके कार्य क्षेत्रमें पुरुषार्थ करनेकी होती हैं। वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इसमें नौ द्वार हैं ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है। देखिये–

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥
अथर्व० १०।२।३१

"आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है।"

इस अथर्व श्रुतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक, दो आंख, दो कान, एक मुख, गुदा और शिस्न ये नौ द्वार यहां कहे हैं। इन में से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, शिस्न दक्षिण द्वार इन तीनोंका संबंध इस अपने प्रचलित सूक्तके मंत्रमें है। जो चतुर्थद्वार है वह आठ चक्रवाले पृष्ठवंशके ऊपर मास्तिष्कसे भी ऊपर के भागमें विद्दति नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत पवमानोऽधि शीर्षतः ॥ अथर्व० १०।२।२६

"मस्तक और हृदय को सी कर अर्थात् एक केंन्द्रमें लीन करके मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फेंका जाता है।"

विदृति द्वार से प्रवेश।
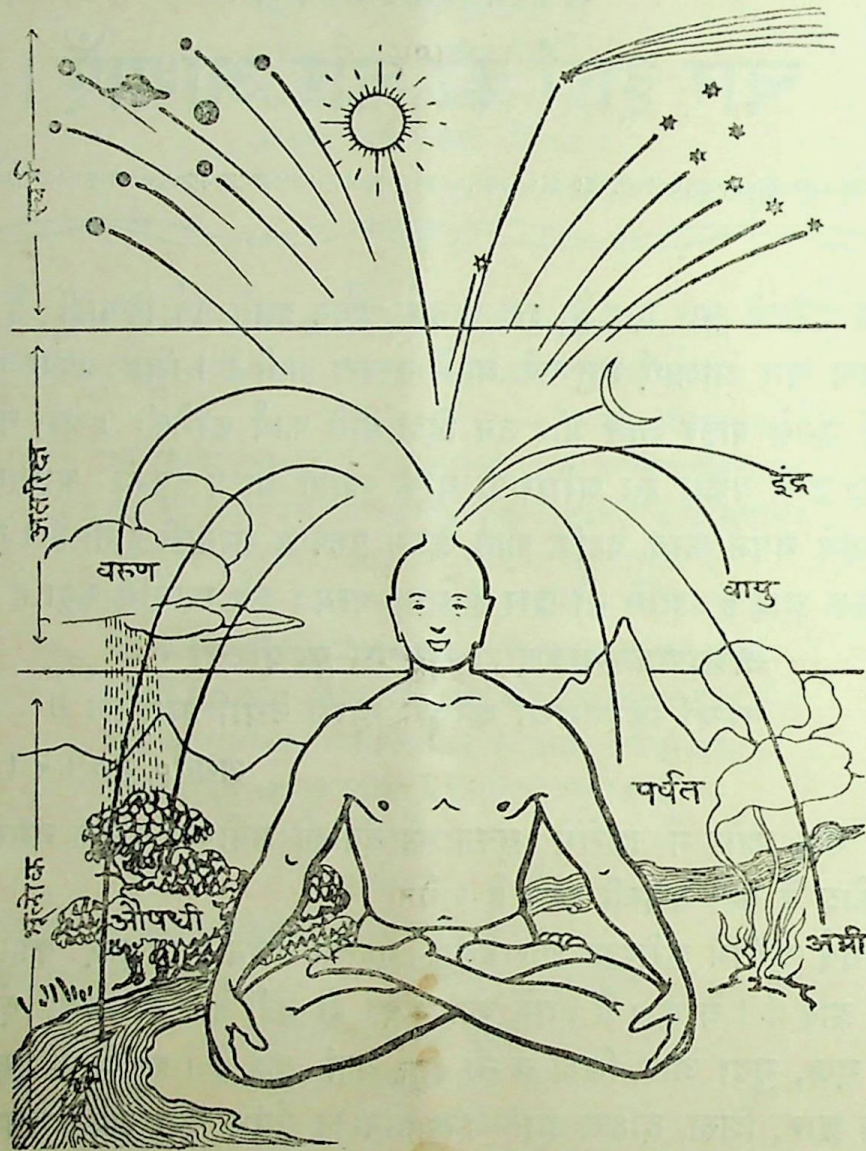
विदृति द्वारसे तैंतीस देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश। अंदर आनेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राणसाधन द्वारा अपनी इच्छासे इसी द्वारसे वापस जानेपर मुक्ति। साधारण जन देह त्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगीही अथर्ववेदके कहे मार्गसे मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।

इस मंत्रमें "मस्तिष्कात् ऊर्ध्वः । अधि शीर्षतः ।" आदि शब्दों द्वारा मस्तक के ऊपरले उत्तर द्वार का वर्णन किया है। अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यान के प्रसंगमें निश्चित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है। नौ द्वारों में से तीन और इस मज्जा संस्थानका एक मिल कर चार द्वार हैं और उनकी चार आशाएं अथवा दिशाएं हैं । अब ये आशाएं देखिये-

द्वार		आशा
१ पश्चिमद्वार	= गुदा	= की आशा विसर्जन करना । शरीर धर्म।
२ पूर्वद्वार	= मुख	= ,, ,, मधुर भोजन करना। अर्थ प्राप्ति।
३ दक्षिणद्वार	= शिस्न	= ,, ,, भोग का उपभोग करना। काम।
४ उत्तर द्वार	= विद्दति	= ,, ,, बंधन से मुक्त होना । मोक्ष।

आरोग्यका आधार।

इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल "शरीर धर्म" पालन करने की ही है तथापि इस शौच धर्मसे अर्थात् पवित्र बनने के कर्मसे शरीर शुद्धि होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है । सब अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह बात हरएक जान सकते हैं । इस द्वारका कार्य बिगड जानेसे शरीर रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएं पूर्ण होने की असमर्थता होती है। इस के उत्तम प्रकार कार्य करने पर अन्य आशाएं सफल होने की संभावना है । इस लिये हम कह सकते हैं, कि इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्य के मनमें " आरोग्य की प्राप्ति " रूप से रहती है । इस आशा का कार्य क्षेत्र बहुत बडा है, मनुष्य इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वार के व्यवहार ठीक न चलें तो उसके रोगी होनेमें कोई शंका ही नहीं है ।

खानपान।

अब पूर्व द्वार की आशा देखिये । संक्षेपसे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वार से मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है। मधुरताका प्रेम
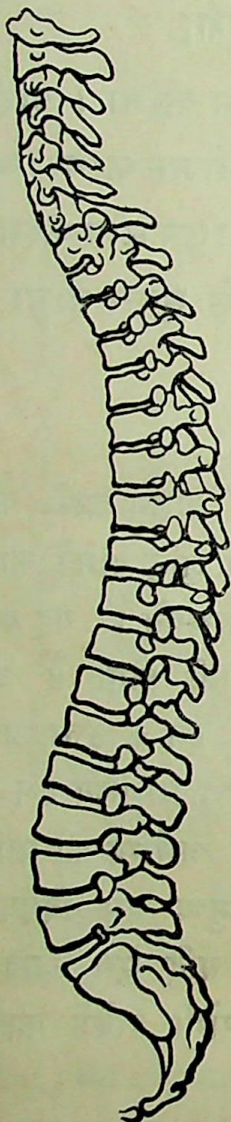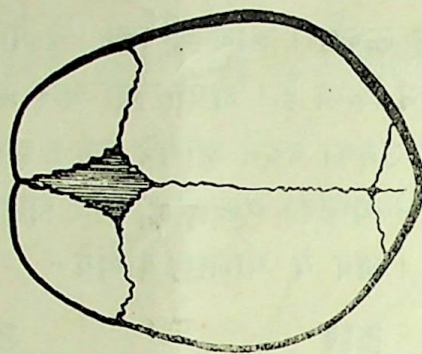
मस्तकमें
विदृति द्वार
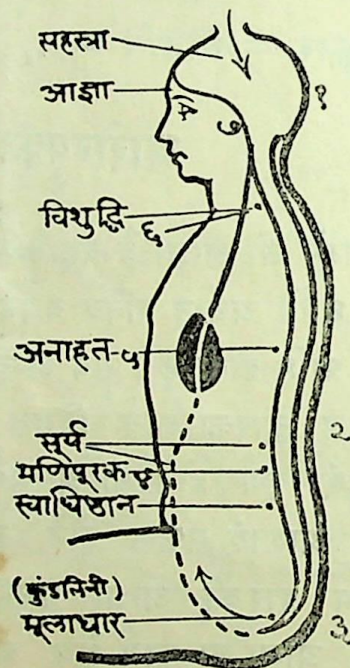
सहस्रार चक्र
पृष्ठवंशमें चक्रों के स्थान !

पृष्ठवंश

करते करते मनुष्य इतना अधिक खाता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है। इस लिये इस विषयमें प्रयत्न पूर्वक संयम रखना चाहिये। रुची का गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसका आयु कष्टप्रद ही होता है। हरएक इंद्रिय के विषयमें यही बात है। इस प्रकार इंद्रिय भोग के लिये धन की आवश्यकता है इस हेतु इस द्वार की आशा " अर्थ की प्राप्ति " ही है। यह आशा अत्याधिक बढानेसे कष्ट होंगे और संयम द्वारा अत्यावश्यकता के अनुसार भोग लेनेसे सुख बढेगा, उन्नति होगी। मुख द्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है। उत्तम शब्द प्रयोगसे जगत्में शांति फैलती है और कुशब्दके प्रयोगसे अशांति फैलती है। इस विषय में भी जिह्वापर संयम रहना आवश्यक है। अन्यथा अनर्थ होनेमें कोई देर नहीं लगेगी। इस प्रकार इस द्वितीय द्वार की आशा का संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है।

कामोपभोग।

तीसरा दक्षिण द्वार है। इस शिस्न द्वारा जगत् में उत्तम प्रजनन अर्थात् सुप्रजाजनन करना आवश्यक है। परंतु जगत् में इसके असंयमसे जो अनर्थ हो रहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं है। इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है। उर्ध्वरेता होना ही वैदिक धर्मका साध्य है। इसके विचारसे इस द्वारकी आशा का पता लग जायगा। यह केंद्र अत्यंत महत्त्वका है परंतु जनता का लक्ष्य इसके कार्यमें बिगाड करनेकी ओर अधिक है और सुधारके मार्गमें प्रयत्न अति कम हैं।

बंधन का नाश।

अब चतुर्थ विद्दति द्वारपर हम आते हैं। यह विद्दति द्वार है। इससे जीवात्मा इस शरीरमें घुसा है, परंतु इसी द्वारसे बाहर जानेका मार्ग इसको मिलता नहीं है। युद्ध-भूमिमें प्रवेश करना यह जानता है, परंतु सुरक्षित वापस फिरनेकी विद्या इसे पता नहीं है। चक्र व्यूहमें घुसनेकी विद्या जाननेवाला, परंतु चक्रव्यूहमें घुस कर युद्धमें विजय प्राप्त करने और सुरक्षित वापस आनेकी विद्या न जानने वाला अभिनव कुमार अभि-मन्यु यही है। यदि यह सुरक्षित वापस आनेकी विद्या जानेगा तो यह विजय-अर्जुन-होगा, फिर इसको डर किसका है? " विजय " बननेके लिये ही यह सब धर्म मार्ग हैं। जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवात्मा वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता। हरएक बंधन को दूर करनेकी

इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएं हैं और हरएक मनुष्य इन आशाओंके कार्य क्षेत्रमें बुरा या भला कार्य करता है और गिरता है या उठता है । इन आशाओंके कार्य क्षेत्र की कल्पना पाठकोंको ठीक प्रकार होगई, तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी । इस लिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक वारंवार मनन द्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्पश्चात् निम्न लिखित स्पष्टीकरण पढें —

अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कथनमें तीन बातें कही हैं– " (१) चार आशाओंके चार अमर आशा पालक हैं । (२) वेही चार भूताध्यक्ष हैं । (३) उनकी पूजा हम हवन से करते हैं । "

मनुष्यमें चार आशाएं कौनसी हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थापनका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व स्थलमें बताया ही है । चार आशाएं मनुष्यके अंदर सनातन हैं, (१) शरीर धर्मका ख्याल करना, (२) भोग प्राप्त करना, (३) कामका भोग करना और (४) बंधन से निवृत्त होना, ये चार भावनाएं अथवा कामनाएं मनुष्यमें सदा जागती हैं, मूढमें तथा प्राज्ञमें ये समानतासे रहती हैं । पशु पक्षियोंमें भी अल्पांशसे ये रहती हैं अर्थात् भूतमात्रमें ये सदा रहती हैं, इसलिये इनका सनातन अधिकार प्राणिमात्रपर है, मानो ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं । इनको अध्यक्ष इसलिये कहा है कि इनकी प्रेरणासे ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आशाएं प्राणियोंके अंदर न रहीं तो उनकी हलचल भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनतामें ही हो रहे हैं । इस लिये ये ही चार आशा–पालक मनुष्यके चार अधिकारी हैं । इनकी आधीनतामें रहता हुआ मनुष्य अपने व्यवहार करता है और उनका बुरा या भला परिणाम भोगता है ।

हवनसे पूजन ।

इनका पूजन हवन से ही हो रहा है । पूर्व द्वार मुख है, उसमें अन्नपानका हवन हो रहा है । कौन प्राणी ऐसा है कि जो यह हवन नहीं करता । इसी प्रकार दक्षिण द्वार

शिस्न देवके पूजक सब ही प्राणी हैं, इतनाही नहीं परंतु इस कामदेव की अति पूजा से लोग अपना ही घात कर रहे हैं। इतनी बात सत्य है कि उत्तर द्वार जिसका नाम विदृति है उस के पूजक अत्यंत अल्प हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोडे ही जानते हैं। पश्चिम द्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध " अपानायाम " से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वार से करनेका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वार से अपानायाम किया जाता है। इस की क्रिया भी थोडे लोग जानते हैं। यह क्रिया योग शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तर द्वार विदृतिके उपासक खास योगी होते हैं वे इस स्थानकी चालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी हवनसे पूजा यह है-

१ पूर्वद्वार---- (मुख)- अन्नपानादिके हवनसे पूजा,

२ दक्षिण द्वार- (शिस्न)- भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा,

३ पश्चिम द्वार- (गुदा)-अपानायाम-अपानका प्राणमें हवन करके पूजा, इसका उल्लेख भगवद्गीतामें भी है - अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे। भग० गी० ४-२९

४ उत्तर द्वार -(विदृति)--मस्तिष्कके मज्जाकेंद्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा।

यहां पाठक जान गये होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं। परंतु बीजरूपसे हैं। प्रथम मंत्रमें " हम चारों अमर आशापालोंकी हवन द्वारा पूजा करेंगे " ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इस लिये कि हरएक मनुष्य चारोंकी उपासना द्वारा अपना उद्धार करे।

यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। यह नियमन इस प्रकार है —

पूर्व तथा पश्चिम द्वार ये हमारे आंतोंके विरुद्ध दिशाके मुख हैं। मुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगडता है, और गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी रुची ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क और शिस्न ये परस्पर का नियमन करते हैं। यदि शिस्नदेवने अतिरेक किया तो मस्तिष्क हलका होता है, और मनुष्य बुद्धिका कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निकम्मा होता है। तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुविचार शिस्न देव का संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं। पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकोप से किस प्रकार बचना चाहिये। अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे–

पापमोचन।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है– " चार आशाओंके चार आशापालक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिके पाशसे बचावें। "

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं। देखिये —

१ पूर्वद्वार–मुख = जिह्वाकी गुलामीसे खानपानमें अतिरेक होकर, पेटका बिगाड और स्वास्थ्यका नाश। इसी जिह्वाके संयमसे आरोग्य प्राप्ति।

२ पश्चिमद्वार–गुदा= पूर्वोक्त संयम और असंयम से ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संबंध है।

३ दक्षिणद्वार– शिस्न = ब्रह्मचर्यद्वारा संयमसे उन्नति, संयमपूर्वक गृहस्थधर्म पालनसे सुप्रजाप्राप्ति और असंयमसे क्षय।

४ उत्तरद्वार– विद्दति––पूर्वोक्त संमय और असंयमसे इसके लाभ और हानि प्राप्त होनेका संबंध है।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुडा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है। पापसे छुडानेसे ही निर्ऋति के पाशसे मनुष्य छूट जाता है। निर्ऋतिका अर्थ नाश है पाप। करनेवालेको निर्ऋतिके अर्थात् विनाशके पाश बांध देते हैं। और पुण्यवानोंका

उनसे कोई कष्ट नहीं होता । इस मंत्रका यह कथन बडा बोधप्रद है कि ये चार द्वारकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुडा सकती हैं और बंधनसे भी मुक्त कर सकती हैं । पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आतमपरीक्षा द्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके शरीरमें क्या हो रहा है । यदि कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या शत्रुके आधीन हुआ हो, तो सावधानीसे अपने बचाव का यत्न करें । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

चतुर्थ देव ।

तृतीय मंत्रका आशय यह है-"मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हवनसे तथा घीसे इनकी तृप्ति करता हूं । इन चार आशा पालोंमें जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हमें सुखसे यहां आनंद स्थानमें पहुंचावे ।"

इस मंत्रमें कहा हुआ "तुरीयः देवः" अर्थात् चतुर्थ देव विद्दतिद्वारका रक्षक मोक्ष-की आशाका पालक है । इसी देव की कृपासे अन्य सब द्वारोंका नियमन हो सकता है । इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य व्यवहारका नियमन होना चाहिये । वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं । मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत् के सब व्यवहार होने चाहियें । इसीका नाम धर्म है । बंधनसे मुक्त होना मुख्य साध्य है, उसके सहायकारी सब अन्य व्यवहार होने चाहियें । अन्यथा जगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्म को कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें लोभ वृद्धि होनेके कारण बडा अनर्थ होगा । त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवन का भेद यहां स्पष्ट होता है ।

मंत्रमें कहा है कि न थकता हुआ और अवयवोंसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूंगा । इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उत्साह मनमें स्थिर करे ।

इन चार देवोंकी अन्नादिसे तथा घी आदिसे तृप्ति करनी चाहिये । जिसका जो हवन है उसी के अनुकूल उसका घी भी है । वह जैसा जिसको देना है वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये । इस विषयमें थकावट करना योग्य नहीं । न थकते हुए और न श्रांत होते हुए ये भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये । अर्थात् बडी दक्षतासे जगत् का व्यवहार करना उचित है । परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा संपादन करने का अनुसंधान रखना

चाहिये। क्यों कि उसी की कृपासे आनंद, उन्नति, यश, आदि की यहां प्राप्ति होती है और सद्गति भी मिल सकती है।

दीर्घ आयु।

पूर्वोक्त प्रकार तीन मंत्रोंका विचार करनेके पश्चात् अब चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सन्मुख आता है- " इन आशापालोंकी सहायतासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोडे, आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयस के भागी बनें और दीर्घायु बनें। " इस मंत्रमें चार बातें कहीं हैं—

१स्वस्ति (सु+ अस्ति)= सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुख पूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदय का सूचक विधान है।

३ सुविदत्रं = (सु+विद्+त्रं) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्म ज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयस का हेतु है। वह हमें प्राप्त हो।

४ ज्योक् = दीर्घकाल जीवन हो! यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेद मंत्रोंमें वारंवार " ज्योक् च सूर्यं दृशेम " अर्थात् " दीर्घकाल तक सूर्यको हम देखते रहें। " यह एक महावरा है, इसका तात्पर्य " हमारी आयु अतिदीर्घ हो" यह है। परंतु यहां ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहां जहां दीर्घ आयु प्राप्त करने का उपदेश वेदमें आया है वहां वहां सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इस लिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्य वर्धन का संबंध है यह बात न भूलें! ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है —

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥ २९॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३०॥

अथर्व० १०। २

“ जो निश्चयसे ब्रह्मकी अमृतसे परिपूर्ण नगरीको जानता है उसको स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके साथी अन्य देव चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं ॥ २९ ॥ अति वृद्धावस्थासे पूर्व उसको प्राण और चक्षु छोडते नहीं जो ब्रह्मपुरीको जानता है और जिस पुरीमें रहनेके कारण इसको पुरुष कहते हैं ॥ ३० ॥”

भाव स्पष्ट है कि ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु, सुसंतान और आरोग्य पूर्ण इंद्रियोंसे युक्त उत्तम शरीर प्राप्त होता है। यही भाव संक्षेपसे अपने प्रचलित सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कहा है। इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इह पर लोकमें यशस्वी होता है। यही इस सूक्तका उपदेश है।

विशेष दृष्टि।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है। बाह्य दिशा ओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए “आशा” शब्द का प्रयोग इसमें इसी लिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंको अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे।

इस सूक्तका यह श्लेषालंकार बडा ही महत्त्व पूर्ण है। और जो इस सूक्तको केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्त्व पूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं। पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें।

इस सूक्तका संबंध आयुष्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणोंसे विषयकी अनुकूलतासे है। यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पतिगण अथवा वसु गण का है। इस लिये “ यहांके निवास ” के साथ इसका अपूर्व संबंध है। इस प्रकार की दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें ढालकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन-रसका महासागर।

(३२)

(ऋषिः— ब्रह्म। देवता— द्यावापृथिवी)

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥
अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेधसो न वा ॥ २ ॥
यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम्।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥
विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम्।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ-हे (जनासः) लोगो ! (इदं विदथ) यह ज्ञान प्राप्त करो। वही ज्ञानी (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मके विषयमें कहेगा। (येन वीरुधः प्राणन्ति) जिससे औषधियां आदि प्राण प्राप्त करती हैं, (तत् पृथिव्यां न, नो दिवि) वह पृथ्वीमें नहीं और ना ही द्युलोक में है ॥ १ ॥ (आसां अन्तरिक्षे स्थाम) इन औषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है (श्रान्त-सदां इव) थक कर बैठेहुओंके समान (अस्य भूतस्य आस्थानं) इस बने हुएका स्थान जो है (तत् वेधसः विदुः वा न) वह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ (यत् रेजमाने रोदसी) जो हिलने वाले द्यावापृथिवीने और (भूमिः च) केवल भूमिने भी (निरतक्षतं) बनाया (तत् अद्य सर्वदा आर्द्रं) वह आज तक सदासर्वदा रसमय है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे

समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ (विश्वं) सब ने (अन्यां अभीवार) दूसरीको घेरलिया है, (तत्) वह (अन्यस्यां अधिश्रितम्) दूसरीमें आश्रित हुआ है। (दिवे च) द्युलोक और (विश्ववेदसे च पृथिव्यै) संपूर्ण धनोंसे युक्त पृथिवीके लिये (नमः अकरं) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ-हे लोगो! यह समझो कि जो तत्त्वज्ञान समझेगा वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा । तत्त्व ज्ञान यह है कि—जिससे बढनेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं, वह जीवनका सत्त्व पृथ्वीपर नहीं है और नाही द्युलोक में है ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है। जैसे थकेमादे विश्राम करते हैं उसप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं। इस बने हुए जगत्का जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ हिलने जुलनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो कुछ बनाया गया है, वह सब इस समयतक बिलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरसे चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्ति के ऊपर रहा है और वहभी दूसरी के ही आश्रयसे रही है। द्युलोक और सब धनोंसे युक्त पृथ्वी देवीको मैं नमन करता हूं (क्यों कि ये दो देवताएं इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं।) ॥ ४ ॥

स्थूल सृष्टि।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी पत्थर आदि अतिस्थूल पदार्थ, वृक्षवनस्पत्यादि बढने वाले पदार्थ, पशुपक्षी आदि बढने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढने हिलने और उन्नत होनेवाले उच्च कोटीके प्राणी हैं। पत्थर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोडा जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उत्पन्न होते हैं, बढते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें दिखाई देनेवाला जीवनतत्त्व कौनसा तत्त्व है ? क्या यह स्थूलही है या इससे भिन्न और कोई तत्त्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है।

सब लोग यह जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें। यदि उनको जीवन से आनंद प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस (जनासः ! विदथ) ज्ञान को प्राप्त करें। यह

मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है। (मंत्र१)

यह जीवन रस की विद्या कौन देगा ? किससे यह प्राप्त होगी ? यह शंका यहां आती है, इसविषयमें प्रथम मंत्रने ही आगे जा कर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, वही (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्व पूर्ण ज्ञान के विषयमें कहेगा। जिसको इस विद्याकी प्राप्ति करनेकी इच्छा हो, वह ऐसे विद्वान के पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे। किसी अन्य के पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जीवन का रस

सारांश रूपसे यह समझो कि "जिस जीवनतत्त्वके आश्रयसे बढनेवाले वृक्ष वनस्पति प्राणी आदि प्राण धारण करते हैं यह जीवन का आधारतत्त्व न तो पृथ्वीपर है और ना ही द्युलोकमें है।" (मंत्र १) वह किसी अन्य स्थानमें है इस लिये उसको इस बाह्य द्यावापृथिवीसे भिन्न किसी अन्य स्थान में ही ढूंढना चाहिये।

इस प्रथम मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंसे कहा है कि जिससे जीवनका रस मिलता है वह तत्त्व इस स्थूल संसारसे बाहर अर्थात् वह अतिसूक्ष्म है। वह कहां है इसका पूर्ण उत्तर आगे के मंत्रोंमें आजायगा।

भूतमात्रका आश्रय।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि– " इस सृष्टिगत संपूर्ण पदार्थोंका आश्रय स्थान अंतरिक्ष है। इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भी जानते हैं वा नहीं ? " अर्थात् इसका ज्ञान सब ज्ञानियोंको भी एकसा है वा नहीं। ज्ञानियों में भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं। सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आत्मविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं। (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें " भूत " शब्द है, इसका अर्थ " बना हुआ पदार्थ। " जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भुत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है। इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक सूक्ष्म तत्त्व है जिसका ज्ञान अध्यात्मविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं। इसलिये जीवनरस विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे सद्गुरुके पास जावें, कि जो इसका ज्ञाता हो और उसके पाससे वह जीवनकी विद्या प्राप्त करें। यह ही ज्ञानी (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मका ज्ञान कहेगा। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है।

सनातन जीवन।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि — " जो इस द्यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र है वह सदा सर्वदा, जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इसमें जीवन रस ऐसा भरा है जैसा सरोवरसे चलनेवाले विविध स्रोतोंमें सरोवरका जल चलता है। "

जगत्के माता पिता।

अदिति भूमि जगत् की माता है और द्यौष्पिता जगत् का पिता है। भूलोक और द्युलोक, भूमि और सूर्य, स्त्रीशक्ति और पुरुष शक्ति, ऋण शक्ति और धन शक्ति, रयि शक्ति और प्राण शक्ति, प्रकृति और पुरुष, प्रकृति और आत्मा इस प्रकारके दो शक्तियोंसे यह जगत् बना है, इस लिये इनको जगत्के माता पिता कहा है। विविध ग्रंथकारोंने उक्त द्वन्द्व शक्तियोंके विविध नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्के मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है।

जीवनका एक महासागर।

वेदमें द्यावा पृथिवी — द्युलोक और पृथ्वीलोग — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्यों कि संम्पूर्ण जगत् इन्हींके अंदर समाया है। यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् बढता और बिगडता भी है तथापि बने हुए संपूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहा है वह एक रूपसे व्यापता है, इस लिये संपूर्ण जगत्के नियम अटल और एक जैसे हैं। हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है ! इससे जीवनामृत की अगाध सत्ता की कल्पना हो सकती है।

जिस प्रकार एकही सागरसे अनेक स्रोत चलते हों तो उनमें एकही जीवन रस सब में एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अनंत पदार्थों में एक ही अगाध जीवन के महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो संपूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतसे ओत प्रोत भरपूर हो रहे हैं।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें ओत प्रोत भरनेवाले एक घडेके समान समझें और अपने अंदर वही जीवन स्रोत चल रहा है इसका ध्यान करें। जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारों ओर जलका अनुभव करता है उसी प्रकार मनुष्यभी उसी जीवन महासागर में तैरनेवाला एक प्राणी है, इस लिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पसी कल्पना हो सकती है।

यह जीवन सदाही नवीन है कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगडता नहीं। अन्य पदार्थ बनने और बिगडने पर भी यह एकसा नवीन रहता है। और यही सबको जीवन देता है। (तत् अद्य सर्वदा आर्द्र) वह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिनव रसपूर्ण रहता है। सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमात्र भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है।

सबका एक आश्रय।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि — " संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रही है। वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और द्युलोक के स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इस लिये मैं द्युलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूं। " अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूप में प्रकट होगई है ऐसा जानकर, जगत्को देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूं।

स्थूल सूक्ष्म और कारण।

इस मंत्रमें "विश्व" शब्द स्थूल जगत्का बोधक है। इस स्थूल का आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है। प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तीसरे अतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है। यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मात्र आधार है और इसीका जीवन अमृत सबमें एक रस होकर व्याप रहा है। इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा संपूर्ण पदार्थ रूपी छोटे बडे स्रोत उसी एक अद्वितीय जीवन-महासागर से चल रहे हैं। इनमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह बताना इस सूक्तका उद्देश्य है। अनेकों में एकही जीवन भरा है इसका अनुभव यहां होता है।

यह सूक्त केवल पढनेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणासे स्थिर करने के अनुष्ठानके लिये ही है। जो पाठक इस की उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे। पाठक यहां देखें कि छोटेसे छोटे सूक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है। निःसंदेह यह उपदेश जीवन पलटा देनेमें समर्थ है। परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवन में ढालने का यत्न करेगा।

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

(१) स्वयंशिक्षक माला।

वेदका स्वयंशिक्षक। १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥)
" " २ द्वितीय भाग ... " १॥)

(२) योगसाधनमाला।

१ संध्योपासना। ... मूल्य १॥)
२ संध्याका अनुष्ठान। ... " ॥)
३ वैदिक प्राण विद्या। ... " १)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र)। ... " १।)
५ योगसाधनकी तैयारी। " १)
६ योगके आसन। (सचित्र) " २)
७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " ॥।)

(३) यजुर्वेद स्वाध्याय।

१ यजु. अ. ३०। नरमेध। मूल्य मूल्य १)
२ यजु. अ. ३२। एकेश्वर उपासना। " ॥)
३ यजु. अ. ३६। शांतिका उपाय। " ॥=)

(४) देवतापरिचय ग्रंथमाला।

१ रुद्र देवता परिचय। .. मूल्य॥)
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता। ... " ॥=)
३. ३३ देवताओंका विचार। " =)
४ देवताविचार। .... " =)
५ अग्निविद्या।... " १॥)

(५) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

१ बालकधर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। " =)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक " =)

(६) उपनिषद् ग्रंथमाला।

१ केन उपनिषद् .... मूल्य १।)
२ ईश उपनिषद् " ॥।=)

(७) आगम-निबंध-माला

१ वैदिकराज्यपद्धति। ... मू. ।-)
२ मानवी आयुष्य। ... " ।)
३ वैदिकसभ्यता ... ... " ॥।)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ... " ॥)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा। " ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या। .... " ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। " ॥)
८ वेदमें चर्खा। .... " ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय। " ॥।)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता " ॥)
११ तर्कसे वेदका अर्थ। .... " ॥)
१२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र। " =)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न। .... " =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने। " ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या। " =)
१६ वैदिक जलविद्या। " =)
१७ आत्मशक्तिका विकास। " ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला " ॥)

(८) ब्राह्मण-बोध-माला।

१ शतपथ बोधामृत। " ।)

(९) अन्य पुस्तक।

१ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग- " १)
२ " " द्वितीय " " १)
३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १)
४ " " द्वितीय " " ॥।)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

(पृष्ठ २१६ से समाप्त)

सकते हैं। इसलिये किसी हिंदुके मनमें अपने पुण्य पुरुषोंका यश सुरक्षित करनेके लिये विदेशी सरकार से कानून घडालेनेकी कल्पनाभी नहीं आयी. और जिस समय यह कानून घडाया जा रहा था उस समय भी कई हिंदु सभ्योंने कहा कि इस प्रकारके कानून द्वारा हिंदु पुण्यपुरुषोंके यशकी रक्षाका प्रबंध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है. हम अपने सभ्य लेखोंसे और अपने सदाचार से अपने पुण्य श्लोकोंके यश की रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

हिंदुओंको इतना आत्मविश्वास था। परंतु मुसलमानोंको यह आत्मविश्वास नहीं था। इस लिये उन्होंने कानून की याचना की और दयामय सरकारने उनके मनोरथ पूर्ण किये! यह कानून अब बन चुका है, तथापि हम इस समय भी समझ रहे हैं कि हरएक पैगंबर के यशकी रक्षा उसके अनुयायियोंके सदाचारसे ही हो सकती है। कानून के अंदर यह सामर्थ्य नहीं है।

तथापि यदि मुसलमीन लोग सचमुच समझते होंगे कि वे अपने सदाचार से और अपने सभ्य व्यवहार से अपने पूजनीय पैगंबरके यश की रक्षा नहीं कर सकते और उस कार्य के लिये विदेशी सरकारके कानून की आवश्यकता है तो उनको वैसा कानून मांगनेका अधिकार था। वह उन्होंने मांगा और उन्हें प्राप्त भी हुआ है इस लिये वे प्रशंसा के भागी निःसंदेह हैं !!!

अपने पैगंबरोंके यश की सुरक्षितताके लिये हिंदु लोग कानून की याचना नहीं करते, कानून बनने के समय भी उनको ऐसे कानून की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जैन बौद्धोंने अथवा ईसाईयोंको भी आजतक ऐसे कानून की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, युरोप में ईसाके अस्तित्वके विषयमें भी शंका करनेवाले लोग हैं और उनकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है, परंतु युरोपके किसी देशमें पैगंबरके यश रक्षाके लिये कोई कानून सभ्य राज्यमें बनाया नहीं गया (जगत् के किसी धर्मानुयायीयों को जैसे कानून की आवश्यकता बिलकूल प्रतीत नहीं हुई वैसे कानून की आवश्यक मुसलमानोंको ही क्यों हुई यह एक बडा विचारणीय प्रश्न इस समय सभ्य समाजके सन्मुख इसी कानून के कारण उपस्थित हुआ है। मुसलमानों के पूजनीय पैगंबर के संपूर्ण जीवन चरित्र का हमें ठीक पता नहीं है इसलिये हम इस विषय में अधिक कुछ लिख नहीं सकते। तथापि मुसलमानों को ही इसका उत्तर देना उचित है।

यह पैगंबर-यश-रक्षा का कानून जिन्होंने प्राप्त किया वे यशस्वी बने, या जिन्होंनें कभी नहीं मांगा था वे यशस्वी हुए, यह भी एक बडा पेंचीदा सवाल है। हमारे विचार में समय ही इसका उत्तर देगा।

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ!! अत्यन्त उपयोगी!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,

२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,

३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,

४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,

५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,

६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,

७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,

८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,

९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,

१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,

११ वैदिक कालकी उदारता,

१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,

१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग मू. १)

द्वितीय भाग मू. ॥)

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED. No 1463

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक ११

क्रमांक ९५

कार्तिक

संवत् १९८४

नोव्हेंबर

सन १९२७

वार्षिक मूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विषय सूची।

वर्ष ८
अंक ११
क्रमांक ९५

कार्तिक
संवत् १९८४
नवंबर
सन १९२७

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

गौको नमन ।

———:o:———

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥

अथर्ववेद १०।१०।१

" हे (अघ्न्ये) हनन के लिये अयोग्य गौ ! जन्मते समय (ते नमः) तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होनेके बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं, तेरे संपूर्ण रूपोंके लिये, यहां तक कि तेरे बाल और खुर भी जो हैं, उन सबको नमन करता हूं।"

किसी भी अवस्थामें गौ वध्य नहीं है, परंतु हरएक अवस्थामें गौ पूजनीय और सत्कार करने योग्य है। गौ किसी भी आयुमें हो और किसी भी रूपमें सन्मुख आजाय वह पूजनीय और सत्कार करने योग्य ही है।

——o——

यजुर्वेदका मुद्रण.

काण्व शाखाके पाठ भेदोंका नमुना पृष्ठ सामने देखिये—

यजुर्वेदका मुद्रण समाप्त हो चुका है और शुक्ल यजुर्वेदकी काण्व शाखा की संहिताके पाठ भेदोंका मुद्रण शुरू हुआ है। ये सब पाठभेद देनेसे पाठकोंके पास दोनों शाखाकी संहिता हो जायगी और जो मंत्रोंके अर्थोका मनन करनेकी इच्छा करते हैं उनको बहुत ही लाभ होगा। यद्यपि काण्व, माध्यंदिन वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेदकी संहिता वास्तविक एक ही संहिता है तथापि काण्व संहिता और माध्यंदिन संहितामें पाठभेद बहुत हैं। अक्षरभेद, शब्दभेद, मंत्रपादभेद, मंत्रपादोंके क्रममें भेद, मंत्रपाठमें भेद, और मंत्रक्रममें भी भेद हैं। जिन लोगोंने ईशोपनिषद के मंत्रपाठके काण्व पाठ और माध्यंदिन पाठ देखे होंगे उनको इस पाठभेदकी कल्पना आ सकती है। काण्व पाठ ईशोपनिषद् में लिया है। और माध्यंदिन पाठ वाजसनेयी संहिताके चालीसवे अध्यायमें देख सकते हैं। जिस प्रकार इनमें पाठभेद हैं उससे भी अधिक पाठभेद पहिले ३९ अध्यायोंमें हैं।

ये पाठभेद अत्यंत सुबोध रीतिसे देनेकी रीति निश्चित करनेमें एक मास व्यतीत हुआ। तीन चार रीतिसे यह लिखकर तथा मुद्रित करकेभी देखा, पश्चात् एक सुगमरीति निश्चित करके उस रीतिसे अब मुद्रण किया जा रहा है। हरएक पृष्ठके बाये भागमें माध्यंदिन वाजसनेयी संहिताके मंत्रांक दिये हैं। ये मंत्र जहां काण्व संहिता में आगये हैं वह बताने वाले काण्व संहिता मंत्रांक दहने पृष्ठभागमें दिये हैं। ये अंक देखनेसे साधारण पाठक कोभी पता लग जायगा कि इस संहिताका कौनसा मंत्र काण्व संहितामें कहां है और काण्व संहिताका कौनसा मंत्र इस माध्यन्दिन संहितामें कहां है। दोनों ओर दिये मंत्रांक देखनेसे एक संहिताके मंत्र दूसरी संहितामें ठीक कहां हैं इसका पता लग सकता है।

जो मंत्र माध्यंदिन वाजसनेयी संहितामें नहीं हैं और केवल काण्व संहितामें हैं उनका काण्वसंहिता का पता दहने पृष्ठभागमें दिया है और बायें स्थानमें (०) ऐसा शून्य लिखा है। इसका भाव यही है कि यह मंत्र माध्यन्दिन वाजसनेयी संहितामें नहीं है।

जो मंत्र कुछ पाठ भेदके साथ आगये हैं उनका निर्देश करने लिये दहिनेके पृष्ठभागमें गोल कौंस ( ) में मंत्रांक दिये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये मंत्र कुछ रूपान्तरसे दोनों संहिताओंमें हैं। जो मंत्र अन्य अध्यायोंमें आगये हैं उनको बतानेके लिये [ ] चतुरस्र के अंदर मंत्रांक लिखा है। इससे पाठक जान सकते हैं कि ये मंत्र अन्यत्र आगये हैं।

मंत्रके अंदर जो पाठभेद है वे पृष्ठके मध्यस्थानमें बताये हैं, शेष मंत्रभाग समान होनेसे दिया नहीं है। इससे पाठक दोनों शाखा संहिताओंकी तुलना अच्छी प्रकार कर सकते हैं और जान सकते हैं कि कौनसा मंत्र कहां है और किस रूपमें है।

वाजसनेयी संहितामें अध्याय और मंत्र हैं, तथा काण्व संहितामें अध्याय, अनुवाक और मंत्र हैं। इसको दर्शाने के लिये पृष्ठके मध्यमें अनुवाकोंके अंक दिये हैं। तात्पर्य इस रीतिसे हरएक मनुष्य जान सकेगा कि कौनसा मंत्र ठीक किस स्थानपर किस रूपमें है। यह सुगम रीति निश्चित करनेके लिये करीब एक मास व्यतीत हुआ और इस कारण गतमासमें कुछ मुद्रण नहीं हो सका। पाठकों के पत्र प्रतिदिन आ रहे हैं और मुद्रण के विलंब का कारण वे पूछ रहे हैं। मुद्रण में विलंब का कारण यह है। अब पाठक हो विचार करें कि यह विलंब सकारण है या निष्कारण हुआ है। अच्छा कार्य बननेके लिये

(५) अनुवाकांकाः ।

वा०सं०मंत्राङ्काः		काण्व०मंत्राङ्काः
११	व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत ॥ अग्नि०	०यज्ञियः ॥ १ ॥
,,	दैवीं० ०सुमृळीकामभिष्टये॥ वर्चोदाँ विश्वधायस॰ सु०	स्वाहा॥ २-३ ॥
१२-१४	श्वात्राः०	० पुनस्क्राधि ॥ ४-६ ॥
(१५)	पुनर्मनः पुनरायुर्म ऽआगात् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात्॥ पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगाद्वैश्वा० ०ग्निर्मा पातु दुरितादवद्यात्	॥ ७ ॥
१६	त्वमग्ने०	०वस्वदात् ॥ ८-९ ॥

(६)

१७–१८	एषा ते०।१। ०तनुयन्त्रमशीय स्वाहा।चन्द्रमसि शुक्रमस्यमृ० ०मसि	॥१-२॥
१९–२०	चिदसि० ०सुप्रतीची भव ॥३॥ मित्रस्त्वा० ०क्षाय॥ ०सयूथ्यः	॥३-४॥
,,	सा देवि०	०पुनरेहि ॥ ५ ॥

(७)

२१-२२	वस्व्यस्य०॥१॥ अदि००इळायास्पदमसि०॥२॥ ०त्वे रायो अस्मे राय	॥१-३॥
२२-२३	मावय॰०	०वीरान्विदेय तव देवि सन्दृशि ॥ ४ ॥

(८)

२४	एष ते० ०छन्दोमानाना॰ साम्राज्यं गच्छतादिति मे सोमाय ब्रूतात्	॥ १ ॥
२४-२५	आस्माको० न्वन्तु ॥२॥ अभि त्यं० कृपास्वः ॥३॥ प्रजाभ्य००प्राणिहि	॥२-४॥

(९)

२६	चन्द्रं त्वा चन्द्रेण क्रीणामि शुक्र॰ शुक्रेणामृ० ॥१॥ ०पुषेयम्	॥ १-२ ॥
२७–२९	मित्रो० ॥३॥ स्वा० कृशानो । एते० दभन् ॥४॥ परि० ०वसु	॥३–६॥

(१०)

३०-३२	अदित्या०।अस्तभ्नाद्यामृषभो०॥१॥०मद्रौ ॥२॥०कनीनकाम्। य० श्रिता	॥१-३॥
३३–३७	उस्रा एतं धूर्वाहौ यु० ॥ ४ ॥ ०सदनीमासीद ॥ ७ ॥ ०दुर्यान्	॥ ४-८ ॥

[दशानुवाकेष्वेकोनपञ्चाशत्॥४९॥] इति चतुर्थोऽध्यायः॥ [२३५]

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

(१)

१-४	अग्नेस्तनू० ०तसा ऽ अरेपसौ० नः ॥ ३ ॥ अग्ना अग्नि० ०स्वाहा	॥ १-४ ॥

विलंब अवश्य लगता ही है। जो कार्य बननेके लिये विचार करनेकी आवश्यकता लगती है उसको अवश्य ही देरी लगती है और शीघ्रता करनेसे उतना ठीक कार्य नहीं होगा। स्वाध्याय मंडलमें जो वेदोंका मुद्रण हो रहा है वह विशेष अन्वेषणापूर्वक होनेके कारण वह मुद्रण अतिशीघ्र होना असंभव है। जो पाठक शीघ्रता न करनेके लिये हमें दोष दे रहे हैं उस देरीके दोष का हम आनंद से स्वीकार करते हैं।

अथर्ववेद सुबोध भाष्य।

अथर्ववेद सुबोध भाष्यका प्रथम काण्ड इस अंकमें समाप्त हुआ है। अगले अंक से दूसरे काण्ड का प्रारंभ होगा। पाठक इस सुबोध भाष्य को बहुत पसंद करते हैं और चाहते हैं कि इसका भी मुद्रण शीघ्र किया जाय। इस विषयमें हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह वेदका विषय है और यह उपन्यासों के समान अतिशीघ्र लिखा नहीं जा सकता। एक एक मंत्र का अर्थनिश्चय करनेके लिये बहुत अन्वेषण और बहुत विचार करना होता है इसलिये कई घण्टे व्यतीत होनेपर भी बहुत थोडा लेख तैयार होता है। इसलिये इस में भी शीघ्रता करना प्रायः असंभव है।

तथापि हमने इस माससे आठ पृष्ठ अधिक देनेका निश्चय किया है। इस समय तक वैदिक धर्म मासिक के चालीस पृष्ठ दिये जाते थे, इससे आगे आठतालीस पृष्ठ दिये जांयगे। परंतु पाठक इस बात का विचार करें कि यह व्यय की बात है और यदि इस व्यय को भुगताने योग्य ग्राहक संख्या न बढी तो यह पृष्ठ-संख्या बढानेका निश्चय हमेशा के लिये चलाना हमारे लिये असंभव हो जायगा। इसलिये पाठक इस अधिक व्ययको भुगताने के लिये आवश्यक साहायता होनेके लिये ग्राहक संख्या बढानेमें सहायता दें। ग्राहक संख्या बढनेके विना यह हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती।

जिस प्रकार यह अथर्व वेद सुबोध भाष्य का प्रथमकांड छपा है उसी प्रकार क्रमशः कांडोंकी छपाई होगी और इसी प्रकार ग्राहकों के पास भेजा जायगा। इसलिये जो पाठक अथर्व वेद का मुद्रण शीघ्र होनेके इच्छुक हैं और अथर्व वेदका मासिक स्वाध्याय कर रहे हैं वे ग्राहक संख्या बढानेमें सहायता दें। ग्राहक संख्या बढनेके विना पृष्ठ संख्या हमेशाकेलिये बढाना कठीण है।

गोमेध।

गोमेध का लेख गत अंकमें प्रकाशित हुआ है और इसीका उत्तरार्ध इस अंकमें प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व गोमांस भक्षण विषयक तीन लेख प्रकाशित हुए हैं। कई पाठक इन लेखों को पुस्तकाकार मुद्रित करनेकी प्रेरणा कर रहे हैं। हम भी जानते हैं कि यह विषय सामयिक महत्त्वका हुआ है इसलिये इसका विशेष अभ्यास करने की इच्छा कई पाठक कर रहे हैं। यह देख कर हमने भी निश्चय किया है कि पुस्तकाकार इसका मुद्रण शीघ्र किया जाय।

गोमेध का शास्त्रार्थ।

सातारा के एक विद्वान गोमांस भक्षण के विषयमें शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हुए हैं। हमने उनका आह्वान स्वीकार किया है। उनका कहना है कि प्राचीन कालके ऋषि गोमांस खाते थे और वेद मंत्रोंसे यह बात सिद्ध हो सकती है। हमने उनका आह्वान स्वीकृत किया है और उनसे प्रार्थना की है कि वे अपना पक्ष लेखद्वारा सिद्ध करें। यदि उनका लेख आगया तो वह हमारे उत्तर के साथ आगामी अंकमें प्रकाशित किया जायगा। अन्यथा जो बात बन जायगी सूचित की जायगी। और भी जो सज्जन इस विषयमें शंकासमाधान करना चाहते हैं उनका भी हम स्वागत करेंगे। परंतु जो अपना पक्ष प्रकाशित करना चाहते हैं वे लेखबद्ध प्रकाशित करें। और लेख सुपाठ्य हो।

" संपादक "

हिंदु-मुस्लिम-समस्या!

इस भारतवर्ष में हिंदु, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहुदी आदि अनेक धर्मों और धर्मपंथोंको माननेवाले लोग रहते हैं; हिंदुधर्मके अंदर जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत आदि अनेक पंथ वास्तविक हिंदुधर्मके अंदरके ही पंथ हैं. इनके मूल प्रवर्तकोंने ये पंथ सनातन धर्मकी शुद्धता करनेके लिये ही चलाये थे, परंतु वे अब अपने आपको अलग मान कर और स्वतंत्र होकर अपने छोटे छोटे फिरके बनाकर बृहत्समाज की शक्ति कम करनेमें भूषण मानने लगे हैं !!!

अटूट संबंध।

एक देशके रहने वाले सब देशभाई होते हैं,देश-बंधु जितने भी हों वे सबके सब भाईपनके नातेसे एक दूसरेके साथ बंधे हैं। यह भाईपन का बंधन परमेश्वरनिर्मित होने से अटूट है। देशभाईयोंने आपसमें कितने भी झगडे खडे किये तथापि उनमें पूरा विभक्तपन हमेशाके लिये स्थिररूपसे रहही नहीं सकता। क्यों कि उनके मिलजुलकर रहनेसे जितना उनको लाभ प्राप्त हो सकता है, उतना उनके विभक्त रहनेसे नहीं हो सकता। इसलिये जो लोग पहिले नेसमझीसे झगडे खडे करते हैं, वेही झगडों से नुकसान होनेका अनुभव आनेके पश्चात् अवश्यही मित्रता करने लगते हैं। क्यों कि एक देशवासियोंके अंदर परस्पर मित्रता रहना परमेश्वरीय नियम है। यदि लोगोंने न माना तो परमेश्वर का नियम उनको अवश्य ही ठीक कर देगा।

हिंदुस्थानमें हिंदु, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहुदी आदि जितने भी धर्म वाले लोग हैं वे इस समय तक एक दिलसे कार्य करते आये हैं। यदि वारंवार किसीका झगडा होता है तो मुसलमानोंका ही अन्योंके साथ होता है। हिंदु-ईसाई, ईसाई-हिंदु, हिंदु-पारसी, पारसी-हिंदु, हिंदु-यहुदी, यहुदी-हिंदु ऐसे झगडे कभी नहीं हुए। आजतक किसीने भी ऐसे झगडे होनेकी बात सुनी नहीं है। परंतु मुसल-मान×पारसी, मुसलमान×हिंदु, मुसलमान×ईसाई या यहुदी इस प्रकारके झगडे अनेक वार सुनाई देते हैं। यदि इसका सर्व सामान्य कारण देखा जाय तो पता लग जायगा कि मुसलमानोंका मुसलमाने-तर जनतासे झगडा होता है। मुसलमान भाईयोंके साथ अन्योंकी क्यों बनती नहीं है इसका विचार करना यह एक आजकलके सामयिक महत्त्वका विषय हो रहा है. यदि इसके कारण का पता लगा तो यह समस्या अतिशीघ्र हल हो जायगी।

हिंदु कहते हैं कि दोष मुसलमानोंका है और मुसलमान कहते हैं कि दोष हिंदुओंका है। झगडे के समय ऐसा कहा ही जाता है। जगत में कौन ऐसा धर्म पुरुष है कि जो अपना दोष जाहिर कर दे। तथापि जो लोग निःपक्षपातसे देखेंगे उनको दोष कहां है इस का ठीक पता लग सकता है। हम इस लेखमें सच्चा दोष कहां है इसका प्रकाश करना चाहते हैं, पाठक भी इस का विचार करें और जहां जो दोष हो वह वहांसे दूर करनेका यत्न करें।

वीर जाती।

कईलोग इस समय तक समझते हैं कि मुसलमान जाती संघटश्रीसे बडी वीर जाती है और हिंदु वैसी वीरजाती नहीं है. परंतु यह अनुमान कई प्रसंगोंका विचार करनेसे अशुद्ध सिद्ध हुआ, इसके कारण ये हैं—

१ जो वीर पुरुष होते हैं वे कभी वृद्ध, बीमार, असहाय, अशक्त पुरुषों तथा स्त्रियों, वृद्ध स्त्रियों अथवा बालकोंपर हमला नहीं करते। वीर पुरुष कभी असावधान शत्रुपर हमला नहीं करते। बीमारों पर, वृद्ध स्त्रियोंपर हमला करना भीरुता का कार्य है। श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज वृद्ध और बीमार थे और अपने कमरेमें भी मुश्किलसे घूम सकते थे। ऐसे वृद्ध और बिस्तरेपर सोये बीमार के छातीमें बिलकुल असहाय स्थितिमें गोलियां चलाना वीरताका कार्य नहीं कहा जा सकता।

२ तथापि कई लोग इस वधकर्ता को धर्म वीर माननेको तैयार थे। इतने में इनके मौलवियोंके द्वारा धर्म ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् वधकर्ता "पागल" का रूप लेता है और धर्मवीर बननेसे इनकार करता है, यह आश्चर्य हमने देखा !!

३ सोलापुरके दंगेमें इसी प्रकार एक अति-वृद्ध स्त्रीका मुसलमानोंकी लाठीयोंसे वध हुआ। यह वृत्तांत वृत्तपत्रोंमें प्रकाशित हुआ है।

४ बंगाल और पंजाबमें तथा नागपुर आदि स्थानोंमें कई मुसलमान हिंदु संन्यासियोंके वेशमें हिंदुओंके पास आने और हिंदुओंपर अचानक हमला करनेके वृत्तांत अखबारों में प्रकाशित हुए हैं।

५ अब तो रात्रीके समय आनेजाने वाले हिंदुओं पर अंधेरे स्थानोंमें छिपकर मुसलमानोंद्वारा हमले होने के वृांत्तत आगये हैं।

ये वृत्तांत इस समय अनेक हैं। कई तो रेलमें सोने की अवस्थामें मारे गये, कई अन्योंका वध अन्य प्रकार से असहाय और असावधान अवस्थामें हुआ है। इतने दंगे होगये उनमें एक भी ऐसा कृत्य मुसलमानोंका हमने नहीं सुना कि जो वीर पुरुषोंके योग्य माना जाने योग्य हो। जो दंगेके हाल प्रकाशित हो गये हैं वे सब सूक्ष्मदृष्टीसे देखे जांय तो पता लग जायगा कि इन की वीरता कम हो रही है औरी भीरुतापूर्ण क्रूरता इनमें अधिक बढ रही है। जो मौलवी स्थान स्थानमें मुसलमानों को उकसाते हैं और फिसाद करनेमें प्रवृत्त करते हैं, उनको उचित है कि वे अपनी जातीमें वीरता बढ रही है या घट रही है इसका विचार करें। हमें तो इस बात का डर है कि एक समय जो मुसलमान जाती वीर जाती करके मानी जाती थी, वही आज वीर पुरुषके सर्वथा अयोग्य क्रूरतापूर्ण भीरुहमले करनेमें अपने आपको कृतकृत्य मानने लगी है !! मुसलमानों को इस विषयमें आत्मपरीक्षा करना आवश्यक है और शीघ्र ही सुधार की दिशासे प्रयत्न भी करना चाहिये। अन्यथा यह भीरुता बढती ही जायगी।

अधर्म का पथ।

मुसलमानी धर्मके प्रवर्तक आचार्यने कहा है कि किसी विधर्मीको जबरदस्ती करके शक्तिके जोरसे अपने महजबमें लाने का यत्न न करो, परंतु जबसे भारत वर्षमें मुसलमीन भाई आगये हैं तबसे जबरदस्ती से धर्मान्तर ही उन्होंने किया है। दूसरों के धर्म मतों के विषयमें सहनशील रहनेका उपदेश इनके धर्माचार्य ने किया है परंतु ये दूसरों के धर्ममतों के विषयमें परम असहिष्णु रहते हैं। ये स्वयं उनके धर्मानुसार मूर्ति पूजाके विरोधी हैं, परंतु स्वयं ताबूद करके मूर्तिपूजक बने हैं। ऐसी कई बातें हैं कि जो ये स्वयं अपने ही धर्म सिद्धांतोंके बिलकुल विरुद्ध करते हैं। इस प्रकार अधर्म पथपर स्वयं चलते हुए धर्मके नामपर ये वारंवार झगडे कर रहे हैं, इसका विचार इनको करना उचित है।

संगठन का बल।

हिंदु लोग संगठन का महत्व जानते नहीं, परंतु मुसलमान भाई संगठन के महत्त्वको भली प्रकार जानते हैं, इस लिये इन्होंने कई वर्ष पहिलेसे अपने धर्मियोंका संगठन अच्छी प्रकार चलाया है। अपनी धर्मसभाएं स्थान स्थानपर स्थापित करके ऐसा अपना संगठन दृढ किया है कि इनका छोटे और बडे मुसलमान भाईयोंका अब पूर्ण रीतिसे एक मत हो गया है। अर्थात् इनमें अब मतभेद नहीं है। एकता का पूरा बल इनमें हो गया है। उत्तर भारत में ही इनका संगठन इस समयतक था, परंतु अब इनके कार्यकर्ता दक्षिण भारत में आकर स्थान

जमा करके बैठे हैं। इस लिये जहां पहिले कभी झगडे नहीं थे वहां अब शुरू होगये हैं। कऱ्हाड, तळेगांव, अक्कलकोट, मिरज आदि स्थानोंमें इनका पूरा प्रबंध हो चुका है।

जो सोलह वर्षके ऊपर की ऊम्र के मुसलमान हैं वे लाठी चलानेकी शिक्षा बाकायदा ले रहे हैं और इसके लिये इनका खास प्रबंधभी है। हमने स्वयं अपने धर्म प्रचारके दौरे में कई स्थानोंपर देखा कि रात्रीके समय मस्जिद के अंदर किटसन का प्रदीप लगाकर लाठी चलानेकी शिक्षा मुसलमान युवक ले रहे हैं। मस्जिद का उपयोग लाठी, पत्थर आदि युद्धके सामान इकट्ठे करने के लिये होता है यह बातें तो अखबारोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उसके आगेकी तैयारी भी हमने यह देखी की मस्जिदके हाते को लाठीका आखाडा अब इन्होंने बनाया गया है।

महाराष्ट्रमें मुसलमानोंकी ऐसी तैयारियां चल रही हैं। मुसलमानोंके अखबार और उपदेशक मौलवी तो खुलं खुला गुंडोंको उकसा रहे हैं। जिसका परिणाम कई स्थानोंमें मूर्तियां टूटनेमें हुआ। भोपाल राज्य और निजाम रियासत तो मुसलमानोंको धन की सहायता देती है और इस धनके बलसे भारतवर्षमें मुसलमानी धर्म प्रचार तथा इन झगडोंके षड्यंत्र चलाये जा रहे हैं। भोपाल रियासतमें तो प्रति सप्ताह साठ हिंदु मुसलमानी धर्ममें प्रविष्ट होने ही चाहिये ऐसा प्रबंध है और यदि न हुए तो प्रश्न पूछा जाता है कि इस सप्ताहमें कम क्यों हुए। कई अन्य बातें भी हैं जिनका उल्लेख यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है, "काफिरका मुख सवेरके समय न देखने के नियम" भी कई लोगोंने वहां किये हैं! ये सब बातें मुसलमीन खुलं खुला कर रहे हैं और साथ ही साथ महाराष्ट्रमें हम देख रहे हैं कि प्रतिवर्ष पठाणोंकी संख्या बढ रही है। जिन गांवोंमें दस वर्षके पूर्व एक भी पठाण नहीं था, वहां छोटेसे छोटे ग्राममें पांचचार पठाण अवश्य ही रहते हैं और प्रति वर्ष इनकी संख्या बढायी जाती है। व्यक्तिशः ये लोग गांव के लोगों और स्त्रियोंपर अत्याचार तो करते ही हैं, परंतु संघशः भी ये अत्याचार में संमिलित होते हैं। यदि किसी एक ग्राममें दंगा करना हो तो उस दिन आस पासके चारों ओर के ग्रामोंके पठाण उस ग्राममें इकट्ठे होते हैं और दंगेके दिन अपने मुसलमीन भाईयों को सहायता भी करते रहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि महाराष्ट्रके हरएक ग्राममें या चार पांच ग्रामों में मिलकर पठाणोंके अड्डे स्थिर करनेमें इनका कुछ गहरा हेतु है। हमें पता नहीं कि गुजरात, युक्त प्रांत आदि में भी ऐसे ही पठाण आकर रहते हैं वा नहीं। मुंबई और कलकत्ते में तो इनके कष्ट बहुत ही हैं। प्रतिवर्ष इनकी बढती संख्या देखकर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस देशके ग्रामों में पठानोंकी संख्या प्रति वर्ष बढानेमें इनका कुछ हेतु अवश्य ही होगा। भारतीय मुसलमानोंसे इनकी मित्रता प्रसिद्ध है। थोडी देर पूर्व जो हिंदु मुसलमानों का दंगा सोलापुर में हुआ था, उसमें सहायता देने के लिये आस पास के ग्रामों में रहने वाले पठाण वहां पहुंच रहे थे, तथा नागपुर के दंगेके समय भी उनकी इसी प्रकार हलचल हो रही थी।

भूपाल और हैदराबाद रियासत का धन, अफगाणि स्थानके पठाण, और भारतीय मुल्लामौलानाओं की चेतावनी मुसलमानोंको मिल रही है और इस बारूद के ऊपर बैठकर अपने हिंदु भाईयोंसे मारपीट करनेके लिये ये तैयार होते हैं। ऐसा कई विचारी लोगोंका ख्याल है। तथा दूसरे कई, विचारी भद्र पुरुष कह रहे हैं कि भारतवर्षमें मुसलमान लोग स्वराज्यके अधिक अधिकार अपने लिये चाहते हैं इसलिये अपनी शक्ति बतानेकी इच्छासे ये झगडे खडे कर रहे हैं।

ये सब मत वृत्तपत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं, इन का यहां इसलिये उल्लेख किया है कि पाठकोंका अनुसंधान आगेके लेखके साथ ठीक प्रकार हो सके।

हमारा यह ख्याल है कि इस प्रकार दंगे फिसाद होना यह अस्वाभाविक बात है। अपने देशमें सब लोगोंका एक दिलसे रहना ही स्वाभाविक बात है। परंतु इस देशमें यह बिलकुल स्वाभाविक बात भी

दूर हो रही है और अपने नाश की बात स्वयं करने में इन लोगों की प्रवृत्ति बढ रही है। ऐसा क्यों होता है इसकी चिकित्सा अब करनी चाहिये—

एकता की महत्ता।

हिन्दु-मुस्लिम एकता का अर्थ यह कि हिन्दू मुसलमान तथा अन्य सब मतों के लोगों की एकता। इस एकता का वैसाही महत्त्व है जैसा कि स्वराज्य का। यदि भारतवासी स्वराज्य चाहते हैं, विशेषतः प्रातिनिधिक स्वराज्य की यदि उन्हें अभिलाषा है, तो उन्हें आपसमें झगडना न चाहिए। हिन्दू, मुसलमान, पार्सी, यहूदी, ईसाई, जैन, बौद्ध, तथा अन्य धर्मावलम्बी लोग हिन्दी राष्ट्र-पुरुष के अंग, उपांग हैं। जब तक राष्ट्र के भिन्न भिन्न अंग आपस में लडेंगे तब तक उन्हे स्वराज्य नहीं मिल सकता। इसीसे भारतवासियों के सन्मुख केवल दो मार्ग हैं: (१) पहला मार्ग यह है कि आपसकी फुट छोड कर वे एकता करें और स्वराज्य प्राप्त कर अन्य देशवासियों की तरह उन्नत हो जावें। या (२) दूसरा मार्ग यह कि आपस में लडाई, झगडा करते रहें और किसी तीसरे के आधीन अर्थात् पारतन्त्र्य में रहें। भारतवासी इन में से कौन मार्ग से चलना चाहते हैं सो हिन्दु मुसलमानों के झगडों के तस्फिया पर निर्भर है।

आगन्तुक झगडे।

हिन्दु और मुसलमानों के बीच होने वाले झगडे स्वाभाविक नहीं कृत्रिम हैं। यदि ये लोग स्वभावही से झगडालू होते, तो ऐसे झगडे सदाही होते रहते। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है।

अफगाणिस्थान जैसे कट्टर मुसलमानों के देश में आज भी यदि हम जावें तो वहाँ भी हिन्दु मुसलमान लडते हुए नजर नहीं आवेंगे। प्रत्यक्ष काबुल में देखा जाता है कि हिन्दु मुसलमान एकही गांव में रहते हुए आपसमें लडते नहीं। अफगाणिस्थान में हिन्दुओंकी संख्या कम है और मुसलमानों की अधिक किन्तु वहाँ झगडे नहीं होते। आफगाणिस्थान में ऐसी कई बस्तियां हैं जहाँ हिन्दुओं के दो एक मकान होंगे बाकी सब मुसलमान हैं। यहाँ भी कभी झगडे नहीं होते। आज से करीब चालीस वर्ष पहले भारतवर्ष में आज जैसे हिन्दू मुसलमानों के झगडे न होते थे। किसी स्थान विशेष की कोई बात अप्रसन्नता उत्पन्न करती तो वह जरा देर में शांत हो जाती। दोनो समाजों में आज जैसी खलबली न मची थी।

श्रीशिवाजी से पेशवों के समयतक मराठों के नौकर मुसलमान रहते थे तथा मुगल बादशहाओंके तथा सरदारों के नौकर हिन्दू रहते थे। पचीस वर्ष पहले बम्बई में चुनाव के समय लोग इस बात की फिकर न करते थे कि कौन्सिल में जाने वाला मनुष्य हिन्दू है, पारसी है वा मुसलमान। किसी के स्वप्नमें भी नहीं आताथा कि भूतपूर्व बद्रुद्दिन तैयबजी, दे. भ. दादाभाई नौरोजी, सर फेरोज शाह मेहता, न्या. मू. रानडे वा दे. भ. गोखले आदि लोग किस धर्म के हैं। आज भी वे लोग जीवित हैं जो इस प्रकार की एकता का अनुभव कर चुके हैं।

निजाम रियासत में जब तक पिछले निजाम सरकार जीवित थे तब तक हिन्दू मुसलमानों में बिलकुल विरोध न था। इसी लिए निजाम सरकारने एक समय कहा भी था कि "हम प्रजा का पालन समता से करते हैं, इससे हमारी प्रजा में हिन्दू मुसलमानों के झगडे नहीं होते।" परंतु इस समय यह बात नहीं रही है।

कुछ समय पहले तक यह हाल था इसी से सिद्ध है कि हिन्दू मुसलमानों की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है कि आपस में लडकर अपने ही हाथों पैर पर कुल्हाडी पटक लें और अपना नाश कर लें। इसीसे कह सकते हैं कि किसी बाहरी कृत्रिम कारण ही से ये झगडे उठ खडे होते हैं।

बाहरी कारण।

पिछले दोचार वर्षों के झगडों का बारीकी से पृथक्करण करें तो स्पष्टतया विदित होगा कि जब जनता की ओर से स्वराज्य की मांग की हलचल बडे जोरों से होने लगती है तब हिन्दू मुसलमानों के झगडे तीव्र होते हैं। इस समय में भी स्वराज्यकी दूसरी किस्त देनेका समय आगया है इस लिये चारों और झगडे बढ रहे हैं। शायद यह काकतालीय

न्याय हो। यदि इसमें कुछ भी कार्यकारण सम्बन्ध हो, तो स्पष्टतया कहना होगा कि जो लोग चाहते हैं कि भारतवासियों को स्वराज्य न मिले, वे ही झगडों को हुमसाते होंगे। परंतु ऐसा कहने में प्रत्यक्ष प्रमाण अभी तक मिला नहीं है।

सब पक्ष के लोग आपस में समझौता कर स्वराज्य की मांग कायम करनेवाले हैं और इसके लिए सब पक्षों के नेताओं की ऐक्य परिषद होनेवाली है। यह बात जाहिर होते ही खबरें आई कि एकसे एक भयंकर झगडे देशमें हुए। इन झगडों के सदृश भयानक दंगे पिछले पचासवर्षों में नहीं हुए थे। इस प्रकार काकतालीय न्याय चरितार्थ होता है। तब यदि लोग समझ लें कि कोई तीसरा इसमें हस्तक्षेप करता है तो आश्चर्य ही क्या? किन्तु हमारा मत इससे भिन्न है।

यथार्थ बात।

हमारी समझ के अनुसार, ये झगडे बाहरी कारण से होवें वा न होवें, वे किसी भी कारण से होते हों, मुसलमानों की दिमाग में कुछ अस्वाभाविक बिघाड अवश्य हुआ है। वरना छोटी छोटी बातों के लिए ऐसे भयानक दंगे न हुए होते। इसमें संदेह नहीं कि ये लोग किसी के भी चिढाने से आपस में मारपीट कर आत्मघात के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं। अंतःकरण यदि इस प्रकार बिगडा न हो तो आपसमें झगडे होही नहीं सकते।

सारांश यह कि झगडों का यथार्थ कारण बाहर नहीं है; वह बिगडी हुई मनःस्थिति में है। इसी से यह बात निर्विवाद है कि झगडों को मिटाने के लिए अंतःकरणों में सुधार होना आवश्यक है।

हिन्दुओं की सहनशीलता

यह बात शत्रुभी मानेंगे कि हिन्दू लोग स्वभाव ही से शान्त और सहनशील हैं। यह शान्ति और सहनशीलता अब इस हद तक पहुँची है कि लोग उन्हे 'कायर' 'डरपोक' कहने लगे हैं। उनमें यह भी सामर्थ्य नहीं दीखती कि अपने समाजकी पतिव्रताओं की इज्जत की रक्षा करें। तबसे यह तो असम्भव ही है कि वे दूसरोंपर हम्ला करें।

दूसरे हिन्दु धर्म का सिद्धान्त है कि अपने अपने धर्मपर चलने से मोक्ष प्राप्त होता है। हरएक हिन्दु के हृदय में यह सिद्धान्त पूर्णतया जम गया है इसी से ये लोग परधर्म के लोगों से लडने को तैयार नहीं होते और दूसरों को अपने धर्म में लाने की चेष्टा विशेष कर करते हैं।

मुसलमान लोग दूसरों को काफिर समझते हैं और उनकी समझ है कि केवल अपने धर्म से ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। उनके पवित्र कुरान का सार यह नहीं है। किन्तु अभाग्य से वर्तमान मुसलमान ऐसा ही समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो हिन्दुओं के मन्दिर फोडने की आवश्यकता ही उनको प्रतीत न होती।

हिन्दुओं का सहकार का स्वभाव.

आज दिन तक का हिन्दुस्थान के हिन्दुओं का इतिहास देखने से विदित होता है कि हिन्दुओं ने दूसरे धर्म पर कभी भी ऐसा अत्याचार न किया। इतिहास गवाही देता है कि पार्सी, ईसाई आदि अन्य धर्म के लोगों से हिन्दू लोग प्रेम का बर्ताव करते रहे हैं। इतनाही नहीं, बलिक आजतक मुसलमानोंने जितने मन्दिर तोडे उनके हिसाब से हिन्दुओं ने किसीभी प्रकार की क्रूरता उनपर नहीं दिखाई। मुसलमानोंने हिन्दुओंके मंदिर फोडे, उसी तरह मराठों के राजत्व काल में हिन्दू बदला ले सकते थे, परंतु बदला लेना हिन्दुओंका स्वभाव ही नहीं है। इन्ही मराठों की सत्ता जब पराकाष्ठा को पहुँची थी, उस समय भी मसजिदों की उन्होंने रक्षा ही की है। वर्तमान समय गिरी हुई दशाका है। और मुगल सल्तनत का नाम, निशान तक मिट गया है तिस पर भी मुसलमान लोग मन्दिर और मूर्तियाँ तोडना ही आवश्यक समझते हैं। हिन्दू मुसलमानों के स्वभावों का यह अन्तर ध्यान देने योग्य है।

वास्तव में हिन्दुओंने आजतक मुसलमानों से बहुत ही सहयोग किया है। इस सम्बन्ध में दो एक बातें नमूने के बतौर कहना अयोग्य न होगा—

(१) हिन्दू लोग मुसलमानों के पीर बाबा की पूजा करते हैं। अनेकों हिन्दू ताजिये भी बनाते हैं।

(२) मोहरम में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की ही धूमधाम अधिक रहती है। यदि हिन्दू मोहरम में बिलकुल न शामिल हों तो मोहरम की रौनक जाती रहेगी।

(३) हिन्दुओंने अपनी ज्योतिष की पुस्तकों में विद्वान मुसलमानों का उल्लेख बडे आदर की "यवनाचार्य" पदवी से किया है।

इतने मंदिर तथा इतनी मूर्तियाँ टूटने पर भी हिन्दु का सहकारित्व कायम ही है।

खिलाफत के लिए, जो केवल मुसलमानों के हित की हलचल थी, हिन्दुओं ने जो त्याग दिखलाया, उसके बराबरी का उदाहरण इतिहास में दूसरा नहीं है।

इस प्रकार हद दर्जे का सहयोग करने पर भी मुसलमानोंने मूर्ति तोडना न छोडा। वरन् गुलबर्गा, देहली, कोहाट आदि स्थानोंमें उन्हों ने बेरहमी से काम लिया। यह सब हाल अखबारों में छप चुका है। अब उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं।

मुसलमानों का असहयोग।

जैसे हिन्दू पीरबाबा की पूजा करते हैं या मोहरम में नाचते हैं, वैसे मुसलमान हिंदूके किसी भी धार्मिक जलसे में शामिल नहीं होते। इन बातोंमें उनका असहयोग जगत् प्रसिद्ध है। उनके स्वभाव की यह असहिष्णुता परम विलक्षण है।

हमें बिलकुल पसंद नहीं है कि हिन्दू लोग मोहरम में नाचें और पीर की पूजा करें। ये बातें सनातन वैदिक धर्म के विरुद्ध हैं। तिसपर भी हम इस बात को लिखते हैं। क्यों कि हम इससे यही बतलाना चाहता हैं कि हिन्दुओं में कैसी सहकारिता है और मुसलमानों में असहकारिता। इससे स्पष्टतया यही अनुमान होता है कि मुसलमान अपने धर्म के कट्टर अभिमानी हैं किन्तु हिन्दुओं में अपने धर्म का तीव्र अभिमान नहीं है। आज भी यही दृश्य हम देखते हैं कि मुसलमान जिस प्रकार अपने धर्म के लिए मरने को तैयार हैं वैसे हिन्दू नहीं होते। यह भी उतना ही सत्य है कि मुसलमानों के समान तीव्र असहयोग करनेका हिन्दूओं का स्वभाव ही नहीं है। हिन्दूओं के इस गुण की कद्र मुसलमानों ने बिलकुल न की।

मुसलमानों में मतभेद के विषय में कैसी तीव्र असहिष्णुता है, इसका एक हाल ही में हुआ उदाहरण देखने योग्य है। कुछ समय पूर्व पंजाब में मिर्जा अहमद कादियानी नाम के एक साधु पुरुष हुए थे। आपने पवित्र कुरान शरीफ पर अच्छी टीका लिखी है और उसकी असम्बद्ध कथाओं का संबंध भी ठीक बतलाया है। वास्तव में देखा जाय तो इन मिर्जा साहब ने मुसलमान समाज पर महत् उपकार किये हैं। पंजाब में आपके मत का प्रचार भी अच्छा हो रहा है। इनके एक उपदेशक काबुल गये। उन्हे कुरान शरीफ के नवीन अर्थ का उपदेश करने के अपराध में गिरफ्तार किया। और उन्हे जमीन में आधा गाड कर पत्थरोंसे मारे जाने की सजा भुगतनी पडी। इस सत्शील मुसलमान उपदेशकके प्राण इस प्रकार लिये गये। इससे ज्ञात होगा कि मुसलमान भिन्न मतवालों के प्रति कैसे तीव्र असहिष्णु हैं!!

इसीसे यह नहीं कहा जा सकता कि यदि वे हिन्दुओं के विरुद्ध हमला करें तो वह उनके मतके विपरीत है।

सहनशील हिन्दु और असहिष्णु मुसलमानों में आज कल झगडे हो रहे हैं। बाहर का थोडा कारण भी मुसलमानों की असहिष्णुता को उत्तेजित करता है। और मंदिरों और मूर्तियों पर वे टूट पडते हैं। फिर हिन्दुओंने उनसे कैसा भी प्रेम का बर्ताव क्यों न किया हो, उन्हे उसकी थोडी भी पर्वाह नहीं होती। महात्माजी को भी इसका अनुभव हुआ। इसीलिए उन्होंने अशक्त रहते हुए भी २१ दिन का उपवास किया।

महात्माजी के उपवास का सच्चा कारण।

किसी को नए सिलसिले से बताने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा गांधीजी संसार के पूजनीय मार्ग दर्शक हैं। ऐसे महापुरुष को २१ दिन का

कठिन उपवास करना क्यों आवश्यक हुआ यह बात उन्हीं के शब्दों में बतलाना आवश्यक है।

"मेरे उपवास का कारण मेरी ही गलती है। एक प्रकार से मैंने हिन्दुओं से विश्वास घात किया है। मैंने हिन्दुओं से कहा, 'आप लोग मुसलमान भाइयोंसे मिल जुल कर बर्ताव करें; उनके पवित्र क्षेत्रों की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन अर्पण करिए।' आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहता हूं कि आप लोग दूसरों को न मारें, खुद ही आत्मसमर्पण कर झगड़े की जड ही नष्ट कर दीजिए। किन्तु देखिए मेरे इस उपदेश का परिणाम क्या हुआ? हिन्दुओं के कितने मन्दिर मुसलमानों ने तोडे! कितनी स्त्रियों का उन्होंने अपमान किया। कल ही मैंने हकीमजी से कहा कि अभीभी हिन्दु स्त्रियों को मुसलमान गुण्डों का डर बना है। मुसलमान गुण्डों ने जो अत्याचार बालकोंपर किया है वह सहना असम्भव है। "अब मैं किस मुंह से हिन्दुओं से कहूं कि आप लोग सब कुछ सह लीजिए।" मैंने हिन्दुओं को विश्वास दिलाया था कि आप मुसलमानों से मोहब्बत करें किन्तु आज मुझ में वह शक्ति कहाँ कि मैं उसे सिद्ध कर दिखाऊं? मेरा कहना मानने को आज कौन तैयार है? मैं अब भी हिन्दुओं को मरने का उपदेश करूंगा। मैं मरकर ही मारने की कुंजी दिखा सकूंगा।" (नवजीवनसे)

यह लेख नवजीवन से ही लिया गया है। मौ० महम्मद अली, शौकत आली, हकीम अजमल खाँ आदि बडे बडे लोग महात्माजी से विनय करने आये थे कि आप उपवास न कीजिए। उस समय उनसे महात्माजीने जो कहा वह अत्यन्त महत्व का है। महात्माजी के उपवास का सच्चा कारण यह था कि मुसलमानों ने उन्हे निराश कर दिया था। उपरोक्त भाषण से यह बात स्पष्टतया विदित हो जाती है। पिछले वर्षों से महात्माजी हिन्दुओंसे कहते रहे हैं कि 'हिन्दू लोग मुसलमानों पर प्रेम करेंगे तो वे भी हिन्दू ओं से प्रेम करेंगे।' किन्तु यह अंदाज गलत सिद्ध हुआ। मुसलमान लोग बिलकुल ही भूल गये कि खिलाफत आदि बातों में हिन्दुओंने किस प्रकार सहायता पहुँचाई। वे हिन्दुओं के मंदिर और स्त्रियोंपर अत्याचार करने में जरा भी न हिचकिचाए। इससे महात्माजीको पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने २१ दिन अनशन व्रत कर बहुत तीव्र प्रायश्चित्त किया। इस बातसे हिन्दुओं को जो कुछ शिक्षा लेनी हो वे ले सकते हैं

झगडे की जड।

मुसलमान हिन्दुओं से पहले न लडते थे किन्तु अब लडते हैं। सो क्यों? इसका यथार्थ कारण यही है कि उनकी विचार-शैली में महत् अंतर हो गया है। कई लोग कहते हैं कि इसमें सरकार काभी अंग है। किन्तु हम नहीं समझते कि यह ठीक है। झगडे की असली जड है सर सैय्यद अहमद खा साहब की शिक्षा। सर सैय्यद अहमदखां अलीगड के मुस्लिम कालेज के संस्थापक एवं प्रसिद्ध मुसलमान नेता थे। आपने सब मुसलमानोंको सचेत कर दिया कि "मुसलमानोंको चाहिए कि वे कभी भी हिन्दुओं से हिलमिल कर न रहें। उनको चाहिए कि वे हरएक राष्ट्रीय हक में अपने लिए अलग हक प्राप्त करें। वे राष्ट्रीय सभा में शामिल न होवें क्यों कि वह हिन्दुओं की सभा है आदि"। अलीगड कालेज के लोग जहाँ कहीं जाते हैं वहाँ हिन्दु मुसलमानोंके झगडे होते हैं। निजाम सरकार की रियासत में जब तक अलीगड वालों की पूछ पाछ न थी तब तक वहाँ हिन्दुमुसलमानों में दगा न होता था। किन्तु पहले के नवाब साहब चले गये। उनके स्थान में नये निजाम साहब तख्तनशीन हुए। इन नये निजाम साहब के राजत्व कालमें रियासतमें अलीगढ के मुसलमान डिग्री-धारियों का बोलबाला बेहद बढा। इसी कारण से गुलबर्गा का दंगा हुआ और कई मंदिर नष्टभ्रष्ट हुए। कहा जाता है कि उस रियासत में हिन्दुओं की दुर्दशा की इससे भी बढी चढी बातें होती हैं।

उपरोक्त सर सैय्यद अहमद खां साहब की सिखावन से ही कई वर्षों तक मुसलमान कांग्रेस से अलग रहे। किन्तु वे जल्द ही जान गये कि यह भारी भूल है और अब फिर कांग्रेस में काम करने लगे। इसके सिवा एक और भेदमूलक कल्पनाहै।-

सम्पूर्ण मुसलमानों का संघ ।

कई मुसलमान नेताओं ने एक विचार को चालन दिया है कि संसार के जितने मुसलमान हैं उन सब का एक अभेद्य संघ बनाया जावे । इसके कारण हिन्दुस्थान के मुसलमान समझते हैं कि बाहर देश के मुसलमानोंसे उनका अधिक निटक सम्बन्ध है और अपने हिन्दू भाईयों से वे अलग रहते हैं। हिन्दुस्थान के मुसलमानोंने बलुचिस्थान, ईरान, तुर्कस्थान, अरबस्थान, ईजिप्त आदि सब मुसलमान देशों का एक संघ अपनी कल्पना में बना लिया है। वे अपने को इस संघ के अंग मानते हैं । वे समझते हैं कि इन देशों में हमारे स्वतन्त्र राजा हैं, इससे हिन्दुस्थान में भी हिदुओं की अपेक्षा इनका 'राजकीय महत्व अधिक है ।' इस प्रकार के विचार इनके हृदयमें संचार करते हैं, इससे वे हिन्दुओं से जिन्हें हिन्दुस्थान के बाहर कोई आधार नहीं है, हिलमिल कर रहने को तैयार नहीं हैं ।

खिलाफत ।

खिलाफत की हलचल का सार यही था ।सम्पूर्ण मुसलमानों का धर्मगुरु कान्स्टेन्टिनोपल का खलीफा है । ईसाइयों के द्वारा वह न उखाड दिया जाय इसी लिये हिन्दी मुसलमान बडी तेज हलचल मचा रहे थे। इस हलचल से हिन्दुओं का जरा भी सम्बन्ध न था । तिसपर भी केवल अपने बंधुत्व के नाते को निबाहने के लिए हिन्दुओंने मुसलमानोंको तन, मन, धन से मदद की । किन्तु अभागे खलीफा के दिनोंने ऐसा पल्टा खाया की नव-जवान मुसलमानोंने ही उसे उखाड दिया ! इस नव-जवान तुर्की संघने इस हलचलके समय भारतीय मुसलमानोंको पूछा तक नहीं । भारतीय मुसलमानोंने इस प्रश्न पर अपना मतप्रकाशित करने के लिए एक बडा लम्बा तार भेजा कि खिलाफत नष्ट न की जावे । किन्तु हिन्दी मुसलमानोंके इस मत की नवीन तुर्कसंघ ने क्या इज्जत की सो सारा संसार जानता है ! देश के बाहर जिनके मत की यह इज्जत होती है, वे बाहर के स्वतन्त्र देशों से अपना सम्बन्ध जोडना चाहते हैं और हिन्दुओंकी सहानुभूति को ठुकराना चाहते हैं । हर एक मनुष्य को विचार करना होगा कि यह बर्ताव कैसा राष्ट्र-हित-विघातक है ।

सब ईसाई राष्ट्र मानते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में धर्म का दबाव न होना चाहिए । इस लिए उन लोगों ने अपने धर्म गुरु पोप महोदय को कठ पुतली के सदृश बना दिया है। यूरप के नवीन-तुर्कों का केमाल पाशा आदिका यही विचार दिखाई देता है। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि खिलाफत राजनैतिक क्षेत्र की आफत है । इसी विचार से उन्होंने खलीफा को निकाल दिया है । नवीन तुर्कों को इस बात में अन्य किसी भी देशके मुसलमानों की सलाह लेना आवश्यक प्रतीत न हुआ । इसीसे स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्र देशके मुसलमान भारतीय मुसलमानों की कैसी कद्र करते हैं । केमाल पाशाके संघद्वारा थोडे दिनोंके पूर्व यह घोषणा प्रकाशित हो चुकी है कि" वे लोग यद्यपि महजबसे मुसलमान हैं तथापि उनका संबंध अन्य मुसलमानों से नहीं रहा है ।वे यूरोपकेसाथ संबंध जोडनेमें अपना भला समझते हैं । " इस घोषणासे भारतीय मुसलमान बहुत बोध ले सकते हैं ।

वर्तमान समय में अन्य मुसलमानी देश नाम मात्र के स्वतन्त्र हैं । आगे चलकर वे पूर्ण स्वतन्त्र भी हो गये, यही नहीं, बल्कि वे संसार के मुख्य देश भी बन गये; तब भी इसमें भारी संदेह है कि उनकी प्रमुखता से भारतीय मुसलमानों की कहां तक भलाई होगी । आधुनिक राजकाज में धर्म का दबाव नहीं है । राजनैतिक क्षेत्रमें धर्म का वही महत्त्व होता जो पहले था, तो जर्मनी और फ्रान्स सदृश दो ईसाई देशोंमें ऐसा घनघोर युद्ध कभी भी न हुआ होता। यूरप के ईसाई देशोंमेंव्यापार की स्पर्धा के कारण द्वेष रूप अग्नि धधक रही है । वह हजरत ईसा मसीह की बाइबिल के उपदेशों से शान्त नहीं होती । यदि भारतवासी मुसलमान यह सोचते हैं कि ऐसी द्वेषाग्नि भिन्न भिन्न मुसलमानी देशों में किसी भी स्पर्धा के कारण न होगी। तो वे भारी भूल कर रहे हैं। यूरप के ईसाई देश जिस प्रकार संसार के राजनैतिक क्षेत्र में हलचल

कर रहे हैं, इसी प्रकार जब मुसलमानी देश को मौका मिलेगा तब उनमें भी इसी प्रकार का झगडा होना अत्यन्त स्वाभाविक बात है। आज हिन्दुस्थान के बाहरवाले मुसलमानी देश जिस शान्ति का अनुभव कर रहे हैं वह राजकाज-हीनता के कारण है। और इसी लिए उनमें स्पर्धा नहीं है। यह कदापि सम्भव नहीं कि वे देश राजकाजक्षम हो जाने पर उनमें वही शान्ति बनी रहे । सारांश यह कि भारतीय मुसलमान परकीय देशों से कैसा भी सम्बन्ध क्यों न करें, उससे उन्हे उस समय कुछ भी लाभ न होगा जब कि वे देश राजकाज करने में समर्थ हो जावेंगे। चीन और जापान दोनों बौद्ध धर्मी देश हैं । वे भी आज लड रहे हैं। सब ईसाई राष्ट्र भी आपस में लड रहे हैं। इन बातों को देखते हुए हम कैसे अनुमान कर सकते हैं कि जब मुसलमानी देश जागृत होकर राजनैतिक क्षेत्र पर उपस्थित हो जावेंगे तब वे आपस में न लडेंगे । राष्ट्रीय स्वार्थ के आगे धर्मबंधुत्व कम जोर हो जाता है । इतिहास यही शिक्षा देता है। भारतीय मुसलमान यदि इस शिक्षापर चलें, तो भारतवर्ष की भलाई तुरन्त होगी। इसी लिए हमारी भारतीय मुसलमानों से विनय है कि वे महम्मदी विश्वबंधुत्व के अवास्तव फल के लिए हिन्दी राष्ट्रीय हित के प्रत्यक्ष फल को न त्यागें।

महत्व का भ्रम।

सर सैय्यद अहमद खां साहब के पूर्वोक्त सब वचन असत्य सिद्ध हुए हैं। नवीन तुर्कोंने सिद्धकर दिया है कि महम्मदीय विश्वबन्धुत्व का विचार गलत है। धर्म की बंधुता राजनैतिक क्षेत्र में कामयाब नहीं होती। भारतीय मुसलमान इन बातों का विचार करेंगे तो उनपर प्रकट हो जावेगा कि उनका भवितव्य भारत-माता के भवितव्य से निगडित है। इसी एक बात को यदि भारतीय मुसलमान समझ लें तो हिन्दू-मुसलमानों की एकता पल भर में हो जावेगी। किन्तु जब तक वे भारतवर्ष के बाहरवाले देशों से निकट सम्बंध करना चाहेंगे तबतक, हिन्दू कितनेही नम्र क्यों न हों, दोनों में एकता होना असम्भव है।

अनन्यगतिक हिन्दू।

हिन्दू मात्र किसी भी बाहर के देश से अपना सम्बन्ध नहीं बता सकता और न वह इस प्रकारका सबन्ध बताना चाहता ही है। यदि मुसलमानों की तरह जबरदस्ती से बाहर के देशों से सम्बन्ध बतलाने की हिन्दुओं को इच्छा हुई तो वे ऐसा सम्बन्ध, बौद्ध धर्म के कारण, जापान, चीन तथा तिब्बत से कर सकते हैं । ये देश स्वतन्त्र हैं और इन देशोंके बौद्ध निवासी भारत—भूमिको "पवित्र भूमि" भी मानते हैं। परन्तु इस बादरायण सम्बन्ध से क्या लाभ हो सकता है ? हिन्दूमात्र जानता है कि इस सम्बन्ध से उसकी राजनैतिक दशा में सुधार होना असम्भव है। तब उचित ही है कि हिन्दू हिन्द-माता को ही अपनी मातृ-भूमि मानते हैं और उसकी सेवा करने के लिए उद्यत हैं।

हिन्ददेश में स्वराज्य प्राप्त करने के लिए देशके सबलोगों में एकता होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी बात पर लक्ष्य कर हिन्दू लोग एकदम हर तरह की नरमी स्वीकारकर अतीव स्वार्थत्याग करने को तत्पर हैं। क्यों कि वे खूब समझते हैं कि बाहर के देशों से सम्बन्ध जोडनेसे कोई भी हित नहीं है।

एकता की नींव।

तब यह सिद्ध हुआ कि एकता की सच्ची और मजबूत जड एक ही है। वह यह कि भारतवासी हिन्दू, मुसलमान, पार्सी, ईसाई, यहूदी और अन्य सब धर्मों के लोग अपने को प्रथम "भारतीय" समझें और तदुपरान्त अपने अपने भिन्न धर्म के अनुयायी मानें। मुसलमानों की भारी भूल यही हो रही है कि वे अपने को प्रथम "मुसलमान" मानते हैं और बाद भारतीय। वर्तमान तथा आगामी युग में "राष्ट्रीयता" ही एकता का साधन है। यदि यह बात वे भूल जावेंगे तो राष्ट्रीय जीवनसंग्राममें वे अक्षम सिद्ध होंगे ।

धर्म का प्रसार।

ये झगडे धर्म के विश्वास के कारण नहीं होते। धर्मके प्रचारसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आज-

कल मुसलमानों के सदृश ही, किं बहुना, उनसे अधिक मान में ईसाई लोग धर्म का प्रचार कर रहे हैं। किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं हुआ कि ईसाइयोंने हिन्दुओं के मन्दिर तोडे वा अन्य कोई अत्याचार किये हों। हिन्दुओंने कभीभी किसी भी धर्म के मंदिर नहीं तोडे। ईसाई, बौद्ध जैन आदि अन्यान्य धर्म के लोग हिन्दुस्थान में हैं। किन्तु उनके रहते उनका हिन्दुओं से कभी झगडा नहीं हुआ। पार्सी लोगों की संख्या अल्प रहते भी उनपर हिन्दू,ईसाई जैन और बौद्ध लोगों ने कभी भी धावा नहीं किया।

मुसलमान लोग अवश्यही हिन्दूपर, हिंदुओं के मन्दिर पर, पारसियों पर और अन्य धर्म के अनुयायियों पर धावा करते रहते हैं। इसका यह कारण ण नहीं कि औरों की अपेक्षा उनकी धर्म-श्रद्धा श्रेष्ठ है किन्तु यह कि उनकी विचारपद्धति ही में भ्रम है। इस भ्रम को हम पहले बता चुके हैं। हर एक व्यक्ति को स्वधर्म का प्रचार करने का हक है। किन्तु यह काम करते समय शिष्टता का अतिक्रम न होने देना चाहिए। ईसाई पादरियों के सदृश यदि मुसलमानों में व्यवस्था (discipline) हो तो धर्म के कारण झगडे कभी भी न होंगे। मुसलमानों की विचार प्रणाली की यह भूल जब तक दुरुस्त न होगी-मिट न जावेगी-तब तक अस्मभव है कि अन्य धर्मावलम्बियों से मुसलमानों की बने।

स्वधर्म में वापिस लेने का अधिकार

वा शुद्धि।

मुसलमानों का कथन है कि हिन्दु शुद्धियां न करें, इससे यह मतलब है कि मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों में गये हुओं को हिन्दू लोग अपने धर्म में वापिस न लें। किन्तु उन्हे इस प्रकार कहने का अधिकार ही नहीं है। अन्य किसी को भी यह कहने का अधिकार नहीं है। यदि हम कहें कि मुसल मान और ईसाई अन्य धर्म के लोगों को भ्रष्ट न करें तो क्या वे मानेंगे ! कदापि नहीं। तब वे किस बुन याद पर हिन्दुओं को शुद्धि के हक से वंचित रखना चाहते हैं? श्रीमत् शंकराचार्य जीने जैन, बौद्ध आदि पन्थों में गये हुए हिन्दओं को शुद्ध कर फिर हिन्दू धर्म में लेलिया और इस प्रकार हिन्दू धर्म का संगठन किया। इतिहास कहता है कि अन्य आचार्योंने भी यही किया। हर एक धर्म को हक है कि पतित एवं भ्रम से दूसरे धर्म में गये हुओं को वापिस ले लेवें। इस हक का उपयोग मौका पडने पर करना वा न करना उस धर्म के लोगों की इच्छा पर अवलम्बित है। किन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इस अधिकार का उपयोग न करो। हिन्दू दूसरे धर्म के लोगों से यह नहीं कहते अन्य धर्म के लोग भी हिन्दु ओं से न कहें। अच्छा यही है कि इस बात में हर एक धर्म स्वतन्त्र रहे।

गौ--हत्या

मुसलमान कहते हैं कि गौहत्या करने का उन्हे हक है। और इस बात में हिन्दू लोग बिलकुल दखल न दें। उचित यही है कि जो बात निश्चित रूप से धर्म की है उस के लिए अन्य धर्मी लोग जिद न करें। इसी लिए-यदि कुरान शरीफ की आज्ञा ही हो कि बकरिद के समय वा धर्म की किसी अन्य बात के समय गौ का वध करना अत्यन्त आवश्यक है तो अच्छी बात यही होगी हिन्दू जिद न करें और मुसलमानों के धर्म-कार्य में प्रतिबन्ध न करें।

किन्तु यथार्थ में देखें तो विदित होगा कि कुरान शरीफ में कहीं भी नहीं लिखा कि बकरिद के समय गौ का बलिदान अवश्य ही होवे। पीछे जब काबुल के अमीर साहब भारत में पधारे थे तब उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुखसे मुसलमानों को जता दिया था कि, " गौ-हत्या कर हिन्दुओं के दिल न दुखाओ। " जब तक वे भारत में रहें, तब तक मुसलमानों ने तेवहार में भी गौ-हत्या न की। दूसरे, अरबस्थान ईरान, इजिप्त, तुर्कस्थान, अफगानिस्थान आदि मुसलमान देशों में भी मुसलमानों के तेवहारों में गौका बलि दान अवश्यमेव होता है यह नहीं। तब इस भारत-भूमिमें जहाँ गाय, बैल अत्यन्त उपयोगी जानवर हैं- हिन्दु और मुसलमान दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं-धर्म की आवश्यक आज्ञा न रहते भी, वे गौहत्या करें और यह कहें कि यह हमारा हक है कैसा भारी आश्चर्य है ?

बाजा !

मस्जिद के सामने बाजा बजाया जावे या नहीं यह प्रश्न आजकल बडा वादग्रस्त हो गया है। जरासी बात भारी महत्त्वकी सिद्ध होना हिन्दुस्थान में ही संभव है, अन्य देशों में नहीं। पाठक याद रखें कि भारतवासियों के सन्मुख कोई बडे भारी महत्त्व की बात न रहने का ही यह फल है। स्वराज मिलजाने से जब राजकाज की जटिल समस्याओं के हल करने में भारतवासियों की बुद्धिभिड जावेगी तब ऐसी क्षुद्र बातों की ओर कोई देखेगा भी नहीं।

जब कि हिन्दुओं के मंदिरों के सामने से मुसलमानों के जुलूस शोर गुल और बाजों के साथ निकलते हैं तो हिन्दुओं के वा अन्य धर्म के लोगों के जुलूस मसजिद के सामने से बाजों के साथ क्यों न निकलें? कुरान शरीफ में एक भी वाक्य नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि 'मसजिद के पास वाले रास्तेपर बाजे न बजाए जाँय।' तब फिर हमारे मुसलमान भाई ऐसी फजूल जिद क्यों करते हैं जो उनकी धर्म-पुस्तक से सिद्ध नहीं हो सकती।

हमारे मुसलमान भाई यदि यह कहते हों कि 'प्रार्थना के समय मन को एकाग्र कर मानस-पूजा वा उपासना करते हैं, इससे बाजा बजाकर हल्ला न करना चाहिए।' तो यह कथन युक्तिसिद्ध होगा। किन्तु जब प्रार्थना का समय नहीं है तब भी मसजिद के पास बाजा कोई भी कभी न बजावे। वे ही सोचे कि क्या यह कथन युक्तिसिद्ध है?

थोडा अधिक विचार करो।

हमारे मुसलमान भाईयों को चाहिए कि वे कुछ अधिक विचार करें। उन्हे यह सोचना अत्यन्त आवश्यक है कि यदि कोई मंदिर तोडा जावे और मूर्तियां भंग कर दी जावें तो उससे हिन्दू के हृदय में कैसी गहरी चोट लगेगी। वे यह भी देखें कि उन्होंने आजतक कितनी मूर्तियां और कितने मंदिर तोडे हैं, किन्तु इसका बदला लेने के लिए क्या हिन्दुओं ने कभी इस प्रकार का अत्याचार किया है। यदि धर्म में 'सत्य' नामकी कोई विशेष महत्वकी बात हो, तो उपरोक्त बात का अंदाज लगाना मुसलमान भाईयों के लिए अतीव आवश्यक है। इससे जो बात सिद्ध होगी उसे स्वीकृत करने के लिए भी उन्हे तैयार रहना चाहिए।

एक ही नाव के यात्री

हिन्दू और मुसलमान एक ही नांव के यात्री हैं। इस नांव में परतन्त्रता रूप छेद पड गया है। दरिद्रता रूप खारा पानी नांव के भीतर आ रहा है। थोडी ही देर में हिंदु, मुसलमान तथा इसी नांव के अन्य यात्री, उचित उपाय न करें तो सब के सब डूब कर काल के गाल में समा जावेंगे। इस समय दोनों को उचित नहीं कि वे क्षुद्र बात का झगडा बढावें। दोनों का पहला कर्तव्य यही है कि परतन्त्रता रूप छेद स्वतन्त्रता से बन्द कर दिया जाय। यह न कर क्षुद्र बात के लिए हट से झगडा करना दोनों की भूल है। इससे सब लोगों को, झगडने तथा एक दूसरेका सिर धुनने के पूर्व, विचार करना चाहिए कि हमारी राजनैतिक, आर्थिक और औद्योगिक स्थिति कैसी है। यदि इन बातों पर वे विचार करें; तो उनका दिल झगडों के लिए कभी भी प्रवृत्त न होगा। इससे जो नेता चाहते हैं कि ये झगडे मिट जाँय, वे इन सब को कोई राजनैतिक काम देवें।

हिंदुओंके दोष

(१) जाति मत्सर

हिन्दुओं का दोष है जाति मत्सर। हिन्दु समाज के इस जातिद्वेष के कारण वह निर्बल हो गया है। ब्राह्मण-अब्राह्मण, अन्त्यजों की अछूत आदि इतनी बहुत बातें हिन्दू समाजमें हैं, कि उनके कारण हिन्दुओं की संघ शक्ति में हानि हो रही है। सब प्रान्तों के हिन्दुओं को खूब समझ लेना आवश्यक है कि यदि उनमें संघशक्ति होती तो इतर जनों के हम्ले उनपर कदापि न हुए होते।

इस समय हिन्दुस्थान के सब मुसलमानों में अभेद्य एकता है। इसी लिए वे लोग अपने निज के हित के लिए कोई भी स्वार्थत्याग करने को तैयार हैं। उन्हे यदि केवल आभास ही हो जाय कि हमारा अपमान हुआ है, तो वे सब एक हो जाते हैं। और

सत्य असत्य का विचार न कर, जिसे प्रतिपक्षी समझते हैं, उसपर एकता से हम्ला करते हैं। इसमें वे अविचार के दोष से दोषी हो सकते हैं, पर उन में एकता का बडा भारी गुण निःसंदेह है।

अब हिन्दुओं की ओर देखिए। यदि ब्राह्मण कहें कि " सब को शिक्षा देनी चाहिए " तो अब्राह्मण कहेंगे " न देनी चाहिए।" और अन्त्यज कोई तिसरी ही बात निकालेंगे। हिन्दुओं का समाज इस प्रकार व्यवस्थाहीन और परस्पर विरोधी है। यदि हिन्दू इस बात में जल्द ही सुधार नहीं करते तो उनके कष्ट चूक नहीं सकते। कुछ भी क्यों न करना पडे किन्तु हिन्दुओं को अंतःसंगठन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि वे जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हे अपनी संघशक्ति बढानी ही होगी। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

सैंकडो स्थानों में मुसलमानोंने हिन्दूपर, मंदिरोंपर तथा मूर्तियों पर हम्ले किये। पिछले कुछ दिनों के दंगों का हाल देखने से पता चलता है कि दो एक स्थानों को छोड अन्य सब स्थानों में हिंदुओंने ही मार खाया है और बहुतेरे स्थानोंमें मंदिरों की हतक इज्जत हुई। हिन्दुओं के अव्यवस्थित शैथिल्य के कारण मुसलमानोंको, जरा भी नरमी से पेश आकर हिंदुओंसे मित्रता करने की अवश्यकता प्रतीत न हुई। सारांश, मालूम होता है हिन्दुओं की आपस की फूट और द्वेष के कारण और कुछ बातों में हिन्दुओं के शारीरिक निर्बलता के कारण मुसल-मानों को हिन्दुओं पर टूट पडना सहज हो गया है, इस पर विचार करने से पाठक गण समझ सकते हैं कि ये झगडे मुसलमानोंके अत्याचारी स्वभाव के कारण नहीं होते किन्तु हिन्दुओं की आपसी फूट और कमजोरी के कारण होते हैं।

इसीलिए यदि हिन्दू मात्र की यही इच्छा है कि ये झगडे रुक जावें, और फिर न होवें, तो उन्हे अपने समाज की अन्तस्थ संघटना उत्तम प्रकार से करनी चाहिए, और अपना शारीरिक बल भी बढाना चाहिए। जब तक यह नहीं होता तब तक हिन्दुओं को दूसरों की दया का आश्रय लेना होगा। और इसके लिए वे दूसरे को दोष नहीं देख सकते।

यदि हिन्दु संगठन कर अपना शारीरिक बल बढावें तो उससे केवल हिन्दुओं का ही लाभ न होगा, मुसलमानों को भी होगा। क्यों कि हिन्दुओं का दृढ संगठन होने पर और उनमें पूर्ण एकता हो जाने पर मुसलमान खुद ही हम्ले न करेंगे। उन्हे मालूम हो जावेगा कि हिन्दु मित्रता के लिए योग्य हैं। सब लोगों को विचार करना चाहिए कि हिंदुओं का दृढ संगठन हो जाने से बडी भारी शान्ति स्थापित हो सकती है।

इस विचार से पाठकोंको पता लगा होगा कि ये झगडे न तो सरकार खडे करती है और नाही मुसलमान झगडे करते हैं, झगडों की संपूर्ण जड हिंदुओं की असंघटनामें और कमजोरीमें है। जब तक हिंदु लोग अपने जातिविशिष्ट छोटेछोटे फिरकों में विभक्त रहेंगे और अपनी संघटना नहीं करेंगे, तब तक किसी भी सूरतसे झगडे कम नहीं होंगे। यह निश्चित बात है। इसलिये कितने भी पोलीस शहरोंमें खडे किये गये तो झगडे कम नहीं होंगे।

इन झगडों में मनुष्योंका हाथ नहीं है, परमात्माकी प्रेरणासे ही ये झगडे हो रहे हैं और बढ रहे हैं। कई शताब्दियोंसे हिंदु जाति सुप्त अवस्थामें पडी है, न तो यह जाती अपनी शक्तिको जानती है और न अपनी शक्तिको बर्त सकती है। इस आर्य जाती को परमेश्वर अब सुप्त अवस्थामें रखना नहीं चाहता। इसलिये इसकी जागृतिके लिये परमेश्वरने ये झगडे भेजदिये हैं। हमारा विश्वास है कि ये झगडे हिंदु जातीको उठाने विना शांत नहीं होंगे। जबतक हिंदु अपना उत्तम संगठन नहीं करेंगे तब तक ये झगडे बराबर होते रहेंगे।

कितनी भी ऐक्य परिषदें बनाइये, वह नाकाम-याब ही सिद्ध होगीं, जब तक हिंदु ओंके आपस के झगडे नहीं मिटते और हिंदु अपना उत्तम संगठन नहीं करते तब तक अन्य संपूर्ण प्रयत्न व्यर्थ ही हैं। यह कारण-पाठक देखें और इस दृष्टिसे सुधार करें। जितना इस दिशासे सुधार होगा उतनी शांति स्थापित होगी, शांतिका यही एकमात्र उपाय है।

(गतांकसे आगे)

संपूर्ण वैदिक वाङ्मयमें गोमेधके केवल दोही सूक्त हैं और वे अथर्व वेदमें है । इन दो सूक्तों में से प्रथम सूक्तका अनुवाद उसके स्पष्टीकरण के साथ इससे पूर्व लेखमें प्रकाशित किया गया है। अब एक ही सूक्त रहता है उसका अनुवाद इस लेखमें देते हैं। जिस प्रकार पूर्व सूक्तमें गोवध, गोमांस-भक्षण अथवा गौके अवयवोंके हवनका कोई संबंध नहीं है, उसी प्रकार पाठक देखेंगे कि गोमेधके इस द्वितीय सूक्तमें भी मांस हवन का कोई संबंध नहीं है। गोमेधके दो सूक्तोंमें यदि कोई बात कही है तो वह यही है कि उत्तम दूध देनेवाली गौ तथा उत्तम बैल सुयोग्य विद्वान ब्राह्मणको दान दी जावे। इस प्रकारके दानसे दाताको स्वर्ग प्राप्त होता है, गौको भी स्वर्ग मिलता है और सबको दुग्धादि पदार्थ विपुल प्राप्त होते हैं।

इन दो सूक्तोंमें एक भी ऐसा वचन नहीं है कि जो गोमेधमें मांस हवन की संभावना सिद्ध कर सके। ऐसे उच्च शिक्षा देनेवाले सूक्तोंपर भी जब मांस पक्षी लोग अपना मांस का पक्ष मढ देनेका साहस करते हैं तब मन आश्चर्य से चकित हो जाता है और मनमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतना अर्थका अनर्थ किस कार्य के लिये किया जा रहा है? ये लोग गोदानवाचक सूक्तोंपर गोवध का अर्थ क्यों मढा देते हैं? ऐसा अनर्थ करनेसे इनको कौनसा लाभ साध्य करना है? दुराग्रह बढानेके सिवा और कुछ भी दूसरा इनके पल्ले पडना नहीं है। शोक है कि विद्वान हो कर भी मंत्रोंका सरल अर्थ न देखकर मनमानी खींचातानी करते हैं। पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्रोंका अर्थ स्वयं खुल जाता है, इस बात की सचाई अब इस द्वितीय सूक्तमें पाठक देखें—

गोमेध का द्वितीय सूक्त।

गौको नमन।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाऽघ्न्ये ते नमः ॥१॥
अथर्व. १०।१०

" हे (अघ्न्ये) हनन करने अयोग्य गौ! जन्मते समय तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होने के बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं, तेरे संपूर्ण अवयवों और रूपों के लिये, यहां तक की जो तेरे बाल और खुर हैं, उन सबको मैं नमन करता हूं।"

गोमेधके इस द्वितीय सूक्तका यह पहिला ही मंत्र है। इस में गौका "अघ्न्या" नाम आया है, इसका अर्थ "अ-वध्य" है। अवध्य गौ है, यह प्रथम मंत्रमें ही उपदेश है। गौ छोटी हो, या बडी हो, वह नमस्कार करने योग्य, सत्कार करने योग्य है यही यहां बताया है। गौका बछडा छोटा हो, अभी जन्मा हो अथवा कई महिनोंका हो, उसका सत्कार ही करना चाहिये। किसी प्रकार भी कठोर-ताका या क्रूरता का व्यवहार छोटी या बडी गौके साथ करना नहीं चाहिये। सब ही अवस्थाओंमें गौ सत्कार करने योग्य है। यह इस प्रथम मंत्रका तात्पर्य है।

प्रथम मंत्रमें गौका अवध्यत्व और सत्कार योग्यत्व कहके पश्चात् द्वितीय मंत्रमें कहते हैं कि गौका दान-लेने का अधिकारी कौन है, देखिये वह द्वितीय मंत्र-

गौदान लेनेका अधिकारी।

विद्या और आचार की योग्यता रखनेवाला ज्ञानी सत्पुरुष ही गौका दान लेवे, इस विषयमें इस द्वितीय मंत्र की शिक्षा विचार करने योग्य है—

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रतिगृह्णीयात् ।२

" (यः सप्त प्रवतः विद्यात्) जो सात प्रवाह जानता है और जो (सप्त परावतः विद्यात्) सात अंतरोंको जानता है तथा जो यज्ञका सिर जानता है वही ज्ञानी (वशां प्रतिगृह्णीयात्) गौका दान लेवे । " अर्थात् जो यह ज्ञान नहीं रखता वह गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है ।

बृहदारण्यक उपनिषद् (अ. ३।१) में कथा है कि राजा जनकने सुवर्णभूषित करके हजार गौओं का दान करना आरंभ किया । ब्राह्मण समुदाय इकट्ठा होनेके बाद उसने कहा जो ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण हो वह इन गौओं का दान लेवे—

ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स
एता गा उदजतामिति । बृ० ३।१।२

" हे ब्राह्मणों ! आपके अंदर जो ब्रह्मनिष्ठ हो वह ये सब गौवें ले जावे । " वहां जमा हुए ब्राह्मणोंमें से कोई आगे नहीं हुए । इतनेमें याज्ञवल्क्य महामुनि उठे और उन्होंने अपने शिष्यको गौवें लेनेकी आज्ञा की । इत्यादि कथा बृहदारण्यक उपनिषदमें है । यह कथा इस प्रसंगमें देखने योग्य है । इस कथासे भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्ञानी विद्वान ही गौका दान लेनेका अधिकारी है । साधारण मनुष्य गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है । इस मंत्रमें ब्रह्मनिष्ठके तीन ज्ञानोंका वर्णन किया है, उनका स्वरूप अब बताना चाहिये-

१ सात प्रवाहोंका ज्ञान
२ सात अंतरोंका ज्ञान
३ यज्ञके सिर का ज्ञान

ये तीन ज्ञान जो यथावत् जानता है वह गौका दान लेनेका अधिकारी है । आत्मासे सात प्रवाह चलते हैं जो सप्त इंद्रियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं- १ बुद्धि, २ मन, ३ जिह्वा वाणी, ४ नेत्र, ५ कर्ण, ६ नासिका, ७ चर्म ये सात नदियां आत्माके अमृतपूर्ण स्रोतसे चल रही हैं । इनके सात क्षेत्र हैं जिनमें जाकर ये अपने आपको कृतकार्य होती हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषयोंके क्षेत्रोंमें पांच नदियां जाती हैं और ज्ञान, मनन, अहंकारादि क्षेत्रोंमें शेष दो नदियां जाती हैं । इस प्रकार जागृतीमें आत्मा की
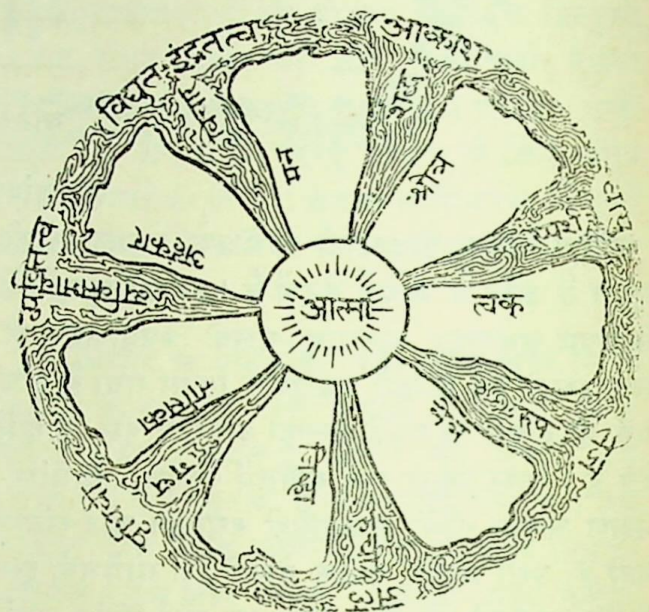
शक्ति लेकर ये नदियां अथवा इनके प्रवाह बाहर की दिशासे चलते हैं । सुषुप्तिमें येही प्रवाह उलटी दिशासे अंतर्मुख होकर चलने लगते हैं, जब सब प्रवाह उलटे अंदरमें जाकर लीन होते हैं तभी गाढ निद्रा लगती है । इस प्रकार जाग्रतीमें ये सात प्रवाह आत्मासे बाहर बहिर्मुख होकर चलते हैं और सुषुप्तिमें सब प्रवाह अंतर्मुख होकर चलते हैं, यह सात प्रवाहों का ठीक ठीक ज्ञान जिसको हुआ है और सातों प्रवाहोंपर जिसने अपना प्रभुत्व जमाया है अर्थात् सातों प्रवाहोंको अपनी इच्छासे अंतर्मुख या बहिर्मुख जो कर सकता है, वह सात प्रवाहोंको ठीक प्रकार जान सकता है ।

आत्मासे लेकर विषयक्षेत्र तक जो अंतर है उस का नाम है " परावत् " । आत्मामें अंतर का अभाव होता है, परंतु जिस समय जाग्रतिमें ये प्रवाह बहिर्मुख होकर कार्य क्षेत्रमें जाते हैं उस समय इनको अंतर काटना पडता है । आत्मासे दर्शन शक्ति चलती है और रूपके क्षेत्रमें जाकर अपना कार्य करती है । आत्मा और रूपका क्षेत्र इनमें जो अंतर है उसका नाम " परावत् " है । ये सात अंतर हैं । प्रत्येक नदीकी लंबाई इस अंतर से कही जाती है । जो इस अंतर को ठीक प्रकार जानता है,

अर्थात् आत्मासे उक्त शक्तिरूपी नदियां कैसी चलती हैं और वह संपूर्ण नदियां अपने अपने विषयों के कार्यभूमिमें कितनी दूरीपर जाकर कैसी कार्य करती हैं, इसका ज्ञान जो रखता है, इस अंतर की कल्पना जिसे उत्तम रीतिसे हो गई है, वही ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गौका दान लेनेका अधिकारी है। अन्य साधारण मनुष्य गौका दान न लेवे। देनेवाला भी ऐसे ही ब्रह्मिष्ट मनुष्यको गो दान देवे।

तीसरा ज्ञान "यज्ञके सिरको जानना" है। "पुरुषो वाव यज्ञः।"(छां० उ. ३।१६।१) मनुष्य ही यज्ञ है, वेद और उपनिषदों में यज्ञका वर्णन इसी प्रकार आता है। इसमें सिर अर्थात् प्रधान विभाग और अन्य गौण साधारण विभाग ये दो विभाग हैं। प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा यह श्रेष्ठ, प्रधान या सिर स्थानीय विभाग है, और देह इन्द्रिय आदि स्थूल विभाग अर्थात् साधारण विभाग है। इसको सूक्ष्म और स्थूल, अमूर्त और मूर्त, प्राण और रयि, सिर और धड इत्यादि अनेक नाम अध्यात्म शास्त्रमें हैं। इन नामोंका भेद होनेपर भी वक्तव्य एकही है॥

जो ज्ञानी पुरुष इस मानव शरीरमें चलनेवाले शतसांवत्सरिक यज्ञके सबसे मुख्य सिरोभाग को ठीक ठीक जानता है, अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हुआ है वही गौका दान लेवे॥ किसी दूसरेको गौदान लेनेका अधिकार नहीं है॥ यही बात अन्य प्रकार निम्न लिखित मंत्रमें कही है—

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः। शिरो
यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम्॥ ३॥

"मैं सात प्रवाहों को जानताहूं, मैं सात अंतरोंको जानता हूं और यज्ञके सिर का भी ज्ञान मुझे है, इतना ही नहीं प्रत्युत (अस्यां) इस गौके अंदर तेजस्वी सोम शक्ति रहती है यह भी मैं जानता हूं।" जो इतना ज्ञान रखता है वह गौका दान लेवे। जिसको इतना ज्ञान अपने अंदर रहनेका आत्मविश्वास है वह गौका दान लेवे। किसी साधारण मनुष्यको गौ दान लेनेका अधिकार नहीं है।

गोमेध सूक्त के ये तीन मंत्र पाठक देखेंगे तो उनको निश्चय हो जायगा कि गोमेधमें "गौका दान" है न कि गोवध। गोमांस हवन का गोमेधके साथ संबंध जोडनेवालों का पक्ष इस सूक्त ने ऐसा काट दिया है कि वे किसी भी रीतिसे अपना पक्ष अब सिद्ध ही नहीं कर सकते। अस्तु। इस ढंग से गौ-दान लेनेवाले की योग्यता वर्णन करके अब चतुर्थ मंत्रसे गौके महत्त्वका वर्णन होता है, वह अब देखिये—

गौका महत्त्व॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि॥ ४॥

"जिसने द्यौ, पृथिवी और (आपः) इन जलोंका (गुपिताः) संरक्षण किया है उस सहस्र धाराओं से दूध देनेवाली वशा गौ को हम प्रार्थना पूर्वक इधर बुलाते हैं।"

यहां गुप्त संकेतसे द्युलोक, अंतरिक्ष लोक और पृथिवी लोकों का धारणपोषण करनेवाला परमात्माही गौ स्वरूपमें हमारे पास आता है और अपना अमृत रस हमें देता है, ऐसा वर्णन किया है। इसलिये गौको देख कर, यही अमृतरस देनेवाला परमात्माका रूप है ऐसा मानकर, उसका सत्कार करना चाहिये। पाठक इससे जान सकते हैं कि गौके विषयमें कितना आदरभाव मनमें धारण करनेका उपदेश वेद कर रहा है। और देखिये—

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो
अधिपृष्ठे अस्याः। ये देवास्तस्यां प्राणन्ति
ते वशां विदुरेकधा॥ ७॥

"सौ बर्तन, सौ दूध निचोडनेवाले, सौ गोपाल इसके पीठ पर हैं। जो देव (अस्यां प्राणन्ति) इस गौके अंदर जीवन धारण करते हैं वेही (एकधा वशां विदुः) अद्वितीय रीतिसे गौको जानते हैं।

इस मंत्रमें राजाके ठाठ के समान गौके सन्मान का ठाठ वर्णन किया है। इस गौके पीछे दूधके लिये सौ बर्तन लेकर मनुष्य सन्मानसे चलते हैं, दूध दोहनेवाले सौ मनुष्य इसके साथ आदर से रहते हैं और इसकी रक्षा करनेके लिये सौ गोपाल इसके

पीछे खडे रहते हैं। यह गोमेधमें "गौकी सवारी का वर्णन " पाठक देखें और अनुमान करें कि गोमेधमें कितने सत्कारके साथ गौकी पूजा होती है। यदि कोई गौघातक गौका घात करने की इच्छासे वहां जायगा तो पूर्वोक्त तीनसौ रक्षकों की लाठियों की मारसे वह जीवित बचही नहीं सकता। वैदिक धर्मी आर्य इतनी गौरक्षा करते थे । वे मानते थे कि इस गौमाताके शरीरमें अनेक देव हैं जो वहां जीवनरस की रक्षा करते हैं ऐसी देवतामयी गौका वध वैदिक समय में होना सर्वथा असंभव है। यह मंत्र कहता है कि " गौका महत्त्व असंदिग्ध रीतिसे वेही जानते हैं कि जो गोदुग्धसे अपनी पुष्टि करते हैं।"यह सर्वथा सत्य है। आज कल गौका महत्व भारतीय लोग इसलिये नहीं जानते, क्योंकि वे गौके दूधसे अपने आपको पुष्ट नहीं करते, प्रत्युत गौके शत्रुरूपी भैंस के दूधसे अपने आपको पुष्ट करते हैं।

" गौरक्षा " का सच्चा शत्रु कसाई नहीं है, वह शत्रु निःसंदेह भैंस है। भैंसके दूधको पीनेवाले गाय के दूधके महत्त्वको कैसे जान सकते हैं? गोदुग्धसे जो आरोग्य और जो मेधावृद्धि होती है वह कभी भैंसके दूधसे नहीं हो सकती। इसलिये गौके दूधका ही पान करना चाहिये। वेदका यही आदेश है। पाठक इसे स्मरण रखें। और देखिये-

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्य पत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

" (वशा) गौ (पर्जन्य-पत्नी) पर्जन्यसे उत्पन्न होनेवाले घास से पालित होती है, यह गौ (यज्ञ-पदी) यज्ञरूपी पांवसे युक्त, (इरा-क्षीरा) दुग्धरूपी अन्न देनेवाली, (स्वधा-प्राणा) अपनी धारण शक्ति युक्त प्राणवाली, (मही-लुका) भूमिको प्रकाशित करनेवाली है, यह (ब्रह्मणा) अपने अन्न से देवोंके पास जाती है। "

इस मंत्रके शब्द गौका महत्त्व विलक्षण उच्चतम भावके साथ बता रहे हैं, इसलिये इनका अधिक मनन करना चाहिये—

१ "पर्जन्य पत्नी वशा" = पर्जन्यसे पालित होनेवाली गौ है। अर्थात् वृष्टिसे घास उत्पन्न होता है, झरनों में जल बहता है, यह घास यह गौ खाती है, यह पानी पीती है और पुष्ट होती है। यहां इस शब्द द्वारा सूचित किया है कि गौकी पालना जंगलके घाससे ही होनी चाहिये। मनुष्यनिर्मित कृत्रिम अन्नसे, अर्थात् अग्निपर पका कर बनाये अन्नसे नहीं होनी चाहिये। गौके दूधसे अधिक लाभ प्राप्त करना हो तो गौको चावल, रोटी आदि पका अन्न नहीं खिलाना चाहिये, प्रत्युत हरा घास ही खिलाना चाहिये। रोटी आदि पका अन्न गौको अधिक खिलानेसे तथा धान्य भी अधिक खिलाने से गौके गोबर को बडी बदबू आती है। इसी प्रकार गौका दूध भी बिगडता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि धान्य और रोटी आदि पका हुआ अन्न खाने वाली गौके दूध की अपेक्षा घास खाने वाली गौका दूध अधिक गुणकारी है। पाठक इस बात का स्मरण रखें।

२ " इरा-क्षीरा " = दुग्धरूपी अन्न देनेवाली। जो लोग गोमांस खानेकी प्रथा वैदिक कालमें थी ऐसा मानते हैं, उनको यह शब्द बडा मनन करने योग्य है। गौसे जो अन्न मिलना है वह केवल दूध ही है और दूसरा नहीं है। जो लोग गौसे दूधके अतिरिक्त मांसादि पदार्थ भोजन के लिये लेते हैं वे वेदके विरुद्ध आचरण करते हैं। यदि वेदको गोमांसका भोजन अभीष्ट होता, तो गौवाचक शब्दों में " इरा-मांसा " ऐसे शब्द किसी स्थानपर आ जाते। परंतु ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे गोमांस भोजन सिद्ध हो सके। यह शब्द तो दूध रूपी अन्न ही गौसे प्राप्त करना चाहिये, यह वैदिक मर्यादा बता रहा है। इसलिये इस शब्दने गोमांसका पक्ष तो जडके साथही नष्ट हुआ है। गौ जो अन्न देती है वह केवल दूध ही है और दूधसे भिन्न कोई अन्न गौके शरीरसे लेना नहीं है। पाठक इस शब्द का खूब मनन करें।

३ " यज्ञपदी " = यज्ञरूपी पांववाली। गौके पांव यज्ञ ही हैं अर्थात् यह गौ यज्ञ भूमिमें, पवित्र स्थानमें भ्रमण करती है। गौ किस स्थान पर भ्रमण करे, इसका आदेश इस शब्द से ज्ञात हो सकता है। जहां लोक शौच करते हैं, मैला फेंकते हैं, ऐसे अमंगल स्थानों में गौको घुमाना नहीं चाहिये। परंतु

जहां यज्ञ होते हैं, ऐसी पवित्र भूमिमें कि जहां शुद्ध घास और शुद्ध पानी मिले, ऐसी पवित्र भूमिमें ही गौ घूमनी चाहिये। यह आदेश इसलिये कहा है कि यदि गौ अशुद्ध स्थान का घास खावे और अशुद्ध पानी पीवे तो उसका दूध रोगी बनेगा और मनुष्य में भी रोग बढेंगे। इस लिये यज्ञ भूमिमें गौ घूमे यह उपदेश इस शब्दसे सूचित किया है। इसके पद यज्ञ ही हैं, किसी अन्य स्थानमें इसके पद न लगे। गौको कितनी पवित्रता के साथ पालना चाहिये, इसका सूक्ष्म विचार इन मन्त्रों के अंदर पाठक देख सकते हैं।

४ " स्वधा प्राणा " - स्वधा शक्ति से युक्त प्राणवाली। अर्थात् जिसमें प्राणशक्तिके साथ स्वधाशक्ति भी है। प्राण शक्ति सब लोग जानते हैं. सब प्राणियोंमें यह शक्ति है इसीलिये प्राणी जीवित रहते हैं। इसी प्रकार (स्व+धा) प्राणियोंके अंदर एक धारकशक्ति भी है उसका नाम " स्वधा " है। अपनी निज धारक शक्ति का नाम स्वधा है। यह शक्ति हरएक पदार्थ में है इसी लिये प्रत्येक पदार्थ अपने रूप में रहता है। मनुष्यमें यह स्वधा शक्ति बढानेका कार्य गौका दूध करता है। इसी लिये बालकों और वृद्धों तथा बीमारों के लिये गौके दूध के समान कोई दूसरा अन्न नहीं है। यह अपनी धारक शक्ति की वृद्धि करता है, इसीलिये उक्त अशक्त अवस्थामें गो-दुग्धसे उनकी धारकशक्ति बढती है और आयुष्य वृद्धिपूर्वक पुष्टि प्राप्त होती है। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसी कारण गोदुग्ध मनुष्य के लिये सबसे अधिक लाभदायक है। मानो गोदुग्धमें मनुष्यकी प्राणशक्ति और धारणाशक्ति ही निवास करती है। इसीलिये ही गौ की रक्षा और पालना उत्तम रीतिसे होनी चाहियें।

५ "महीलुका" =भूमिको तेजस्वी बनानेवाली गौ है। पूर्वोक्त शब्दोंके मननसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

यह वर्णन गौका महत्त्व बता रहा है। पाठक इसका अधिक मनन करें। ये पांच शब्द गौके विषय में बडे आदरपूर्ण महत्त्व के विचार प्रकाशित कर रहे हैं। जिस समय ऐसे आदरपूर्ण विचार मनमें रहते हैं उस वैदिक समय गोवध होना बिलकुल असंभव है।

इस मंत्रका चतुर्थ पाद है-"देवान् अप्येति ब्रह्मणा" (जो ब्रह्म के साथ अर्थात् मंत्रद्वारा उपासना, पूजा या सत्कारके साथ देवोंको प्राप्त होती है) कई विद्वान ऐसे हैं कि जो इस मंत्रभागसे गोवध की कल्पना करते हैं और समझते हैं कि वेद मंत्रका उच्चार करके गोमांस की आहुतियां देनेकी कल्पना इससे सिद्ध होती है !!! यह इनकी कल्पना देख कर हमें बडा आश्चर्य होता है, क्यों कि ऐसा अर्थ माननेपर जो पूर्वापर विरोध हो रहा है इसका इन विद्वानों को कोई ख्यालही नहीं है !! इस सूक्तके प्रथम मंत्र मेंही गौको " अ-घ्न्या " (अवध्य) नामसे पुकारा है, इसलिये इस सूक्तमें आगे गोवध की कल्पना करना पूर्वापर संबंधसे युक्तियुक्त नहीं है। इस बातको छोड भी दिया जाय तो इसी मंत्रके शब्द देखिये। इसी मंत्रमें " इरा-क्षीरा " शब्द है जिससे बताया गया है कि गौसे दुग्धरूपी अन्न मिलता है। गौसे मांस-अन्न लेनेकी कल्पना किसी भी स्थानपर नहीं है। यह पूर्वापर संबंध देखनेसे पता लग सकता है कि " देवाँ अप्येति ब्रह्मणा " इस मंत्रभागमें भी गोवध की कल्पना करनेके लिये कोई स्थान नहीं है। " ब्रह्म " शब्द के अनेक अर्थ हैं- पर ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान, वेद, वेदमंत्र, मुक्ति, अन्न इतने अर्थ ब्रह्म शब्दके प्रसिद्ध हैं। इसमें अन्न शब्द लिया जाय तो इस मंत्र भाग का अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है- " यह गौ अपने दुग्धरूपी अन्नसे देवोंको प्राप्त होती है।" यज्ञमें गौके दूध और घी का हवन होता है और देवताओंके उद्देश्य से आहुतियां छोडी जाती हैं, जब यह दूध और घी की आहुतियां देवताओं को पहुंचती हैं तब इन आहुतियों के अन्न से गौ भी मानो देवताओंको पहुंचती है। पूर्वापर संबंध देखकर किसी शब्दसे विरोध न करते हुए यह सरल अर्थ है। पाठक इस अर्थका मनन करें।

इसके अतिरिक्त "देवान् अप्येति ब्रह्मणा" इस मंत्रभागमें गोवध की कल्पना करनेके लिये उसके " वध या मांस हवन " वाचक यहां एक भी

शब्द नहीं है । " गौ देवोंको प्राप्त होती है " ऐसा कहने मात्र से उसका वध करके उसकी मांसाहुतियों से वह देवोंको प्राप्त होती है इतनी लंबी कल्पना किस आधारपर की जाती है, यह हमारे समझमें नहीं आता है। यदि दूध घी के रूपसे गौके देवोंतक पहुंचनेकी संभावना न होती तो ऐसी लंबी कल्पना करना एकवार उचित भी माना जाता, परंतु गौको अ—वध्य रखते हुए उसके जीते जी प्राप्त होनेवाले दूध और घी रूपी अन्नकी आहुतियोंसे गौ देवोंको प्राप्त होती है यह बात हरएक यज्ञमें प्रत्यक्ष होनेकी अवस्थामें उतनी लंबी कल्पना—जो मंत्रके शब्दोंसे भी सिद्ध नहीं होती-करना अयोग्य और भाषाशास्त्र के नियमोंके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये इस प्रकारकी अयुक्त कल्पना करना सर्वथा अनुचित है। अब गौका महत्त्व देखिये—

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

" हे (भद्रे वशे) कल्याण करनेवाली वशा गौ! तेरे अंदर अग्नि प्रविष्ट हुआ है, तेरे अंदर सोम प्रविष्ट हुआ है, तेरा दुग्धाशय पर्जन्य बना है और बिजलियांही तेरे स्तन बनी हैं। " अर्थात् अग्नि, सोम, पर्जन्य और विद्युत् इन देवोंने तेरे शरीरमें ही आश्रय लिया है।

गौके दूधमें विलक्षण शक्तिवाली जीवन की विद्युत रहती है, इसीलिये ताजा ताजा दूध-धारोष्ण दुग्ध— पीनेसे मनुष्यमें जीवन की विद्युत् बढती है और आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त होता है। जिस प्रकार पर्जन्य वृष्टिकी अनेक धाराओंसे मनुष्य को शुद्धोदक देता है और वह शुद्धोदक मनुष्यके लिये आरोग्यदायी होता है, ठीक उस प्रकार गौ भी अपनी अनेक धाराओंसे दूध देती है जो मनुष्यका आरोग्य बढाने वाला होता है। सोम वनस्पति घास आदिके रूपसे गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, सोम नामक जीवन कलाकी वृद्धि करनेवाली वनस्पति भी गौ खाती है और जो जो वनस्पति इसप्रकार गौके शरीरमें जाती है उसका जीवनसत्त्व गौके दूधमें आता है जो मनुष्य का जीवन सुखमय करने का हेतु होता है । गौ जिस समय जंगलमें घास खानेके लिये भ्रमण करती है उस समय सूर्य प्रकाश उसके शरीरपर पडता है, और सूर्य की उष्णता—अग्निरूप तेज-गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, इसका गौके दूधपर परिणाम बडा लाभकारी होता है। भैंस आदि पशु जो केवल कृष्णवर्ण होते हैं और जो उष्णता सह नहीं सकते इसलिये सदा जलमें डुबकियां लगाना चाहते हैं उन पशुओंमें सूर्यकिरणों का जीवनाग्नि प्रविष्ट नहीं होता इसलिये भैंस का दूध शीत गुणविशिष्ट होनेके कारण मनुष्य के लिये उतना लाभकारी नहीं हो सकता। परंतु गौ सूर्यका ताप सह सकती है और भैंसके समान जल में डुबकियां लगाना नहीं चाहती, इतना ही नहीं परंतु कपिल, लाल, पीला और श्वेत रंगोंसे युक्त गौके शरीर होनेके कारण सूर्य प्रकाशसे जीवनका अग्नेय तत्त्व गौके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है और वह मनुष्योंका आरोग्यवर्धन भी कर सकता है। गौके दूधसे लाभ और भैंसके दूधसे हानि होनेका वर्णन जो वैद्यग्रंथमें है और जो अनुभवमें भी है, उसका कारण यहां इसप्रकार इस मंत्रसे स्पष्ट हुआ है। गौ सूर्य प्रकाशसे आग्नेय जीवनतत्त्व अपने अंदर संगृहित करती है उस प्रकार भैंस नहीं कर सकती, इस कारण दोनोंके दुग्धोंके गुण-धर्मोंमें इतना अंतर है। इसी लिये गौ मनुष्योंकी माता कही जाती है वैसी भैंस नहीं। गौका दूध आरोग्यवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। गौका दूध बुद्धिवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। प्रतिदिन गौका दूध पीनेवाले को सूर्यतापज्वर (Sun stroke) की बीमारी होती नहीं, इसका भी यही कारण है। भैंसका दूध प्रतिदिन पीनेवालेको सूर्यतापज्वर की बाधा होती है। पाठक विचार करें कि गौका महत्त्व कितना है और मनुष्यके जीवनके साथ उसका कितना घनिष्ठ संबंध है। इसीलिये वेद गौका महत्त्व विविध रीतिसे वर्णन कर रहा है। तथा और देखिये—

राष्ट्ररक्षक गौ।

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

" हे (वशे) वशा गौ ! (त्वं प्रथमा अपः धुक्षे)

तू सबसे प्रथम दूध देती है, (त्वं अपरा उर्वरा) तू पश्चात् भूमिकी कृषि कराती है, इस प्रकार (त्वं क्षीरं अन्नं दत्त्वा) तू दूध और अन्न देकर (तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे) तीसरे राष्ट्रको परिपुष्ट बनाती है। "

इस मंत्रमें गौके कितने उपकार वर्णन किये हैं देखिये। सबसे प्रथम गौ दूध देती है, यह दूध बाल, वृद्ध, रोगी स्त्रीपुरुषोंके लिये तथा सशक्त और अशक्तोंके लिये बडा उपकारी है। इसलिये यह गौ सबकी माता है। यह इसका पहिला उपकार है। गौका दूसरा उपकार यह है कि यह बैलों को उत्पन्न करती है और उन बैलोंके द्वारा खेती की जाती है जिस खेतीसे विपुल धान्य उत्पन्न होता है, अर्थात् बैलों द्वारा खेती करानेवाली गौ ही है। यह इस गौका मनुष्योंपर दूसरा उपकार है। इसप्रकार स्वयं दूध देने और बैलों द्वारा कृषि करवाके धान्य देनेसे मानो राष्ट्रका पालन पोषण और रक्षण गौ ही कर रही है, यह तीसरा उपकार है। ये तीन उपकार गौ कर रही है, पाठक इनका अनुभव करें। आज कल गौओंकी संख्या कम हो गई है इसलिये विपुल दूध मिलनेका अनुभव नहीं है, परंतु पंजाब, सिंध, युक्त प्रांत और गुजरात में प्रति समय दस पंद्रह सेर दूध देनेवाली गौएं हैं, उनको देखनेसे पता लग सकता है कि यह गौ राष्ट्रका पालन किस प्रकार कर सकती है। भगवान गोपाल कृष्णके समय पाठक देख सकते हैं कि घर घरमें गौओंकी पालना होती थी, हरएक मनुष्यको विपुल गोरस मिलता था, उससे उस समयके वीर कैसे दीर्घायु होते थे और कैसे सुदृढ होते थे। सत्तर अस्सी वर्षवाले मनुष्य भी अपने आपको युवा होनेका अनुभव करते थे और मनुष्योंकी डेडसौ वर्षकी आयु भी एक साधारण बात थी। परंतु आज प्रतिदिन सेंकडों गौओंका वध हो रहा है और गौका दूध आज अति दुर्लभ सा हुआ है, इसका परिणाम दुर्बलता और अल्पायुतामें पाठक प्रत्यक्ष देख सकते है। इससे पाठक जान सकते हैं किस रीतिसे गौ राष्ट्रका पालन करती है। अर्थात् गौ एक " राष्ट्रीय महत्त्वका धन " है जिस से मनुष्य धन्य ही बनता रहेगा। इसलिये हरएक पंथके और धर्मके मनुष्यको यहां गोरक्षा अवश्यही करनी चाहिये। यदि न की जाय तो न केवल उस व्यक्ति की अवनति होगी प्रत्युत उसके राष्ट्र की भी अवनति होगी। इसप्रकार राष्ट्रके उद्धार का संबंध गोरक्षासे है। पाठक इस रीतिसे गौमें राष्ट्र संरक्षण का गुण देखें और अन्य सब मतभेद छोड कर गोरक्षा में दत्तचित्त होकर पूर्णतया कटिबद्ध होकर गौकी रक्षा करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करें। राष्ट्रमें जो जो मनुष्य हैं उनके शरीरोंकी नीरोगता दीर्घ आयु और शक्ति रखने और बढनेका संबंध इसप्रकार गोरक्षणसे है, इसलिये गोरक्षा के विषयमें जो उदासीन रहते हैं, वे अपनी राष्ट्र रक्षामें भी उदासीन ही होते हैं अर्थात गोरक्षा के विना राष्ट्ररक्षा हो नहीं सकती है। यह बात समझ कर सब लोग गोरक्षा के कार्यमें विशेष दत्तचित्र हों और कभी उदासीन न हों, क्योंकि ऐसा गोवध होता रहा तो अन्य बातोंकी उन्नति होनेपर भी राष्ट्रकी सच्ची उन्नति होना असंभव है, मनुष्योंकी दीर्घायु, शारीरिक शक्ति, और नीरोगता न रही तो अन्य उन्नतिसे कौनसा लाभ प्राप्त हो सकता है? इस लिये गोरक्षा करना आत्मरक्षाके समान ही महत्त्व पूर्ण बात है इसको कभी भूलना नहीं चाहिये।

गौके लिये सोमरस।

सोम बडी औषधि है जो जीवन कलाकी वृद्धि करने वाली है। वैदिक आदेशानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि गौको सोमरस पिलाया जाता था और पश्चात् उसका दूध मनुष्य पीते थे; जिसमें सोमरस के गुणधर्म आजाते थे और उसकारण वह सोमरस पीनेवाली गौका दूध मनुष्यके लिये बडाही आरोग्य प्रद होता था, इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान् सोमं त्वापाययद्वशे ॥ ९ ॥

" हे (ऋतावरि वशे) सरल स्वभाववाली वशा गौ! जब आदित्यों द्वारा बुलायी जा कर तू पास आती थी, तब इन्द्र तुझे हजारों बर्तनों से सोमरस पिलाता था। "

अर्थात् जब गौ जंगलसे वापस आती है तब उस गौके पानके लिये अनेक बर्तनोंमें सोम रस तैयार रखा जाता था। जिसका पान गौ करती थी और

पश्चात् गौको दुहा जाता था। पाठक देखें कि यह वैदिक प्रथा है, यह वैदिक समयमें गौका आदर था।

वीरोंका दुग्धपान ।

युद्धके समय गौके दूधका पान वीर लोग करें इस विषयके दो मंत्र अब देखिये—

यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो हरद्वशे॥१०॥
यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

" हे (वशे) गौ! (यत्) जब तू (इन्द्रं अनूचीः ऐः) इन्द्रके साथ चली उस समय (ऋषभः) बलवान् वृत्रासुर (त्वा अह्वयत्) तुम्हारे लिये बुलाता रहा (तस्मात् क्रुद्धः) इससे क्रुद्ध हुए (वृत्रहा) वृत्रासुरका वधकर्ता इन्द्रने (ते पयः क्षीरं) तेरा अमृत जैसा दूध (अहरत्) लिया ॥ हे (वशे) गौ! जो क्रुद्ध हुए (धन-पतिः) इन्द्रने तेरा दूध लिया था, वही आज (नाकः) स्वर्ग रूपसे तीन पात्रोंमें रक्षण किया जाता है । "

इन्द्र और वृत्रके युद्धके प्रसंगोंका वर्णन वेदमें अनेक स्थानोंमें आया है। वह वर्णन आधि दैविक सृष्टिमें सूर्य और मेघ, आधि भौतिक प्राणि सृष्टिमें धार्मिक राजा और अधार्मिक शत्रु, तथा आध्यात्मिक सृष्टिमें आत्मिक शक्ति और हीन मनोविकार, इनके युद्धके भाव बताता है। इस विषयका संपूर्ण रूपक यहां कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यहां हमें इतना ही देखना है कि युद्धादि प्रसंगोंमें भी गौसे लाभ उठानेकी बात वेदमें किस महत्त्वके साथ कही है। वेदमें उपदेश देनेके जो अनेक मार्ग हैं उनमें यह भी एक मार्ग है कि " इन्द्रादि देवोंने ऐसा किया और उसके करनेसे उनको यह लाभ हुआ।" ऐसे वर्णनसे बताया जाता है कि मनुष्यभी वैसाही करे और लाभ उठावे। इस प्रकार उक्त मंत्रमें यह वर्णन है--

" एक समय इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ इस युद्धमें इन्द्रके साथ गौवें थीं। जहां देवोंका सैन्य रहता था वहां गौवें भी रखी जाती थीं। जब देवोंके वीर जोशसे और क्रोधसे लडते थे और थक जाते थे, उस समय उनको गौओंका ताजा दूध निचोड कर दिया जाता था। इस प्रकार दूध पीपी कर देववीर युद्ध करते थे। वृत्रासुरने यह बात देखी और एक समय इन्द्रकी गौओंपर हमला चढाया। इससे इन्द्रको बडा क्रोध आया। देवोंनेभी असुरोंपर जोरसे हमला किया और उनका पराजय किया। तथा गौओंके दूधके बर्तन स्वर्गमें रख दिये, जिस कारण आजभी स्वर्गका महत्त्व सब मानते हैं।"

वेद मंत्रोंके मूल वर्णनसे ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें इसी प्रकार कथाएं बनाकर लिखी हैं। ये कथाप्रसंग इतिहास बताने के लिये नहीं हैं, परंतु कुछ सनातन बोध देने के लिये बनाये जाते हैं। इस कथा प्रसंग से पाठक निम्नलिखित बोध ले सकते हैं-

(१) युद्ध करने वाले सैनिकोंको पीनेके लिये दूध मिले इस लिये सैन्यके साथ कुछ गौवें रखनी चाहिये और उनका ताजा दूध सैनिकों को पिलाना चाहिये। युद्ध करते समय थके हुए सैनिकोंको भी इसी प्रकार दूध देना चाहिये।

(२) जब कोई जोशका कार्य करना हो, जिस समय कोई थकावट आनेवाला कार्य करना हो, जिस समय क्रोध आया हो तो उस समय गौका धारोष्ण दूध पीनेसे शरीरमें समता आ जाती है

यह सामान्य बोध उक्त मंत्रोंके वर्णन में पाठक देख सकते हैं। क्रोध, मोह, मद (उन्माद) की अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय गौका दूध पीनेसे शरीरमें समता आती है और उक्त हीन मनोविकार दूर होते हैं। कामविषयक अत्याचार से मनुष्यके शरीरमें निर्वीर्यता उत्पन्न हुई हो तो गौके दूध पीनेसे दूर होती है। अतिश्रम से उत्पन्न हुई थकावट, हृदय की जलन, मस्तककी आग, नेत्रोंकी जलन, हृदय-विकार से होनेवाली मूर्च्छा आदि सब दोष गौके दूध पीनेसे दूर होते हैं। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसलिये ऋषिमुनि गौका दूध पीकर योगादि साधन करके अजरामर होते थे। यदि इस समयमें भी भारतीय लोग गौकी रक्षा करेंगे तो उसी प्रकार की सिद्धी वे इस समयमें भी प्राप्त कर सकते हैं।

अथर्ववेद

का

स्वाध्याय ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक तथा प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

प्रथम वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७
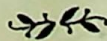
मूल्य २) डा. व्य. ।।) वी. पी. से २।।।) रु.

*

ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः।

अथर्व० १०।७।१७

" (ये) जो (पुरुषे ब्रह्म) पुरुषमें ब्रह्म (विदुः) जानते हैं, वे परमेष्ठिनं) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो (ज्येष्ठं ब्राह्मणं) श्रेष्ठ ब्रह्माको जानते हैं, वे स्कम्भ को (अनुसंविदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं।"

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्यायमंडल, भारतमुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

१ अथर्ववेद यह मनःशक्तिके विकास का वेद है। इसमें मानसिक शक्ति विकासके विविध उपाय कहे हैं।

२ अथर्ववेद यह अनुष्ठान करनेका वेद है। केवल इसका पाठ करने और अनुष्ठान न करनेसे बहुत लाभ नहीं हो सकता।

३ अथर्ववेद के अनुष्ठान इतने सुगम हैं कि हरएक अवस्थामें रहनेवाला मनुष्य, प्रतिदिन थोडा समय इस कार्यके लिये अलग निकाल कर, ये अनुष्ठान कर सकता है और लाभ उठा सकता है।

४ आत्मा, बुद्धि, मन और चित्त इन अंतःशक्तियों-की उन्नति जो करना चाहते हैं वे इस वेदका मनन प्रतिदिन करें। निःसंदेह लाभ होगा।

५ हरएक सूक्तका मनन करनेसे उसका अनुष्ठान करनेकी रीति सहजहीमें ज्ञात हो सकती है। तथापि इस " अथर्ववेदके सुबोध भाष्य" में वह असंदिग्ध रीतिसे बतायी है। जिससे पाठक लाभ उठा सकते हैं।

६ वैदिक धर्म यदि आप आचारमें लाना चाहते हैं तो आप अथर्व वेदका अध्ययन कीजिये। इससे आपका अनेक रीतिसे लाभ होगा।

७ इसमें आरोग्यवर्धनके ऐसे सुगम उपाय बताये हैं कि जो सर्व साधारणको भी प्राप्त हो सकते हैं। इससे आप विना व्यय आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं।

८ सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के विविध उपाय आप इससे जान सकते हैं। अथर्ववेदका इस विषयका उपदेश आज भी लाभदायक है। पाठक इसका अनुभव लें।

९ यह "सुबोध भाष्य" इतना सुबोध है कि इसको साधारण भाषा पढनेवाला भी उत्तम रीतिसे समझ सकता है और वैदिक आदेश जान सकता है।

१० अपूर्व अलंकार, अद्भुत रूपक, आश्चर्यकारक उपमाएँ और सरल शब्दों द्वारा गंभीर उपदेश देनेकी वैदिक शैली यदि आप देखना चाहते हैं तो आप इस "अथर्ववेद-सुबोध भाष्य" को पढिये।

११ एक वार आप यह प्रथमकाण्ड पढेंगे तो फिर आपको इस विषयमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

निवेदक,

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मडंल, औंध (जि॰ सातारा)

जल--सूक्त ।

(३३)

(ऋषिः- शन्तातिः । देवता—आपः । चन्द्रमाः)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ १ ॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ २ ॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ३ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ४ ॥

अर्थ- जो (हिरण्य-वर्णाः) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्ण से युक्त (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता बढानेवाला (यासु सविता जातः) जिनमें सविता हुआ है और (यासु अग्निः) जिनमें अग्नि है,(याः सुवर्णाः) जो उत्तम वर्णवाला जल (अग्निं गर्भं दधिरे) अग्निको गर्भमें धारण करता है (ताः आपः) वह जल (नः शं स्योनाः भवन्तु) हम सबको शांति और सुख देने वाला होवे ॥ १ ॥ (यासां मध्ये) जिस जलके मध्यमें रहता हुआ (वरुणः राजा) वरुण राजा (जनानां सत्यानृते अवपश्यन्) जनोंके सत्य और असत्य कर्मोंका अवलोकन करता हुआ (याति) चलता है। (याः सुवर्णाः) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ (देवाः दिवि) देव द्युलोकमें (यासां भक्षं कृण्वन्ति) जिनका भक्षण करते हैं,और जो (अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्ण वाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ हे (आपः) जल! (शिवेन चक्षुषा मा पश्यत) कल्याण कारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो। (शिवया तन्वा मे

त्वचं उपस्पृशत) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो। जो (घृतश्चुतः) तेज देनेवाला (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्र (आपः) जल है (ताः नः शं स्योनाः भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ- अंतरिक्ष में संचार करनेवाले मेघमंडलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिनमेघोंमें से सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विद्युत् रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाई देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमेंसे वरुण राजा घूमता है और जाते जाते मनुष्योंके सत्य और असत्य विचारों और कर्मोंका निरीक्षण करता है, जिन मेघोंने विद्युत् रूपी अग्निको गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका उदक हमें सुख और आरोग्य देवे ॥२॥ द्युलोक के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरंगवाले अंतरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विद्युतका धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये सुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके साथ होनेवाला स्पर्श हमें आल्हाद देनेवाला प्रतीत हो। मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

वृष्टिका जल।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंदभी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठक को एक अद्भुत आनंद का अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण "शुचि, पावक, सु-वर्ण" आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले दिव्य लोग इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और नीरोग होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणें भी प्रकाशतीं हैं उसकी विशेषता अधिक है। इसी प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है- " जलका स्पर्श हमारी चमडीको आल्हाद देवे। " जबतक शरीर नीरोग होता है तबतकही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर रुग्ण होते ही जल स्पर्श बुरा लगने लगता है।

मधु–विद्या ।

(३४)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता–मधुवल्ली)

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ १ ॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥ ३ ॥
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ५ ॥

अर्थ– (इयं वीरुत मधुजाता) यह वनस्पति मधुरता के साथ उत्पन्न हुई है, मैं (त्वा मधुना खनामसि) तुझे मधुसे खोदता हूं। (मधोः अधि प्रजाता असि) शहदके साथ तू उत्पन्न हुई है अतः (सा) वह तू (नः मधुमतः कृधि) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ (मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे। (जिह्वामूले मधूलकं) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे। हे मधुरता ! तू (मम क्रतौ इत् अह असः) मेरे कर्ममें निश्चयसे रह। (मम चित्तं उपायासि) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ (मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा चालचलन मीठा हो। (मे परायणं मधुमत) मेरा दूर होना भी मीठा हो। मैं (वाचा मधुमत् वदामि) वाणीसे मीठा बोलता हूं जिस से मैं (मधुसन्दृशः भूयासं) मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं (मधोः मधुतरः अस्मि) शहदसे भी अधिक मीठा

हूं। (मधुघात् मधुमत्तरः) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हूं। (मां इत् किल त्वं वनाः) मुझपर ही तू प्रेम कर (मधुमतीं शाखां इव) जैसे मधुर रसवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ (अ-विद्विषे) वैर दूर करने के लिये (परितत्नुना इक्षुणा त्वा परि अगाम्) फैले हुए ईखके साथ तुझे घेरता हूं। (यथा मां कामिनी असः) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली होवे और (यथा मत् न अपगाः असः) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥५॥

भावार्थ- यह ईख नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगाने वाला और उखाडनेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उखाडता है। इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इस लिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता रहे। मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चालचलन मीठा हो, मेरा आना जाना मीठा हो, मेरे इशारे और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों। ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठास की मूर्ति ही बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं शहदसे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू मुझपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवल्लियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाढ चारों ओर बनाता हूं ता कि इस बाढमें सब मधुरता ही बढे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

मधुविद्या।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या, देवविद्या जन विद्या, युद्ध विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है। मधुविद्या जगत् की ओर किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टि-कोण ही मनुष्य में उत्पन्न करती है। उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है। यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है। दूसरी विद्या जगत् को कष्टका आगर बताती है इसको पाठक कटुविद्या कह सकते हैं। परंतु यह कटुविद्या वेदमें नहीं है। वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखता नहीं, नाही दुःखदृष्टिसे जगत्को देखने का उपदेश करता है। वेदमें मधु-

विद्या इसी लिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें। इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यहां विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्तविद्याका उत्तम उपदेश देते हैं। पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें।

जन्म स्वभाव।

वृक्षोंमें क्या और प्राणियोंमें क्या हरएक का व्यक्तिनिष्ठ जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं। जैसा सूर्यका प्रकाशना, अग्निका उष्ण होना, ईखका मीठा होना, करेलेका कडवा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं। ये जन्मस्वभाव कहांसे आते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। ईख मीठास लाता है और करेल कडवाहट लाता है। एकही भूमिमें उगे ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं। कभी करेलेमें मीठा रस नहीं होता और ना ही ईखमें कडुवा। ऐसा क्यों होता है ? कहांसे ये रस आते हैं ?

कोई कहेगा कि भूमिसे। क्योंकि भूमिका नाम "रसा" है। इस भूमिमें विविध रस होते हैं जो जो पौधा उसके पास जाता है, वह अपने स्वभाव के अनुसार भूमिसे रस खींचता है और जनताको देता है। करेलेका स्वभाव कडुवा है और ईखका मीठा है। ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुकूल रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं।

मनुष्यमें भी यही बात है। विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रकट कर रहे हैं, उनको एकही खजानेसे एकही जीवनके महासागरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शांति बढानेवाला और दूसरेमें अशांति फैलानेवाला होता है। ये स्वभाव धर्म हैं। एकही जल मेघोंमें जाता है और मीठा बनकर वृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसको पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है; वही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई पी नहीं सकता यह स्वभाव भेद है।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनियां अपने स्वभाव बदल नहीं सकतीं। मरने तक उनमें बदल नहीं होता। परंतु मनुष्य योनी ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनीके लोग सुनियमोंके आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं। दुष्टोंके सुष्ट बन सकते हैं, मूर्खोंके प्रबुद्ध बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इसी लिये वेद मनुष्योंकी भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेश दे रहा है। मनुष्य अपनी कडवाहट कम करे और अपनेमें मीठास बढावे यही यहां इस विद्याका उद्देश्य है।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये-"यह ईख नामक वनस्पति मिठास के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी भावनाके साथ उसे खोदते हैं। यह मधुरता लेकर आगई है, इस लिये हम सबको यह वल्ली मीठाससे युक्त करे।" (मंत्र १)

यह प्रथम मंत्र बडा अर्थपूर्ण है। इसमें चार बातें हैं -(१) स्वयं मीठे स्वभाव का होना, (२) मीठे स्वभाव वालोंसे संबंध करना, (३) स्वयं मधुर जीवन को व्यतीत करना, और (४) दूसरोंको मीठा बना देना। पाठक देखें कि-(१)ईख स्वयं स्वभावसे मीठा होता है, (२) मीठा उत्पन्न करने की इच्छा वाले किसानोंसे उसकी मित्रता होती है, (३) ईख स्वयं मीठा जीवन रस अपने साथ लाता है और (४) जिस चीज के साथ मिलता है उसको मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईख अपने व्यवहार से मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इसके मननसे प्राप्त होनेवाले नियम ये हैं —

१ अपना स्वभाव मीठा बनाना। अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढानेका यत्न करना।

२ मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्योंके साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

३ अपना जीवन ही मीठा बनाना, चालचलन, बोलना चालना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

४ प्रयत्न इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर प्रकृतिवाले मनुष्य भी सुधर कर उत्तम मधुर प्रकृतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करेंगे तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं। "ईख स्वयं मीठा है, मीठा चाहनेवाले किसान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रस लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंको अपनानेका प्रयत्न करें। (मंत्र १)

यहां अन्योक्ति अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है।

मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित किया है कि "मनुष्य मीठास के साथ जीवन व्यतीत करे।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनावे। इसी बातकी व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें स्वयं वेद करता है, इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका भाव थोडा विस्तार से यहां देते हैं—

(दूसरा मंत्र) - "मेरी जिह्वाके मूल, मध्य और अग्रभागमें मीठास रहे अर्थात् मैं वाणीसे मधुर शब्द ही बोलूंगा। कभी कटु शब्दका प्रयोग बोलनेमें और लेखमें नहीं करूंगा, कि जिससे जगत्में कटुता फैले। मेरा चित्त भी मीठे विचारोंका चिंतन करेगा। इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चार एक रूपता से मीठे बनगये तो मेरे (क्रतु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्मभी मीठे हो जांयगे। इस प्रकार विचार उच्चार आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊंगा। मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मीठास फैलेगी।"

(तीसरा मंत्र)-"मेरा आचार व्यवहार मीठा हो, मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही शब्द उच्चारूंगा और उस भाषणका आशयभी मधुरता बढानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चार और आचार में स्वाभाविक और अकृत्रिम मधुरता टपकने लगेगी, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूंगा।"

(चतुर्थ मंत्र)—" जब शहदसेभी मैं अधिक मीठा बनूंगा, और लड्डूसेभी मैं अधिक मीठा बनूंगा, तब तुम सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करोगे कि जैसा पक्षिगण मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं।"

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। ऊपर भावार्थ देते समय ही भावार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ अधिक शब्द रखें हैं, उनके कारण इनका अब अधिक स्पष्टीकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूं यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे यही प्रतिज्ञा करें,

यदि उन्होनें ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकार उनका आचरण हुआ तो उनका यश सर्वत्र फैल जायगा। यह पूर्ण अहिंसा की प्रतिज्ञा है। अपने विचार उच्चार आचारसे किसी प्रकार किसकी भी हिंसा न हो, किसीका द्वेष न हो, किसीका वैर न हो, किसीकी शत्रुता न हो, इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्‌में आनंदका ही साम्राज्य बन जायगा। इस आनंदका साम्राज्य स्थापन करना वैदिक धर्मियोंका परम धर्मही है और इसी लिये इस मधुविद्याका उपदेश इस सूक्तमें हुआ है।

मीठी बाड।

खेतको बाड बनाते हैं जिससे खेतका नाश करने वाले पशु उस खेततक पहुंच नहीं सकते और खेत सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार स्वयं मीठा और मधुरता फैलानेवाला मनुष्य अपने चारों ओर मीठी बाड बनावे। जिससे उसके विरोधी शत्रु-क्रौर्य द्वेषभाव आदि शत्रु-उस तक न आसकें। यह बाड अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ संमय की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो। अपने सब मित्रभी उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने वाले हों। ऐसी बाड होगई तो अंदरका मीठास का खेत बिगडेगा नहीं। इसविषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है-

(पंचम मंत्र) — " मैं विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईखोंकी बाड तुम्हारे चारों ओर करता हूं जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और मुझसे दूर भी न होगी। "

यह जितना स्त्री पुरुषके आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है उतनाही अन्य परिवारों और मित्रजनोंके अविद्वेष और प्रेम बढानेके विषयमें सत्य है। परंतु अपने चारों ओर मीठी बाड करनेकी युक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये। अपने साथ ईख की गंडेरियां लेनेसे यह कार्य नहीं होगा। यह कार्य करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार उच्चार और आचार के तथा मनोभावना के ईख चाहिये। जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्रमें ईख लगायेंगे और उसकी पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही यह वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं।

ये मंत्र स्पष्ट हैं। अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टीसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे लाभ उठा सकेंगे।

(३८)

(ऋषिः— अथर्वा। देवता– हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः।)

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १ ॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥३॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

अर्थ– (सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः) शुभ मन वाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष (शत – अनीकाय) बल के सौ विभागों के संचालक के लिये (यत् हिरण्यं अबध्नन्) जो सुवर्ण बांधते रहे (तत्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्चसे) जीवन, तेज, (बलाय) बल और (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये (ते बध्नामि) तेरे ऊपर बांधता हूं ॥ १ ॥ (न रक्षांसि, न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं सहन्ते) इस पुरुष का हमला सह सकते हैं (हि) क्यों कि (एतत् देवानां प्रथमजं ओजः) यह देवोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सामर्थ्य है। (यः दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्ति) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है (सः जीवेषु दीर्घं आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अपां

तेजः ज्योतिःओजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं (इन्द्रे इन्द्रियाणि इव) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं। इस प्रकार (दक्षमाणः हिरण्यं बिभ्रत्) बल बढाने की इच्छा करनेवाला सुवर्ण का धारण करे ॥३॥ (समानां मासां ऋतुभिः)सम महिनोंके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूपी गौके दूधसे (त्वा वयं पिपर्मि) तुझे हम सब पूर्ण करते हैं। (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अ-हृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अनु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ — बल बढाने वाले और मनमें शुभ विचारों की धारणा करने वाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष सेना संचालकके देहपर बलवृद्धिके लिये जिस सुवर्ण के आभूषण को लटका देते हैं, वही आभूषण मैं तेरे शरीरपर इस लिये लटकाता हूं कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढे, बल तथा सामर्थ्य वृद्धिंगत हो और तुझे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले वीर पुरुषके हमलेको न राक्षस और ना ही पिशाच सह सकते हैं, वे इसके हमलेसे घबराकर दूर भाग जाते हैं, क्यों कि यह देवोंसे निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है। इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढाने वाला सुवर्णका आभूषण है। जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हम सब इस पुरुषमें जीवन का तेज, पराक्रम, सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके वीर्यशाली बल भी धारण कराते हैं। इस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मामें इंद्रिय शक्तियां रहती हैं उसी प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करने वाले मनुष्यके अंदर सब प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रकट हो जांय ॥ ३ ॥ दो महिनोंका एक ऋतु होता है। प्रत्येक ऋतुकी शक्ति अलग अलग होती है, मानो संवत्सररूपी गौका दूध ही संवत्सरके छह ऋतुओंमें निचोडा हुआ है। यह दूध मनुष्य पीवे और बलवान् बने। इसकी अनुकूलता इन्द्र अग्नि तथा अन्य सब देव करें ॥ ४॥

दाक्षायण हिरण्य।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है,यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है। यह पेटमें भी लिया जाता है और शरीर पर भी धारण किया जाता है। श्री॰ यास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं-"हितरमणीयं, हृदयरमणीयं" अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढानेवाला है। सुवर्ण बलवर्धक तथा रोग नाशक है इसलिये आरोग्य चाहने वाले इसका उपयोग कर सकते हैं।

इस सूक्तमें "दाक्षायण" शब्द (दक्ष+अयन) अर्थात् बलकेलिये प्रयत्न करने वाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है। तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका "दक्ष-माण" शब्द है जो शक्तिवान का वाचक है। पाठक विचार करेंगे तो उनका निश्चय होगा कि "दाक्षायण और दक्षमाण" ये दो शब्द करीब शक्तिमान् के ही वाचक हैं। दक्ष शब्द बलवाचक वेदमें प्रसिद्ध है। इसप्रकार इस सूक्तमें बल बढानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है। हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है,एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा सुवर्ण शरीरमें सेवन करना। सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यग्रंथोंमें प्रसिद्ध है। सब अन्य धातु तथा औषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्णकी ही यह विशेषता है कि वह शरीरके अंदर हड्डीयोंके जोडोंमें जा कर स्थिर रूपसे रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है। इस प्रकारकी सुवर्णधारणासे अनेक रोगोंसे मुक्तता होती है। इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण देह मृत होनेपर उसके जलानेके बाद शरीरकी राखसे सबका सब मिलता है। अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह तोलाभर सुवर्ण मृतशरीरके दाह होने के पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार कोई हानी न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है।

जो वैद्य इस सुवर्ण धारण विधिको जानते हैं उनका नाम "दाक्षायण" प्रथम मंत्रने कहा है। इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उसका नाम भी "दाक्षायण" है यह बात द्वितीय मंत्रने बता दी है। जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना आयुष्य बढाना चाहता है उसका भी नाम वेदने तृतीय मंत्रमें "दक्ष-माण" बताया है। इस प्रकार यह सूक्त बलवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है।

*

दाक्षायणी विद्या।

बल बढानेकी विद्या का नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष + अयनः) बल प्राप्त करनेके मार्ग का उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है।(सु+मनस्यमानः) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनकी विशेष शक्तिसे संपन्न। कमजोरी की भावनासे मन अशक्त होता है और सामर्थ्य की भावनासे बलशाली होता है। मनकी शक्ति बढानेकी जो विद्या है उस विद्याके अनुसार मन सुनियमोंसे युक्त बनानेवाले श्रेष्ठ लोग "सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः" शब्दों द्वारा वेदमें बताये हैं। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपने बलका संबंध देखें और इन शब्दों द्वारा जो सु-मनस्क होने की सूचना मिलती है, वह लेलें और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढावें।

सुवर्ण धारण।

यद्यपि प्रथम मंत्रमें केवल स्थूल शरीरपर सुवर्ण बांधनेका विधान किया है तथापि आगे जाकर पेटमें वीर्य वर्धक नाना रस पीनेका उपदेश इसी सूक्तमें आनेवाला है। सुवर्ण तथा अन्य कई रत्न हैं कि जो शरीरपर धारण करनेसे भी बलवर्धन तथा आरोग्य वर्धन कर सकते हैं। यह बात सूर्यकिरण चिकित्सा तथा वर्णचिकित्साके साथ संबंध रखनेवाली है। अर्थात् सुवर्ण रत्नादिका धारण करना भी शरीरके लिये आरोग्य-प्रद है। औषधियोंके जडोंके मणी शरीरपर धारण करनेसे भी आरोग्य की दृष्टीसे बडा लाभ करते हैं। संसर्ग जन्य रोगोंमें वचा--मणिके धारणसे अनेक लाभ हैं। यही बात सुवर्ण रत्नादि धारण से होती है। परंतु इसके लिये शुद्ध सुवर्ण चाहिये।

इस विषयमें प्रथम मंत्रमें कहा है कि — " बल बढानेकी विद्या जाननेवाले और उत्तम मनःशाक्तिसे युक्त श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा शरीरपर लटकाया हुआ सुवर्ण जीवन, तेज, बल, तथा दीर्घ आयुष्य देता है। " इसमें शरीरपर सुवर्ण लटकाने वाले मनुष्यों की उत्तम मनोभावना भी लाभदायक होती है यह सूचित किया है; वह मनन करने योग्य है।

इस मंत्रमें "शतानीकाय हिरण्यं बध्नामि" का अर्थ " सौ सैन्य विभागोंके संचालक के शरीरपर सुवर्ण लटकाता हूं " ऐसा किया है, परंतु इसमें और भी एक गूढता है

वह यह है कि " अनीक " शब्द बल वाचक है। बल शब्द सैन्य वाचक और बल वाचक भी है। विशेषतः " अनीक " शब्दमें " अन्-प्राणने " धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्ति का अर्थ भी अनीक शब्द में है। इस अर्थके लेनेसे " शतानीक " शब्दका अर्थ " सौ जीवन शक्तियां, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त " होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

शतानीकाय हिरण्यं बध्नामि। (मंत्र १)

" सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्ति के लिये मैं सुवर्ण का धारण करता हूं। " सुवर्ण के अंदर सेकडों वीर्य हैं, उन सबकी प्राप्तिके लिये मैं उसका धारण करता हूं। यह आशय प्रथम मंत्र भाग का है। इस प्रथम मंत्रमें इनमेंसे कुछ गुण कहे भी हैं-

आयुषे। वर्चसे। बलाय। दीर्घायुत्वाय। शतशारदाय।

" आयु, तेज, बल,दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु" इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं। इनका थोडासा परिगणन यहां किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियां हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है। इस विचार से ज्ञात हो सकता है कि यहां " शतानीक " शब्दका अर्थ " जीवन के सौ वीर्य, जीवन की सेकडों शक्तियां " अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने मंत्रार्थ करते समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहां प्रतीत हो रहा है। इस लिये प्रसिद्ध अर्थ ऊपर देकर यहां यह अर्थ लिखा है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका मनन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें थोडेसे पाठभेदसे आता है उसको पाठकों के विचार के लिये यहां धर देते हैं—

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥

वा. यजु. ३४। ५२

" उत्तम मनवाले दाक्षायण लोग शतानीक के लिये जिस सुवर्ण भूषणको बांधते रहे, (तत्) वह सुवर्ण भूषण (मे आबध्नामि) मैं अपने शरीरपर बांधता हूं इस लिये कि

मैं (आयुष्मान्) उत्तम आयुसे युक्त और (जरदष्टिः) वृद्ध अवस्थाका अनुभव करनेवाला होकर (यथा शतशारदाय आसं) जिस प्रकार सौ वर्षकी पूर्ण आयुको प्राप्त होऊं।"

इसका अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्यों कि पूर्वोक्त भावही इस मंत्रमें अन्य रीतिसे और भिन्न शब्दोंसे व्यक्त हुआ है। इस मंत्रका द्वितीय अर्ध ही भिन्न है, प्रथमार्ध वैसाका वैसा ही है। यहां प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं—

राक्षस और पिशाच।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं। ये सबसे क्रूर होनेके कारण सब लोग इनसे डरते रहते हैं। परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार "सुवर्ण प्रयोग करता है उसके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सह नहीं सकते।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है। सुवर्ण में इतनी शक्ति है। क्यों कि "यह देवोंका पहिला ओज है।" अर्थात् संपूर्ण देवोंकी अनेक शक्तियां इसमें संगृहित हुई हैं। इसलिये द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि—"जो यह बल वर्धक सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंसेभी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है।" अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है। यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इसका इतना ही मनन पर्याप्त है। यही मंत्र यजुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥ यजु० ३४।५१

" यह देवोंसे उत्पन्न हुआ पहिला तेज है, इस लिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते। जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और वह मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करता है।"

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें थोडा भेद है और जो अथर्व पाठमें " जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः " इतनाही था, वहां ही इस में " देवेषु और मनुष्येषु " ये शब्द अधिक हैं। " जीवेषु " शब्दकाही यह " देवेषु, मनुष्येषु " आदि शब्दों द्वारा अर्थ हुआ है। इस प्रकार अन्य शाखासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करने में बडी सहायता होती है।

यहां तक दो मंत्रोंका मनन हुआ। इन दो मंत्रों में शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उपदेश किया है। अब अगले दो मंत्रोंसे जल वनस्पति तथा ऋतुकालानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अंतर्बाह्य सेवन करनेकी महत्त्व पूर्ण विद्या दी जाती है, उसका पाठक विशेष ध्यानसे मनन करें।

तृतीय मंत्रमें कहा है- "जल और औषधियोंके तेज, कांति, शक्ति, बल और वीर्य वर्धक रसोंको हम वैसे धारण करते हैं कि जैसे आत्मामें इंद्रिय शक्तियां धारण हुई हैं। इसी प्रकार बल बढानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णका भी धारण करे।"

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इसके पूर्व आये हुए जल सूक्तों में वर्णन हो चुकी है। वे सूक्त पाठक यहां देखें। औषधियोंके अंदर वीर्यवर्धक रस हैं, इसी लिये ही वैद्य औषधि प्रयोग करते हैं, अथर्व वेदमें भी यह बात आगे आजायगी। जिस प्रकार जल अंतर्बाह्य पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी वीर्य वर्धक औषधियोंके पथ्य हित मित अन्न भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घ जीवन भी प्राप्त करता है। सुवर्ण सेवन से भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवन से भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्य शास्त्रमें नाम "रस प्रयोग" है। यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये। यहां यजुर्वेदका इसी प्रकरण का मंत्र देखिये-

सुवर्णके गुण।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥

वा. यजु. ३४। ५०

"(आयुष्यं) दीर्घ आयु करनेवाला, (वर्चस्यं) कान्ति बढानेवाला, (रायस्पोषं) शोभा और पुष्टि बढानेवाला, (औद्भिदं) खानसे उत्पन्न होनेवाला अथवा ऊपर उठानेवाला, (वर्चस्वत्) तेज बढानेवाला (जैत्राय) विजय के लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मां उ आविशतात्) मुझे अथवा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो।"

सुवर्णका सेवन।

यह मंत्र सुवर्णके अनेक गुण बता रहा है। इतने गुणोंकी वृद्धि करनेके लिये यह सुवर्ण मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हो, यह इच्छा इस मंत्रमें स्पष्ट है। अर्थात् परिशुद्ध सुवर्णके सेवनसे इन गुणोंकी शरीरमें वृद्धि हो सकती है। इस मंत्र में "हिरण्यं आविशत्" ये
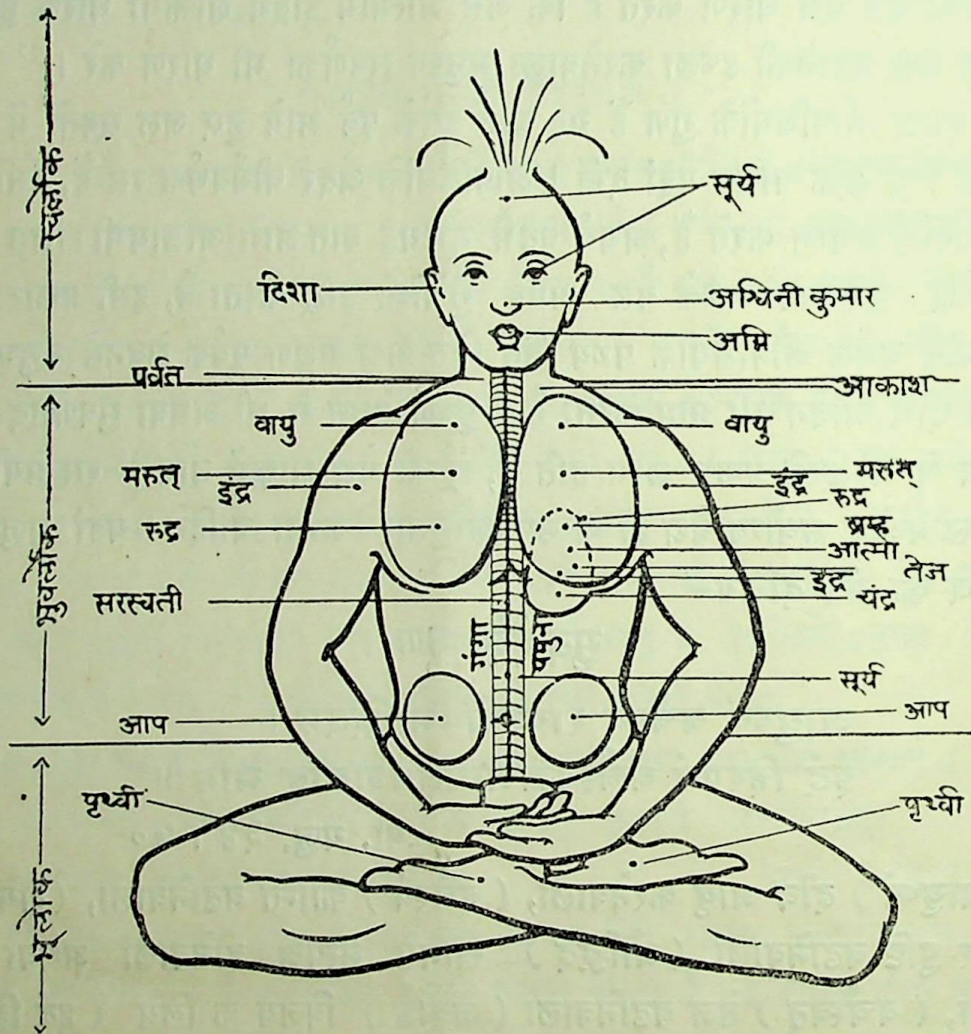
जगत् में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं। इनके स्थान इस चित्रमें बताये हैं। इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि बाह्य जगत् के अग्नि आदि देवों की सहकारिता के साथ शरीरके स्वास्थ्य का कितना घनिष्ट संबंध है।

शब्द " सुवर्णका शरीरमें घुस जाने " का भाव बताते हैं अर्थात् यह केवल शरीर पर धारण करनाही नहीं प्रत्युत अन्यान्य औषधियोंके रसोंके समान इसका अंदर ही सेवन करना चाहिये। शरीरपर सोनेका धारण करना और सुवर्णका अंदर सेवन करना, इन दोनों रीतियोंसे मनुष्य पूर्वोक्त गुण बढाने द्वारा अपना दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है। अब चतुर्थ मंत्र देखिये —

काली कामधेनुका दूध।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है—कालरूपी संवत्सरका (काली कामधेनुका) दूध जो ऋतुओंके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विश्वे देव आदि सब पूर्णतासे अनुकूल रहें।"

संवत्सर – वर्ष अथवा काल – यह एक कामधेनु है। काल संबंधी यह धेनु होनेसे इसको काली धेनु कहते हैं, यह इस लिये कामधेनु कही गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ ऋतुओंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकार के फल और फूल संवत्सर देता है, इस लिये वेदमें संवत्सर को पिताभी कहा है और यहां मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है। हरएक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, यही इस धेनुका दूध है। यह दूध हरएक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निचोडकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, यह अद्भुत अलंकार इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का आस्वाद यहां ले।

प्रत्येक मास में, प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक कालमें जो जो फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको मनन करने योग्य है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे ऋतुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंको लाभ पहुंचावे।

पूर्व मंत्रमें " (अपां वनस्पतीनां च वीर्याणि) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य " धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रने किया है। जिस ऋतुमें जो जल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस ऋतुमें उसका संग्रह करके, उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु, बल, तेज, कांति, शक्ति, वीर्य आदि गुण अपने में बढाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरण में लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्वीर्य, निःसत्त्व, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्यों का ही दोष है। पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेश को आचरण में नहीं ढालते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव भी मनन करने योग्य है। "इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनकूलतासे सहायता करें" अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके विना कौन मनुष्य कैसा उन्नतिको प्राप्त हो सकता है? अग्निही हमारा अन्न पकाता है, जलही हमारी तृषा शांत करता है, पृथ्वी हमें आधार देती है, बिजुली सबको चेतना देती हैं, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करने के हमारा सहायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं। इन के प्रतिनिधि हमारे शरीर में रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनांश हमतक पहुंचा रहे हैं। इस विषयमें इस के पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इस लिये यहां अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मन में आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इन की सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठाने की विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढा कर जगत् में यशस्वी होंगे।

यहां षष्ठ अनुवाक और

प्रथम काण्ड समाप्त।

प्रथम काण्ड का मनन।

थोडासा मनन।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं। इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहां देते हैं— जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभ दायक होगा—

अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वा	वाचस्पति	वर्चस्यगण	मेधाजनन
२	,,	पर्जन्य	अपराजितगण सांग्रामिक गण	विजय
३	,,	मंत्रोक्त(पृथ्वी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य)	——	आरोग्य
४	सिंधुद्वीपः	आपः	——	,,
५	,,	,,	——	,,
६	,,	,,	——	,,
		(इति प्रथमोऽनुवाकः)		
७	चातनः	इन्द्राग्नी	——	शत्रुनाशन
८	,,	अग्निः, बृहस्पतिः	——	,,
९	अथर्वा	वस्वादयः	वर्चस्य गण	तेजकी प्राप्ति
१०	,,	असुरो वरुणः	——	पापनिवृत्ति
११	,,	पूषा	——	सुखप्रसूति

(इति द्वितीयोऽनुवाकः)

*

१२	भृग्वंगिराः	यक्ष्मनाशन	तक्मनाशनगण	रोगनिवारण
१३	,,	विद्युत्	---	ईशनमन
१४	,,	यमो वरुणो वा	---	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वा	सिन्धु	----	संगठन
१६	चातनः	अग्नि, इन्द्र, वरुणः	शत्रुनाशन गण	शत्रुनाशन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ।)

१७	ब्रह्मा	योषित्	---	रक्तस्राव-दूरीकरण
१८	द्रविणोदाः	विनायक, सौभाग्यं	---	सौभाग्यवर्धन
१९	ब्रह्मा	ईश्वरः , ब्रह्म	सांग्रामिकगण	शत्रुनाशन
२०	अथर्वा	सोम	---	महान शासक
२१	,,	इन्द्रः	अभयगण	प्रजापालन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः)

२२	ब्रह्मा	सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः	---	हृद्रोग तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	---	कुष्ठनाशन
२४	ब्रह्मा	आसुरी वनस्पतिः	---	,,
२५	भृग्वंगिराः	अग्निः , तक्मा	तक्मनाशनगण	ज्वरनाशन
२६	ब्रह्मा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनगण	सुखप्राप्ति
२७	अथर्वा	इन्द्राणी	,,	विजयी स्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	,,	दुष्टनाशन

(इति पंचमोऽनुवाकः)

२९	वसिष्ठः	अभीवर्तमणिः	---	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्यगण	आयुष्यवर्धन
३१	ब्रह्मा	आशापालाः, वास्तोष्पतिः	वास्तुगण	आशापालन
३२	,,	द्यावापृथिवी	---	जीवनतत्त्व
३३	शन्ताति	आपः । चन्द्रमाः	शांतिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवल्ली	----	मीठा जीवन
३५	,,	हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः	---	दीर्घायु

(इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः)

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी अत्यंत आवश्यकता है इस लिये वे कोष्टक नीचे देते हैं—

ऋषि विभाग।

१ अथर्वा ऋषिः- १-३; ९-११; १५; २०, २१; २३; २७; ३०; ३४, ३५ इन चौदह सूक्तों का अथर्वा ऋषि है।

२ ब्रह्मा (किंवा ब्रह्म) ऋषिः-१७, १९, २२, २४. २६, ३१, ३२, इन सात सूक्तोंका ऋषि ब्रह्मा है।

३ चातन ऋषिः-७, ८, १६, २८ इन चार सूक्तोंका चातन ऋषि है।

४ भृग्वंगिरा ऋषिः- १२—१४; २५ इन चार सूक्तोंका भृग्वंगिरा ऋषि है।

५ सिंधुद्वीप ऋषिः-४—६ इन तीन सूक्तोंका सिंधुद्वीप ऋषि है।

६ द्रविणोदा ऋषिः- १८ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

७ वसिष्ठ ऋषिः— २९ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

८ शन्ताती ऋषिः—३३ वे एक सूक्तका यह ऋषि है।

इस प्रकार आठ ऋषियोंके देखे मंत्र इस काण्डमें हैं। यह जैसा ऋषियोंके नामसे सूक्त विभाग हुआ है, उसी प्रकार एक एक ऋषिके मंत्रों में किन किन विषयों का विचार हुआ है यह अब देखिये—

१ अथर्वा ऋषि—मेधाजनन, विजयप्राप्ति, आरोग्यप्राप्ति, तेजःप्राप्ति, पापनिवृत्ति, सुखप्रसूति, संगठन, राजशासन, प्रजापालन, कुष्ठरोगनिवृत्ति, विजयी स्त्री, आयुष्यवर्धन, मीठा जीवन, आयुष्य बलादिसंवर्धन।

२ ब्रह्माऋषि- रक्तस्राव दूरकरना, शत्रुनाशन, संग्राम, हृदय तथा कामिला रोग-दूरीकरण, कुष्ठनाशन, सुखवर्धन, आशापालन, दीर्घजीवन।

३ चातन ऋषिः—शत्रुनाशन, दुष्टनाशन।

४ भृग्वंगिरा ऋषिः—रोगनिवारण, ज्वरनाशन, ईशनमन, विवाह।

५ सिंधुद्वीप ऋषिः—जलसे आरोग्य।

६ द्रविणोदा ऋषिः— सौभाग्यवर्धन।

७ वसिष्ठ ऋषिः — राष्ट्रसंवर्धन।

८ शन्ताती ऋषिः— वृष्टि जलसे स्वास्थ्य।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन किन विषयोंका संबंध है यह देखना बडा बोध प्रद होता है। (१) सिंधुद्वीप ऋषिके नाममें "सिंधु" शब्द जल प्रवाह का

वाचक है और यही जल देवताके मन्त्रोंका ऋषि है। (२) चातन ऋषि के नामका अर्थात् "चातन" शब्दका अर्थ "हंकालना, घबरादेना, भगादेना, शत्रुको उखाड देना" है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है। इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। इसका विचार करना योग्य है।

सूक्तों के गण।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तों पर विचार किया था उन्होंने इन सूक्तों के गण बना दिये हैं। एक एक गणके संपूर्ण सूक्तों का विचार एक साथ होना चाहिये। ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है। इस प्रथम कांडके पैंतीस सूक्तों में कई सूक्त कई गणोंके अंदर आ-गये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं। जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अर्थ की दृष्टिसे हम अन्यगणोंके साथ पढ सकते हैं। इस प्रकार गणशः विचार करने से सूक्तों का बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये —

१ **वर्चस्य गण**- इसके सूक्त १, ९ ये हैं। तथापि तेज, आरोग्य आदि बढाने का उपदेश करनेवाले सूक्त हम इस गणके साथ पढ सकते हैं, जैसे — सूक्त ३ - ६, १८, २५, २६, ३०, ३१, ३४, ३५ आदि।

२ **अपराजित गण, सांग्रामिक गण**- इसके सूक्त २, १९ ये हैं तथापि इस-के साथ संबंध रखनेवाले अभयगणके सूक्त हैं, तथा राष्ट्र शासन और राज्य पालन के सब सूक्त इनके साथ संबंधित हैं, जैसे-सूक्त ७, ८, १५, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१, आदि।

३ **तक्मनाशन गण**- इस गणके सूक्त १२, २५ ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आंरोग्य वर्धक सूक्त इस गणके सूक्तों के साथ पढना चाहिये। जैसे सूक्त ३ - ६; १७, २२, २३, २५, ३३, ३५ आदि—

४ **स्वस्त्ययनगण** - इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं।

५ **आयुष्यगण** - इस गणके सूक्त ३०, ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण,

वर्चस्यगण, तक्मनाशनगण तथा शांतिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है।

६ शांतिगण – जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं।

७ अभयगण – इसका सूक्त २१ वां है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तक्मनाशनगण, चातनसूक्त ये हैं।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है।

अध्ययन की सुगमता।

कई पाठक शङ्का करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब काण्डोंमें क्यों दिये हैं? इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करने वालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बडा कष्ट हो जाता। अध्ययनकी सुविधा के लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं। अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढाये जाते हैं, इसका यही कारण है, कि पढने वालोंके मस्तिष्क को कष्ट न हो। सवेरेसे शामतक एक ही विषयका अध्ययन करना हो तो पढने पढानेवालोंको अतिकष्ट होते हैं। इस बातका अनुभव हरएकको होगा।

इस से पाठक जान सकते हैं कि वियमोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयों के सूक्त मिलेजुले दिये हैं।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वापर संबंध का अनुमान करने और पूर्वापर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो। यदि जलसूक्त प्रथम कांडमें आया हो, तो आगे जहां जल सूक्त आजायं वहां वहां इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये। इस प्रकार स्मरण शक्ति भी बढ सकती है। स्मरण शक्तिका बढना और पूर्वापर संबंध जोडनेका अभ्यास होना ये दो महत्त्व पूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं। दो प्र-पाठ-क" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। गुरुसे एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक प्र-पाठ-क होता है। इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढाई है। अथवा एक अनुवाक का एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथम काण्ड की पढाई छः पाठों की मानी जा सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और

एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढने पढानेवालोंको बडी रोचकता उत्पन्न हो सकती है।

आजकल इतनी पढाई नहीं हो सकती, यह बुद्धि कम होने या ग्राहकता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रबुद्ध विद्यार्थी के ही पढनेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रबुद्ध तथा अन्य शास्त्रोंमें कृतपरिश्रम उक्त प्रकार पढाई कर सकते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है।

अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता।

जो पाठक इस प्रथम कांडके सब मंत्रोंको अच्छी प्रकार पढेंगे और थोडा मनन भी करेंगे तो उनको उसीसमय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेद का उपदेश इस समय में भी नवीन और अत्यंत उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। सूक्त पढनेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठायेंगे। उपदेश की जीवितता और जाग्रतता इसी बात में पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे खडी हो जाती है।

वेद सब ग्रंथोंसे पुराने ग्रंथ होने पर भी नवीन से नवीन हैं और यही इनकी " **सनातन विद्या** " है; यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पढेगा उसको उसी अवस्थामें और उसी समय अपनी उन्नति का उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम कांडके सूक्त पढकर पाठक इस बातका अनुभव करें और वेद विद्याका महत्त्व अपने मनमें स्थिर करें।

ये उपदेश जैसे व्यक्तिके विषयमें उसी प्रकार सामाजिक, राष्ट्रीय और धर्म प्रचार के विषयमें भी सत्य और सनातन प्रतीत होंगे। इस समय जिनका उपयोग नहीं हो सकता ऐसा कोई विधान इसमें नहीं है। परंतु इन उपदेशोंका महत्त्व देखनेके और अनुभव करनेके लिये पाठकोंको इस काण्डका पाठ कमसे कम दस पांच वार मनन पूर्वक करना चाहिये।

व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्य के स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरोगता, बल, आयुष्य, बुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हरएक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेश

से लाभ उठा सकता है। आरोग्य वर्धन के वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठक सबसें अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंको ढालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्य वर्धन के उपायोंमें सारांशरूपसे इन उपायोंका वर्णन विशेष बलके साथ इस काण्डमें किया है—

१ जलसे आरोग्य— जलसे आरोग्य होता है, शरीरमें शांति, सुख, नीरोगता आदि प्राप्त होती है यह बतानेवाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद " दिव्य जल" अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होने वाले जलका महत्त्व बताया है वह कभी भूलना नहीं चाहिये। वृष्टिके दिनोंमें--जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी वृष्टि होती है— उन दिनोंमें इस जलका संग्रह हरएक गृहस्थी कर सकता है। जहां वृष्टि बहुत थोडी होती है वहांकी बात छोड ही जाय तो अन्यत्र यह जल सालभरके पीनेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु स्मरण रखना चाहिये कि घरके छप्पर पर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर खुले और बडे मुख वाला बर्तन रखकर उस में सीधी वृष्टिधाराओं से जल संगृहित करना चाहिये। अर्थात् ऐसा इंतजाम करना चाहिये कि वृष्टि जल की धाराएं सीधी अपने बर्तन में आजांय। बीचमें वृक्ष, छप्पर आदि किसी का स्पर्श न हो। इस प्रकारका इकठा किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोतलों में भर कर रखने से सालभर रहता है और बिगडता नहीं। यह जल यदि अच्छा रखा तो दो वर्षतक रहता है और इसका यह न बिगडने का गुण ही मनुष्य का आरोग्य वर्धन करता है।

उपवासके दिन इसका पान करनेसे शरीरके सब दोष दूर होते हैं। चौवीस घंटोंका उपवास कर के उस में जितना यह दिव्य जल पिया जाय उतना पीना चाहिये। यह प्रयोग हमने अजमाया है और हर अवस्थामें इस से लाभ हुआ है। इस प्रकारके उपवास के पश्चात् थोडा थोडा दूध और घी खाना चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये। हर दिन भी पीने के लिये इसका उपयोग करनेवाले बडा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसका नाम " अमरवारुणी का पान " है। इसी को " सुरा " भी कहते हैं। सुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परंतु प्राचीन ग्रथोंमें इसका अर्थ " वृष्टि जल " भी था। वरुण राजाका साम्राज्य मेघ मंडल में है और वही इस आरोग्य वर्धक वृष्टि जल को देता है। इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है।

वेदका यह आरोग्य प्राप्तिका सीधा, सुगम और व्ययके विना प्राप्त होनेवाला उपाय

यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बडा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें ।

आरोग्य साधनके अन्य उपाय ।

जलके पश्चात् आरोग्य साधनके उपाय जो वेदने बताये वे अब देखिये—

(२) तैजस तत्त्वोंसे आरोग्य – अग्नि, विद्युत् और सूर्य किरण ये तीन तैजस तत्त्व हैं । इनसे आरोग्य प्राप्त करने के विषयमें वेदमंत्रोंमें वारंवार उपदेश आता है। इन में से सूर्य प्रकाश का महत्त्व तो सबसे अधिक है, यहां तक इसका महत्त्व वर्णन किया है कि इसको प्राणदाता, जीवन दाता, इतना ही नहीं परंतु प्रत्यक्ष आत्मा भी कहा है । सूर्य प्रकाशसे आरोग्य और दीर्घ आयु प्राप्त होनेके विषयमें वेदका निश्चित और असंदिग्धं मत है । संपूर्ण आधुनिक शास्त्र भी आजकल इसकी पुष्टि कर रहे हैं ।

जिस प्रकार वृष्टि जल गरीबसे गरीब को और अमीर से अमीरको प्राप्त हो सकता है, उसी प्रकार सूर्य प्रकाश भी हरएक को प्राप्त हो सकता है । धनसे प्राप्त होने वाले आरोग्य साधक उपाय तो धनी लोगही प्राप्त कर सकते हैं, गरीबोंको उनसे कोई लाभ नहीं हो सकता । परंतु जो साधन वेद बता रहा है, वे उपाय गरीब को भी प्राप्त हो सकते हैं। यह इन साधनोंका महत्त्व देखें और इन उपदेशोंकी सचाई अनुभवमें लानेका यत्न करें ।

आजकल कपडे बहुत बर्ते जाते हैं इसलिये शरीरकी चमडी अति कोमल हो रही है। इस कारण व्याधियें शरीरमें शीघ्र घुसती हैं । जो लोग नंगे शरीर खेत आदिमें काम करते हैं उनको उतनी व्याधियां नहीं होतीं, जितनी कमरोंमें विविध तंग कपडे पहनने वाले बाबु लोगोंको होती हैं; इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके साथ संबंध होनेके कारण नीरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नानाकपडे पहननेके कारण कमजोर चमडी वाले बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं ।

रामायण महाभारत के समयमें रामकृष्णादि वीर अतिदीर्घ आयुवाले थे । ये वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढते थे । प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे । पाठक इनके वर्णन यदि पढेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजा-यगी कि सभाओंमें भी ये लोग केवल धोती पहन कर ही बैठते थे । इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाशका संबंध अच्छी प्रकार होजाता था । अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायु वाले और अति बलवान् थे । वह

साजीदगी इस समय नहीं रही है और इस समय बडी कृत्रिमता हमारे जीवन व्यवहारमें आगयी है, इसीका परिणाम हमारे अल्पायु दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है । पाठक वेदके उपदेशके साथ इस इतिहासिक बातकाभी मनन करें ।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुणा अधिक है । इतना होते हुएभी तंग गलियें, तंग मकान, अंधेर कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्योंकी संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रतिदिन आता है, तथापि हमारेलिये वह उतना लाभ नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पहुंचाने में समर्थ है। ये सब दोष मनुष्यकृत हैं । ऋषिजीवन का हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहांतक हो सके वहां तक यत्न करके वह साजीदगी हमारे खानपान, वस्त्राभूषण तथा अन्यान्य व्यवहारमें लानी चाहिये । वेदके उपदेशानुसार ऋषिजन अपना व्यवहार रखते थे, इस लिये ऋषि लोगोंको अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उसके बिलकुल उलटे जा रहे हैं, इस लिये मृत्युके वशमें हम अधिक हो रहे हैं ।

(३) **वायुसे आरोग्य**—सूर्य प्रकाशके समान ही वायुका महत्त्व है । यही प्राण बनकर मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरोंमें रहता है और इसीके कारण प्राणी प्राण धारण करते हैं। यदि वायु अशुद्ध हुआ तो मनुष्य रोगी होनेमें बिलकुल देरी नहीं लगेगी । यह बात सब लोग जानते हैं, मानते हैं और बोलते भी हैं; परंतु इसका पालन कितने लोग करते हैं, इसका विचार करनेसे पता लग जायगा कि, इस विषयकी मनुष्योंकी उदासीनता निंदनीय ही है । खुली वायु और खुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंको पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है,परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसा हो सकता है ?

वृष्टिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढाने वाले बताये हैं और आजकल के शास्त्रभी इस बातकी पुष्टि कर रहे हैं, इतनाही नहीं परंतु युरोप अमरिकामें जहां शीत अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहां आरोग्य वर्धन के लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब नंगा रहना आवश्यक माना गया है । जिन लोगोंने तंग कपडे पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं, यह देख कर हमें वेदकी सचाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है । विना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सचाईका इस प्रकार ग्रहण कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वेद का अध्ययन करेंगे,

उन वेद मंत्रोंके उपदेशको अपने आचरण में ढालेंगे, और अनुभव लेने के पश्चात् अपने धार्मिक जीवनसे उस सचाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत् में इस सचाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इस लिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजकता के लिये न करें, केवल पारलौकिक भावनासे भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार ढाला जा सकता है; इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब इसके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

राष्ट्रीय जीवन।

जैसी वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशकी उपयोगिता है, उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के लिये भी वेदके उपदेश अति मनन करने योग्य हैं। यह विषय आगेके कांडोंमें विशेष रीतिसे आनेवाला है, और वहांही इसका अधिक निरूपण होगा। इस प्रथम कांडके भी राष्ट्र विषयक मंत्र बडे ओजस्वी और अत्यंत बोध प्रद हैं।

उनत्तीसवें सूक्तमें "राष्ट्रके लिये मुझे बढाओ," तथा "राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे" इत्यादि ओजस्वी उपदेश हरएक समयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं। राष्ट्रीय दृष्टिसे यह वासिष्ठ सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आगये हैं उन सब का यहां विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उस उस सूक्तके प्रसंगमें ही विशेष बातका दिग्दर्शन किया है। इसलिये उसको दुहराने की यहां कोई आवश्यकता ही नहीं है। पाठक इस कांडका वारंवार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जांयगी, जो ऊपरके विवरणमें लिखी नहीं हैं। वेदका अर्थ जाननेके लिये मनन ही करना चाहिये।

आशा है कि पाठक मनन पूर्वक इस कांडका अभ्यास करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुभव में आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी भलाई के लिये करेंगे। इस प्रकार करने से सब का ही भला हो जायगा।

निवेदक

विजया दशमी
आश्विन सं० १९८४

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध जि० सातारा

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

प्रथमकाण्डकी विषय-सूची ।

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग मू. १)

द्वितीय भाग मू. ॥।)

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

REGISTERED. No 1463

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक १२

क्रमांक ९६

मार्गशीर्ष

संवत् १९८४

दिसंबर

सन १९२७

वार्षिक मूल्य— म० आ० से ४) वी. पी. से ४॥) विदेशके लिये ५)

विषय सूची।

[चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है।]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४)

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७)

प्रतिभाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है।

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक-लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

५ एकादश भाग।

इस भागमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासों का विचार किया है॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष ८
अंक १२
क्रमांक ९६

मार्गशीर्ष
संवत् १९८४
दिजंबर
सन १९२७

वैदिक धर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

गौ देवोंका खजाना है।

—:o:—

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥

अथर्व वेद १२।४।२९

" (वशा) गौ (बहुधा चरन्ती) बहुत प्रकार से घूम रही है, यह गौ (देवानां निधिः) देवों का खजाना ही है। (यदा) जब यह अपने (स्थाम जिघांसति) स्थानपर आना चाहती है उस समय (रूपाणि) अपने रूपोंसे विविध भाव प्रकट करती है।"

घास खानेके लिये गौ आनंदसे स्वेच्छासे बहुत घूमती है। यह गौ साधारण पशु नहीं है, परंतु यह देवताओं का अमूल्य खजाना ही है। जब यह जंगल से वापस आना चाहती है उस समय वह अपनी इच्छाके दर्शक मनोभाव अपने चाल चलनसे दर्शाती है। ऐसी यह प्रेममयी देवताओंकी मूर्तिही है। इसलिये इसका सत्कार करना हरएक का आवश्यक कर्तव्य है।

—o—

गोमेध ।

(गतांकसे आगे)

वीर लोग गौओंको साथ लेकर समुद्रके पार जा कर वहां पराक्रम करें इस विषयका संकेत निम्न लिखित मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं--

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद्गंधर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४॥
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥
अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कंदद्वशे त्वा ॥ १६ ॥
तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७॥

" (देवी वशा) दिव्य गौने (तं सोमं) उस सोमको (त्रिषु पात्रेषु आहरत्) तीन बर्तनोंसे उस यज्ञमें लाया जहां (हिरण्यये बर्हिषि) सुवर्णके आसनपर दीक्षित हो कर अथर्वा बैठा था ॥ १२ ॥ सोमके साथ तथा सब पांववालों के साथ होकर तथा (कलिभिः गंधर्वैः) वह युद्धप्रिय वीर गंधर्वों के साथ (वशा) गौ समुद्रपर विजयके लिये चली ॥ १३ ॥ वह वायुके साथ और सब (पतत्रिभिः) पंखवालोंके साथ होकर ऋचा और सामोंको धारण करती हुई (वशा) गौ समुद्रपर (प्रानृत्यत्) नाचने लगी ॥ १४ ॥ वह सूर्यके साथ और सब आंखवालोंके साथ होकर विविध ज्योतियोंको धारण करती हुई (भद्रा वशा) कल्याण करनेवाली गौ (समुद्रं अख्यत्) समुद्रका निरीक्षण करने लगी ॥ १५ ॥ हे (ऋतावरि) सीधे आचारवाली गौ ! जब तू (हिरण्येन) सुवर्णके आभूषणों से सुभूषित हो कर खडी हुई तब समुद्र घोडा बना और उसने अपने पीठपर तुझे उठाया ॥ १६ ॥ वहां उस यज्ञमें ये तीनों कल्याण करनेवाली इकट्ठी मिली- १ (वशा) गौ, २ (देष्ट्री) आदेश करनेवाली और ३(स्वधा) अपनी धारक शक्ति। जहां दीक्षित होकर अथर्वा सुवर्णमय आसनपर यज्ञके मध्यमें बैठता है ॥ १७ ॥ "

पूर्वोक्त प्रकार आलंकारिक कथाके रूपमें इन मंत्रोंका भावार्थ अब लिखते हैं जिससे इन मंत्रोंमें कही बात पाठकोंके ध्यानमें अतिशीघ्र आजायगी-

" यज्ञमें अथर्ववेद जाननेवाला ऋत्विज होता है वह गौके दूध के साथ सोमरस को तीन बर्तनों में रखकर ले आता है और सबको पिलाता है। ऐसे याजकों के साथ और सोम आदि वनौषधियां साथ लेकर गंधर्व वीर अपने सब सैनिकोंको संग लेकर विजय करनेके लिये समुद्र परसे चले, उनके साथ गौवेंभी बहुत सी थीं ॥ जिन नौकाओं में बैठकर यह गंधर्व सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये चली थी उन नौकाओं को वायुके द्वारा चलने वाले पंखोंसे चलाया जाता था। इसी नौकामें ब्राह्मण लोग यज्ञ करते थे, ऋचाओं को बोलते थे और सामगायन भी करते थे, वहां गौएं तो आनंदसे नाचती थी ॥ गौओंको साथ रखते हुए नौकाओं में बैठे हुए सब लोगोंने सूर्य प्रकाशके उजाले के साथ अपने आंखोंसे ही संपूर्ण समुद्रको तथा आसपासके सब दृश्यको देखा ॥ इस समय गौवें सुवर्णके भूषणों से सजी हुई थीं, मानो समुद्रका ही घोडा बनाकर उस घोडेकी पीठपर सब गौवें सवार होकर चली थीं ॥ वहां जो यज्ञ किया उसमें अथर्व वेदका ज्ञानी

दीक्षित होकर यज्ञ करता था, इस यज्ञमें तीनोंका बडा संगठन हुआ था (वशा) गौका पालन करने वाले वैश्य, (देष्ट्री) आदेश देनेवाले अर्थात् हुकुमत करनेवाले क्षत्रिय वीर, तथा (स्वधा) अपनी आत्मिक शक्तिका धारण करनेवाले ब्राह्मण ॥ ''

पाठक यदि पूर्वोक्त शब्दार्थको इस भावार्थके साथ साथ पढेंगे तो उनको मंत्रोंका आशय शीघ्रही समझेगा। हमारे प्रचलित गोरक्षा विषय के साथ इन मंत्रोंके आशयका बहुत कुछ संबंध है। वीर लोग भूमिपर युद्ध करनेके लिये जिस समय जावें उस समय दूध पीने के लिये गौवें साथ रखें यह बात पूर्व स्थलमें बता दी है। यहां यह बात बतानी है कि समुद्रमें नौका द्वारा भी देशदेशांतरोंमें विजय प्राप्त करने या अन्य काम काज केलिये जाना हो तो साथ गौवोंको ले जावें, उनके लिये पर्याप्त घास साथ रखा जावे। तथा साथ याजक ब्राह्मण, गोपालक तथा व्योपार करनेवाले वैश्य रहें और इस प्रकार त्रैवर्णिक अपना संगठन करते हुए देश देशांतरमें संचार करें और अपना यश जगत् में फैला दें।

इसमें समुद्रका घोडा बनानेकी कल्पना है। नौका से इधर उधर आने जानेवाले समुद्रका ही घोडा बनाते हैं यह बात स्पष्ट ही है। इन मंत्रोंमें यज्ञ द्वारा त्रैवर्णिकोंका संगठन करनेकी कल्पना विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन शब्दोंको न लिखते हुए उनके कर्मोंको लिखा है। ब्राह्मण स्वाहा-स्वधा आदिका उच्चारण करते हुए हव्य कव्य करते रहते हैं, क्षत्रिय वीर आदेश देते हैं. हुकुमत करते हैं और वैश्य गौका पालन, कृषि और व्योपार करते हैं। ये तीनों व्यवसाय यज्ञसे संगठित हों, अर्थात् ये तीनों व्यवहार करनेवाले लोग परस्पर सहकार्य करते हुए उन्नतिको प्राप्त हों यह उक्त मंत्रोंका आशय है। गो रक्षा करते हुए अपनी उन्नति करनेका महत्त्व पूर्ण कार्य यही है। ये सब मंत्र गोमेध सूक्तके हैं, इससे पाठक जान सकते हैं कि गोमेध का तात्पर्य वास्तवमें क्या है और आज कल कैसा समझा जाता है।

*

गौ सबकी माता।

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकों के मन में यह बात आगई होगी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिकों के संपूर्ण हलचलोंका केन्द्र गौ ही था। सब लोग गौ का ही मान करते थे। ब्राह्मण लोग यज्ञ में गौका सत्कार करते थे, क्षत्रिय लोग युद्धादि कों के अंदर भी अपने साथ गौओंको रखते और पालते थे, वैश्य तो पशुपालन करते ही थे और खेतीद्वारा उनको पुष्ट करते थे। जिस प्रकार अपनी माता सबको पूजनीय होती है उसी प्रकार गौमाता भी सबको पूजनीय ही थी इसी का स्पष्ट बोध करने के लिये निम्न लिखित मंत्रमें कहा है—

> वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
> वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥

" (वशा) गौ क्षत्रिय की माता है, हे (स्वधे) आत्मिक शक्ति वाले ! तेरी भी माता यह गौ है। यज्ञ मानो गौकाही एक शस्त्र है, इसीसे जनतामें चेतना हुई है।"

क्षत्रिय लोगोंकी माता गौ है, इस लिये क्षत्रियोंको भी यह गौ पूजनीय है, फिर वे इस मातृवत् पूजनीय गौका वध कैसा कर सकते हैं और अपनी ही माता का वध करके उसके मांसका सेवन कैसा कर सकते हैं ! आत्म शक्तिका धारण करने वाली स्वधावाली ब्राह्मण जाती की भी माता गौही है। इसलिये ब्राह्मणोंको भी गौ मातृवत् पूज्य है इस कारण ब्राह्मण भी गोवध कर नहीं सकते और नाही गोमांस खा सकते हैं। कृषि गोरक्षा करने वाले वैश्य तो स्वकर्तव्य से ही गोरक्षक हैं, वे तो कभी गोवध कर नहीं सकते। अर्थात् इस प्रकार त्रैवर्णिक आर्य गौको माता मानते हैं, इसलिये इनसे गोवध होना सर्वता असंभव है।

कई लोग यहां शंका करेंगे कि इस सूक्तके मंत्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का उल्लेख करके उनकी माता गौ है ऐसा कहा है, परंतु शूद्र का उल्लेख इस में नहीं है। इस लिये गौ शूद्र की माता नहीं है तो क्या शूद्र गौका मांस खा सकता है ? इस विषय

विस्तारपूर्वक कहनेके लिये यहां स्थान नहीं है, परंतु संक्षेपसे इतना कहना आवश्यक है कि इस समय में भी गाय बैल आदि के मृत शरीरके मांस को खानेवाली जातियां अंत्यजों में हैं। इसी लिये उनको "वृष-ल" अर्थात् "बैलके शरीर को काटने वाली जाती" कहा जाता है। वृषल शब्द इसी जातीका वाचक है, परंतु पश्चात् यह शब्द "धर्म हीन" का वाचक माना गया और सब धर्म-हीन शूद्रों के लिये बर्ता जाने लगा। वास्तवमें मृत गौ अथवा मृत बैल के शरीर को काटकर उस मुर्देका मांस खानेवाले अन्त्यज अथवा पंचमों का वाचक यह "वृष-ल" शब्द है। जो लोग इस प्रकारके मांसभक्षण त्याग देते थे और त्रैवर्णिक द्विजों के साथ रहना पसंद करते थे उनकी गिनती सच्छूद्रोंमें होती थी और वे गोरक्षक बन कर त्रैवर्णिक आर्योंके सत्संगमें संमिलित होते थे। परंतु जिन्होंने गोमांसभक्षण नहीं छोडा वे इस समय तक बहिष्कृत रहे हैं। सच्छूद्र और असच्छूद्र में यह भेद है। इस लिये आर्योंके चातुर्वर्ण्य में जो संमिलित हुए, वे चतुर्थ वर्णवाले शूद्र भी त्रैवर्णिक आर्योंके समान गौरक्षक ही हुए थे और इस समय तक वैसे ही गोरक्षक हैं। परंतु जिन्होंने मृत गौ-मांसभक्षण नहीं छोडा, वे इस समय तक अंत्यज बहिष्कृत ही रहे हैं। पाठक इससे जान सकते हैं कि वैदिक धर्म में गोरक्षा के विषयमें कितनी विशेष तीव्र भावना है और यह कितनी प्राचीन कालसे चली आयी है।

इस मंत्रमें "वशा गौका आयुध यज्ञ है," ऐसा कहा है। इससे भी सिद्ध होता है कि यज्ञ का उपयोग करने वाली गौ है। "शूर का यह आयुध है।" ऐसा कहने से उस आयुध के लिये शूरका वध करना चाहिये ऐसा कोई मानता नहीं, क्यों कि वैसा मानना अयोग्य है। आयुध का उपयोग शूरवीर करते हैं। इसी प्रकार यज्ञरूपी आयुधका उपयोग गौ करती है, यज्ञ में अपना दूध, घी आदि अर्पण करके देवोंतक पहुंचाती है। इस लिये यज्ञमें गोवध अभीष्ट नहीं है यह बात इस वचनसे भी स्पष्ट हो जाती है।

"यज्ञ से जनतामें चेतना उत्पन्न हुई" यह कथन मनन करने योग्य है। जनतामें राष्ट्रकर्तव्यों की जाग्रती यज्ञके कारण उत्पन्न हुई, जनतामें संगठन हुआ, जनताका एकीकरण हुआ, सब मिलजुलकर रहने लगे और सब लोग संघकी भलाई करनेमें तत्पर हुए यह यज्ञका कार्य इस मंत्र भागमें वर्णन किया है। यज्ञ का यही महत्त्व है। यज्ञसे बहुत लाभ होते हैं उन में यह एक है। यहां इस लेख में यज्ञ का महत्त्व बतानेके लिये हमारे पास स्थान नहीं है इसलिये यह विषय यहां ही छोड देते हैं और प्रस्तुत सूक्तके आगेके मंत्र देखते हैं—

> ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरत् ब्रह्मणः ककुदादधि।
> ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥
> आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे।
> पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥
> ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव।
> आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥
> यदुदरं वरुणस्यानु प्रविशथा वशे।
> ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत्तव ॥२२॥

"ब्रह्मकी उच्च शक्तिसे एक बिंदु ऊपर चढा, उससे हे गौ! तू उत्पन्न हो गई है। उसके पश्चात् होता अर्थात् तुझे बुलाने वाला भी उत्पन्न हुआ ॥१९॥ तेरे मुख से गाथाएं उत्पन्न हुई और हे गौ! तेरे गले के स्थानसे बल हुआ। पेटके स्थानसे यज्ञ बना और स्तनोंसे किरण बने हैं ॥ २० ॥ आगेके पांवोंसे और पीछली जंघाओंसे (अयनं जातं) गति उत्पन्न हुई है, आंतोंसे भक्षक बने और उदर से वनस्पतियां उत्पन्न हो गई ॥ २१ ॥ हे गौ! जब तूने वरुण के उदर में प्रवेश प्राप्त किया, तब वहां ब्रह्माने तुझे बुलाया और वही (तव नेत्रं) तेरा मार्गदर्शक हो गया ॥ २२ ॥

इन चार मंत्रोंमें केवल गौका महत्त्व वर्णन किया है। ब्रह्मा के परम उच्च शक्ति से गौकी उत्पत्ति प्रथम मंत्रमें कही है। यहां गौ शब्दका श्लेष है। गौ शब्द का अर्थ गौभी है, और वाणी भी है वह यहां अपेक्षित है। ब्रह्म की तथा आत्मा की प्रेरणासे वाणी की उत्पत्ति होती है, इसलिये वाग्रूपी गौ ब्रह्मकी

शक्तिसे जन्म लेती है। इसी प्रकार दुग्धरूपी जीवन-रस देनेवाली गौ ब्रह्म की जीवनशक्ति अपने में लाती है और दुग्धद्वारा हमें अर्पण करती है। इत्यादि आशय यहां समझना योग्य है। गाथा आदि उत्पन्न होनेका वर्णन जो अगले मंत्रमें है वह भी वाग्रूपी गौसे ही समझना योग्य है, क्यों कि गद्यपद्य वाङ्मय वाणीके स्तनोंसे ही निचोडा जाता है। गौ और वाणीका मिलाजुला वर्णन इन मंत्रों में है वह बता रहा है कि वाणीके समान यह गौभी अध्यात्म-शक्तिसे युक्त है, इसलिये गौका महत्त्व विशेष है।

इन मंत्रोंकी कई बातें विशेषसंकेतसे किसी सूक्ष्म बातका वर्णन कर रही हैं, परंतु वह बात विशेष विचार करनेपर भी हमारे समझमें अभी तक नहीं आई। यदि किसी पाठक के मनमें ये मंत्र विशेष खुल गये हों तो वह हमें बतावें। परन्तु इतनी बात सत्य है कि ये मंत्र गौकी श्रेष्ठता का वर्णन कर रहे हैं और उसका विशेष महत्त्व प्रदर्शित कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें गोवध या गोमांसका हवन आदि बातें कुछ भी नहीं हैं। मातृवत् पूजनीय गौ है और उस में ब्रह्मसे जीवन शक्ति आकर रहती है। इस लिये सबको गौका योग्य आदर करना चाहिये यह इस वर्णन का तात्पर्थ है। आगेके चार मंत्रों में भी इसी प्रकार गौका महत्त्व वर्णन किया है और ज्ञानी पुरुष ही गौका दान लेवे ऐसा सूचित किया है। ये मंत्र अब देखिये-

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बंधुः ॥ २३ ॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥२४॥
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत्।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह॥ २५॥

वशामेवाऽमृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुरा पितर ऋषयः॥ २६ ॥

य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात्।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद्दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७॥

तिस्रो जिह्वावरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।
तासां मध्ये या राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥

" जो (अ-सू-स्वः) जन्म नहीं देता उससे उत्पन्न होने वाले गर्भ को देखकर सब (अवेपन्त) कांपने लगे। (स-सूव इति तां आहुः) उसने जन्म दिया ऐसा उसे वे कहते हैं (वशा इति) वही वशा गौ है। यह (ब्रह्मभिः क्लप्तः) मंत्रोंसे समर्थ हुई है (स हि अस्याः बंधु) वही उसका बंधु या संबंधी है॥ २३ ॥ (एकः युधः संसृजति) वह अकेला ही युद्ध करता है जो इस गौ को अकेला ही वश में रखनेवाला है। (यज्ञाः तरांसि अभवन्) यज्ञ वेगवान अर्थात् सर्वत्र विजयी हो गये और (वशा) वशा गौ हो सब (तरसां चक्षुः) हलचलोंका आंख बनी है ॥ २४ ॥ (वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात्) गौ ने यज्ञका स्वीकार किया है, (वशा सूर्यं अधारयत्) गौ ने सूर्यका धारण किया है। (ब्रह्मणा सह) मंत्रों के साथ (ओदनः) चावल (वशायां अंतः अविशत्) वशा गौ के अंदर प्रविष्ट हुआ है ॥ २५ ॥ (वशां अमृतं आहुः) गौ को अमृत कहते हैं तथा (वशां मृत्युं उपासते) गौ को मृयु समझकर भी उसकी उपासना करते हैं। देव, मनुष्य, असुर, पितर, ऋषि (इदं सर्वं वशा अभवत्) यह सब गौ ही बन गई है ॥ २६ ॥ (यः एवं विद्यात्) जो यह जानता है वह (वशां प्रतिगृह्णीयात्) गौका दान लेवे। (तथा हि) इसी प्रकार (सर्वपात् यज्ञः) संपूर्ण यज्ञ (अनपस्फुरन्) अविरोधसे (दात्रे दुहे) दाताके लिये फलीभूत होता है ॥ २७॥ वरुण के मुखमें चमकने-वाली तीन जिह्वाएं हैं। (तासां मध्ये या विराजति) उनके बीचमें जो प्रकाशती है वह (सा वशा) गोही है इसलिये यह गौ (दुष्प्रतिग्रहा) दान लेना कठिन है ॥ ३८ ॥

ये मंत्र कई कारणोंसे विशेष मनन करने योग्य हैं। यद्यपि इन मंत्रों में भी कई दुर्बोध स्थल हैं तथापि गोवध की जो मुख्य बात इस लेख में विचारणीय है उस विषयके सब विधान इन मंत्रों में स्पष्ट हैं। तेइस वे मंत्र में " असूसु और ससू " ये दो शब्द

हैं। " अ-सूसु " का अर्थ है संतान उत्पन्न न करना अर्थात् वंध्या होना। और " स-सू " का अर्थ है संतान उत्पन्न करना। मनुष्यों में क्या और पशुओं में क्या स्त्रियों के दो भेद होते हैं। एक वंध्या स्त्री और दूसरी संतानोत्पत्ति में समर्थ। पाठक विशेष ध्यानसे यह मंत्र देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस में—

" ससूव हि तामाहुः वशेति "

यह मंत्रभाग है जिसका अर्थ " जो वशा है वह संतान उत्पन्न करने में समर्थ है " ऐसा होता है। जो लोग गोमेध में वंध्या वशा गौका वध करके उसकी मांसाहुतियोंसे हवन करने की कल्पना मानते हैं उनका तो यह मंत्र खंडन कर रहा है। क्यों कि इसमें " वशा ससूव " अर्थात् " प्रसूत होनेवाली वशा गौ " कहा है। क्या कभी वंध्या भी प्रसूत होती है। इसके पूर्व वशा गौके दूधका भी वर्णन आया है। वंध्या गौका दूध किसीने पिया है? ये सब प्रमाण सिद्ध कर रहे हैं कि गोमेध के इन दो सूक्तों में जो वशा शब्द आया है उसका अर्थ " वंध्या गौ " नहीं है। किसीको भी इस विषयमें शंका न हो इसलिये इस मंत्रने स्वयं वशा का अर्थ बताया कि (ससूव हि तां वशा इति आहुः) बच्चा पैदा करनेवाली गौका नाम ही वशा गौ है। अस्तु। इस प्रकार अपना ही अर्थ स्वयं प्रकट करनेके कारण इस विषयमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। जो " असूसु " अर्थात् प्रजा उत्पन्न न करनेवाला है वह इसका (बंधुः) भाई अथवा संबंधी अर्थात् वह बैल है। ये अर्थ देख कर कोई भी ऐसा न समझे कि गोमेध के सूक्तों में "वशा" का अर्थ "वंध्या" गौ है।

जो बैल होता है वह (एकः युधः संसृजति) अकेलाही युद्ध करता रहता है। परिपुष्ट बैल युद्ध करते हैं यह बात सबने देखी ही होगी। यह बैल इस गौको (वशी) वश में रखनेवाला है। इस योग्य बैल का उत्तम गौसे संमेलन करना एक प्रकार का " यज्ञ " ही है। इस प्रकार का गौसे बैल का संमेलन करना गोमेध का एक भाग है। इससे संतान उत्तम होती है और दूध भी उत्तम होता है। यह यज्ञ जब प्रथम शुरू हुए तब वे (यज्ञाः तरांसि अभवन्) वेगसे फैले, क्यों कि इन यज्ञोंसे जनता का लाभ होता था, इस लिये सब जनता का मन इन गोमेधोंकी ओर आकर्षित हुआ। परंतु (तरसां चक्षुः वशा अभवत्) वेगसे फैलने वाले यज्ञों की आंख वशा गौ ही बन गई। अर्थात् इन सब वेगसे फैलनेवाले यज्ञोंका एकमात्र यही उद्देश्य था कि उत्तमसे उत्तम गौ उत्पन्न करना।

गोमेध में गोदान होता है यह बात इससे पूर्व कई वार कही गयी है; अब यहां गौकी उत्तम संतान पैदा करना भी गोमेध का एक भाग बताया है। पाठक ही विचार करें कि ऐसे प्रसंगोंमें गौका वध करनेके लिये स्थानही कहां है। जो गोमेधमें गोवध की कल्पना करते हैं उनको गोमेध का वास्तविक तात्पर्य ही नहीं समझा यह बात यहां निश्चित रूपसे सिद्ध हो गई है।

आगे २५ वे मंत्रमें कहा है कि उक्त प्रकार के यज्ञ का स्वीकार (वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात) वशा गौने किया है। अर्थात् उक्त प्रकारके यज्ञसे वशा गौ सब जगत्का धारण कर रही है यहां तक उसका फैलाव हुआ है कि वह गौ मानो (वशा सूर्यं अधारयत्) सूर्यको धारण कर रही है। अर्थात् जो सूर्य काभी धारण करती है वह हम जैसे मनुष्योंका धारण करती है इस में क्या संदेह है ? (ब्रह्मणा सह ओदनः) ब्रह्मके साथ अर्थात् प्रार्थना मंत्रके साथ अन्न वशा गौके शरीरमें जाता है। अर्थात् मंत्रोंसे परिशुद्ध अन्न वशा गौ खाती है और अपने पवित्र अमृतरूपी दूधसे मनुष्य मात्रका धारण करती है। यहां यज्ञशेष प्रसाद रूपी अन्न गौ खाती है ऐसा कहा है। यज्ञ-शेष अन्न यजमान ऋत्विज तथा अन्य सज्जन खाते हैं, उसका थोडा अवशेष गौको भी दिया जाता है। यहां यज्ञशेष अन्न खानेका अधिकार गौका भी है यह बात विशेष महत्त्व रखती है, क्यों कि इससे गौका अधिकार यजमान और ऋत्विजों के बराबरीका हो जाता है। कई अन्य प्रमाणोंसे भी यह बात सिद्ध की जा सकती है, परंतु यहां तो यह बडा ही परिपुष्ट प्रमाण मिला है। मंत्र के द्वारा पुनीत हुआ अन्न यज्ञमें

डाला जाता है, यज्ञशेष अन्न प्रसाद रूप मान कर यजमान, ऋत्विज आदि भक्षण करते हैं, इसी प्रकार उसका अंश गौको दिया जाता है। जहां गौका अधिकार ऋत्विजों के जितना माना है वहां उसी गौका वध करके उसके मांस का हवन करनेकी कल्पना संभवनीय भी कैसी मानी जा सकती है, इसका पाठक ही विचार करें और ऐसी अशुभ कल्पनासे पाठक सदा दूर ही रहें।

आगे छब्बीसवे मंत्रमें (वशां अमृतं आहुः) वशा गौ को अमृत कहते हैं, ऐसा कहा है वह बडा मनन करने योग्य है। वशा गौ अमृत भी है (वशां मृत्युं उपासते) और गौ मृत्यु भी है। यह अमृत किस समय होती है और मृत्यु किस समय होती है यह विचारणीय बात है। यह वशा गौ पूर्वोक्त प्रकार यज्ञमें सत्कार करनेसे अमृत रूप होकर कृपा करती है और उससे क्रूरताका संबंध करनेसे वही मृत्यु रूप होकर क्रूरता का व्यवहार करनेवालेका नाश करती है। इस प्रकार यह एक ही गौ अमरत्व देनेवाली और मृत्यु देनेवाली होती है। जिस समय घर घरमें गौ माताकी पूजा होती थी उस समय इस देश के लोग बडे दीर्घायु होते थे, परंतु अब घर घरमें गौ की पालना बंद होगई है और चारों ओर गौका घातपात शुरू है, इस लिये वही गौ भारतवर्षी लोगों के लिये मृत्युरूप हो रही है। पाठक इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव देखें और अपना कर्तव्य जानें। देव, पितर, मनुष्य, असुर, राक्षस ऋषि सब केलिये गौसे लाभ प्राप्त होता है, सब ही उसके दूधसे पुष्ट होते हैं, इसलिये मंत्रमें कहा है कि (वशा इदं सर्वं अभवत्) वशा गौ ही इस सब मनुष्य देव आदिकों के रूपमें परिणत हुई है। अर्थात् गौके दूध पीने से ही इनकी पुष्टि होती है, इस लिये सबको ही यह गौ अपनी माता मानना चाहिये।

आगे सताइसवे मंत्रमें कहा है कि (यः एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात्) जो ये सब बातें जानता है वही वशा गौका दान लेवे जिसको यह ज्ञान नहीं है वह गौका दान न लेवे। जो ऐसी गौ उत्तम ज्ञानी ब्राह्मण को दान देता है उस दानीको वह " दान यज्ञ " सब रीतिसे फलीभूत होता है। उसका यश फैलता है और अनेक प्रकार से उसका लाभ होता है।

वरुण की तीन जिह्वाएँ।

अठाईस वे मंत्र का विधान (वशा दुष्प्रतिग्रहा) " गौ का दान लेना अत्यंत कठीन है, " हरएक मनुष्य गौका दान नहीं ले सकता, विशेष ज्ञानी अधिकारी पुरुष ही ले सकता है, इत्यादि आशय व्यक्त कर रहा है। यह विधान सुसंगत ही है क्यों कि गौ दान लेनेके अधिकारीके लक्षण इस से पूर्व बताये गये हैं, उनसे भी यही सिद्ध होता है। इस मंत्रमें वरुण के मुख का वर्णन है, वरुण शासक देवता है। वरुण के पाश आदि वेद मंत्रोंमें अनेक-बार आते हैं। अपराध का योग्य दण्ड देना इसके आधीन है, कोई अपराधी इसके दण्डसे विना सजा पाये छूट नहीं सकता। ऐसे धर्मशासक देवताके मुखकी मध्य जिह्वा गौ है ऐसा कहने मात्रसे उस गौ का रक्षण करना चाहियें यह बात निःसंदेह सिद्ध होगी। पुलिस कमिशनर की गौ का वध करने की अपेक्षा भी वरुणदेव की जिह्वा रूपी गौका काटना अधिक भयप्रद निःसंदेह है। वरुणदेव के मुखमें तीन जिह्वाएं हैं -- (१) एक वाणी, (२) दूसरी गाय और (३) तीसरी भूमि। इन तीनों के लिये वेदमें " गौ " यह एकही नाम है और तीनोंका संबंध जिह्वासे ही है। वाणी तो जिह्वासे संबंधित ही है, " जबान " ही उसको कहते हैं, यह वरुण की पहिली जिह्वा है। अमृत रूपी दूध देनेवाली जिसके अमृत रस का स्वाद जिह्वा ले सकती है यह वरुण की बीच की जिह्वा गौ ही है, जो गौका दूध पीते हैं वे इसका स्वाद जानते ही हैं। वरुण की तीसरी जिह्वा भूमि है, यह भी षड्रस अन्न देती है जो जिह्वासे खाया जाता है। इसप्रकार वरुण की ये तीन जिह्वाएं हैं जिनका नाम " गौ " है और जिनके रसोंका संबंध जिह्वाओंके साथ ही है। ये तीनों जिह्वाएं सुरक्षित रखनी चाहिये। इनके सुरक्षित रखनेसे लाभ और अरक्षित रखनेसे हानि होती है। देखिये- वाणी का संयम न किया, जिस

प्रकार चाहे शब्द प्रयोग शुरू किया, तो जगतमें झगडे पैदा होते हैं और अनर्थ होते हैं। भूमि का संरक्षण नहीं किया तो देश और राष्ट्रकी परतंत्रता होकर विविध कष्ट होते हैं, उनका अनुभव पराधीन देशवासी जनोंको है। गाय का रक्षण नहीं किया तो अशक्तता अल्पायुता आदि होना स्वाभाविक ही है। इससे वरुण की ये तीन जिह्वाएं हैं, इनको सुरक्षित रखना चाहिये, इस वेदके कथन का महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। इनके बीच में (तासां मध्ये वशा) जो गौ रूपी मध्य जिह्वा है उसका महत्त्व विशेषही है। वाणी रूपी वरुणकी जिह्वा तो प्रायः हरएक मनुष्यको मिली है, थोडे ही गूंगे हैं कि जो इसका दुरुपयोग करनेके कारण इसके उपयोग से वंचित रखे गये हैं। भूमिरूपी वरुण की जिह्वा कुच्छ थोडे मनुष्योंके अधिकार में है, अर्थात् हरएक मनुष्य केमलकियत की भूमि नहीं है, अर्थात् वाणी रूपी वरुण की जिह्वा की अपेक्षा भूमिरूपी वरुण जिह्वा थोडे मनुष्यों को प्राप्त हुई है। परंतु गाय रूपी जो वरुण की जिह्वा है वह तो उनसे भी थोडे लोगोंके पास रहती है और उसका दान लेनेका अधिकार तो अति अल्प ब्रह्मनिष्ठ आत्म-ज्ञानीयों को ही केवल है। यह तीन गौओंकी अवस्था पाठक देखें और इस मंत्रका आशय समझें।

गाय तो बिकनी भी नहीं चाहिये। आर्य लोग कभी गाय की विक्री नहीं करते थे। इस समय ब्राह्मणोंने ही इस प्रथा की रक्षा इस समय तक की है। हमें अन्य स्थानोंका पता नहीं, परंतु महाराष्ट्रके ब्राह्मण इस समय भी गौका बेचना पाप समझते हैं और प्रायः गोविक्रय नहीं करते। यह वैदिक काल की प्रथा इस समय थोडीसी अवशिष्ट है।

गौका वीर्य।

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशव-
स्तुरीयम् ॥ २९ ॥
वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥

" (वशाया रेतः) वशा गौ का वीर्य (चतुर्धा अभवत्) चार प्रकारसे फैला है। (आपः तुरीयं) जल रूपसे एक भाग, (अमृतं तुरीयं) दूध रूपसे एक भाग, (यज्ञः तुरीयं) यज्ञ रूपसे एक भाग और (पशवः तुरीयं) पशुरूपसे एक भाग ॥ २९ ॥ यह वशा गौ द्युलोक, पृथ्वी लोक, विष्णु और प्रजापति परमात्मा रूप है। साध्य देव और वसुदेव वशा गौका दूध पीते हैं ॥ ३० ॥ साध्या और वसु देव यहां गौका ही दूध पीते हैं इस लिये (ब्रध्नस्य विष्टपि) स्वर्गमें भी उनको गौका दूध मिलता है ॥ ३१ ॥ "

वशा गौके चार रूप हैं द्युलोक, पृथ्वीलोक, विष्णु और प्रजापति। इन चारोंके साथ गौके चार वीर्य संबंधित हैं। अर्थात् (१) द्युलोक से सूर्यकी प्रेरणासे वृष्टि होकर जलकी प्राप्ति होती है, (२) पृथ्वी लोक में सोमादि वनस्पतियों का रस, अन्न और दुग्ध आदिकी प्राप्ति होती है, (३) विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्माकी उपासना यज्ञ में घृता-हुतीयोंसे की जाती है और (४) पशुओंसे प्रजापति की प्रजाका पालन होता है। यह विभाग गौके चार वीर्योंका है। द्यु, सूर्य, मेघ, भूमि, परमात्मा, आत्म तथा इनकी शक्तियां आदिका नाम " गौ " है इस लिये यह कथन श्लेषालंकारसे ठीक है। इस से गौका महत्त्व ही व्यक्त होता है।

साध्य और वसुदेव यहां अपना अनुष्ठान करते हैं और केवल गौके दूधपर रहते हैं अन्य कुछ नहीं खाते। यह इनका नियम इनके लिये ऐसा फलीभूत हुआ है कि उक्त नियम के कारण स्वर्गमें भी इनको दूध मिलने लगा। अर्थात् जो जो मनुष्य नियम पूर्वक प्रतिदिन गौका दूध पीयेंगे उनको स्वर्गमें भी नियम पूर्वक दूध मिलता रहेगा। पाठक इस प्रलोभनमें गोरक्षा का महत्त्वही देखें। इस प्रकार के अर्थवाद के वाक्य शब्दार्थ द्वारा व्यक्त होने वाले अर्थ

बताने के लिये नहीं होते प्रत्युत विशेष गूढ अर्थका भाव मनमें प्रकाशित करनेके लिये होते हैं। यहां गोरक्षा का महत्त्व इन वाक्यों द्वारा कहा है। " जो लोग प्रतिदिन गाय का दूध नियमपूर्वक पीनेका निश्चय करेंगे और उसका पालन बिला नागा करेंगे, उनको स्वर्ग में भी नियमपूर्वक कामधेनु का दूध मिलता रहेगा।" पाठक सोच सकते हैं कि यदि यह नियम लोग करेंगे तो गोरक्षा स्वयं हो जायगी। स्वास्थ्य रक्षा के साथ इस नियमका अत्यंत महत्त्व है। वेदने यह साधारण सी बात कही है परंतु इसका परिणाम बहुत ही व्यापक है, पाठक इसका बहुत विचार करें।

गो दान का फल।

सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः॥३२॥
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माऽथो तपः॥ ३३॥
वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्योविपश्यति ॥ ३४ ॥
अथर्व० १०।१०।

"कई लोग सोम के लिये इस गौसे दूध निकालते हैं, कई लोग इस गौसे प्राप्त होनेवाले घी के लिये इसके पास जाते हैं। उत्तम विद्वान ब्राह्मणको जो लोग गौका दान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं॥ ३२॥ जो लोग ब्राह्मणों को गौका दान करते हैं वे सब लोकों को प्राप्त करते हैं क्यों कि इस गौमें ऋत, ब्रह्म और तप रहता है॥ ३३॥

गौ से देव जीवित रहते हैं और मनुष्य भी गौ से हि जीवित रहते हैं। गौ ही संपूर्ण जगत्रूप बनी है, जहां तक सूर्यप्रकाश पहुंचता है वह सब मानो गौ ही है॥ ३४॥

यज्ञकर्ता लोग सोमरस के अंदर दूध का मिश्रण करनेके लिये गाय का दोहन करते हैं, कोई ऋत्विज लोग हवन को घी प्राप्त करनेके लिये गौका दोहन करते हैं। इस प्रकार गौ से यज्ञ होता है।

ये सब पूर्वोक्त बातें जो विद्वान जानता है उस ज्ञानी पुरुष को हि गौ दान देनी योग्य है। जो लोग ऐसे सत्पुरुष को गौका दान करते हैं वे स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। विद्वान ज्ञानी ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे सब प्रकार की श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। गौके अंदर (ऋत) सत्य, (ब्रह्म) अन्न और तप रहता है, इसलिये गौका महत्त्व अधिक है। इस गौका हरएक को उपयोग है।

देव क्या और मनुष्य क्या गौके दुग्धादिसे ही जीवित रहते हैं, पुष्ट होते हैं और बढते भी हैं। इस दृष्टीसे देखा जाय तो इस गौ का ही यह सब रूप है ऐसा प्रतीत होगा, यह सब विश्व, सब जगत् मानो गौका ही व्यक्त रूप है। जब मनुष्य गौके दूध, दही, छास, मक्खन, घी आदिसे पुष्ट होते हैं तब संपूर्ण मानवी जगत् गौका ही रूप मानना योग्य है। मानो गौ ही मानवी रूप में परिणत होती है।

इस प्रकार गौका महत्त्व सब लोग जानें और गोरक्षा, गोवृद्धि और गोपुष्टी करके अपना और देशका उद्धार करें।

(यहां गोमेधका द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ।)

वेदमें जो गोमेध के दो सूक्त हैं उनका अर्थ और स्पष्टीकरण यह है। पाठक इन मंत्रोंके मननसे देखें कि इन मंत्रोंमें गोवध और गोमांसहवन के लिये क्या प्रमाण है? इसके लिये एक भी प्रमाण नहीं है, परंतु गोरक्षा, गोवृद्धि, गोपुष्टि आदिके लिये अनेक रीतिसे कहा है, गौका महत्त्व तो काव्यालंकारोंसे अनेक प्रकारसे कहा है। इसलिये गोमेधमें गौका वध मानना प्रमाणहीन होनेके कारण अयोग्य है।

वेदमें "गौ" के विषयमें जो मंत्र आगये हैं, उनकी संगति इससे पूर्व बतायी है। इन सब का विचार करनेसे यह बात निश्चित होती है कि वेद मंत्रोंमें गौका वध करके उसका हवन करने तथा गोमांस भक्षण करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। इस विषयमें मांस पक्षी लोगोंकी जो कल्पना है वह निर्मूल है।

" गौरक्षा " ही आर्योंका श्रेष्ठ धर्म है। गोरक्षा करनेसे ही सबकी उन्नति हो सकती है।

" गां मा हिंसीः। "

वा. यजु. १३। ४२

योग मार्ग से अरुचि या भयके कारण ।
[१]
क्या योगी परोपकार नहीं करता ?

(ले०- पं० अभय देव शर्माजी)

देवतास्वरूप भाई परमानन्दजी पूरे जोष के साथ तथा अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ कई व्याख्यानों में कहा करते हैं कि " योगिओं से हमें क्या मतलब, योगी हमारे किस काम के। हिमालय पर जैसे और बहुत से दरख्त खडे हैं हमारे लिये योगी भी वैसे ही हैं।" इसी प्रकार लेखक को एकबार मुलतान आर्य समाज में एक मान्य आर्योपदेशक का व्याख्यान सुनने का सुयोग हुवा था जिसमें उन्होंने यह आशय प्रकट किया था कि आजकल जो कई लोग आर्यसमाज या प्रचार का कार्य छोडकर योग करने बैठ जाते हैं यह वास्तविक वैदिक धर्म नहीं है। इन दो उदाहरणों में पाठक वह बात देख सकते हैं जो कि आजकलके हम नौजवानों की योगमार्ग से अरुचि (बल्कि घृणा) या भय का प्रथम कारण है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो आजकल के हम नव शिक्षित लोगों का यह विचार है- 'परोपकार करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, समाज व देश की सेवा के लिये हम सब को कर्म करने चाहिये। पर योगाभ्यासी लोग स्वार्थ में रत हो अपनी ही उन्नति करने में लग जाते हैं और कर्म छोड बैठते हैं। उनकी इस उपकार कार्य से उदासीनता के कारण देश को लाभ नहीं होता, यही नहीं किन्तु बडी हानि होती है।' सारांश यह कि परोपकार और कर्मण्यता जैसे अत्यावश्यक गुणों से मनुष्य योग मार्ग में जाकर वंचित हो जाता है यह देखकर हम लोग कमसे कम ऐसे योग को नापसंद करने लगे हैं।

इसमें बहुत कुछ सचाई है। हमारे देश में इस समय उपर्युक्त दोनों गुणों की सख्त आवश्यकता है। यह सब जानते हैं कि हम में ५२ लाख लोग 'साधु' ही बने (जिन में से शायद बहुत थोडे इस पवित्र और उच्च नाम से कहलाने योग्य हैं) हुवे हैं जो कि (कुछ सच्चे साधुओं को छोडकर) वास्तव में स्वार्थमय और अकर्मण्य जीवन ही बिता रहे हैं और इस तरह अपने को तथा औरों को हानि पहुंचा रहे हैं। ईश्वर करे कि सच्चे साधुओं का ध्यान (अभी कुछ खिंचा है पर और अधिक) आकर्षित हो और उनके यत्न से भारत में फिर एक सच्चे साधुओं का प्रबल शक्तिशाली साधुसंघ स्थापित हो जो कि असल में सब जगत् का भला कर सके। यह होगा धीरे धीरे ही, पर यहां इस प्रसंग में शायद एक बात की तरफ उन महानुभावों का ध्यान खींचना ठीक होगा। आजकलके ये साधु लोग 'रजोगुण' से बहुत डरते हैं। लेखक को बहुत बार ऐसे 'साधुओं' से (जो कि वैसे बडे सज्जन थे) मिलने का अवसर मिलता रहा है जिन्होंने कि देशोन्नति तथा देशभक्तों के कार्यों की चर्चा छिडने पर बडी गंभीरता और संतोष के साथ कहा 'गांधी जी (या अन्य देशभक्त) में रजोगुण प्रवृत्त हो रहा है। अत एव वे ये सब हलचल करते फिरते हैं। रजोगुण की बीमारी ही लोगों को सताती है इत्यादि'। पहिली ही बार जब लेखक ने ऐसी बात सुनी थी तब वह भी कुछ देर के लिये प्रभावित हुवा था और अन्तर्मुख हो सोचने लगा था। पर पीछे से वह समझ गया कि इसमें बहुत सा भ्रम है। सचमुच हमारे बहुत से साधु इस बडे भारी भ्रम में हैं कि वे रजोगुण से ऊपर होगये हैं, जब कि असलमें वे तमोगुण (जो कि रजोगुण से भी हीन है) के वशीभूत पडे हैं। ऐसे साधु बहुत ही विरले हैं जो कि सत्वगुण के उत्कर्ष के कारण अचंचल

या शान्त है। जो ऐसे हैं उनकी तो चरणरज हम सब को मस्तक पर लगानी चाहिये। नहीं तो, दुःख से कहना पडता है, कि अधिकतर 'साधु' तमोगुण की बीमारी में ग्रस्त हैं जिसका कि कुछ जोरदार इलाज होना चाहिये। साधुजागृति के लिये यह आवश्यक है।

पर शायद योगसाधन साधुओंका कार्य समझे जाने कारण इस 'अपरोपकारशीलता' का तथा 'अकर्मण्यता' का भी संबन्ध योगमार्ग से जुड गया है। और इसलिये बहुत से आजकल के नवशिक्षित युवक भाई सचमुच योग से डरते हैं उतना ही डरते हैं जितना कि साधु रजोगुण से डरते हैं। योग को अकर्मण्यता से जोडने में बहुत सा भाग अभीतक साधुओं में बहुत प्रचलित योगसंबन्धी साहित्य ने (जो कि योग के पुराने मूल ग्रंथों को कुछ अशुद्ध समझने तथा अधूरे वेदान्त के प्रचार से बना है) भी किया है। पर वास्तव में यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि योगी जितना भारी परोपकार तथा सच्चा कर्म कर सकता है और करता है उतना अयोगी कभी नहीं कर सकता। आशा है कि यदि पाठक निम्नलिखित कथन से सहमत हो सकेंगे तो वे इस अनुचित बडे भय से यूक्त हो जांयगे।

स्पष्टता के लिये हम 'परोपकार' और 'कर्मण्यता' इन दोनों पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे। पहिले परोपकार को लेते हैं।

वैसे तो अपनी उन्नति (स्वोपकार) और परोपकार का अर्थात् व्यक्तिवाद और समाजवाद (Individualism और Socialism) का झगडा शुरूसे-शायद अनादि काल से चला आता है। पर अन्तमें सभी ज्ञानी लोगों का यही मत है कि इन दोनों की समता में ही सत्य है। अर्थात् यदि हम ठीक मार्ग से चलें तो आत्मोपकार और परोपकार में विरोध, भेद नहीं रहता, आत्मोपकार भी परोपकार हो जाता है, या परोपकार भी आत्मोपकार हो जाता है। पर वह ठीक मार्ग कौनसा है? यह योगमार्ग है, अपनी शक्तिओं को स्वाभाविकतया विकास करने का मार्ग है।

पहिले आत्मोपकार की दृष्टि से देखें तो हमें पता लगेगा कि जिसने अपनी उन्नति नहीं की वह परोपकार क्या करेगा। जिसने योग द्वारा अपने को समर्थ बनाया है, कुछ प्राप्त किया है वही दूसरों को कुछ दे सकता है। क्या यह सच नहीं है कि आजकल 'परोपकार' की हवा चली है अतः सब लोग परोपकार करने निकल पडे हैं, जब कि असल में 'परोपकार' नामक क्रिया द्वारा वे अपना ही कुछ स्वार्थ साध रहे हैं। हमारी इन क्रियाओं का प्रेरक कारण क्या होता है यदि यह हम अपने अन्दर घुस कर देखें तो शायद हमारी आखें खुल जांय, हम परोपकार करते हैं यह भ्रम हट जाय, तब शायद हमें दीखे कि यह प्रेरक कारण यदि पैसा कमाने की इच्छा या इन्द्रियों की प्यास बुझाने के अवसर पानेकी इच्छा आदि हीन कारण नहीं हैं तो अधिकसे अधिक 'यश की इच्छा,' 'लोकैषणा' या केवल 'रजोगुण से पीडित होना' इन के मूल है। तो क्या ये कार्य 'परोपकार' शब्दसे कहलाने योग्य हैं?। अतः परोपकार करनेके लिये पहिले आत्मोन्नति करनी चाहिये, योगसाधन द्वारा आत्मविकास करना चाहिये। जब मनुष्य स्वयं तृप्त हो जाता है, स्वयं इतना उन्नत हो जाता है कि अपनी कुछ इच्छा, तृष्णा नहीं रहती तभी वह सच्चा परोपकार कर सकता है।

फिर परोपकारकी दृष्टिसे देखें तो भी पता लगेगा कि योगसाधन (सब वैयक्तिक विकास) असल में परोपकार के लिये ही है। पातंजल योगदर्शन में स्पष्टतया परोपकार का नाम न आनेसे हमें भ्रम में नहीं पडना चाहिये। ग्रंथ जिस समय जिन परिस्थितिओं में लिखे जाते हैं उन्हीं के अनुसार उनमें शब्द प्रयुक्त होते हैं। अतः योगदर्शन के कई स्थलों को जब हम आजकल की भाषा में पढेंगे तो हमें वहां परोपकार लिखा दीखेगा। इन स्थलों के एक दो उदाहरण तो पाठक अभी इस लेख में देख सकेंगे जहां कि करुणा भावना का उल्लेख एवं योगशास्त्र के 'ईश्वर' के कार्य तथा सिद्धों के कार्य का उल्लेख आवेगा। परन्तु असल में योग की नींव में ही जो पांच यम हैं वे सब (आधु

निक भाषा में कहें तो) परोपकार पर ही आश्रित हैं और उनमें पहिला यम अर्थात् अहिंसा (जिसे कि व्यास जी ने भाष्य में सब यमों का एक यम कहा है को यदि हम विधेयात्मक (Positive) रूप में लाकर देखें तो यह परोपकार ही है । एवं योग का आधार ही परोपकार पर है । इसी लिये आजकल जो लोग स्वानुभवसे योग पर लिखेंगे वे इसका स्पष्ट उल्लेख करेंगे । उदाहरण के लिये आधुनिक प्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द को पेश किया जा सकता है । उन्होंने अपनी 'योग का उद्देश्य ' (Object of yoga) नामक पुस्तिकामें पहिला ही वाक्य यह लिखा है कि योग अपने लिये नहीं है, योग सब संसार के लिये होता है। सच्चे योगिओं के जीवन भी (यदि हम उन्हें ध्यान से देखें) हमें यही बताते हैं। यद्यपि आपको आजकल कई सच्चे योगाभ्यासी महात्मा ऐसे मिलेंगे जो कि सिद्धान्ततः यह नहीं मानते दीखते कि योगी को परोपकार करना चाहिये, परन्तु यदि उनका जीवन देखेंगे तो पता लगेगा कि वे करुणा से भरे हुवे हैं और वे सदा दूसरों के कल्याण में ही रत हैं । हां, वे बेशक व्याख्यान नहीं देते या लेख नहीं लिखते । पर जब हम अपने अन्तःस्थ करुणासागर में कुछ गहरे प्रविष्ट हो जांयगे तो शायद हमें पता लगेगा कि परोपकार के साधन सैंकडों हैं जो कि एक से एक महान हैं और जिनमें से ये दो साधन व्याख्यान और लेख अतिसाधारण वल्कि तुच्छ हैं। हमारे कई जोषीले राजनैतिक भाई कहा करते हैं कि श्री अरविंद जो कि बडा देशका काम कर सकते थे भला पांडचेरी में बैठे क्या उपकार कर रहे हैं। पर लेखक की नम्र सम्मति में वे एक महान् योगी की तरह जो संसार का अदृश्य किन्तु बडा उपकार अभी कर रहे हैं, तथा भविष्य में जो उनद्वारा इससे भी बहुत बडे कल्याण होने की संभावना है (जिनका कुछ निर्देश आगे आवेगा) उसे छोड भी दें तो भी जो उन्होंने अभी तक थोडीसी साहित्य सेवा की है- ' आर्य ' पत्रिकामें लिखे उनके लेख तथा अन्य अमूल्य पुस्तकें - वही पर्याप्त बडा उपकार है जिसका कि हम अभी पूरी तरह अंदाजा नहीं लगा सकते अस्तु। श्री अरविन्द तो योग को संसार के लिये मानते ही, पर जो योगी ऐसा नहीं मानते दीखते उनके जीवन में भी परोपकार का स्वयं आना इस बात का चिन्ह है कि योगमार्गमें परोपकार स्वाभाविक और अवश्यंभावी है योग शास्त्र के सिद्धान्तों से भी यह सिद्ध है। क्यों कि योगसाधन करने से अहंकार या अपनापन नष्ट होने लगता है, योग की परिभाषामें कहें तो उसका ' अस्मिता ' नामक क्लेश का तनुकरण होने लगता है (यदि किसी अभ्यासी का स्वार्थ या अपनापन कम नहीं होता दीखता तो उसे समझना चाहिये वह योगमार्ग पर ठीक नहीं चल रहा) जितना जितना उस का यह ' अपनापन ' नष्ट होता जाता है उतना उतना उसके लिये यह असंभव होता जाता है कि वह अपने लिये कुछ करे, तब वह जो कुछ करता है वह परोपकार ही करता है । एवं अभ्यासी में चित्तप्रसादन के साथ करुणाभाव का बढना भी आवश्यक है (देखो योगसूत्र १-३३)। यह करुणाभाव भी अन्ततः परोपकार में ही चरितार्थ होता है । अतएव यह देखा जाता है कि सच्चे योगाभ्यासी बडे कारुणिक और परोपकारी होते हैं । पर यदि हम इन योगशास्त्र की बातों तथा योगिओं के जीवनों को भी जाने दें और केवल थोडासा अपनी बुद्धि से विचार कर के ही देखें तो भी हम इसी परिणाम पर पहुंचेंगे । यदि हम यह कल्पना कर सकें कि जिसने अपनी सब उन्नति कर ली है, प्राप्तव्य पा लिया है, जो आप्तकाम है अतएव जिसे अपनी कुछ इच्छा नहीं रही है (यद्यपि यह बडी ऊँची अवस्था है जिसकी कि असल में हम पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, तो भी इतना समझ सकते हैं कि) वह उस समय सिवाय परोपकार के— सिवाय खालिस परोपकार के और क्या करेगा; और योग द्वारा विकसित अपनी इन शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक तथा ईक्षण (Will) शक्तिसे (जो कि विकसित हो जाने पर एक से एक बढ कर आश्चर्यकारी शक्तियां हैं) वह जो कार्य करेगा वह कितना विस्तृत और कितना प्रभावशाली होगा । हमें यह भी पता होना चाहिये कि उस स्थानपर पहुंचा

योगी इतना परोपकारमय हो जाता है कि वह अपने वैयक्तिक मोक्ष की इच्छा भी छोड देता है। (यह पाठकों को उलटा सा मालूम होगा पर यह सत्य है कि अपनी मोक्षप्राप्तियोग्य उन्नति कर लेनेपर आगे जब तक योगी को मोक्ष की इच्छा रहती है तब तक उसे मोक्ष नहीं प्राप्त होता। मोक्ष तो तब मिलता है जब कि अन्य सब इच्छाओंकी तरह मोक्ष की इच्छा भी छूट जाती है)। तब उस के लिये 'त्रिषु लोकेषु किंचन, नानवाप्तमवाप्तव्यं' होता है। वहां पहुंचे हुवे उस पर परोपकारी के परोपकार की कल्पना करनी चाहिये। ऐसे थे महा योगी श्रीकृष्ण जी। अतः यह केवल कल्पना नहीं है। ऐसे और भी बहुतसे पुराने इतिहासों में सुने जाते हैं। (और शायद अब भी कहीं ऐसे सिद्ध हैं और शायद सदा रहते हैं)। इन्हीं सिद्धों का उदाहरण देकर योगदर्शन व्यास जी ने लिखा है 'जिन्हें अपना कुछ भी नहीं सिद्ध करना है जो कि मुक्त हैं वे भी कारुणिक होकर केवल परोपकार के लिये ही- संसार के लिये ही- देह धरते हैं' ऐसा देखा जाता है, जैसे कि आदिविद्वान कपिल सिद्ध मुनि ने 'निर्माणकाय' लेकर (अर्थात् आत्म शक्ति से अपना शरीर बनाकर) आसुरि को (अद्भुत सांख्य) तंत्र का उपदेश दिया ' जो कि तंत्र फिर साठ बडे बडे तंत्र (शास्त्र) होकर सब संसार में फैला। अस्तु, तात्पर्य यह है कि सब तरह से हमें यही अङ्गीकार करना होगा कि योग का अन्तिम फल परोपकार--शुद्ध और शक्तिशाली परोपकारही है।

यह सच है कि योग का अभ्यासी (साधक) अपना सब यत्न, अपनी सब शक्ति अपने पर ही संयोजित करता है तथा अपना सब ध्यान अपने विकास में ही खर्च करता है। पर असल में वह यह सब अपने को केवल केन्द्र बनाकर सब संसार के लिये करता है। परमात्माने मनुष्यका व्यक्तित्व (अहंकार तत्व) इसी लिये दिया है कि वह अपने को केन्द्र बनाकर सहजता से काम कर सके। जो पुरुष स्वयं जुदा है अर्थात् जिसने सब संसार से तथा संसार की परम आत्मा से अपना संबन्ध जुडा नहीं देखा उसके लिये योगमार्ग नहीं है। योग की प्रारंभिक सीढियां (यम और नियम) ही अभ्यासी को संसार के सब मनुष्यों से तथा परमात्मा से ठीक संबन्ध में जोड देते हैं। आगे वह योग के अग्रिम अंगों में ज्यों ज्यों बढता है त्यों त्यों उसका यह संबन्ध दृढ होता जाता है और अन्त में जब वह सिद्ध योगी होने लगता है तब वह सचमुच अपने आप को सब संसार में फैली हुई या सब सब संसार से जुडी हुई एक शक्ति अनुभव करता है जिसका कि केन्द्र वह अपने व्यक्तित्व में देखता है। वहां उसे ' सब भूत आत्मा में तथा सब भूतों में आत्मा' दीखती है। पर इस सब जगत् से संबद्ध अपनी अवस्था को पाने के लिये विकास इसी केन्द्र का,इसी व्यक्तित्व का करना होता है। यही कारण है कि योगशास्त्र का सब जोर आत्मोन्नति पर ही है। इसी लिये हमें योगशास्त्र में 'स्वार्थ' की गन्ध आती है। और योग में अहिंसा यमको जो विधेयात्मक रूपमें नहीं लिखा है, निषेधात्मक रूप में लिखा है इसका भी एक कारण शायद यही है। पर यह अनिवार्य है, क्यों कि हम अपने को ही धीरे धीरे विकसित करके सब संसारके बन सकते हैं, यही एक उपाय है। एवं हमने देखा होगा कि किस तरह योग मार्गमें आत्मोपकार और परोपकार सम हो जाते हैं,एक हो जाते हैं। (क्योंकि'अहिंसा'की जगह 'परोपकार' कहने में आत्मोन्नत्तिका भाव छिप जाता है।)

योग का साधक अपनी तरफ से बेशक अपनी ही उन्नति में लगता है, पर उस द्वारा परोपकार भी उसी समय साथ ही शुरू हो जाता है, क्यों कि उसका यह प्रारंभिक साधन भी जगत के लिये है तथा उस साधन का चारों तरफ के जगत् पर प्रभाव पडे विना नहीं रह सकता। क्योंकि उसके विना चाहे, विना यत्न किये उसके मानसिक विकास की सुगन्धि चारों तरफ फैलती है जो कि लोगों को लाभ पहुंचाती है। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य ही अपने मन की विचार लहरों से चारों तरफ के मनोमय आकाश को प्रभावित किया करता है, परन्तु जहां अयोगी अपने असंयत, रागद्वेष से पूर्ण, कलुषित मन द्वारा विना जाने अपने साथ अन्य लोगों को

भी हानि पहुंचाता है वहां एक योगाभ्यासी जो कि चित्तवृत्तिओं को नानातरह संयत और निरुद्ध करने द्वारा अपने मन को प्रसन्न, स्वच्छ, पुण्यमय बना रहा है, अपने इस विकसित होते मन द्वारा चारों तरफ के जगत् का बडा अदृश्य उपकार करता है (ठीक उसी तरह जैसे कि एक विकसित पुष्पद्वारा चारों तरफ का वायुमण्डल अपने आप सुगन्धि से भर जाया करता है) और ज्यों ज्यों योगी का यह आत्मविकास बढता है त्यों त्यों इस सुगंध का विस्तार और बल भी बढता जाता है। इसलिये यह सत्य है कि बडे बडे सिद्ध योगिओं का संसार में रहना (विना उनके कुछ अन्य कार्य किये) ही बडा भारी उपकार है।

पर यह बात नहीं कि योगी यह अदृश्य उपकार ही करता है, अपि तु कुछ आगे चल कर ज्यों ज्यों अभ्यासी में अन्दर से शक्ति निकलती है त्यों त्यों वह उस नवप्राप्त शक्ति से दृश्य उपकार भी परिमाण के साथ करने लगता है (जैसा कि ऊपर कहा है कि योगाभ्यासी परोपकाररत देखे जाते हैं)। पर वह उपकार में उतना ही पडता है जितने से कि उसके असली कार्य (अर्थात् आत्मविकास की साधना) को क्षति न पहुंचे या (दूसरे शब्दों में) जितने के लिये उसके पास वास्तविक शक्ति विद्यमान होती है या (अन्य शब्दोंमें) जितना परोपकार करना उसके आत्मविकास में सहायक होता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि प्रारंभ प्रारंभ में वह ऐसा दृश्य उपकार सर्वथा नहीं करता, तब तक सब समय सीधा अपने विकास के लिये ही देता है। इसीलिये हमारी प्राचीन आश्रमव्यवस्था में पहिले २५ वर्ष मुख्यतया केवल आत्मविकास (आजकल भी विद्यार्थी को सार्वजनिक आन्दोलनों में क्रियात्मक भाग लेनेसे रोका जाता है) के लिये होते थे और उस आश्रम में उसके लिये 'योगाभ्यास' नित्यकर्म होता था। उसी समय 'योगमार्ग में दीक्षित हो जाने पर आगे जब वह स्नातक होता था और तब उपकार कार्य भी करता था तो वह उपकार कार्य भी उसके योगसाधन काही अंग होता था। यह ' कर्मयोग ' नामक योग की एक अवस्था होती थी। पर अभ्यासी को उस समय भी उतना ही यह उपकारकार्य करना चाहिये जितने के लिये कि उसके पास रक्षित शक्ति विद्यमान है अर्थात् जितना उसके आत्मविकास के लिये आवश्यक है। यह सत्य है कि ऐसा कर्म योग अभ्यासी की उन्नति के लिये होता है। यदि वह उस समय कर्मयोग न करे तो उसके आत्मिक विकास में न्यूनता पडेगी, उसे क्षति पहुंचेगी। गीता में सत्य लिखा है कि आत्मविशुद्धि के लिये निष्काम कर्म करने चाहिये। जब अभ्यासी प्रथम वार स्वयं स्वाभाविकतया कुछ ऐसा दृश्य उपकार करता है तो उससे उसको अगले आत्मविकास में सहायता मिलती है और फिर उस नयी विकसित शक्ति से वह उसी के अनुसार और कुछ अधिक उपकार करने के योग्य हो जाता है। इसी तरह (बहुत से जन्मोंमें चलता हुवा) ज्यों ज्यों वह आगे आगे बढता है त्यों त्यों उसकी आत्मोन्नति की आवश्यकता घटती जाती है और परोपकार की शक्ति तथा क्षेत्र बढता जाता है जिससे कि अन्त में सिद्धयोगी होकर उसका परोपकार ऐसा पूरा जगत्व्यापक हो जाता है वह अब केवल उपकार ही करता है—स्वोपकार के लिये कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रहता (ठीक इसी तरह जैसे के प्रारंभ प्रारंभ में वह केवल स्वोपकार (आत्मविकास) में ही लगा था और दृश्य परोपकार कुछ भी न करता था)।

एकवार यह लेखक कुछ दिनों के लिये एक जंगल के बंगले में रहता था जहां कभी दूसरे चौथे दिन किसी मनुष्य प्राणी की मूर्त्ति दिखायी देती थी। वहां एक दिन जंगल के एक ' रेन्जर ' महाशय आये और बात करते हुवे कहने लगे " आप यहां व्यर्थ जंगल में क्यों पडे हैं, आप पढे लिखे हैं, कुछ कार्य करना चाहिये " इत्यादि। वैसे तो लेखक को यह बात सुनकर प्रसन्नता हुई कि भारतवासी अब साधुओं के निठल्लेपन को इतनी घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं कि उन्हें जंगल में भी चैन नहीं लेने देंगे और मन में ऋषि दयानन्द तथा अन्य ऐसे प्रचारकों का धन्यवाद किया, पर उन्हें यह समझाया कि " आप जब थक कर रातको पडे सो

रहे हों जिसका अर्थ है कि अगले दिन (और अधिक) कार्य करने की शक्ति संचय कर रहे हों तब मैं आपको पकड कर जगाऊं और उठा दूं कि काम करो, मनुष्य को काम करना चाहिये, तो आप क्या कहेंगे ? अतः मुझे भी नींद ले लेने दीजिये।"

आत्मोपकार और परोपकार में शयन और जागरण का सा ही संबन्ध प्रतीत होता है। जब हम केवल आत्मोन्नति में लगे होते हैं तो हम बेशक संसारके लिये सो रहे होते हैं, पर यह शयन हमारे अगले जागने के लिये—जाग कर नये परोपकार कार्य की शक्ति लाने के लिये—आवश्यक होता है। एवं अभ्यासी कुछ समय लगातार आत्मोन्नति में लगता हुआ और फिर जो कुछ कमाया है उसे परोपकार में खर्च करने के लिये अगला कुछ लगातार समय विशेषतया परोपकार में लगाता हुआ-सोता हुवा और नयी शक्ति से जागता हुआ-चलता है। और यदि वह अपना नैतियक साधन ठीक तरह जारी रखता है (परोपकार कालमें भी) तो उसे यह स्वयं पता लग जाता है कि उसे अब परोपकार के लिये जागना चाहिये या जब उसकी वह शक्ति समाप्त होने लगती है अर्थात् जब कि वह विना नयी शक्ति पाये परोपकार को सच्ची तरह जारी नहीं रख सकता तब भी पता लग जाता है कि उसे अब सोकर नयी शक्ति पानी चाहिये। यह शयन या जागरण एक पूरे जन्म तक चलते हों यह भी संभव है। पर ज्यों ज्यों उन्नति होती है त्यों त्यों अगला शयन थोडा होता है और जागरण बढता है जब कि सिद्ध के लिये जागरण ही केवल रह जाता है। (अथवा ठीक शब्दों में कहें तो वह दिन रात से ऊपर हो जाता है और हम उसकी अवस्था को अपनी मति के अनुसार केवल दिन या केवल रात कहते हैं। असल में हमें उसे दिन समझना चाहिये)।

यहां यह भी स्पष्ट है कि जिनका सिद्ध होना तो दूर रहा जिन्होंने योग की प्रारंभिक शक्तियां भी नहीं पायीं वे यदि ' परोपकार ' की धुन में इसे ही जारी रखते हैं, अर्थात् जिन्हें कभी विश्राम लेकर आत्मोन्नति करने की इच्छा ही नहीं पैदा होती उन्हें समझना चाहिये की उन्हें ' अनिन्द्रा ' का रोग होगया है। यदि इसकी चिकित्सा न करेंगे तो उनका देह थक कर थोडी देर में इतना खराब हो जायगा कि आगे परोपकार तो (कम से कम 'सच्चा परोपकार') कर ही नहीं सकेंगे, पर साथ में यह भी पूरा डर है कि उनमें स्थित वह परोपकार का बीज भी कहीं नष्ट न हो जाय जो कि यत्नद्वारा विकास पाकर कभी बडे भारी परोपकार का वृक्ष बन सकता है।

परोपकार करने के दो रास्ते हैं। एक योगी का, दूसरा अयोगी का। उदाहरणार्थ, एक आम की गुठली यदि अपने को परोपकार में खर्च करना चाहे तो दो तरह से कर सकती है। (१) एक तो यह है कि वह पृथ्वी में (गुफा में) घुसकर अपने को-अपनी गर्भित शक्तिओं को धीरे धीरे करके योग द्वारा एक विशाल आम्रवृक्ष के रूप में विकसित करे। (२) दूसरा उपाय यह है कि वह जैसी है (विना योगसाधन किये) वैसी ही अपने को शीघ्र ही परोपकार में खतम करना चाहे। दूसरी अवस्था में उससे अधिक से अधिक उपकार शायद यह हो सकता है कि कोई वैद्य उससे कुछ औषध बना ले या कोई भूखा प्राणी जिसे इससे उत्तम अन्न न मिल सके वह इसे या इसकी गिरि को खाकर कुछ उपकृत हो जाय। पर यदि वह गुठली (यत्नसे और बेशक बहुत देरमें) योगद्वारा आम्रवृक्ष बन जाती है तो न जाने कितने प्राणिओंको सहस्रों सुमधुर फलों के रूप में उत्तम भोजन देती है, वैद्यको सहस्रों गुठलियां दे सकती हैं, बहुत वार धूपसे संतप्त जीवों को अपनी शीतल छाया देकर उपकार करती है, अपनी लकडी से यज्ञ की अग्नि तथा अन्य अग्निओंकी समिधा बनती है, लकडी रूपमें और न जाने कितने काम आती है, वायु से प्राणवायु खींच कर संसार के लिये देने का साधन बनती है, कुछ अंशमें बादलों के बरसाने में भी सहायक होती है, इत्यादि इत्यादि। तात्पर्य यह कि योगद्वारा अपनी गुप्त

आत्मशक्तिओंके विकास से जितना भारी परोपकार होता है उसका हजारवां भाग भी हम विना आत्मोन्नति किये नहीं कर सकते ।

पर सब बात यह है कि इस योगमार्ग में जाने के लिये बडा भारी धैर्य चाहिये । असल में यह धैर्य की कमी है जो हमें उस मार्ग से डराती है, नहीं तो यह समझना कठिन नहीं है कि वास्तव में हम परोपकारी उधर ही जाकर हो सकते हैं । प्रारंभमें योगमार्गावलंबी में वह 'श्रद्धा' का बल चाहिये जिससे कि वह अनजान लोगोंके कहने की परवाह न करे जब कि वे कहते हैं कि "यह जमीन में व्यर्थ घुसा पडा है"। अपनी श्रद्धा द्वारा उसे यह असंदिग्ध दीखना चाहिये कि जमीन के अन्धकार में पडनेसे वह वास्तवमें संसार का उपकार ही कर रहा है। सत्कार्यवादी योगी लोग तो अपनी उच्च प्रज्ञा से देखने के कारण "कारण और कार्यमें भेद नहीं देख सकते"। उन्हें उस भूमिस्थ गुठली में ही सब फलों से लदा वृक्ष दिखायी देता है । अतः वे क्षणभर के लिये भी नहीं भूलते कि वे इस सब लंबे समय में (जो अन्यों को एक व्यर्थ नष्ट होता बडा लंबा समय दीखता है) परोपकार नहीं कर रहे हैं। इस श्रद्धा में अविचलित बने रहने से फिर उसमें 'वीर्य' आ जाता है जिसके कि सामर्थ्य से वह वीर अपने को मट्टी में गला देने से भी भय नहीं खाता, क्यों कि वास्तव में योगसाधन द्वारा अभ्यासी को एक बार मर जाना होता है और मर कर कुछ और बनना, होता है (एक प्रकार का पुनर्जन्म पाना होता है)। एवं स्मृति और समाधि की अवस्था के भी बाद जब उसमें 'प्रज्ञा' का अंकुर उदय होता है तब कुछ लोगों को समझ में आता है कि इससे शायद बडा भारी परोपकार हो। (देखो योगसूत्र १-२०)। इसप्रकार यह योगमार्ग बेशक बडा कठिन है, पर इसी ही मार्ग से हम क्षुद्र लोग भी अब की अपेक्षा अनन्तों गुणा परोपकारी बन सकते हैं।

अब पाठक इस योगी के परोपकार की तुलना में अयोगी के परोपकार पर भी एक दृष्टिपात कर सकते हैं। जिसने योगद्वारा अपनी शक्तिओं को विकसित नहीं किया अतएव जिसे आत्मतृप्ति का कुछ भी मजा न मिलने के कारण जो नाना प्रकार की असंख्यातों इच्छाओं और कामनाओं से पीडित है, पर वह किसी कारण (?) चाहता है परोपकार करना, तो इस का क्या परिणाम होगा, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं। इसका परिणाम होता है ढोंग । जो जितने अंश में एक परोपकार कार्य के अयोग्य होता हुवा उसे करता है, उसे उतने अंश में वहां ढोंग करना पडता है। अर्थात् परोपकार के नाम से वह स्वार्थ साधन (उतने अंश में) करता है, निष्काम के नाम से सकाम कार्य करता है। और क्योंकि उसके ये कर्म निष्काम नहीं होते, अतएव ये कर्म (उतने ही अंश में) कर्मयोग नहीं बनते, जैसे कि योगी के परोपकार (निष्काम) कर्म कर्मयोग होते हैं (यद्यपि उसके ये कर्म अयोगी की अपेक्षा मात्रा में कम होते है, क्योंकि वह अपनी योग्यता से आगे बढ कर तनिक भी 'परोपकार' (?) नहीं करता)। फलतः इन कर्मों से न तो उसकी आत्मा की विशुद्धि ही होती है, और न लोगों का कुछ भला होता है। लोगों को लाभ तो तब हो जब कि उसमें वास्तव में उस परोपकार करने की शक्ति, योग्यता विद्यमान हो। जो कुछ शक्ति होती है वह थोडी देर में समाप्त हो जाती है और उसका सच्चा उपकार भी तभी समाप्त हो जाता है। आगे उसे उचित तो यह है कि वह योगी बनकर उस कार्य के लिये योग्य होने लायक शक्ति को आत्मविकास द्वारा प्राप्त करे, पर वह प्रायः रजोगुण से बताया हुआ, मनोवृत्तिओं का दास बना हुवा और षड्रिपुओं का भ्रमाया हुवा उसे छोडना नहीं चाहता, उसमें यूं ही लगा रहना चाहता है। योगी की तरह उसे स्पष्ट पता भी नहीं लगता कि उसे अब (या कभी) आत्मोन्नतिमें लगने की जरूरत है। तो अब वह बिचारा क्या करे, अतः वह अपने उन्हीं स्वार्थमय परोपकारों में लगा रहता है।

वास्तव में (एक वाक्य में कहें तो) योगी और अयोगी के कर्मों में भेद यह है कि अयोगी जो परोपकार करता है वह भी स्वार्थ के लिये होता

है और योगी जो साधन कालमें अपना कार्य करता है वह भी परोपकार के लिये होता है। पर सिद्ध योगी हो जाने पर, साधनकाल पूरा हो जानेपर, तो वह परोपकार के लिये भी कुछ नहीं करता, अपितु सब परोपकार ही करता है। ऊपर जो गुठली के आम्रवृक्ष रूपमें आजानेपर उसके परोपकार का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। वह यूं ही नहीं किया है। वह इस बातको हृदयपर अच्छी तरह अंकित करने के लिये किया है कि वास्तवमें सिद्ध पुरुषोंका उपकार इतना ही विशाल, इतना ही अनन्तगुणित, इतनाही व्यापक और सर्वतो मुख होता है। योगी यद्यपि साधनावस्थामें भी नानातरहसे दृश्य और अदृश्य उपकार करता हुवा आगे बढता जाता है परन्तु उसका असली महान् शुद्ध केवल उपकार सिद्ध बननेपर ही प्रारंभ होता है, जैसे कि आम्रबीजसे असली उपकार तभी होता है जब कि वह पूर्ण विकसित फलशाली विशाल वृक्ष बन जाता है। पर भेद इतना है कि उन सिद्धों के ये व्यापक महान उपकार हमें इन स्थूल चर्मचक्षुओं से दिखलायी नहीं देते। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वे अपनी प्राप्त विभूतिओं से (जो कि निःसंदेह केवल परोपकारार्थ ही बनी हैं) हम पर-उपकारों की वर्षा नहीं कर रहे हैं। कई बार मनमें आया करता है कि हम अज्ञानी लोकों द्वारा नित्य किये गये इतने पापों से भरा यह संसार दिनोदिन नीचे गिर नष्ट नहीं होजाता इसका कारण संसार में एसे परम कृपालु, स्वयं आप्तकाम, किन्तु ‘ सर्व भूतहिते रत ’ मुक्त पुरुषों की सत्ता का होना ही है। ये लोग स्थूल बन्धनों से मुक्त हो आत्माकी (मानसिक, बौद्धिक, शाक्तिक आदि)सूक्ष्म (अत एव महाबलशाली) शक्तिओं से निरन्तर संसार को मार्ग दिखा रहे हैं, और नाश से बचा रहे हैं। क्या मालूम हम में जो बहुत बार एकदम नये ज्ञानको स्फुरणा सी होजाती है वह इन्हीं के चलायी हुवी मनोधारा-ओंमें से किसी के स्पर्श का फल होता है और क्या आश्चर्य कि भाई परमानन्दजी के देवतुल्य सरल हृदयमें जो इस तरह अकर्मण्यता का खण्डन करने की प्रेरणा होती है उसके मूल में भी ऐसे ही किन्हीं महापरोपकारी, अदृश्य, सिद्ध योगी की शक्ति ही हो। जो हो, यह सत्य है कि हमारी उन्नति की पराकाष्ठा हो जानेपर परोपकार ही एक मात्र कृत्य रह जाता है और अन्त में परमगुरु परमात्मा जहां कि ज्ञान की तरह अन्य सब गुणों की भी पराकाष्ठा है संसारस्थ अपने अनन्तों पुत्रोंके लिये केवल परो-पकार स्वरूपी पिता हैं। व्यासजी ने योगभाष्य में उनके प्रसंग में कहा है कि वे परम कारुणिक भगवान संसारार्णव में डूबते जीवों के उद्धार के लिये अपने सत्वोत्कर्ष द्वारा संसार में वेद का दान करते हैं। “ तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्। ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रल-येषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामि इति ”। यहां ‘ आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः ’ इन शब्दों से शुद्ध परोपकार का स्वरूप बताया गया है। अस्तु।

पर (जैसा कि अभी कहा है) हमें न तो स्वयं भगवान् उपकार करते हुवे दीखते हैं, नहीं उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाकर सिद्धता प्राप्त किये हुवे योगी ही उपकार करते दीखते हैं। इसी (स्थूल दृष्टिसे) न दीखने के कारण ही हम लोग इस अज्ञान के शिकार हो जाते हैं कि ये योगी (या परम-योगी परमात्मा) उपकार करना छोड बैठे हैं। यदि हम जरा सोचेंगे तो पता लगेगा कि उनके उपकार कर्मों का (स्थूल में) न दीखना ही इस बात का चिन्ह है कि उनके उपकार कर्म कितने अपरिमित हैं। चूंकि हम सूक्ष्म से स्थूल की तरह ज्यों ज्यों बढते है त्यों त्यों परिमितता बढती जाती है (इस बात का अधिक स्पष्टीकरण अगले ‘ कर्म ’ के प्रकरण में आवेगा) अतः स्थूल की परिमित-ताओं और विविधताओं में फंसे हुवे हम लोग सिद्धोंके सूक्ष्म किन्तु (शक्ति और विस्तार में) अपरिमित उपकारों को नहीं देख पाते। और उन्हें तो जरूरत है ही नहीं कि वे हमें जत-लाते फिरें कि हम द्वारा ये ये इतने महान उपकार हो रहे हैं। यह तो हम अशुद्ध तथा स्वार्थ मल दूषित उपकार करनेवालों की इच्छा हुवा करती है कि उपकृत को पता लगे कि ‘मैंने’ उपकार किया

है; हमें उपकार करने का अभिमान भी होता है कि मैं यह उपकार कर रहा हूं। पर हमें यह खूब समझ लेना चाहिये कि यह अभिमान ही हमारे उपकार के विशुद्ध होने में सब से बडी रुकावट है। अर्थात् हम में उपकार करने का जितना अभिमान होता है (अतएव दिखाने की इच्छा होती है) उतना ही वह उपकार स्वार्थमय होता है; उसकी पहुंच, प्रभाव, बल भी उतनी ही मात्रा में कम (परिमित) होते हैं। शुद्ध परोपकारी को यह 'भान' होना ही बन्द हो जाता है कि 'मैं' उपकार करता हूं 'मैं' का अभिमान जाता रहता है। अतः सिद्ध लोग उपकार करते हैं' यह कहने की अपेक्षा ऐसा कहना अधिक ठीक है कि सिद्धों द्वारा परोपकार 'होता है-स्वयमेव होता है'। संसार में सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि देवों को देखना चाहिये कि ये कैसे निरभिमान और निर्मान होकर इतना बडा भारी परोपकार चला रहे हैं। सिद्ध योगियों का परोपकार भी इसी कोटि का होता है। ये सिद्ध भी एक मात्र परमोपकारी परमात्मा के अनन्त उपकार कार्य के लिये सूर्य चन्द्रादि की तरह ही उनके हाथ में एक बडे भारी (निरभिमान, निर्मान, जडसदृश और अदृश्य) साधन बन जाते हैं। केवल सर्वथा परोपकारी बनने के लिये यही विधि है। यहां हम यह भी देख सकते हैं कि कई सच्चे योगी जोअपने सन्मुख परोपकार को सिद्धान्ततः नहीं रखतेहैं इस का क्या अभिप्राय है। वास्तव में ही परोपकार हमने करना नहीं है वह स्वयं हम से होगा। यदि पाठकों ने पिछला विवेचन ध्यान से पढा है तो उन्होंने यह देखा होगा कि साधनावस्था में (सिद्धावस्था से पहिले) भी योगी का परोपकार ऐसा ही सहज परोपकार होता है (जो स्वयं सामने आता है वह हठ से नहीं किया जाता)। अस्तु। तात्पर्य यह कि यह जान कर कि चूंकि वास्तविक परोपकार निरभिमान और सूक्ष्म होने के कारण साधारणतया दृश्य नहीं होता है, हमें उस महान परोपकार की सत्ता से इनकार नहीं करना चाहिये, अपितु स्वयं स्थूल से ऊंचा उठकर उसे देखने का यत्न करना चाहिये।

आशा है अब यह स्पष्ट है कि योगमार्गावलंबी प्रारंभ से अन्त तक सच्चे अर्थों में परोपकारी होता है तथा अन्त में उसी के लिये 'परोपकाराय सतां विभूतयः' यह वाक्य ठीक उतरता है, क्यों कि उसी सत्पुरुष के पास सच्चे अर्थों में विभूतियां होती हैं और वही एकमात्र शुद्ध परोपकार कर सकता है और स्वभावतः करता है।

इसलिये यदि कोई धीर पुरुष इस दिव्य आत्म विकास के कार्य के लिये समाज से जुदा होते दिखाई देवें तो इसे बुरा न मानना चाहिये, बल्कि इसे अपरिमित परोपकार का प्रारंभ समझ इसमें उनकी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। कुछ काल तक कोई दृश्य उपकार होता हुवा न देख कर अधीर नहीं होना चाहिये। आम्रबीज से आम्रफल एकदिन में नहीं मिल सकते। पाश्चात्य देशों के व्यापारी (जिनका उद्देश्य कुछ उच्च नहीं होता प्रायः तो दूसरे निर्बल देशोंका आर्थिक शोषण करना होता है) अपने यहां आविष्कारों के लिये वैज्ञानिकों को रखते हैं। यह कार्य एक वैज्ञानिक के जीवन भर और कभी कभी पुश्तों तक चलता रहता है पर कोई इष्ट आविष्कार नहीं निकलता। इस पर भी वे घबराते नहीं। उनमें दूर दृष्टि होती है जिससे कि वे जानते हैं कि यदि सौ वर्षों में भी एक आविष्कार उनके उस व्यापार का सहायक हो जायगा तो उससे सब क्षति पूर्त्ति हो जायगी। वहां वे इस कार्य को 'समय बरबाद करना' नहीं कह सकते। पर हम पतंजलि आदि ऋषिओं की सन्तान योगसाधन के कार्य (जिससे अपना तथा जगत् का कल्याण ही होता है) में बहुत सा काल लगाने से डरें यह कितने आश्चर्य की बात है। आशा है जब हम योगमार्ग की परोपकारमयता को समझ जांयगे तो सौवर्ष ही नहीं बल्कि कई जन्मों (जीवनों) तक को हम योगसाधन में लगाने के लिये उद्यत होंगे।

प्रेत–विद्या.

(ले०-उदयभानुजी .)

आजकल प्रेतविद्या का बोलबाला है। समाचार पत्रों में इसको खासी चर्चा होती है। केवल योरोपमें ही नहीं किन्तु भारतमें भी इसका प्रचार दिनोंदिन बढता जा रहा है। पाश्चात्य जगत्में कई बार इसके विरुद्ध आन्दोलन किया गया परन्तु भारत तो सदा से श्रद्धा के लिए प्रख्यात है, यहाँ कोई भी सिद्धान्त हो, न्याय और सत्य की दृष्टि से चाहे उसका मूल्य कितना ही कम क्यों नहीं, वह भारत में बिजली की तरह व्याप जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक साम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए जितनी अनुकूल वायु भारत में मिल सकती है, उतनी अन्य किसी भी देशमें नहीं। धर्म की भी जितनी शाखाएँ भारत वर्ष में हैं उतनी संसार के किसी देश में नहीं पाई जाती। कहने का तात्पर्य यह है भारतवर्ष में प्रत्येक सिद्धान्त के माननेवाले को अपने प्रचार-कार्य में बडी सफलता मिल सकती है।

आज हमें प्रेत-विद्या का विचार करना है। उनके सिद्धान्त कैसे हैं, उनमें न्याय और सत्यता का अंश कितना है; इसका विचार इस लेख में किया जायगा। मुझे देखकर बडा दुःख होता है कि सभ्य और शिक्षित मनुष्य तक भी इसके प्रचार कार्य में हाथ दे रहे हैं। इस लेख को प्रकाशित करनेका मेरा विचार कई मास से हो रहा था; किन्तु समयाभाव वश मैं इसे पूर्ण नहीं कर सका।

आत्म कथा

अपनी कथा को वर्णन करने की आदत प्रायःसभी मनुष्योंमें पाई जाती है और इससे कभी कभी बहुत लाभ भी हो जाया करता है। अतः मैं भी अपनी कथा पाठकों के सम्मुख रखता हूँ, इससे आपको पता चल जायगा कि शिक्षित और विरोधी मनुष्य भी कैसे इनके चंगुल में फँस जाया करते हैं। यह कथा वहाँ तक तो लिखी जायगी जहाँ तक इसका इस विषय से सम्बन्ध है।

मुझे गुप्त विद्या (Occult-Sciences) संबंधी पुस्तकें पढने का प्रायः कई वर्षों से शोक है। मैंने मेसमेरीजम, हिपनाटीजम आदि सभी विद्या ओं का अध्ययन और अनुभव भी प्राप्त किया। तब मुझे गुप्त विद्या ओं में पूर्ण विश्वास हो गया।

प्रारंभ में मैं प्रेतविद्या का विरोध करता था और मुझे प्रेतविद्या (Spiritualism) में तनिक भी विश्वास नहीं था। परन्तु इस विषय के लेख 'श्रीव्येंकटेश्वर समाचार','प्रभा', प्रभृति सुप्रसिद्ध पत्रों में पढकर मुझे इसका ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई और वह भडकीले विज्ञापनों के पढने से उत्तरोत्तर बढती गई। मैं यह विचारता था कि विना प्रत्यक्ष किये किसी सिद्धान्तपर अविश्वास प्रकट करना अनुचित है। मैं यह भी सोचने लगा कि यदि प्रेत विद्या में मुझे सफलता मिलगई तो ऋषियों की प्रेतात्मा ओं से मिलकर मैं आर्य जनता में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन कर सकूँगा। ऋषि के विचारोंको मैं अबभी प्रकाशित कर सकूँगा, इत्यादि इत्यादि।

तबसे मैं इस विषयकी पुस्तक पढने लगा। यह बात लगभग सन१९२२ की है। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी मुझे सफलता नहीं हुई। इन पुस्तकों में एक पुस्तक ऐसी भी थी कि जिसका मूल्य ५०) था, और अन्य पुस्तकें भी कुछ कम मूल्य की न थी। लगभग ६ मास तक लगातार अध्ययन और परिश्रम करता रहा किन्तु किसी भी प्रकार मुझे सफलता नहीं हुई। तब मैंने एक विज्ञापन Indian review में पढा। उस में एक अंगूठी की कई लोगों ने प्रशंसा की थी। मैंने उसे तथा कई अन्य प्रेतविद्या सम्बन्धी साधन (प्लैंचेट आदि) मंगवाये। मैं, मेरी माताजी तथा मेरी दो बहिनों द्वारा अंगूठी का प्रयोग लगभग चार मास तक चलता रहा परन्तु परिणाम में वही असफलता और निराशा दिखाई दी। तब मैं कई अन्य प्रेतात्मवादियों से मिला।

उनकी सहायता से मुझे प्लैंचेट और thought transference की सिद्धी प्राप्त हुई।तब प्रेतात्माओं से मेरी बातचीतहोने लगी। मुझे स्वामी दयानन्द, तथा मेरे पितामह आदिकी प्रेतात्माओं से वार्तालाप होने लगी। कुछ दिन तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा। इसमें मेरे अन्य मित्रभी सम्मिलित होने लगे। परन्तु कुछ दिनोंके उपरान्त मुझे इसकी असत्यता का पता लगा और यह पूर्ण ज्ञात हो गया कि यह केवल एक मानसिक भ्रम है, इसकी परीक्षा में पाठकों के सन्मुख प्रश्नोत्तर रूपमें आगे रखूंगा। इसके प्रथम इसके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझता हूँ।

प्रेतात्म विद्याके सिद्धान्त—

मनुष्यकी आत्मा अमर है। शरीर के नष्ट हो जाने से आत्मा का नाश नहीं होता। यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् फिर जन्म नहीं लेती किन्तु अन्तरिक्ष में कुछ दूर रहती है। ये आत्माएँ अपने स्थानसे पृथ्वी-पर आती हैं और अपने सम्बन्धियों से प्रेम करती, उनकी रक्षा करती और उनसे मिलने के लिए सदा प्रयत्न करती रहती हैं। इन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रहता है और ये सूक्ष्म शरीर में रहती हैं। ये हमें देख सकती हैं और हमारी आवाज को सुन सकती हैं पर हम इन्हें न देख सकते हैं और न इनकी आवाज को सुन सकते हैं। सम्बन्धीयों के रोने से प्रेतात्माओं को दुःख होता है। मनुष्य लोक में आने से इनका दम घुटने लगता है। इनके बुलाने में बडी जोखिम है। प्रेतलोकमें मतमतान्तर का सर्वथा अभाव है अतः वहाँ सामाजिक मनोमालिन्य तनिक भी नहीं है। प्रेतात्माओं को फिर किसी प्रकारकी मृत्युका सामना नहीं करना पडता।

वैदिक मत--

मनुष्यकी आत्मा अमर तो है किन्तु बार बार जन्म-मरण के चक्कर में घूमती रहती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ रहती है। जब तक उसका पुनर्जन्म नहीं होता तब तक उसकी प्रेत संज्ञा रहती है। प्रेत यमलोक में ही रहते हैं। यहाँ यमलोक से किसी भयानक एवं अदृश्य लोक से तात्पर्य नहीं अपितु अन्तरिक्ष से है।

इतना विवरण करने के पश्चात् हम यहाँ अपने पाठकों की सुविधाके लिए प्रश्नोतर रूपमें उन सब शंकाओं का समाधान करते हैं जो इसके मानने में लोगों को प्रायः हुआ करती है।

प्र-क्या तुम प्रेत-विद्या (modern spiritualism) का खंडन करते हो।

उ — हाँ।

प्र — प्रेतविद्या का सिद्धान्त अत्यन्त पुराना है। इसे सभी धर्म के लोग मानते आये हैं अतः तुम्हारा खंडन करना योग्य नहीं।

उ — जिन सिद्धान्तों को तुम मानते हो उन्हें अत्यन्त प्राचीन मानना भ्रम है क्योंकि वैदिक काल में इसका वर्णन कहीं नहीं पाया जाता।

प्र — हम इसकी प्राचीनता सिद्ध करते हैं—

(१) नूनमतः परं वश्या ... ...
... ... स्वधासंग्रहतत्पराः॥

कालिदास.

अर्थात् मृत्यु के पश्चात आत्मा में इच्छा पूर्वक इधर उधर घूमनेकी शक्ति आजाती है और मृतआत्माएँ नगरके ऊपर चक्कर लगाया करती हैं।

(२) कई अन्य काव्यों में भी ऐसाही वर्णन आता है कि अमुक के पितर उसको देखने को स्वर्ग से आगये इत्यादि॥

(3) "As for Egypt there is in the British museum a papyrus which dates from about 6000 years B. C. and which tells of the sorrow which the writer suffered through the death of his young wife. He would go into her tomb, and there by means of 'raps' he would hold conversation with the spirit of his deceased wife.."

अर्थात् आजसे लगभग ६००० वर्ष पहिले इस पत्रके लेखक की धर्म पत्नी मरगई थी। वह इसे अत्यन्त प्रिय थी अतः उसके मरनेपर इसे हृदय विदारक दुःख हुआ, कि जिसका पता हमें इस पत्र से मिलता है। किसी भी प्रकार के 'खटखट' शब्दसे यह व्यक्ति उसकी कबर में जाकर वह अपनी

मृतपत्नी की आत्मा से बात करता था। यह पत्र मिश्र देश का है और ब्रीटिश म्यूझीयममें अभी विद्यमान है।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह सिद्धान्त अति प्राचीन कालसे प्रचलित है और प्राचीन काल के लोगों को प्रेतविद्या के अनुभव भी होते थे।

उ—इस विद्या की उत्पत्ति का समय—

जैमिनि मुनि से महर्षि दयानन्द तक का काल एक 'चमत्कार-काल' कहा जा सकता है। चमत्कार वे घटनाएँ कहलाती हैं कि जो नियम विरुद्ध हों या जिनके नियम दर्शक न समझ सकें। जैसे वर्तमान समय में प्रत्येक वस्तु की सत्ता को सिद्ध करनेके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है ठीक इसी प्रकार उस 'चमत्कार काल' में प्रत्येक वस्तु की सत्ताको सिद्ध करने के लिए चमत्कार की आवश्यकता थी। लोग प्रत्येक घटना को ऐसी बना देते थे कि जिससे दर्शक लोग उसकी स्वाभाविकता को न समझ सकें। इस समय के किसी भी महापुरुष का अध्ययन कीजिए। ज्ञात होगा कि उनकी ख्याति किसी सत्याचरण या विद्या के कारण नहीं हुई किन्तु उन घटना ओं के कारण हुई है कि जो चमत्कार पूर्ण थीं। इसी कारण लोगों ने उन महापुरुषों के नामपर अनेक मन गढंत कथाएँ रचकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया।

आपने जो कालिदास इत्यादि के काव्यों का उदाहरण दिया है वे सब इसी चमत्कार काल की उपज हैं अतः अमान्य हैं।

आपने जो ६००० वर्ष पूर्व का मिश्रदेश के एक पत्र का उदाहरण दिया है वह भी हमारी समझ में उतना पुराना नहीं नजर आता। क्यों कि किसी पत्र को केवल अनुमान से इतना पुराना बतला देना प्रमाणित नहीं माना जा सकता। संभव है वह इतना पुराना न हो। क्यों कि पेट्री महोदयने लिखा है "प्राचीन मिश्र के पुरोहितों की रहस्यमयी शिक्षा ओं में यह विचार पाया जाता था कि आत्मा ३००० वर्ष तक पशु आदि के शरीरों में जन्म ग्रहण करता है"। देखिए आपकी रचित पुस्तक "Personal religion in Egypt before Christianity" पृष्ठ सं. ४३. जब पेट्री महोदय ईसा के पहिले मिश्र देश में पुनर्जन्म वादका प्रचार मानते हैं तब आपका अनुमान बिलकुल गलत ठहरता है। और सिद्ध होता है कि वह पत्र जो आपने इतना पुराना बतलाया था वास्तव में इतना पुराना नहीं है।

मिश्र में एक शिलालेख मिला है उसमें लिखा है "पुनर्जन्मके चक्कर में आकर आत्माएँ कीट, मत्स्य, चतुष्पाद, पशु, पक्षी और मनुष्य इन क्रमोंमें से गुजरती हैं और कभी कभी इससे विपरीत क्रम में भी जन्म लेती हैं।" इस पर विवेचन करते हुए पेट्री महोदय लिखते हैं "But it is not in the Egyption form, and the Indian influence appears already at work" मिश्र के इस पुनर्जन्म वाद में भारतीयता की झलक स्पष्ट है। पेट्री महोदय एक प्रसिद्ध लेखक और इतिहासज्ञ हैं। आपने मिश्रदेश की प्राचीन घटनाओं को बडी खोज के साथ लिखा है और यह सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रचार मिश्रदेश में खूब था और यहाँ के लोगों ने इस सिद्धान्त को भारत से ही सीखा था। जैसा प्रेतवाद आप मानते हैं वैसा मिश्र देश में प्राचीन काल में प्रचलित नहीं था।

अमेरीका में भी यह विद्या एक आधुनिक और अवैज्ञानिक लोगों की कल्पना है। देखिए- "The phenomena of spiritualism dates from the year, 1847, when The Fox sisters (of Rochester, America) gave evidence of possessing powrs" आधुनिक प्रतात्म-विद्या की कल्पना अमेरिकामें सन १८४७ ई० में प्रकट हुई।

प्र- जब प्लैंचेट द्वारा प्रेतात्मा से प्रत्यक्ष बात चीत होती है तब पुनः उसकी असत्यता क्यों सिद्ध करते हो।

उ- प्लैंचट की रचना ऐसी है कि जो जरा से धक्के से चल सकता है। वह किसी प्रेत के द्वारा नहीं चलता किन्तु उस पर हाथ धरनेवाले मनुष्य की शक्ति से चलता है। उसके द्वारा स्पष्ट शब्द तो नहीं लिखे जाते किन्तु केवल टेढी—मेढी लकीरें खिच जाती हैं जिसे प्रश्न कर्ता अपने मनोगत

भावों के अनुसार पढता है। यदि प्लैंचेट प्रेत द्वारा चलाया जाता तो प्रश्न कर्ता के हाथों की आवश्यकता नहीं होती।

प्र- आप यह कैसे सिद्ध करते हो कि प्रश्न कर्ता अपने मनोगत भावों के अनुसार पढता है।

उ- इसे सिद्ध करनेके लिए हमारी परीक्षाओं में से एक प्रयोग दिया जाता है। यदि पाठकवृन्द उसे विचार की दृष्टि से देखेंगे तो इन प्रेतात्म वादियों का रहस्य खुल जायगा। यह प्रयोग मैंने ७ जुलाई सन् १९२३ को किया था। उसे मैं अपनी नोट बुक में से जैसा का वैसा उद्धृत करता हूँ।

"आज मुझे यह तीव्र जिज्ञासा हुई कि मैं इसकी परीक्षा करूँ कि प्लैंचेट प्रेत के द्वारा चलता है या मेरे हाथ के द्वारा। इस कारण तीन कमरों में प्रयोग एक ही समय तीन व्यक्तियों द्वारा किये गये। एक मैं स्वयं, दूसरी मेरी माताजी और तीसरे एक मेरे मित्र थे। हम तीनों को मेरे पितामह की प्रेत आत्मा मिल गई थी। इसी कारण आज भी उन्हीं की आत्मा से बातचीत करनेका विचार किया। हम लोगों ने यह भी विचार किया कि आज हम प्रेतों से उस भाषा में लिखने की प्रार्थना करेंगे जिसे हम न जानते हों। ठीक८बजे सायंकाल को कार्य प्रारंभ किया गया। मैं उर्दू न जानता था इस कारण आजतक मेरी जिन जिन प्रेतों द्वारा बात चीत हुई थी वह अंग्रेजी या हिन्दी में ही हुई थी। आज मैंने अपने सहायक प्रेत (Spirit-guide) से कहा कि मैं यह चाहता हूँ कि आप मुझे उर्दू में जबाब दें। परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी मुझे उर्दू में उत्तर न मिला और न कागज पर ही कुछ लिखा गया। पश्चात् मेरी बात चीत हिन्दी और अंग्रेजी में ही हुई। "

मेरे मित्र हिन्दी और अंग्रेजी नहीं जानते थे वे केवल उर्दू ही जानते थे। उनको केवल उर्दू भाषा में ही बातचीत होती थी उनके साथ भी वे ही प्रेत थे जो मेरे साथ उन्हें बातचीत उर्दू के सिवाय अन्य किसी भाषा में न हुई। ठीक इसी प्रकार मेरी माताजी को भी उसी समय मेरे पितामह मिले और उन्होंने केवल हिन्दी में बातचीत की। आज हम तीनों व्यक्तियों के प्रश्न एक ही थे किन्तु जो उत्तर हम को मिले थे वे भिन्न भिन्न थे।

विचारणीय बात—

मेरे पितामह हिन्दी और मराठी के सिवाय अन्य कोई भाषा न जानते थे। उनके द्वारा मुझे अंग्रेजी में उत्तर दिया जाना और मेरे मित्रको उर्दू में उत्तर मिलना; इस बात का द्योतक है कि यह विषय संशयात्मक है। ठीक इसी प्रकार एक ही आत्मा द्वारा तीन व्यक्ति यों को एक ही समय में और भिन्न भिन्न उत्तर मिलना भी संशय युक्त है पाठक वृन्द ? यह मेरे विचार उस रोज इस परीक्षा से उत्पन्न हुए थे। क्यों कि उस समय मैं इसकी पूर्ण कमजोरियों को नहीं जान सका इस कारण केवल संशय ही हुआ था। उसके पश्चात् मैंने कई अन्य भी प्रयोग किये, जिन्हें विस्तार भय से यहाँ नहीं दे सकता; परन्तु मुझे यह दृढ निश्चय हो गया कि यह केवल एक मानसिक भ्रम है अन्य कुछ भी नहीं। पाठकों के सम्मुख मैंने जैसे का वैसा उद्धरण रखा है; अब आप भी उसका विचार करें।

प्र—क्या टेबल का हिलना और खटखट शब्द होना भी मिथ्या है।

उ—अवश्य मिथ्या है। न कहीं टेबल हिलती है और न कहीं शब्द होता है। भोले लोगों को फँसाने की केवल बाते हैं। परीक्षा के समय यदि किसी व्यक्ति ने कुछ भ्रम देख लिया तो ठीक है अन्यथा प्रेतात्मवादी कह देते हैं कि इसकी सिद्धि आपको न होगी। मुझे भी ऐसा ही उत्तर दिया जाता है किन्तु जब मैं प्रश्न करता हूँ कि टेबल किसी प्रेतसे हिलती है या मेरे से। यदि कहो कि प्रेत से तो प्रत्येक व्यक्ति को इसका हिलना दिखाई देना चाहिए और यदि कहो कि यह एक सिद्धि है और किसी किसी को हुआ करती है तो अपनी सिद्धि को प्रकट करने के लिए प्रेतकी आवश्यकता नहीं रहती। जहाँ प्रेत की अपेक्षा होगी वहाँ स्वयं की सिद्धि हो नहीं सकती। आश्चर्य तो यह है कि जब ये लोग मानते हैं कि प्रेत टेबल में आकर उसे हिला देता है तब वह मृत शरीर में क्यों कर नहीं आसकता। यदि टेबल हिल सकती है, प्लैंचेट हिल सकता है, जीवित

आदमी को बेहोश करके उसमें प्रेतस्थित हो सकता है तब वह मृत शरीर में क्यों कर नहीं आ सकता?

सिद्धान्त यह है कि जीव विना प्राणके नहीं रह सकता, प्राण विना वीर्य के नहीं रह सकता अतः टेबल या प्लैंचेट में जीव की कल्पना करके उसके कार्य को सिद्ध करना भ्रमात्मक है।

प्र—देखो हम मनुष्य को बेहोश करके उसमें प्रेतात्माका आवाहन कर सकते हैं।

उ– यह बिलकुल मिथ्या है। क्यों कि यदि बेसुद मनुष्य में प्रेत आजाता है तो मृत शरीर में क्यों नहीं आ सकता। मनुष्य का बेहोश हो जाना किसी अदृश्य प्रेत का द्योतक नहीं किन्तु उस मनुष्य की मानसिक वृत्ति का द्योतक है। यह वृत्ति (कि जिस में मनुष्य बेहोश रहता है) कई कारणों से जागृत हो सकती है। प्रेतात्म विद्या के प्रयोगों में यह वृत्ति कभी कभी भय से भी उत्पन्न होती है और कभी कभी प्रयोक्ता (operater) के संकल्प—बल से भी उत्पन्न होती है।

प्र - बेहोश मनुष्य नहीं बोल सकता। परन्तु वह मनुष्य हमारे चक्र (circle) में बोलता है अतः ज्ञात होता है कि वह कोई प्रेतात्मा ही बोलती है।

उ - बेहोश मनुष्य नहीं बोल सकता यह ठीक है परन्तु बेहोशी हालत में जब उसको दिव्य-दृष्टि (clairvoyance) प्राप्त हो जाती है तब वह बोल सकता है। उस समय वह समस्त कार्य कर सकता है किन्तु प्रयोक्ता के दृढ संकल्प से, अपने निजी संकल्प से नहीं। इसके लिए (mesmerism) मोहिनी विद्या का अध्ययन कीजिए।

जो आप एक शरीर में दो आत्मा ओं का (एक तो शरीर का अधिष्ठाता और दूसरी प्रेतात्मा) होना बताते हैं वह बिलकुल असम्भव है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होजाने पर उसके कार्यों से अनुमान होता है कि इस समय भी शरीर का अधिष्ठाता आत्मा एकही है। इस समय उस पुरुष को प्रत्यभिज्ञा, और शरीरपर कार्य करने का अधिकार पूर्ण रहता है। हाँ, यह बात अलग है कि वह बिना प्रयोक्ता को कोई कार्य न कर सके।

प्र—प्रेतात्मविद्या को कई वैज्ञानिक भी मानने लग गये हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो।

उ--जो जिस विषय का ज्ञाता और अनुभवी होता है, उस विषय में उसके वाक्य प्रमाणित माने जा सकते हैं; अन्य विषय में नहीं। आत्मविद्या विज्ञान का विषय ही नहीं फिर वैज्ञानिकों का कथन क्या कर प्रमाणित माना जाय।

जो वैज्ञानिक इस विषय में अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं उनकी संख्या बिलकुल ही कम है। प्रत्युत इस विषय का घोर आन्दोलन पाश्चात्य पत्र पत्रिका ओं में कई बार किया जा चुका है। इनमें सब से प्रथम अमेरीका का प्रसिद्ध पत्र " Scientific American " प्रमुख रहा है। उसने खुले शब्दों में यह कह दिया है कि यह पाश्चात्य प्रेतात्म-वादी विज्ञान का घोर शत्रु है और यदि यह न रोका गया तो विज्ञान के मार्ग में कई रुकावटें आने की शंका है। इसकी सूचना हिन्दी भाषी जनता को " माधुरी " द्वारा दी जा चुकी है। देखिए उसकी गत वर्ष की संख्या १ पृष्ठ सं. १४३, मास माघ।

प्रेतात्मविद्याको मान लेने से सभी धर्मों के सिद्धान्तोंपर कुठाराघात होगा, पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर बडी आपत्ति आवेगी, और कर्म व्यवस्था ठीक नहीं बैठेगी। यदि प्रेतों का आना जाना मान भी लिया जाय तो यह मानना पडेगा कि हमारी आत्मा भी हमारे पूर्वजों से मिलने जा सकती है। परन्तु यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। जैसे हमारी आत्मा किसी से मिलने नहीं जा सकती और जैसे हमें पूर्व जन्म का ज्ञान नहीं होता ठीक इसी प्रकार हमारे मरने के पश्चात भी हमें इस लोक का स्मरण नहीं रहता और न हम (मृत्युके पश्चात कभी अपने यहाँ के सम्बन्धियों से मिल सकते हैं।

आत्मा मर कर पुनर्जन्म को प्राप्त करता है यह वैदिक मत है और निर्विवाद है। इसके लिए निम्न लिखित प्रमाण देखिये–

१ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु...........................

अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमौषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः॥ ऋ. १०.१६

हे जीव ? तेरा नेत्र सूर्य को प्राप्त हो ... .तू ओषधियों में प्रतिष्ठित हो, प्रगट हो॥ इससे सिद्ध होता है कि जीव मर कर ओषधियों में भी जन्म लेता है।

२ पुनः पुनर्वशमापद्यते मे। क. उ. २. ६.
मनुष्य बार बार मुझ मृत्यु के वश में आता है।

३ यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदा ऽ शुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति सँसारं चाधिगच्छति।
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥
क. उ ३- ७,८

जो विवेक रहित सदा मनके पीछे चलता है अर्थात् जिसका मन अपने काबू में नहीं है, जो सदा अपवित्र होता है, वह उस शान्त पद को प्राप्त नहीं होता। किन्तु जन्म-मरण के प्रवाहको प्राप्त होता रहता है। जो मनुष्य शुद्ध और विवेक सम्पन्न है और जिसने अपना मन वश में कर लिया है वही उस अपनि धाम मोक्ष को प्राप्त करता है।

४ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता। क.उ.५.२
यह जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरको जानेवाला, और अनेक योनियों में निवास करनेवाला है।

५ मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति। मु.उ.५.२.७.
मूर्ख मनुष्य बार बार जरा और मृत्युको प्राप्त करते हैं।

' अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः
कायान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि '।
वैशे. द-५-२ १७.

अर्थात् प्रारब्ध कर्म के नाश हो जानेपर जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होता है। इसका कारण अपने किये हुवे कर्म हैं।

प्रश्न- अपसर्पण किसे कहते हैं ?

उत्तर- मन और प्राणके साथ जीवात्मा का शरीर में से निकलना अपसर्पण है।

प्र- उपसर्पण क्या है ?

उ- मन और प्राण के साथ जीवात्मा का दूसरे शरीर में प्रवेश-उपसर्पण है।

आशय यह है कि जीवका प्राण और मनके साथ मिलकर एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर में जाना अवश्यं भावी है (जबतक मोक्षके लिए उपाय न किया जाय)।

७- आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः।
समानं जरामरणादिजं दुःखं।
सांख्य ३-५२, ५३,

आगे भी योनियों में आने-जाने का चक्र चलता रहता है। बुढापा और जरा-मृत्यु का दुःख सब लोकों में (अर्थात् आगे भी) समान है।

८पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः। न्याय. द. १. १९.
मृत्यु के पश्चात् पुनर् जन्म होता है। इसे प्रेत्य-भाव कहते हैं।

९वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ गीता-२-२२.

जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रको छोडकर नये वस्त्रको धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण शरीर को छोडकर नवे शरीरको धारण करती है।

एनी. बीसेन्ट महोदयाने भी लिखा है कि जीवन मरण का प्रश्न धान्य के सदृश है। जैसे धान्य उत्पन्न होता है फिर नष्ट हो जाता है, फिर उत्पन्न होता है; ठीक इसी प्रकार आत्मा पुनः पुनः शरीर धारण करती है।

' It is called argument from analogy' see Ani Bisents ' Reincarnation।

'The idea (of Punarjanma) was never made the subject of philosophical demonstarion,but was regarded as some thing relf evident, which with the exception of the Charvakas or materialists no philosophical school or religious sect ever doubted '

see-philosophy of Ancient India' by Prof R. Garbe.

अर्थात् प्रोफेसर गॉर्बे महोदय लिखते हैं कि प्राचीन भारत में चारवाक और उसके कतिपय मतावलंबियों को छोडकर शेष सब लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते थे।

(आगे कवर पृ. ३ पर देखिये)

अथर्ववेद।

स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।)

द्वितीयं काण्डम्।

लेखक और प्रकाशक.

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

प्रथम वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७

सबका पिता।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २ । १ । ३

" वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, वही सब स्थानों और भुवनोंको यथावत् जानता है। उसी अकेले ईश्वरको अन्य सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण भुवन उसी प्रशंसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं। "

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अथर्ववेद का स्वाध्याय।

द्वितीय काण्ड।

इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ " वेन " सूक्तसे और " वेन " शब्दसे होता है। यह मंगल वाचक शब्द है। " वेन " शब्दका अर्थ " स्तुति करने वाला, ईश्वरके गुण गानेवाला भक्त " ऐसा है। परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसी के गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है। इस परमात्माकी विद्याके नाम " गुप्त विद्या, गूढ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या " आदि अनेक हैं। इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं। यह इस विद्याकी विशेषता है। विद्याओंमें श्रेष्ठ विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इस लिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करें।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पांच मन्त्रवाले सूक्तोंका है। इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं। अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं। इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्न लिखित प्रकार है—

५ मंत्रोंके	सूक्त	२२ हैं,	इनकी	मंत्र संख्या	११०	है
६ ,,	,,	५ ,,	,,	,,	३०	,,
७ ,,	,,	५ ,,	,,	,,	३५	,,
८ ,,	,,	४ ,,	,,	,,	३२	,,

कुल सूक्त संख्या ३६ कुल मंत्र संख्या २०७

इस द्वितीय काण्डके ऋषि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं—

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद.
प्रथमोऽनुवाकः				
१	५	वेनः	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्; ३ जगती
२	"	मातृनामा	गंधर्व, अप्सराः	" ; १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ५ भूरिगनुष्टप्
३	६	अंगिराः	भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्; ६ स्वराडुपरिष्टा-न्महाबृहती.
४	"	अथर्वा	चंद्रमाः, जङ्गिडः	" १ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः (आथर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्; १,२ उपरिष्टाद्बृहती (१ निचृत्, २विराट्); विराट् पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्
द्वितीयोऽनुवाकः				
६	५	शौनकः (संपत्कामः)	अग्निः	,, ; ४ चतुष्पदार्षी पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
७	,,	अथर्वा	भैषज्यं,आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्, १ भूरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद्बृहती
८	,,	भृगुः, (आंगिरसः)	वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनं,	,, ३पथ्यापंक्तिः,४त्रिराड्, ५ निचृत् पथ्यापंक्तिः
९	,,	" ,,	" "	"; १ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
१०	८	" "	निर्ऋति, द्यावापृथिवी, नानादेवताः	१ त्रिष्टुप्, २ सप्तपादष्टिः ३-५, ७, ८ (१) सप्तपदी धृतिः, ६सप्तपदी अत्यष्टिः ८ (२, ३) द्वौ पादौ उष्णिहौ।

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
तृतीयोऽनुवाकः				
११	५	शुक्रः	कृत्यादूषणं, कृत्यापरिहरणं	१ चतुष्पदा विराट्, २–५ त्रिपदा परोष्णिहः, ४ पिपीलिकमध्या निचृत्
१२	८	भरद्वाजः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्;२ जगती; ७,८ अनुष्टुभौ
१३	५	अथर्वा	", अग्निः	" ; ४ अनुष्टुप्;५ विराड्जगती
१४	६	चातनः	शाला, अग्निः, मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्, २ भूरिक्, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती.
१५	"	ब्रह्मा	प्राणः, अपानः, आयुः	त्रिपाद्गायत्री.
१६	७	"	"	१,३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४,५द्विपदासुरी गायत्री
१७	"	"	"	१–६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक्.
चतुर्थोऽनुवाकः				
१८	५	चातनः	अग्निः (सपत्न क्षयकामः)	साम्नी बृहती.
१९	"	अथर्वा	"	१–४ निचृद्विषमा गायत्री ५ भूरिग्विषमा.
२०	"	"	वायुः	" "
२१	"	"	सूर्यः	" "
२२	"	"	चंद्रः	" "
२३	"	"	आपः	" "
२४	८	ब्रह्मा	आयुष्यं	पंक्तिः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
२५	५	चातनः	वनस्पतिः	अनुष्टुप्, ४ भूरिक्
२६	"	सविता	पशुः	त्रिष्टुप् ३ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ४,५ अनुष्टुभौ (४ भूरिक्)
पञ्चमोऽनुवाकः				
२७	७	कपिञ्जलः	वनस्पतिः रुद्रः, इन्द्रः	अनुष्टुप्
२८	५	शम्भू	जरिमा, आयुः	त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भूरिक्
२९	७	अथर्वा	बहुदेवता	" १ अनुष्टुप् ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपंक्तिः
३०	५	प्रजापतिः	अश्विनौ	अनुष्टुप्,१ पथ्यापंक्तिः३भूरिक्
३१	"	काण्वः	मही, चंद्रमाः,	" २ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ आर्षीत्रिष्टुप् ४ प्रागुक्ता बृहती, ५ प्रागुक्ता त्रिष्टुप्.
षष्ठोऽनुवाकः				
३२	६	"	आदित्यः	" १ त्रिपाद्भूरिग्गायत्री. ६चतुष्पान्निचृगुष्णिक्
३३	७	ब्रह्मा	यक्ष्मविबर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यं	" ३ककुंमती,४चतुष्पाद्भूरिगुष्णिग्, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती,६उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुभ्. ७ पथ्यापंक्तिः
३४	५	अथर्वा	पशुपतिः	त्रिष्टुप्.
३५	"	अंगिराः	विश्वकर्मा	" १बृहतीगर्भा,४,५भूरिक्.
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमौ	" १ भूरिक् २, ५–७ अनुष्टुप्. ८ निचृत्पुर उष्णिग्

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं । स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है । अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कोष्टक देते हैं-

१ अथर्वा- ४, ७, १३, १९-२३, २९,३४ ये दस सूक्त ।
२ ब्रह्मा- १५—१७, २४, ३३, ये पांच सूक्त ।
३ आंगिरसो भृगुः— ८-१० ये तीन सूक्त ।
४ चातनः— १४, १८, २५, " " "
५ अंगिराः— ३, ३५ ये दो सूक्त ।
६ काण्वः— ३१, ३२ " " "
७ आथर्वणो भृगुः—५ यह एक सूक्त ।
८ वेनः — १ ,, ,,
९ मातृनामा— २ ,, ,,
१० शौनकः — ६ ,, ,,
११ शुक्रः — ११ ,, ,,
१२ भरद्वाजः — १२ ,, ,,
१३ सविता — २६ ,, ,,
१४ कपिञ्जलः— २७ ,, ,,
१५ शम्भू — २८ ,, ,,
१६ प्रजापतिः— ३० ,, ,,
१७ पतिवेदनः— ३६ ,, ,,

ये ऋषि-क्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवता-क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये—

१ ब्रह्म, आत्मा— १ यह एक सूक्त ।
२ गंधर्वः — २ ,, ,,
३ इन्द्रः — ५ ,, ,,
४ अग्निः — ६, १३, १४, १८, १९, ये पांच सूक्त ।
५ वनस्पतिः — ३, ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त. ।
६ दीर्घायुष्यं — ३, ७, १५-१७, २४, २८ ये सात सूक्त ।
७ आरोग्यं — ८, ९, ११, १५-१७, २८ ये सात सूक्त ।
८ चंद्रमाः — ४, २२, ३१, ३३ ये चार सूक्त ।

९ जंगिडः	— ४	यह	एक सूक्त
१० निर्ऋतिः	— १०	,,	,,
११ वायुः	— २०	,,	,,
१२ सूर्यः	— २१	,,	,,
१३ आदित्यः	— ३२	,,	,,
१४ आपः	— २३	,,	,,
१५ अश्विनौ	— ३०	,,	,,
१६ विश्वकर्मा	— ३५	,,	,,
१७ अग्नीषोमौ	-- ३६	,,	,,
१८ पशुपतिः	-- ३४	,,	,,
१९ पशुः	— २६	,,	,,

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएं हैं, जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं। समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिये। अर्थ विचार करने के समय ये कोष्टक पाठकों के लिये बडे उपयोगी हो सकते हैं। इस कोष्टकसे कितने सूक्तों का विचार साथ साथ करना चाहिये। यह बात पाठक जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तोंका अनुसंधान कर सकते हैं।

इतनी आवश्यक बात यहां कहके अब इस द्वितीय काण्डका अर्थ विचार करते हैं-

अथर्व वेदका स्वाध्याय ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य—अध्यात्म—विद्या ।

(१)

[ऋषिः— वेनः । देवता—ब्रह्म, आत्मा]

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान्गंधर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥ ४ ॥
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

अर्थ- (वेनः तत परमं पश्यत्) भक्त ही उस परमश्रेष्ठ परमात्माको देखता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफामें है और (यत्र विश्वं एकरूपं भवति) जिस में सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है । (इदं पृश्निः जायमानाः अदुहत्) इसीका प्रकृतिने दोहन करके ही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिये (स्वर्विदः व्राः) प्रकाश को जानकर व्रत पालन करने वाले मनुष्यही इसकी (अभ्यनूषत) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ (यत् गुहा) जो हृदयकी गुफा में है (तत् अमृतस्य परमं धाम) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रवोचत्) ज्ञानी वक्ता कहे । (अस्य त्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निहिता) हृदय की गुफा में रखे हैं, (यः तानि वेद) जो उनको जानता है (सः पितुः पिता असत) वह

२

पिताका भी पिता अर्थात् बडा समर्थ हो जाता है॥ २ ॥ (सः नः पिता) वह हम सबका पिता है, (जनिता) जन्म देनेवाला (उत सः बंधुः) और वह भाई है, वह (विश्वा भुवनानि धामानि वेद) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है। (यः एकः एव) वह अकेलाही एक(देवानां नाम-धः) सम्पूर्ण देवों के नाम धारण करनेवाला है, (तं सं-प्रश्नं) उसी उत्तम प्रकारसे पूछने योग्य परमात्माके प्रति (सर्वा भुवना यन्ति) संपूर्ण भुवन पहुंचते हैं॥ ३ ॥ (सद्यः) शीघ्र ही (द्यावा—पृथिवी परि आयं) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूं और अब (ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे) सत्यके पहिले उत्पादक की उपासना करता हूं। (वक्तरि वाचं इव) वक्तामें जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह (भुवने-स्थाः) सब भुवनों में रहता है, और (एषः धास्युः) यही सबका धारक और पोषक है, (ननु एषः अग्निः) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥ (यत्र) जिस में (अमृतं आनशानाः देवाः) अमृत खानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अध्यैरयन्त) प्राप्त होते हैं, उस (ऋतस्य) सत्यके (विततं कं तन्तुं दृशे) फैले हुए सुखकारक धागेको देखनेके लिये मैं (विश्वा भुवनानि परि आयं) सब भुवनोंमें घूम आया हूं। ॥ ५ ॥

भावार्थ- जिसमें जगत की विविधता भेदका त्याग कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है, उस परमात्माको भक्तही अपने हृद-यमें साक्षात देखता है। इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निचोड कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् को निर्माण किया है, इस लिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उसी एक आत्माका गुणगान करते हैं ॥१॥ जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी संयमी वक्ता ही कर सकता है। इसके तीन पाद हृदयमें गुप्त हैं, जो उन को जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥ वही हम सबका पिता, ज-न्मदाता और भाई भी है, वही संपूर्ण प्राणियोंकी सब अवस्थाओंको यथा-वत् जानता है। वह केवल अकेलाही एक है और अग्नि आदि संपूर्ण अन्य देवों के नाम उसीको प्राप्त होते हैं अर्थात् उसको ही दिये जाते हैं। जि-ज्ञासू जन उसीके विषयमें वारंवार प्रश्न पूंछते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ द्युलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो

अनंत पदार्थ हैं, उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि अटल सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिये मैं उसीकी उपासना करता हूं। जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है, उसी प्रकार जगत्के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि लकडीमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥ जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति संपूर्ण उक्त देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है, उसी का साक्षात्कार करनेके लिये सब वस्तुमात्रका निरीक्षण मैंने किया है और पश्चात् सबके अंदर वही एक सूत्र फैला है यह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

गूढ विद्या।

गूढ विद्या का अर्थ है गूढ तत्त्वको जाननेकी विद्या। कई समझते हैं कि, यह विद्या गुप्त रखना है, इस लिये इसका गूढ अथवा गुह्य विद्या कहते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। दृश्य संसारके अंदर सबका आधारभूत एक तत्त्व है, संसारके पदार्थ दृश्य हैं और यह सर्वव्यापक अधारतत्त्व अदृश्य है। हरएक मनुष्य सब पदार्थोंके रंग रूप आकार तोल आदिको देख सकता है, परंतु उस पदार्थ के अंदर व्यापने वाले तत्त्वको, जिससे कि उस पदार्थ का अस्तित्व अनुभव होता है, उस अदृश्य तत्त्वको, वह नहीं जान सकता; बहुत थोडेही उसका अनुभव कर सकते हैं। मनुष्य का स्थूल देह सब देख सकते हैं, परंतु उसी देहमें रहने वाले गुह्य अथवा गुप्त आत्माका दर्शन कौन करता है? परंतु जितना देहका अस्तित्व सत्य है उससे भी अधिक सत्य देहधारी आत्माके अस्तित्वमें है। इसी प्रकार संपूर्ण जगत् के अंदर व्यापने वाले गुह्यतत्त्व के विषयमें समझना चाहिये।

दृश्य आकारवाला जगत् दिखाई देता है, इसलिये वह गुह्य नहीं है, परंतु इस दृश्य जगत् को आधार जिस गुह्य तत्त्वने दिया है, वह इस प्रकार स्पष्टतासे नहीं दिखाई देता है; इसको ढूंढना, इसका अनुभव लेना, इस का साक्षात्कार करना, इस " गुह्य विद्या" का कार्य क्षेत्र है। इसलिये इसको " गुह्यविद्या गूढविद्या, गुप्तविद्या, गुह्याद्गुह्यतर का ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मविद्या, परविद्या, विद्या " आदि अनेक नाम हैं। इन सब शब्दोंका तात्पर्य " उस जगदाधार आत्मतत्त्वका ज्ञान " यही है।

वेदमंत्रोंमें यह विद्या विशेष रीतिसे बतायी है। स्थान स्थानमें तथा विविध रीतियोंसे इसका वर्णन किया है। कई मंत्रोंमें स्पष्ट वर्णन है और कईयोंमें गुह्य वर्णन है। यह सूक्त स्पष्ट वर्णन करनेवाला है, इस लिये उपासकोंको इसके मननसे बडा लाभ हो सकता है।

गूढविद्याका अधिकारी।

सब विद्या ओंमें यह गुह्य विद्या मुख्य है, इस लिये हरएक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय, तो सब ही मनुष्य इसकी प्राप्तिके मार्ग में लगे हैं, कई दूर के मार्गपर हैं और कईयोंने समीपका मार्ग पकडा है, इन अनेक मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग इस सूक्तको अभीष्ट है, यह बात यहां अब देखेंगे—

वेनः तत्पश्यत् ॥ १ ॥

" वेनही उसको देखता है, " यह प्रथम मंत्रका विधान है। यहां प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है। यह अधिकार " वेन " का ही है यह " वेन " कौन है? " वेन् " धातुके अर्थ– " भजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार के उपासनाके कार्य करनेके लिये जाना " ये हैं। ये ही अर्थ यहां वेन शब्द में हैं। " जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदय से उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है " इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहां अभिप्रेत है। इसलिये केवल " बुद्धिमान " अर्थ ही यहां लेना उचित नहीं है। कितनी भी बुद्धिकी विशालता क्यों न हुई हो, जब तक उसके हृदय में भक्ति की लहरें न उठतीं हों, तबतक उस प्रकारके शुष्क ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, यह यहां इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताना है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य धाम विद्वान् गन्धर्वः ॥ २ ॥

" अमृतके धाम को जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है। " इसमें " गंधर्व " शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है। गंधर्व शब्द का अर्थ " संत, पवित्रात्मा " कोशों में प्रसिद्ध है और यह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है। तथापि " गां वाणीं धारयति " अर्थात् " अपनी वाणीका धारण करनेवाला " यह अर्थ यहां विशेष योग्य है। वाणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहां वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आवश्यकता होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है। विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु

अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान गंधर्व शब्दसे यहां लिया जाता है। प्रायः आत्मज्ञानी वक्ताका वक्तृत्व मूकतासे ही होता है, किंवा थोडे परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञानी पवित्रात्मा आप्त पुरुष जो कुछ कहना है, कह देता है। जबतक लौकिक विद्या का ज्ञान मनुष्यके मनमें खिलबिली मचाता रहता है, तब तकही मनुष्य मेघगर्जनाके समान वक्तृत्व करता रहता है, परंतु इसका परिणाम श्रोताओंपर विशेष नहीं होता। जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है। परंतु प्रभाव बढता जाता है। वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है। यह गन्धर्व अवस्था समझिये।

यहां "वेन और गंधर्व" ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं। उपासक, भक्त तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करनेवाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और वही उसका वर्णन भी कर सकता है।

पूर्व तैयारी। (प्रथम अवस्था)

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उस सूक्तमें बताई है—

सद्यः द्यावा पृथिवी परि आयम् ॥ ४ ॥
विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

" एकवार द्युलोक और पृथ्वीलोकमें चक्कर लगा कर आया हूं। संपूर्ण भुवनोंमें घूमकर आया हूं। " अर्थात् द्युलोक और पृथ्वीलोक तथा अन्यान्य भुवनों और स्थानों में जो जो द्रष्टव्य, प्राप्तव्य और भोक्तव्य है, उस को देखा, प्राप्त किया और भोगा है। जगत् में खूब भ्रमण किया, कार्य व्यवहार किये, धनदौलत कमायी, राज्यादि भोग प्राप्त किये, विजय कमाये, यश फैलाया, सब कुछ किया, मनुष्यको जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया। यह गूढतत्त्वके दर्शन की प्रथम अवस्था है। इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है।

द्वितीय अवस्था।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि ये नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इस लिये सच्ची तृप्ति, सच्चा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये। इस द्वितीय अवस्थामें भोगोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अभौतिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है –

अमृतस्य विततं कं तन्तुं हशे विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

"अमृतका फैलाहुआ सुख कारक मूल सूत्र देखनेके लिये मैनें सब भुवनोंमें चक्कर मारा," अर्थात् इस द्वियीय अवस्थामें इसका चक्कर इस लिये होता है, कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल स्रोत होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लडाई झगडों के परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐक्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको ढूढेंगे, इस उद्देश्यसे इसका भ्रमण होता है। यह जिज्ञासूकी दूसरी अवस्था है। इस अवस्था का मनुष्य तीर्थों क्षेत्रों और पुण्यप्रदेशों में जाता है, वहां सज्जनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुंचता है और वहांसे ज्ञान प्राप्त करता है, इसका इस समय काउद्देश्य यही रहता है, कि इस विभेद पूर्ण दुःख मय अवस्थासे अभेद मय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें। इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है। इस प्रकार वह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुंचता है। इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है—

तृतीय अवस्था।

द्यावापृथिवी परि आयं सद्यः ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे ॥४॥

"मैं द्युलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूं और अब मैं सत्य के पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूं।"

जगत् भरमें घूम कर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अभिन्न तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है। जब यह ज्ञान इसको होता है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है। उपासनासे भिन्न कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है, इस लिये इस मार्ग में अब यह उपासक आता है। ये अवस्थायें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा व्यक्त होगई हैं, इन मंत्रों के साथ यजुर्वेद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक खुल जाता है; इस लिये वे मंत्र अब यहां देते हैं —

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥
परि द्यावा पृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

वा. यजु. अ. ३२

"(भूतानि परीत्य) सब भूतोंको जानकर या भूतों में घूमकरके (लोकान्

परीत्य) सब लोकोंमें भ्रमण करके (सर्वा दिशः प्रदिशः च परीत्य) सब दिशा और उपदिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इन सबको यथावत् जानकर (ऋतस्य प्रथमजां उपस्थाय) सत्यके पहिले नियमके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अभि सं विवेश) सब प्रकारसे प्रविष्ट होता हूं ॥ ११ ॥ (सद्यः द्यावा-पृथिवी परि इत्वा) एक समय द्युलोक और पृथ्वीलोकके सब पदार्थोंको देखकर (लोकान् परि) सब लोकोंको देखकर, (दिशः परि) दिशाओंका परीक्षण करके (स्वः परि) आत्म प्रकाशको जानकर (ऋतस्य विततं तन्तुं) अटल सत्यके फैले हुए धागेको अलग करके जब (तत् अपश्यत्) उस धागेको देखता है, तब (तत् अभवत्) वह वैसा बनता है कि, जैसा (तत् आसीत्) वह पाहिले था ॥ १२ ॥ "

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं। जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टी करण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्धोंद्वारा हुआ है। " सब भूत, सब लोकलोकान्तर, सब उपदिशाएँ, द्यु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहां तक जासकती है, वहां तक जाकर, वहांतक विजय करके, वहांतक पुरुषार्थ प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया। इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अटल सत्यनियमोंको चलानेवाला एकही सूत्ररूप आत्मा सबके अंदर हैं, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के विना कोई ठहर नहीं सकता। जब यह जान लिया तब उसकी ही उपासना की, और केवल अपने आत्मासेही उसमें प्रवेश किया। जब वहांका अनुभव लिया, तब उपासक वैसा बन गया, जैसा पहिले था।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको पता लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके मंत्रों द्वारा आशय व्यक्त हुआ है, वही बडे विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है। और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएं भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये-

१ प्रथम अवस्था-(अज्ञानावस्था)-अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान।

२ द्वितीय अवस्था - (भोगावस्था) - जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना। जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना। इसी अवस्थामें राज्यैश्वर्य भोग बढाये जाते हैं।

३ तृतीय अवस्था- (त्यागावस्था) -जगत्के भोगोंसे असमाधान होकर विभक्तोंमें व्यापक अविभक्त सत्तावाली सद्वस्तुको ढूंढनेका प्रयत्न करना । यह जिज्ञासूकी अवस्था है ।

४ चतुर्थ अवस्था- (भक्तावस्था)- मनुष्य विभिन्न विश्वमें व्यापक एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और श्रद्धा भक्तिसे उसकी उपासना करने लगता है ।

५ पंचम अवस्था- (स्वरूपावस्था) -उपासना और भक्ति दृढ और सहज होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा था वैसा बन जाता है। यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहां इसको सब ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

यही मार्ग इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है। यहां पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और आगेका मार्ग क्या है ।

पूर्णावस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही है कि-

उपस्थाय प्रथमजामृतस्य
आत्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य ।
तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥ वा. यजु. अ. ३२

"सत्यके पहिले प्रवर्तक परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ ॥ सत्यके फैले हुए धागेको अलग देख कर वैसा हुआ जैसा कि पहिले था ।" यह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है ॥ इसीको निम्नलिखित शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है—

स्वर्विदः व्राः अभ्यनूषत ॥ १ ॥
अमृतस्य धाम विद्वान् ॥ २ ॥
यस्तानि वेद स पितुष्पिताऽसत् ॥ २ ॥

"(व्राः) व्रत पालन करनेवाले (स्वर्विदः) आत्मज्ञानी उसी की स्तुति करते हैं। वे अमृतके धामको जानते हैं। जो ये धाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सबमें अधिक ज्ञानी अथवा सबमें अधिक समर्थ होता है।" यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्थामें पहुंचनेका निश्चय इससे हो सकता है ।

प्रथम मंत्रमें "व्राः" शब्द बडा महत्त्व रखता है। व्रतों या नियमोंका पालन करने वाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करने वालेका यह नाम है। नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना बडे पुरुषार्थसे साध्य होता है। इसमें व्रतभंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयंही प्रायश्चित्त करना होता है। महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं। हरएक मनुष्य दूसरे पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है। अपनी संपूर्ण शक्तियां अपने आधीन रखनी और कभी कुविचार आदि शत्रुओंके आधीन न होना इत्यादि महत्व पूर्ण बातें इस आत्मशासनमें आती हैं। परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उसीका महत्त्व सब लोग मानेंगे।

सूत्रात्मा।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सब में एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं। सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं। जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, उसी प्रकार इस जगत् के सूर्यचंद्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधार से यह सब विश्व रहा है, इसीका दर्शन नहीं होता, सब मालाकाही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्व तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है और वह उस जगदाधार को प्राप्त कर सकता है।

वेद में "तन्तु, सूत्र" आदि शब्द इस अर्थमें आगये हैं। जगत्के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके विना नहीं है। यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गूढ विद्याका विषय है, जो इस सूक्त द्वारा बताया है।

अमृत का धाम।

यही आत्मा अमृतका धाम है, इसको ढूंढना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है। इसको कहां ढूंढना यही प्रश्न बडा विचारणीय है, इसकी प्राप्तिके लिये ही संपूर्ण जगत् घूम रहा है, विचारकी दृष्टिसे देखा जाय, तो पता लग जायगा कि, सुख और आनंदके लिये हरएक प्राणी प्रयत्न कर रहा है, और हरएकका ख्याल है कि, बाह्य पदार्थकी प्राप्ति से सुख होता है। इस लिये मनुष्य क्या अथवा अन्य कीटपतंगादि प्राणी क्या, भ्रमण कर रहे हैं, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा रहे हैं, इष्ट पदार्थ प्राप्त होनेपर क्षणभर सुखका

अनुभव लेते हैं और पश्चात् दुःख जैसा का वैसा बनारहता है । इसका मनन करते करते मनुष्यके मन में विचार आजाता है कि, आनंद कंद को अपने से बाहर ढूंढते रहने की अपेक्षा उसको अपने अंदर तो ढूंढकर देखेंगे । यही बात " मैंने द्यावापृथ्वीमें भ्रमण किया, मैंने संपूर्ण भूतों में चक्कर मारा, सब दिशाएं और विदिशाएं देखलीं और अब मैं सर्वत्र व्यापक एक सूत्रात्माको जानकर उसकी उपासना करता हूं। " इत्यादि जो भाव चतुर्थ और पंचम मंत्र का है उसमें दर्शाई है । गूढ विद्याका प्रारंभ इसके पश्चात् के क्षेत्रमें है, यहांसे ही गूढ तत्त्वकी खोज शूरू होती है । जिस प्रकार आंख संपूर्ण पदार्थोंको देखती है परंतु आंखमें पडे कणको देख नहीं सकती, इसी प्रकार मनुष्य सब जगत् का विजय करता है, परंतु अपने अंदरका निरीक्षण करना उसको कठीन होता है । यही गुप्त विद्याका क्षेत्र है । इस लिये इसको कहां ढूंढना है, यह देखना चाहिये । इस सूक्त में इस विषयका स्पष्टीकरण करनेवाले शब्द ये हैं-

गुहा ।

यत् परमं गुहा ॥ १ ॥ यत् धाम परमं गुहा ॥ २ ॥

" यह परम धाम गुहामें है । " इस लिये इसको गुफा में ही ढूंढना उचित है । इसी हेतुसे बहुतसे लोग पर्वतोंकी गुफाओंमें जाते हैं, और वहां एकान्त सेवन करते हैं । योग्य गुरुके पास रहकर पर्वत कंदरामें एकान्त सेवन करने और अनुष्ठान करनेसे इस गुह्य विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बडा लाभ निःसंदेह होता है; परंतु यह एक बाह्य साधन है । सच्ची गुफा हृदय की गुहा ही है । हृदय की गुफा सब जानते ही हैं । इसी में इस गुह्यतत्वकी खोज करनी चाहिये ।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुह्यतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती । इस कार्य के लिये दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिये, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् उलटा शुरू होना चाहिये । तभी इस गुह्य तत्त्वकी खोज हो सकती है । अपने हृदयमें ही उस गुप्त आत्माको देखना चाहिये । अर्थात् इसकी प्राप्तिके लिये बाह्य दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिये ।

चार भाग ।

यह अमृतका धाम हृदयमें है । यदि इस अमृत के चार भाग मान लिये जांय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है । जो बाहर दिखता

है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है,वह बहुत विस्तृत ही है । अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-बुद्धि, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियां अदृश्य हैं और स्थूल शरीर यह दृश्य है । यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियां बहुत ही प्रभाव शाली हैं । अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बडी है । यही यहां निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है-

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पिताऽसत् ॥२८॥

" इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थसेभी समर्थ होता है । " अर्थात् स्थूलशरीर की शक्तिकी स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है । इसीविषयमें ये मंत्र देखिये---

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥ ऋ.१०।९०॥वा.य.३१
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादोस्येहाऽभवत्पुनः ॥ अथर्व १९ । ६
त्रिपाद्ब्रह्म पुरुरूपं वितष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः॥ अथर्व.९।१०।१९

" उसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत द्युलोक में है ॥ तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहां वारंवार प्रकट होता है ॥ तीन पावोंसे स्वर्गपर चढा है और एक पाद यहां पुनः पुनः होता है ॥ तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके ठहरा है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं । "

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य वही है, जो इस सूक्तके ऊपर दिये हुए भागमें बताया है । उस अमृतकी अल्पसी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है,शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यक्त में कार्य होता रहता है । पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता उनको लग जायगा। मनकी शक्ति बहुत है, उसका थोडासा भाग शरीरमें आगया है और यहां कार्य कर रहा है । यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन वारंवार मूल गुप्तमनकी शक्तिसे प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और वारंवार शरीरमें आकर कार्य करता है। यही बात अधिक सत्यतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है । उसका केवल एक अंश प्रकट है, शेष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोडना गूढविद्याका साध्य है ।

एक रूप।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है। जगत्में गति है इसमें शांति है, जगत्में भिन्नता है इसमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, इस सूक्तमें भी देखिये-

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ॥
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥

" ज्ञानी भक्त ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोडकर एकरूप हो जाता है। इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है। इस लिये आत्मज्ञानी व्रतपालन करनेवाले भक्त उस आत्माकाही गुण गान करते हैं।"

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जाग्रतीमें जगतकी विविधता का अनुभव आता है, स्वप्न में भी काल्पनिक सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु तृतीय अवस्था गाढ निद्रा-सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इस लिये उस समय किसी प्रकारका भान नहीं होता। सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें " ब्रह्म रूपता " होती है, तम-रज-सत्त्व गुणोंकी भिन्नता छोड दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भाषामें ईशरूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिटजाता है; इस लिये इस अवस्थाको "एक-त्व" न कहते हुए " अ-द्वैत " कहते हैं। इसी उद्देशसे इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

" जहां संपूर्ण विश्व एकरूप होता है।" अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप सा आजाता है। वृक्ष के जड, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गुठली में इस भिन्नता की एक रूपता दिखाई देती है। इसी प्रकार इस जगद्रूपी वृक्षकी विविधता मूल उत्पत्तिकारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी। इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती है। इस रीतिसे न उत्पन्न होने वाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होने वाले अनेक तत्त्व बनते हैं। इनका ही नाम उक्त मंत्रमें " जायमानाः " कहा है। इनमें मनुष्यभी संमिलित हैं और अन्य प्राणी तथा अप्राणी भी हैं। इन में मनुष्यही (व्राः) व्रतपालनादि सुनियमोंसे अपनी

उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके और (स्वर्विदः) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है।

अनुभव का स्वरूप।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये—" आत्मज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयकी गुहामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियां वहां ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है।"(मंत्र २ देखो)

और वह अनुभव करता है कि— " वही परमात्मा हम सबका पिता, उत्पादक,और भाई है, वही सर्वज्ञ है।" (मंत्र३) इतनाही नहीं परंतु "वही हमारी माता और वही हमारा सचा मित्र है " यह भी उसका अनुभव है। यहां ऋग्वेद और अथर्व मंत्रों की तुलना कीजिये—

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामध एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ अथर्व.२।१।३
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामधा एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋग्वेद १०।८२।३
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

वा. यजु. ३२।१०

इनमें कुछ पाठभेद है, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है। यही ज्ञानी भक्त का अनुभव है। और एक अनुभव यजुर्वेदके मंत्रमें दिया है वह भी यहां देखिये—

जगत् का ताना और बाना।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वँ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥

वा. यजु. ३२।८

" ज्ञानी भक्त उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुहामें है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिस में यह सब विश्व एक समय (सं एति) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय (वि एति) अलग होता है। (सः विभूः) वह सर्वत्र व्यापक तथा वैभवसे युक्त है और (प्रजासु ओतः प्रोतः) प्रजाओं में ताना और

बाना किये हुए धागोंके समान फैला है।"

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बडे भाई, चचा, दादा, नाना आदिके पास सहायतार्थ जाता है। वही बालक बडा होनेपर आपत्ति आगई तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है। इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है। ये सब संबंध परमात्मामें ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी भक्तके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, भाई आदि रूप हो जाता है।

एकके अनेक नाम।

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका भाई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं। इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होने पर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें आनेके कारण उसको अनंत नाम दिये जाते हैं। जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इस लिये अग्निका अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निकाही अग्नि है। इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है।

शरीरमें भी देखिये-आंख नाक कान आदि इंद्रियां स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी शक्तिको अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं। इस लिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मामें सार्थ होते हैं, अतः आत्माको आंखका आंख, कानका कान कहते हैं। इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है। देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है।

वह एकही है।

परमात्मा एकही है, यह बात इस तृतीय मंत्रमें " एक एव " (वह एक ही है) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है। किसीको परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इस लिये " एव " पदकी योजना यहां की है। भक्त को भी ईश्वरके

एकत्वका अनुभव होता है, क्योंकि " विभक्तोंमें अविभक्त " आदि अनुभव उसको होता है, इत्यादि विषय इससे पूर्व बताया ही है ॥

ज्ञानी भक्तका विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा " सं-प्रश्न" है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है। भक्तिसे जब भक्त उसे प्रश्न पूंछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है। कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायताकी याचना की, और एकान्त में अनन्य शरण वृत्ति से उस की प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना निःसंदेह सुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है। अन्य मित्र सहायतार्थ समयपर आसकेंगे या नहीं इसका नियम नहीं,परंतु यह परमात्मा ऐसा मित्र है, कि वह अनन्य भावसे शरण जानेपर सदा सहायतार्थ सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह शरणागत की सहायता न करे। इस लिये सहायतार्थ यदि किसीसे पूंछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्यों कि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उदार दयामय हस्त सदा हम सबपर है।

यह सबका (धास्युः) धारण पोषण करनेवाला है और (भुवने-स्थाः) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वक्तामें जैसा वक्तृत्व है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है। (मंत्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्यों कि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहां सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्यभी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

"उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुंचते हैं।"

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोड कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहां का अनुपमेय अमृत पीते हैं।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है। मुक्ति और समाधि तो हरएक के अनुभवमें नहीं है, परंतु सुषुप्ति हरएक के अनुभवमें हैं। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्म रूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब

इंन्द्रियां -अपना भेदभाव छोडकर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहां आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब थकावट दूर होती है और जब सुषुप्तिसे हटकर ये इंद्रियां जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी मेंभी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तब तक बीमार की अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती। परंतु यदि चार पांच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी असाध्य हुआ है ! इतना महत्त्व तमोगुणमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्म रूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

यजुर्वेदमें यही मंत्र थोडे पाठ भेदसे आगया है, वह भी यहां देखने योग्य है-

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ वा. यजु. ३२।१०॥

" वहां देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुंचते हैं। "

पूर्वोक्त मंत्र में जहां " समाने योनौ " शब्द हैं वहां इस मंत्र में " तृतीये धामन् " शब्द हैं। समान योनी का ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाएं मान लीं जांय, तो तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोड कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये प्रकृतिके रूप यहां लिये जांय, तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता त्यागकर उस ब्रह्ममें लीन होकर अमृत रूप होते हैं। ज्ञानी भक्त महात्मा साधुसंत ये लोग अपने समान भाव से मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानंदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हर एक स्थानमें इसका अर्थ देखना चाहिये।

[पाठक इस सूक्तका मनन कां० १। सू० १३ और २० इन दो सूक्तोंके साथ करें]

यहां इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे और उसपर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें गूढविद्याकी बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द चुन चुनके रखे हैं, और हरएक शब्द विशेष भाव बता रहा है। विशेष विचार करनेकी सुगमता के लिये ऋग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहां दिये हैं, इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदकी यह विशेष विद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे जितना अधिक लाभ उठावेंगे उतना अधिक अच्छा है।

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

(१) स्वयंशिक्षक माला।

वेदका स्वयंशिक्षक। १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥)
" " २ द्वितीय भाग ... " १॥)

(२) योगसाधनमाला।

१ संध्योपासना। ... मूल्य १॥)
२ संध्याका अनुष्ठान। ... " ॥)
३ वैदिक प्राण विद्या। ... " १)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र)। ... " १।)
५ योगसाधनकी तैयारी। " १)
६ योगके आसन। (सचित्र) " २)
७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " ॥)

(३) यजुर्वेद स्वाध्याय।

१ यजु. अ. ३०। नरमेध। मूल्य मूल्य १)
२ यजु. अ. ३२। एकेश्वर उपासना। " ॥)
३ यजु. अ. ३६। शांतिका उपाय। " ॥=)

(४) देवतापरिचय ग्रंथमाला।

१ रुद्र देवता परिचय। .. मूल्य॥)
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता। ... " ॥=)
३. ३३ देवताओंका विचार। " =)
४ देवताविचार। .... " =)
५ अग्निविद्या।... " १॥)

(५) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

१ बालकधर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। " =)
३वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक " =)

(६) उपनिषद् ग्रंथमाला।

१ केन उपनिषद् .... मूल्य १।)
२ ईश उपनिषद् " ॥=)

(७) आगम-निबंध-माला

१ वैदिकराज्यपद्धति। ... मू. ।-)
२ मानवी आयुष्य। ... " ।)
३ वैदिकसभ्यता ... ... " ॥)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ... " ॥)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा। " ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या। .... " ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। " ॥)
८ वेदमें चर्खा। .... " ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय। " ॥)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता " ॥)
११ तर्कसे वेदका अर्थ। .... " ॥)
१२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र। " =)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न। .... " =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने। " ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या। " =)
१६ वैदिक जलविद्या। " =)
१७ आत्मशक्तिका विकास। " ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला " ॥)

(८) ब्राह्मण-बोध-माला।

१ शतपथ बोधामृत। " ।)

(९) अन्य पुस्तक।

१ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग " १)
२ " " द्वितीय " " १)
३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १)
४ " " द्वितीय " " ॥)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

'केन' उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ "केन" शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांतियोंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ "यक्ष" कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्ठी, २२ त्रिलोकी २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यक्ष, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य १।) डाकव्यय=) है।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

यज्ञकी पुस्तक

वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १) रु. डाकव्यय ।)

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १

२ " " " " २

३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)

५ अद्भुत कुमार-संभव " " "

६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार

(ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी)

७ यज्ञका महत्त्व (संपादकीय)

८ यज्ञका क्षेत्र "

९ यज्ञका गुढ तत्त्व "

१० औषधियों का महामख "

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

(ले.-- श्री. पं. धर्मदेवजी)

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है? (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी)

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश है। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी।

मूल्य ॥) आठ आने। डाक व्यय-) एक आना।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

पाश्चात्य-विज्ञान बडा अशान्ति फैलानेवाला है। इसी कारण लौरा फिंच महोदय लिखते हैं—

Oh India ? Will you not help us ? ... Be patient with us India ?

Remember we are your children, you are old and learned and wise before we existed.... ... ...

Our path is steep and thorny. ...
help, us, Mother India. ... ...

We, your real vedic children, are turning our gaze to our mother land for guidance. ... ...

But with you, India hand in hand together. ... ...

We can become the great regenerating and moralising force of this world !

(By—Laura Finch, Paris.)

लौरा फिंच महोदय पेरीस के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने अपनी कविता में कहा है कि हे "भारत-माता ! हम तेरे पुत्र हैं, तू हमे सहायता दे, तेरी सहायता और सहानुभूतिके लिए हम टक-टकी लगाए हुए हैं, हमारा मार्ग अशान्त और कंटक-मय है। हम पुत्र हैं, हमारे आविर्भाव के पहिले ही से तू उन्नति के उच्चतम शिखर को पहुँच चुकी है, हम भी तेरी ही सहायता से संसार में उन्नति कर सकते हैं, अतएव हे भारतमाता ! तू हमें मदद दे।"

इसी प्रकार हम असंख्य प्रमाण दे सकते हैं। किन्तु लेख का कलेवर बहुत बढ गया है अतः यहीं समाप्त किया जाता है। यदि सम्पादक महोदयका आज्ञा हुई तो फिर किसी समय इस विषयपर विशेष लिखूँगा। जिन सज्जनों को इस अवैदिक प्रेतात्म-विद्याके गुप्त कारवाइयों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो और जिनके द्वारा हमारे भोले भाले भाई इसके चंगुल में फंस जाते हैं; उनसे मेरा निवेदन है कि वे वैदिक धर्मके पूर्व अंक ८ और ९ वर्ष संख्या ६ लेखका शोर्षक 'लन्दन में प्रेतात्मविद्या के अद्भुत दृश्य' अवश्य देखें। उसमें इस विद्या के सब चमत्कारों की पोल बडी खूबी के साथ लिखी गई है।

उदय भानु
१०२ रावजी बाजार
इन्दोर

छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ!! अत्यन्त उपयोगी!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई अर किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग मू. १)

द्वितीय भाग मू. ॥)

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)